श्रीभाईजी कथामृत

लेखक - गम्भीरचन्द दुजारी

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभाईजी-कथामृत

लेखक—

गम्भीरचन्द दुजारी

SHREE BHAIJEE KATHAMRIT

By

Gambhir Chand Dujari

प्रकाशक

गीतावाटिका प्रकाशन

पद-रत्नाकर सेवा शोध संस्थानका प्रकल्प

पो०—गीतावाटिका, गोरखपुर-२७३००६

फोन : (०५५१)२२८४७४२, ८८५३१४५४५२

e-mail : rasendu@yahoo.com

प्रथम संस्करण—श्रीभाईजी पुण्यतिथि, सं० २०७२ वि०

मूल्य : दो सौ पचास रुपये मात्र (२५०/-)

विषय-सूची

परिशिष्ट

प्रकाशकीय नम्र निवेदन

जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान अपने चरम पर जा पहुँचता है तब-तब श्रीभगवान् विविध शरीर धारण करके प्रकट होते हैं और अधर्मियोंका नाश करके धर्मको संस्थापित करते हैं। इसके अलावा भगवान् धर्मकी अभिवृद्धिके लिये समय-समयपर अन्तर्जगत्से महान आत्माओंको विशेष रूपसे धरापर भेजते हैं जो निर्दिष्ट कार्यको सम्पन्न कराते हैं। इन दोनों परिस्थितियोंमें कार्य-सम्पादन हेतु भगवान् अथवा विशेष कार्य हेतु अवतरित महापुरुषोंके साथ लीला-सम्पादनके लिये उनके साथ परिकरोंका भी आगमन होता है।

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका अवतरण भी भगवान्के विशेष कार्य हेतु हुआ था। उनके द्वारा धर्मकी अभिवृद्धिके लिये हुए अतुलनीय 'विशेष कार्य' में अनेक लोगोंका सहयोग रहा जिसका उल्लेख श्रीभाईजीने अपने वसीयतनामामें किया है। लेकिन उस कार्यके सम्पादनमें कुछ ऐसे भी नाम हैं जो परदेके पीछे रहकर चुपचाप श्रीभाईजीके निर्देशों, संकेतों और रुचिके अनुसार इस कार्यमें अद्भुत सहयोग किये। उन्हीं लोगोंमेंसे अग्रगण्य थे श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी। श्रीदुजारीजी यौवनावस्थामें अपना बड़ा व्यापार छोड़कर श्रीभाईजीके साथ आजीवन समर्पित होकर रहे और उनके कार्यमें सहयोग देते रहे। वे श्रीभाईजीकी अलौकिक स्थितिको समझकर उनके जीवनकी घटनाओंको लिखते रहे, संग्रह करते रहे। उन्होंने लिखा है—

"हम तो अपने स्वान्त:सुखायके लिये यह कार्य कर रहे हैं। हमारा उद्देश्य बीसवीं शताब्दीके नास्तिक लोगोंका मनोरंजन करना बिल्कुल नहीं है। और, हमें लाभ होगा या हानि इसका कुछ भी विचार न करके इस कार्यमें प्रवृत्त हुए हैं। हम तो अपनी मलिन बुद्धिके अनुसार अपने चरित्रनायकसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ घटनाओंको यथासाध्य प्रामाणिक रूपसे संग्रह करनेके अपने मनुष्य जीवनके प्रधान उद्देश्यमें लगे हुए हैं। जैसे भगवान् गीता अध्याय १८, श्लोक ६१ के अनुसार यंत्रवत् यह कार्य करा रहे हैं—**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशो अर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्ससर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया॥** इन पंक्तियोंका छुद्र लेखक चरित्रनायकके समीप रहकर प्रतिदिनकी दिनचर्या लिखता रहता था क्योंकि उसके जीवनका लक्ष्य ही यही है कि अपने चरित्रनायकके मधुर चरित्रका चारु चित्रण कर लिया जाय तो बस, अपना जन्म लेना सार्थक हो जायेगा।"

पाठकवृन्द इस कथामृतको पढ़कर स्वयं अनुमान लगा लें जिस भाग्यशालीने ऐसी परम गोपनीय मधुर लीलाओंको स्वयं देखा-सुना और स्वयं श्रीभाईजीके मुखसे सुननेका सौभाग्य मिला उसका जीवन कितना पवित्र रहा होगा। इन्हींके सद्प्रयासोंसे श्रीजयदयालजी गोयन्दका और भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार जैसे दो परमोच्च कोटिके अपनेको सुगुप्त रखनेवाले संतोंके जीवन चरित्रकी

कुछ झाँकी जगत्के सामने प्रकाशित हो पायी है।

यह कथामृत जब लिखा गया तब 'पद-रत्नाकर' प्रकाशित नहीं हुआ था और श्रीभाईजी द्वारा रचित पद यत्र-तत्र बिखरे हुए थे। हमने पाठकोंके संदर्भ हेतु उन पदोंके पास पद-रत्नाकरकी पद संख्याका उल्लेख किया है। इस संग्रहमें उल्लिखित सभी तिथियाँ विक्रम सम्वत्की हैं। अत: विक्रम सम्वत्के साथ निकटतम ईसवी सन् की तालिका भी अलगसे दे रहे हैं। यह कथामृत श्रीभाईजीकी चर्या एवं उनसे सम्बन्ध घटनाओंका संग्रह है जो तिथि क्रमानुसार नहीं है। इसलिये इसके वर्णनमें कहीं-कहीं पाठकोंको पुनरुक्ति प्रतीत होगी जिसे लेखकने घटनाकी पृष्ठभूमिके लिये देना आवश्यक समझा है। इसके प्रकाशनमें हुई त्रुटियाँ, जो हमारी अपनी हैं उसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं जिसका ध्यानाकर्षण करनेपर सुधारनेकी चेष्टा की जायेगी।

श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीका विशाल संग्रह कई वर्षोंसे हमारे पास सुरक्षित रखा है। कई कारणोंसे आलस्य एवं प्रमादवश यह संग्रह प्रकाशित नहीं हो पाया। वैसे उनके विशाल संग्रहका उपयोग हमारी पुस्तक 'श्रीभाईजी— एक अलौकिक विभूति' में किया गया है। 'कल्याण' और श्रीभाईजीके व्यक्तित्वपर शोध करनेवाले छात्रोंने एवं अन्य लेखकोंने भी इस संग्रहका उपयोग किया है एवं कर रहे हैं। यह ग्रन्थ तो इस संग्रहका एक क्षुद्र प्रयास है। भगवत्कृपासे सुयोग मिला तो धीरे-धीरे इन्हें प्रकाशित करनेका विचार है।

इस ग्रन्थके प्रकाशनका व्यय हमारे सदस्योंने ही किया है। इसलिये किसीसे भी अर्थयाचना नहीं की गयी है।

एक सच्चे उच्चकोटिके भक्तकी जीवन-गाथा उनके समीप रहनेवाले लेखकके द्वारा आँखों देखी हुई बातें पढ़कर हम सचमुच निहाल हो जायेंगे। इसका अनुभव तत्काल आपको भले ही न हो परन्तु भक्त-चरित्र-चिन्तन अमोघ हुआ करते हैं।

—प्रकाशक
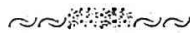
॥ श्रीहरिः ॥

मंगलाचरण

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि सम प्रभो।
निर्विघ्नं कुरु मे देव शुभ कार्येषु सर्वदा॥

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥ १॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ २॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥ ३॥

अखण्डानन्दबोधाय शिष्य संतापहारिणे।
सच्चिदानन्दरूपाय तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥ ४॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥ ५॥

॥ श्रीहरिः ॥

॥श्रीसद्‌गुरुचरणकमलेभ्यो नमः ॥

अन्तस्तलका एक स्पन्दन

स्वामिन्,

आज एक दुस्तर जलधिको तिनकेके सहारे पार करनेकी कामनासे प्रयत्न कर रहा हूँ। नहीं जानता कैसी आपदाओंको सहन करना पड़ेगा, नहीं मालूम किन कठिनाइयोंसे गुजरनेकी नौबत आयेगी। अल्पज्ञ, अबोध, ढीठ बालक हूँ, पैर आगे बढ़ानेमें ही मौज मालूम होती है। गड्ढेमें गिरूँगा कि सफलताके मधुरानन्दका उपभोग करूँगा, इसका पता नहीं। केवल स्वाभाविक चञ्चलतावश सदासे हठ करना ही सीखा है और आगे बढ़ रहा हूँ।

नाथ! हृदयमें भरोसा, विश्वास और दृढ़ता है। आपके वरद-हस्तकी छत्र-छायाको बारम्बार अनुभव कर रहा हूँ। हृदयमें उल्लासके साथ ही एक अनिर्वचनीय दिव्य-शक्तिका अलौकिक प्रभाव प्रत्येक क्षण प्रोत्साहित कर रहा है। पद-पदपर आनन्दकी उत्ताल तरङ्गोंमें बहा जा रहा हूँ। आगे बढ़नेका विचार उठते ही मूर्तिमान् उत्साह बलात् खींचे लिये जा रहा है। आपकी कृपा अवलम्बनरूपी सुदृढ़ नौकापर आरूढ़ होकर इस अगाध सागरमें उतर पड़ा हूँ।

नाथ! अब संभालना, इस नौकाके खिवैया तुम्हीं हो, मैं कहीं रास्तेकी भीषणतासे भयभीत होकर व्याकुल हो जाऊँ तो मुझे सान्त्वना देना अब आपका काम है। क्षमा करना नाथ! बालक की धृष्टताको। बस,

तुम्हारा ही,

गम्भीरचन्द दुजारी

॥ श्रीहरिः ॥

प्राक्कथन

जगत्-रङ्गमञ्चकी अचिन्त्य लीलाओंमें उस लीला निकेतन नटवरका अलक्षित हाथ रहता है। वही हमारी कल्याण कामना को पूर्ण करनेके लिये महापुरुषोंको अनेक रूपोंमें अवतरित करता है, जो इस दुःखपूर्ण नित-परिवर्तनरूप अनित्य संसारकी भयानक विपत्तियोंसे बचाकर आनन्द-सागरमें सदा विहार करनेका सुगम-पथ दिखलाकर हमारे दुःखोंका सर्वथा अवसान कर देते हैं। उन महापुरुषोंका जीवन साधारण मनुष्यों जैसा नहीं होता। उनका आदर्श जीवन होता है। उनके पवित्र उपदेश पालनीय होते हैं। उनकी जीवनोन्नतिके उपायोंको जाननेपर जगत्का बहुत उपकार होता है। परन्तु उनका अन्ध-अनुकरण हमें उन्नत नहीं बना सकता। ऐसे अनुकरणसे हम उनकी उन्नतिके गोपनीय साधनोंको नहीं जान सकते। प्रगाढ़ श्रद्धा, अनन्य प्रेम और पूर्ण भक्तिसे उनका आदेश पालन करनेपर दीर्घ कालकी घोर तपस्या और श्रद्धाके अमोघ प्रभावसे जीवन-प्रवाह परिवर्तित होकर आत्मशुद्धि होती है। पर अस्वाभाविक अनुकरणमें पतनकी अत्यन्त सम्भावना रहती है। महायोगी शंकरके जीवनसे यह प्रमाणित हो जाता है।

महापुरुषोंका जीवन कहानियोंके ढंगपर नहीं लिखा जा सकता। इस प्रकारकी चेष्टा व्यर्थ ही होती है। क्योंकि बिना वैसी उच्च अवस्था प्राप्त हुए साधारण मनुष्य उनके जीवनको अपने ही भंली प्रकार नहीं समझ पाता। उनके जीवनके विचित्र रहस्य उसके दृष्टिगोचर ही नहीं होते। यदि धृष्टतावश कोई ऐसा साहस करे तो भ्रान्तिमूलक विवेचनासे उस दिव्य जीवनकी अनुचित आलोचना होकर सत्यका अपमान हो जाता है।

जीवनचरित्र लिखना बड़ी कठिन वस्तु है। असम्भव कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं। क्योंकि मनुष्य अपने जीवनको खुद अपने ही नहीं समझ पाता तो दूसरा कैसे समझेगा। फिर ज्ञानीको तो अपना जीवन और भी रहस्यमय मालूम होता है। क्योंकि जो विराट् शक्ति हमारे जीवनमें अद्भुत खेल खेल रही है, अज्ञानके आवरणके कारण हम उसे नहीं देख पाते हैं। पर जो इस शक्तिकी अलौकिक लीलाओंको प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, जीवनकी प्रत्येक छोटी घटनाओंमें भी जो उसका आभास पाते हैं, वे उनके जीवनको एक दुर्ज्ञेय रहस्यपूर्ण समझ लेते हैं। उस अनन्त शक्तिकी स्फूर्तिमें उनकी जिज्ञासा वृत्तिका लोप हो जाता है। जहाँ जीवनका चरम तत्त्व ही रहस्यपूर्ण है, वहाँ जीवन चरित्र लिखना उपहासास्पदके सिवाय और क्या है?

जब साधारण मनुष्योंकी जीवनी लिखना ही कठिन है तब ऐसे महापुरुषोंका जीवन चरित्र लिखना तो असम्भव ही समझना चाहिये। उनके चरित्र-वर्णन करनेका साहस कौन कर सकता है?

आज जिन महापुरुषकी पुण्यमय स्मृति लिखनेको उद्यत हुआ हूँ वे एक आदर्श चरित्र हैं। ऐसा कर्म, ज्ञान और भक्तिके भेदोंको भली प्रकार जानकर ऐश्वर्य और माधुर्यसे भरा पवित्र जीवन बहुत कम दृष्टिगोचर होता है। मैं इन पुण्यतम पवित्र जीवनकी स्मृतियोंको दुहराकर धन्य हो जाऊँ। इसी आशासे कुछ लिखनेको तत्पर हो गया हूँ। मैं इनका चरित्र लिखनेका साहस नहीं कर सकता, क्योंकि जिनके अलौकिक जीवनका एक अंश भी समझना हमारी बुद्धिके लिये असम्भव-सा है, फिर उनका जीवन-चरित्र लिखनेकी तो धारणा भी मेरे लिये असम्भव है। यह तो उनके जीवनसे सम्बन्धित कुछ कथाओंका थोड़ा-सा संग्रह मात्र है।

भक्तके हृदयमें भगवान्की लीला न मालूम कितनी प्रकारसे होती है। भगवान् अहैतुक करुणामय हैं। भक्तके निर्मल हृदयमें उनकी करुणाकी प्रबल धारा निरन्तर बहती है। इसमें भी इस प्रकारकी कुछ चर्चाओंके सिवाय और कुछ नहीं है।

हमारा सौभाग्य है कि, आज हमारे बीचमें वे महापुरुष विद्यमान हैं। जीवनकी कठोर साधनासे अलौकिक

कृपाको सहज ही प्राप्त कर जिन्होंने अन्तर्जगत् और बाह्य जगत्के सारे तत्त्वोंको उपलब्ध कर लिया है एवं प्रभुके परमपदकी पवित्र प्राप्ति कर ली है। जो आदर्श भक्त परमतत्त्वके पथके प्रदर्शक हैं, वास्तविक सद्गुरु हैं। आज हम उन सद्गुरुकी कृपासे उनके ही उद्देश्यको लेकर उनके दिखाये पथपर अग्रसर होनेके प्रयत्नमें प्रत्येक क्रियाओंको लगा रहे हैं। सद्गुरु भगवान्के प्रत्यक्ष स्वरूप होते हैं। वे प्राकृतिक विकारोंसे लेशमात्र भी सम्बन्धित नहीं होते, वे ही दयामय हमारे हृदय-कमलमें विराजमान हैं। अब वे दयाकर अपनी यह चिरस्थायी चैतन्यमूर्ति हमारे हृदयमें सर्वदा इसी प्रकार दिखलाते रहें, केवल यही उनके श्रीचरणोंमें विनम्र प्रार्थना है।

प्रबल कालके प्रभावसे धर्मका आदर्श प्राय: नष्ट हो रहा है। ऋषि-जीवनके उपदिष्ट दिव्यभाव समाजसे प्राय: लोप हो गये हैं। तपस्या, सरलता आदि दैवी गुणोंका नामोनिशान मिटकर आसुरी भावोंकी दिनोंदिन वृद्धि हो रही है। देह अशुद्ध, मन अपवित्र, हृदय संकीर्ण और बुद्धि जड़ भावापन्न है। धर्मको समझनेकी शक्तिका लोप हो गया है, सत्यकी माधुर्य मूर्ति भी इसीसे आकर्षित नहीं करती। इसीलिये हमारी चञ्चलता और पागलपन भी दूर नहीं होता। जीवन अशान्तिकी डाँवाडोल स्थितिमें पड़ा हुआ है। और, शान्ति-सुधा-धाराके आस्वादनके लिये लालायित हैं। वासनाबद्ध बहिर्मुख जीवको वही सुधा-धारा पान करानेके लिये कल्याणमयी जगन्माताकी प्रेरणासे महापुरुषगण सद्गुरुके रूपमें आविर्भूत होते हैं। सिवाय सद्गुरूके उस अपूर्व निर्मल आनन्दको और कोई नहीं जानता। हमें आज वे परमानन्दका परिचय देकर संसारके भयंकर शत्रु काम, क्रोधादिसे परित्राण पानेका सुगम और सरल मार्ग बतला रहे हैं।

मैं जानता हूँ कि यह दिव्य जीवन लिखनेका मेरा अधिकार नहीं है। जिस प्रकार शुद्ध और संयत चित्त बिना देव-मंदिरमें प्रवेश या देव-पूजा निषिद्ध है उसी प्रकार मलिन और चञ्चल अन्त:करणसे महापुरुषका स्मरण भी उचित नहीं है। यह जानकर और अपनी अयोग्यता हृदयङ्गम करके भी मैं इस कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ। इसका प्रधान कारण मेरे आन्तरिक हृदयकी प्रबल प्रेरणा ही है।

यदि इस लेखसे स्वर्गीय पवित्रता, वैराग्य या श्रद्धा, विवेकका कुछ भी आभास मेरे इस मलिन हृदयमें स्थान प्राप्त करे तो मैं अपनेको कृतकृत्य समझूँगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि महापुरुषका विशुद्ध संग कलुषित हृदयको भी अपने अनुकूल अवश्य ही प्रभावित करेगा। श्रीप्रभुकी करुणाके ऊपर दीन और पतित मनुष्यका भी दावा है। जिस प्रकार बालकका माताकी पवित्र या अपवित्र अवस्थामें भी गोदमें बैठनेका सर्वदा अधिकार रहता है, क्योंकि माताकी पवित्र गोदकी ऐसी ही अपूर्व महिमा है कि उसके पवित्र स्पर्शसे बालकका मन अपने आप धुल जाता है।

—गम्भीरचन्द दुजारी
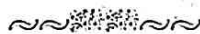
* लेखकने यह कथामृत पूज्य श्रीभाईजीके जीवनकालमें ही लिख लिया था।

पूज्य श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका

पूज्य श्रीभाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

प्रथम पटल

वंश परिचय

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च तेन।
स्वर्गस्थितास्तत्पितरोपि धन्या यस्मिन् कुले वैष्णव नाम धेयं॥

सो कुल उमा धन्य सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुवीर परायन, जेहिं नर उपज विनीत॥

वास्तवमें वह कुल, वह जाति और वे माता-पिता महान् धन्यवादके पात्र हैं, जिनके वंशमें ऐसे महापुरुषोंका आविर्भाव हो। इस परिवर्तनशील संसारमें अनेक योनियाँ हैं एवं अनेक माताएँ हैं परन्तु उसी माताका मातृत्व सार्थक है जिसने ऐसे महापुरुषको, ऐसे भगवद्भक्त परम प्यारे प्रभुके प्रिय पात्र पुत्रको उत्पन्न करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है। उस वंशका परिचय कराना अपने मानव-जीवनको सफल बनानेके लिये ही है।

हमारे चरित्रनायकका जिस वंशमें जन्म हुआ है, वह मारवाड़ी अग्रवाल जातिका प्रसिद्ध पोद्दार वंश है। इस वंशमें अनेकों विद्वान, ज्ञानी, भक्त, धनी, उदार पुरुषोंने अपने कीर्ति सौरभको भारतवर्षमें फैलाकर इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है कि अब वंश-परिचयकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी, केवल पाठकोंके मनोविनोदार्थ हमारे चरित्र-नायकके पूर्व पुरुषोंका थोड़ा-सा परिचय देकर उनकी जन्म-गाथा गानेका प्रयत्न किया जायेगा।

वंश वृक्ष
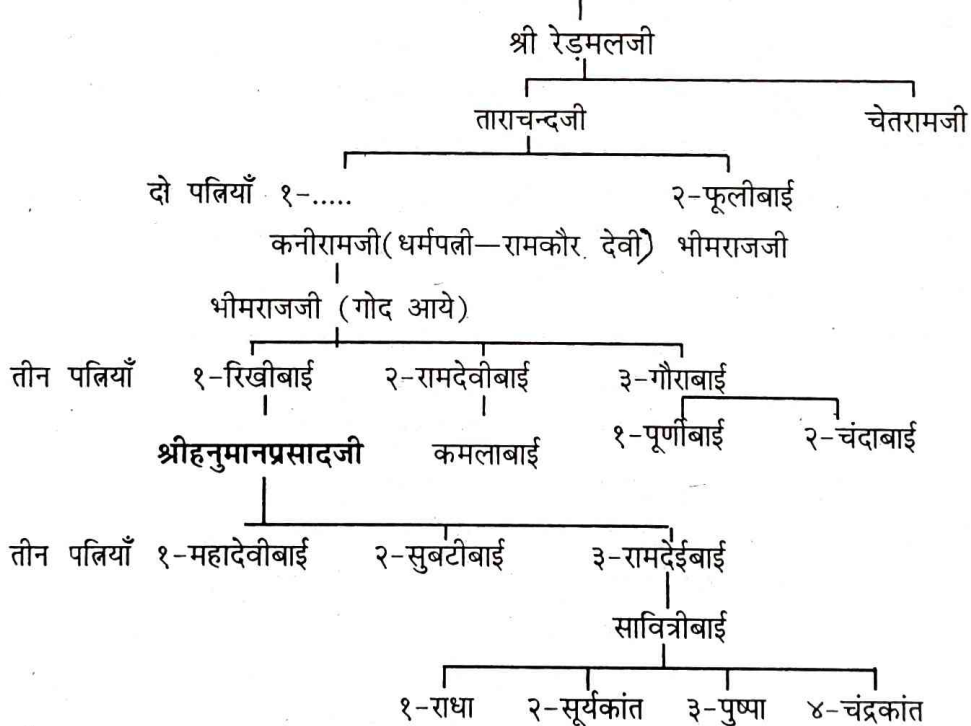
राजपुतानाके (राजस्थान) अन्तर्गत बीकानेर *(वर्तमानमें यह चुरू जिलेके अन्तर्गत है।)* राज्यमें रतनगढ़ एक छोटा-सा शहर है। वहाँ इसी प्रसिद्ध वंशके कई घर निवास करते हैं। उनमें ताराचंदजी नामक एक साधारण सम्पत्तिशाली सद्गृहस्थ थे। धर्मनिष्ठ और स्वकर्म प्रवृत्त रहनेके कारण इनके घर खाने पीनेकी कमी नहीं थी। इन भाग्यशाली पुरुषके दो पुत्र थे। उनके नाम कनीरामजी और भीमराजजी थे। इनमेंसे श्री भीमराजजीको ही हमारे चरित्र नायकका पूज्य पिता होनेका दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हो सका।

श्रीकनीरामजीने अपने पिताजीकी अनुमति प्राप्त कर विदेश (राजपुतानाके बाहर) जानेका विचार किया। उस समय मारवाड़से आसाम या बंगाल आना-जाना आजकलकी तरह सरल नहीं था। मार्ग बड़ा कठिन था, रेल बड़ी दूर थी। कोसों ऊँटोंपर चढ़कर जानेपर कहीं रेलको पाते थे। फुलेरा जक्शनके पास कुचामन रोड एक स्टेशन है वहीं रेल मिलती थी। रतनगढ़से यह तीन दिनका रास्ता था। बड़ा दुर्गम पथ था। चोर डाकुओंका भय सदा ही बना रहता था। पर उत्साही व्यापारियोंको, धन-लालसा इन सब कठिनाइयोंसे आनन्दपूर्वक निकाल देती थी। कनीरामजीका स्वास्थ्य बड़ा अच्छा था, शरीर बड़ा सुदृढ़ था। कहते हैं कि एक बार एक भैंसा गड्ढेमें गिर गया था उसे इन्होंने अकेले हाथोंसे उठाकर बाहर निकाल दिया था। वे युवक थे, हृदय में उत्साह था, कामकी लगन थी, पिताजीकी आज्ञा ले शुभ मुहूर्तमें रतनगढ़से प्रस्थान कर दिया।

आसाम प्रान्तके शिलाँग नगरमें पहले-पहल इन्होंने कारोबार आरम्भ किया। वहाँ सरकारसे सेनाके खानेका सामान सप्लाई करनेका भार इनको मिल गया। लोगोंसे इनका व्यवहार बड़ा ही हृदयग्राही होता था। दुकानकी अच्छी प्रतिष्ठा हो गयी। धीरे-धीरे अन्यान्य स्थानोंपर भी दुकान खोलनेकी आवश्यकता होने लगी, क्योंकि सेनाको सामान सप्लाई करनेके लिये इन्हें कई स्थानोंपर जाना पड़ता था। बिना किसी निजी स्थानके बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती थी, अतएव ये सब बातें सोचकर गोहाटी और कलकत्तामें भी शाखाएँ कर ली गयीं। प्रधान स्थान शिलाँग ही रक्खा गया। कामकाज बढ़ गया था, चलती भी अच्छी थी, अकेले कनीरामजीको काममें बहुत कष्ट उठाना पड़ता था, अतः मारवाड़से सब घरवालोंको यहाँ बुलानेका निश्चय हुआ। पिताजी और भाई भीमराजजी आदि सब शिलाँग आ गये, यहाँ भी मकान बन गया। सब आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

यहाँकी आब-हवा, व्यापारका ढंग और परिस्थिति अच्छी देखकर कनीरामजीने अपने दो चार कुटुम्बियोंको बुलाकर दुकान करानेका निश्चय किया। वे बड़े सरल और उदार विचारोंके मनुष्य थे। गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामायण और अन्यान्य धार्मिक पुस्तकोंका अध्ययन करनेमें उनकी हार्दिक प्रवृत्ति थी। अपने सम्बन्धियोंको तन-मन-धनसे सहायता करना ही उन्होंने इन पुस्तकोंसे सीखा था। अतएव विलम्ब न कर गणेशदास गोयन्दका आदि दो चार कुटुम्बियोंको आपने यहाँ बुलाकर दूकान करवा दी। कनीरामजीकी सहायतासे दुकान चल निकली और आज वे लाखों रूपयोंके स्वामी हो रहे हैं।

कनीरामजीके सन्तान नहीं थी, अवस्था ज्यादा हो चुकी थी। अतः अब आशा भी नहीं रह गयी थी, इसलिये छोटे भाईको ही पुत्र समझ लिया था। पिताजीकी भी अनुमति थी, दूसरे किसीको दत्तक न बनाकर छोटे भाईको ही दत्तक रूपमें ले लिया। उनका बड़े भाई और भाभीके साथ पिता माताका ही व्यवहार था। वे दोनों भी इनको पुत्र और पुत्रवधूके रूपमें बड़े ही स्नेहकी दृष्टिसे देखते थे।

देवी रामकौरको महात्माओंके आशीर्वाद

रतनगढ़ बहुत दूर था। रेल न रहनेके कारण आने जानेमें, विशेषकर स्त्रियोंको ले आनेमें बड़ी कठिनता थी। अतएव रतनगढ़ इनका आना प्रायः छूट सा गया था। किसी विशेष कामसे आनेकी आवश्यकता पड़नेपर परिवारका कोई चतुर व्यक्ति चला आता था। कनीरामजीकी धर्मपत्नी देवी रामकौरबाई (जन्म सं० १९०२ वि०, अमृतसर (पंजाबमें) हुआ था।)जो अब भीमराजजीकी माँ कहलाती थीं, बड़ी बुद्धिमत्ती थीं, पर स्वभाव बड़ा

सरल और हृदय उदार था। इनको भी एक बार रतनगढ़ आनेकी आवश्यकता हो गयी। एक नौकरको साथ ले ये अकेली ही रतनगढ़ चली आयीं। अद्भुत साहस था, स्त्रियोंमें स्वाभाविक ही साहसकी कमी होती है पर इनमें वे बातें नहीं थीं। इनकी नीतिज्ञताका परिचय पाठकोंको आगे चलकर मिलेगा।

कुछ वर्षों पूर्व रतनगढ़में त्यागी संन्यासी महात्मागण रहा करते थे। शहरके बाहर उनकी कुटी बनी हुई थी और उसीमें दो-चार बड़ी सात्विक वृत्तिवाले संत रहा करते थे। भगवान्‌के भजन, ध्यान, सत्संगमें ही वे अपना अधिकांश समय व्यतीत करते थे। उनका हृदय बड़ा दयालु और कृपापूर्ण होता था जैसा स्वाभाविक ही तपोनिष्ठ सच्चे संन्यासियोंका होता है। दिखावटीपन नाम मात्रको भी नहीं था। गाँवके सारे लोग उन्हें बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे एवं प्राय: दो चार आदमी उनके दर्शन एवं उपदेश सुननेके लिये आते रहते थे। किसी भी प्राणीका कष्ट वे नहीं देख सकते थे। सर्वदा गरीबोंके दु:खोंको दूर करनेका प्रयत्न करते रहते, रोगियोंकी दवा आदि भी कुछ-कुछ किया करते थे। जिस समयकी घटना मैं लिख रहा हूँ उन दिनों शायद लक्ष्मीनाथजी, मोतीनाथजी, मंगलनाथजी, बखन्नाथजी आदि वहाँ थे। 'नाथ' उन लोगोंकी पदवी थी। भीमराजजीकी माँ रामकौर जब रतनगढ़ आती थीं, प्राय: ही साधुओंके दर्शनोंको जाती थीं। स्वाभाविक ही साधुओंपर भक्ति थी। उस समय आजकी भाँति श्रद्धाका लोप नहीं हो गया था, लोगोंके स्वभावमें इतना परिवर्तन नहीं हुआ था और न आजकलकी तरह पाखण्डी साधुओंकी ही बढ़ती थी। अस्तु, उन साधुओंकी भी श्रीभीमराजजीकी मातापर बड़ी कृपा रहती थी।

घरमें सब प्रकारका आनन्द रहते हुये भी एक पुत्र न रहनेके कारण सबके हृदयमें विषाद रहता था। विशेषकर भीमराजजीकी माता रामकौरबाईको इसका अधिक दु:ख था, क्योंकि अभीतक उन्होंने पौत्रके मुख-दर्शनका सौभाग्य प्राप्त नहीं किया था। यहाँ आकर नाथजीसे भी उन्होंने यही बात कही। नाथजी प्रसन्न थे, उन्होंने एक दिन 'वरदान' रूपमें भीमराजजीकी माताको कह दिया कि आजसे एक वर्षके अन्दर कान्हनाथ—टूटिया बाबाजी महाराज ही आपके घरमें एक सर्वगुण सम्पन्न पौत्रके रूपमें जन्म लेंगे। वह बहुत ही सुशील भगवद्भक्त और विद्वान् होगा। जन्मके समय उसके ये चिन्ह होंगे—मस्तकपर श्रीका निशान होगा, कंधोंपर केश होंगे, दाहिनी जाँघपर काले तिलका-सा निशान रहेगा और साधारण बालकोंके समान वह जन्मके समय रुदन नहीं करेगा, मुँहमें अंगुली देनेपर रोवेगा।

नाथजीके ये कृपापूर्ण वचन सुनकर उनका हृदय आनन्दसे प्रफुल्लित हो गया। साधुओंके कथनमें पूर्ण विश्वास था, अब पौत्रके होनेमें कोई सन्देह नहीं रहा। यही एक इच्छा थी, बस वह पूर्ण हो गयी। अब और क्या चाहिये, साधुओंपर भक्ति और भी बढ़ गयी। आज्ञा लेकर घर आ गयीं। रामकौर बाईने पौत्रकी उत्कट लालसासे इन्हीं दिनों एक और अनुष्ठान करवाया था, वह घटना इस प्रकार है—

देवी रामकौरबाई निम्बार्क सम्प्रदायके रतनगढ़ निवासी बाबा महरदासजी महाराजकी शिष्या थीं। महरदासजी बड़े अच्छे सन्त थे। विद्वान् होनेके साथ-साथ अनेक सन्तोचित गुण भी उनमें विद्यमान थे। रामचरितमानसकी कथा बड़ी सुन्दर ढंगसे कहते थे, जिसे सुननेके लिये बड़े-बड़े विद्वान् आते थे। कथा करते हुए वे गद्गद होकर रोने लग जाते थे।

देवी रामकौरने एक दिन उनसे प्रार्थना की कि महाराज इस वंशको चलानेवाला कोई नहीं है। कृपा करके कोई ऐसा उपाय करें जिससे इस वंशकी अमरकीर्ति बढ़ानेवाला कोई पुत्र सन्तान हो। 'सन्त हृदय नवनीत समाना' प्रसिद्ध ही है। उन्होंने तत्काल यह प्रार्थना सुनकर कहा कि अच्छा, इसीलिये एक अनुष्ठान कराओ। चार ब्राह्मणोंसे '**रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत् बन्धनात्। भयान् मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदा:।**' इस श्लोकके संपुट सहित विष्णुसहस्रनामके पाठ कराये जायेंगे, जिस एक दिनमें एक सौ पाठ पूर्ण हो जायेंगे उसी दिन अनुष्ठान सफल हुआ समझा

जायगा। अस्तु, तत्काल तीन दूसरे ब्राह्मण चौथे स्वयं बाबा महरदासजी महाराज उस अनुष्ठानको करनेके लिये तैयार हो गये। अपने लक्ष्मीनारायणजीके मंदिरमें ही अनुष्ठान शुरू हो गया और जल्दी ही एक दिन एक सौ पाठ पूर्ण हो गये। उस दिन दीपकमें एक ही बार घी डाला गया था और वह दीपक अखण्ड रूपसे जलता रहा। तब बाबाजीने रामकौरबाईसे कहा कि आज तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया और थोड़ा-सा जल अभिमन्त्रित करके देवी रामकौरको दिया और कहा कि इस जलको तुम्हारी बहू रिखीबाईको पिला देना। इससे तुम्हारे घरमें एक पुत्ररत्न पैदा होगा। वह बड़ा ही धर्मात्मा, भगवद्भक्त और तुम्हारे वंशको उज्ज्वल करनेवाला होगा। उसका नाम हनुमानप्रसाद रखना। इस बातको सुनकर रामकौरके हर्षकी सीमा न रही। उसे तो प्रत्यक्ष पुत्र-जन्म-सा सुख प्राप्त हो गया। क्योंकि उन्हें बाबाजी के वचनोंमें पूर्ण विश्वास था। इसके बाद जब हनुमानप्रसादका जन्म हुआ तब रामकौर रतनगढ़ आयीं और उन्होंने बाबाजीके मंदिरमें एक छोटा-सा शिवालय और गायके लिये एक सफा (गोशाला-घर) बनवाया। रामकौरबाई अब और भी नाना प्रकारसे सेवा शुश्रूषा किया करतीं। घरमें जो अच्छी वस्तु या चाँदीके बर्तन आदि होते उन्हें भी भगवान्‌के लिये सर्व प्रथम चढ़ा देतीं (भेट कर देतीं)। ये बहुधा अनेकों प्रकारसे गुप्त दान भी किया करतीं। साधु-ब्राह्मणोंकी सेवा तो देवताओंके समान किया करती थीं। रतनगढ़ आनेका काम शेष हो चुका था। अब यहाँ रहनेकी आवश्यकता नहीं थी, अतएव वे शीघ्र ही शिलाँगके लिये चल पड़ीं और सानन्द वहाँ पहुँच गयीं।

॥ श्रीहरि: ॥

द्वितीय पटल

जन्म

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥

पाठकवृन्द! उस पुण्यभूमि शिलाँगका मनसे दर्शन करें। वह देखें झर-झर करता हुआ निर्झर कितने उमंगसे दौड़ता हुआ आगे चला जा रहा है। किसीकी चिन्ता नहीं, किसीकी परवाह नहीं। अपने धुनमें भागा जा रहा है। वहाँके वृक्ष लताओंके पत्ते-पत्तेसे आनन्दके परमाणु प्रसारित हो रहे हैं।

परम अभिलषित वस्तुकी प्रतीक्षामें हृदयकी क्या अवस्था होती है, यह किसीसे सुनकर समझा नहीं जा सकता। उस समय प्राणोंमें कैसी वेदना होती है पल-पलपर विघ्नकी आशंकासे मन किस प्रकार चंचल हो उठता है यह तो सर्वदा भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है। देवी रामकौरबाईके जीवनके वे नौ महीने कैसे बीते होंगे, प्रतिदिन वे किन-किन आशंकाओंसे अभिभूत होकर क्या-क्या संकल्प करती होंगी, उसकी कल्पना भी शुष्क हृदयके प्राणीको नहीं हो सकती। कितनी प्रतीक्षाके बाद उनकी साधका मंगलमय प्रभात होने जा रहा है, उनकी लाडिली बहूके उदरसे उनके वंशका एकमात्र अवलम्बन प्रकट होने जा रहा है। देवी रामकौर मन-ही-मन देवी-देवताओंसे न जाने कितनी प्रार्थनाएं करती होंगी, कितनी मिन्नतें मनाती होंगी, पाठक स्वयं सोचें। मुझे तो उस परम पूजनीय देवीके पावन चरण कमलोंमें सिर नवाकर आगेका प्रसंग लिखना है।

विक्रमीय सं० १९४९ (दिनांक १७ सितम्बर १८९२) की बात है। आश्विन कृष्णा द्वादशीकी तिथि है। शनिवारका दिन है। अभी-अभी कुछ ही देर पहले प्रभात हुआ है। भगवान् अंशुमालीकी शुभ किरणोंसे वृक्षावली उद्भासित हो गई है। उनपर बैठे हुये पक्षी मधुर कलरव कर रहे हैं। शारदीय मंद समीरके झोंकोंसे वृक्षकी शाखाएं हिल रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों पक्षियोंके कलरव गानके साथ-साथ अपना हाथ नचा-नचाकर वे ताली दे रही हैं।

आज परम सौभाग्यवती पूजनीया श्रीमती रिखीबाईको प्रात:कालसे ही प्रसव वेदनाका अनुभव हो रहा है। देवी रामकौर अतिशय उत्कंठासे अपने इष्टदेवका स्मरण करती हुई प्रतीक्षा कर रही हैं। आखिर वह परम पुण्यमय क्षण उपस्थित हुआ। बालकने माँके उदरसे धराधामपर पदार्पण किया। फिर क्या था, सर्वत्र मंगल छा गया। रतनगढ़के महात्माने बालकके जन्म-समयपर उसके अंगोंपर जिन चिन्होंके होनेकी बात कही थी वे सबके सब ज्यों-के-त्यों मिले।

उस अतिशय महिमाशाली बालककी जन्म कुण्डली एवं उस समयके इष्ट लग्न आदि इस प्रकार हैं—
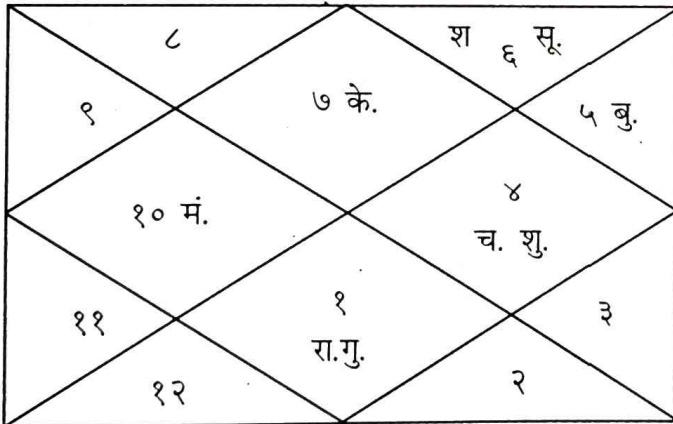
सम्वत् १९४९ वि० आश्विन कृष्णा १२ शनिवार ता० १७ सितम्बर १८९२ पुष्य ६। ५८ उपरान्त आश्लेषा प्रथम चरणे सूर्योदयादिष्टम् १०। १४। ३० सूर्य ५। २। ३१। २८ लग्नम् ६। २८। ३०। २८ एतत् समये

विंशोत्तरी दशा

	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	
१	१५	७	२०	६	१०	७	१८	१६	१९	वर्ष
५	६	०	०	०	०	०	०	०	०	मास
८	२२	०	०	०	०	०	०	०	०	दिन
सम्वत्	१९४९	१९६४	१९७१	१९९१	१९९७	२००७	२०१४	२०३२	२०४८	२०६७
राशि	५	११	११	११	११	११	११	११	११	११
अंश	२	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४
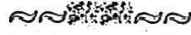
॥ श्रीहरिः ॥

तृतीय पटल

संतरूप दादाजी श्रीताराचन्दजी एवं प्रातःस्मरणीया जननी रिखीबाईका परमधाम गमन

बालक हनुमानप्रसादके जन्मके दो मास पश्चात् सं० १९४९ के मार्गशीर्ष कृष्णा १३ को इनके दादाजी श्रीताराचंदजीका शिलाँगमें देहान्त हो गया। इनका शिलाँगमें तीन-चार वर्ष ही रहना हुआ था। यह बड़े तपस्वी थे। प्रातःकाल तीन बजे उठकर हाथ मुँह धोकर नित्यप्रति ये पचीस माला हरे राम० महामंत्रकी जपा करते थे और श्रीगीताजीके १८ अध्यायका सम्पूर्ण पाठ करनेके पश्चात् शौच स्नानादि करते और दिनमें प्रायः हर समय चलते फिरते हुए भी श्रीविष्णुसहस्रनामके पाठ करते रहते थे। नित्य प्रति १०८ पाठ करते थे। इनकी मृत्यु बड़े ही विलक्षण ढंगसे हुई। जिस दिन इनका देहान्त हुआ उसी दिन इन्होंने अपने लाडिले पौत्रको गोदमें लेकर कानमें कहा कि लो बेटा तेरेसे इतने दिनका ही वादा था। अब हम तो जाते हैं और तू इस घरमें रह। इसके बाद सब घरवालोंसे पूछा कि सबने भोजन तो कर लिया है न? यह सुनकर सभी चिन्तित हो गये और पूछा कि आज आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? उत्तरमें इन्होंने कहा—यों ही। पर साथ ही तुरंत बोले—अच्छा, अब मेरे ज्येष्ठ पुत्र कनीरामको बुलाओ और मुझे गौशालामें (जो कि घरमें ही थी) ले चलो। सब अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये कि आज ये ऐसा क्यों कह रहे हैं। यद्यपि उस समय आपकी अवस्था ८४ वर्षकी हो चुकी थी, परन्तु आप अच्छे प्रकारसे चल-फिरकर घरका काम कर लेते थे। गौशालामें ले जानेके बाद श्रीताराचंदजी बोले कि मेरे प्राण-प्रयाणका समय अति निकट आ गया है—देखो भगवान्‌के पार्षद चार भुजावाले मेरे सामने खड़े हुए हैं, आप लोग भी दर्शन कर लें और सब लोग—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस महामंत्रका उच्चारण करें। आप स्वयं भी इसी मंत्रका जप करने लगे फिर कहा मुझे स्नान कराओ। श्रीकनीरामजीने उनको स्नान कराकर ललाटमें चन्दन लगा दिया और अपनी गोदीमें लिटा लिया। देखते ही देखते उनके प्राण प्रयाण कर गये।

दादाजी श्रीताराचंदजीके परमधाम गमनके अभी पूरे दो वर्ष भी न हो पाये थे, शिशु हनुमानप्रसाद अभी दो वर्षका भी न हो पाया था कि उसके लिये चिर मातृवियोगका क्षण उपस्थित हुआ। पुत्र स्नेह वत्सला माता रिखीबाई अपने नन्हेंसे शिशुके मधुर बालचरितके सुखका किञ्चित्मात्र ही आनन्द न ले सकीं। अपने कलेजेके टुकड़ेको, अपने लाड़िले लालको, अपनी सास रामकौरबाईके हाथ सौंपकर श्रावण कृष्ण प्रतिपदा सम्वत् १९५१ वि० के दिन अपना यह पाञ्चभौतिक कलेवर त्याग दिया। इस लोकसे ऊपर उठ गयीं। अवश्य ही यदि हमलोग देख पाते, हमारे इन चर्म-चक्षुओंमें एक क्षणके लिये दिव्य ज्योति आ जाती तो देखते, जननी रिखीबाई आज कहाँ हैं, जहाँ अगणित जन्मकी तपस्यासे, अगणित जन्मार्जित विविध पुण्यसे विशुद्ध चित्त होकर बड़े-बड़े योगी जन ही एकमात्र भगवत्कृपाके सहारे जा पाते हैं।
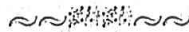
॥ श्रीहरि: ॥

चतुर्थ पटल

बाल्यकाल

कालके प्रवाहमें सुखके बाद दु:ख, दु:खके बाद सुखका क्रम चलता रहता है। अवश्य ही सर्वथा नियमित रूपसे ही चलता है। जहाँ, जैसे, जो, जिस समय होना चाहिये सबका ठीक-ठीक नियन्त्रण भगवान्‌की कृपा शक्ति करती रहती हैं। विश्वलीला मञ्चका कोई भी दृश्य बिगड़ने नहीं पाता।

एक दिन था जब कि रिखीबाईकी मृत्युसे सारा परिवार शोक-सागरमें निमग्न था। पड़ोसके लोग आते, मातृहीन बालक हनुमानप्रसादपर अपनी करुणाभरी दृष्टि डालते, दादीकी गोदमें रोते हुए अबोध शिशुका मुख उनके मनमें रिखीबाईकी स्मृति भर देता और उनके नेत्रोंमें अश्रुकण छलक उठते। पर आज अधिक दिन नहीं हुए हैं, इस घटनाका दूसरा ही वर्ष है। दरवाजेपर शहनाई बज रही है। मंगलाचार हो रहा है। श्रीभीमराजजीका द्वितीय विवाह होने जा रहा है। इस बार शिशुके मातृपदपर श्रीरामदेवी आयीं। ये रामदेवी थेलासर निवासी उदयरामजी चाँदगोठियाकी पुत्री हैं। सभी पड़ोसके लोग अब मानो सर्वथा रिखीबाईको भूल गये हैं। उत्कण्ठासे नई बहूका स्वागत करनेके लिये, नई बहूका सुहागपूर्ण मुख देखनेके लिये बाट देख रहे हैं। उनका मनोरथ पूर्ण हुआ। भीमराजजीका विवाह समारोह थेलासरमें सानन्द पूर्ण हुआ। रामदेवी पतिके साथ ससुराल आ गयीं, आकर अबोध शिशु हनुमानप्रसादको हृदयसे लगा लिया। बालक नई माताके गोदमें जानेसे एक बार तो झिझका, पर प्यारकी विजय हुई और बालक हिल मिल गया। बालक हनुमानप्रसादका उस समय नाम सबोंने मन्नालाल रख लिया था। पड़ोसकी स्त्रियाँ लाडसे 'मानिया' कहकर पुकारती थीं। 'मानिया' भी बालोचित चेष्टा करते हुए उत्तर देता था। बालक मानिया मणिकी तरह रामदेवीकी गोदका भूषण बन गया। यह घटना सं० १९५२ वि० की है।

दिन बीतने लगे। हठात् बालक हनुमानप्रसाद एक दिन रुग्ण हो गया। लोगोंने पहिले समझा, साधारण रोग है शीघ्र अच्छा हो जायगा, पर बालककी अवस्था शीघ्र ही अत्यन्त चिन्ताजनक हो उठी। हाथ पैर शून्य हो गये। उस समय दादी रामकौर देवीकी क्या अवस्था होगी, पाठक स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं। कितने देवाराधन, कितनी प्रार्थना, कितने अनुष्ठान, कितनी प्रतीक्षाके बाद यह बालक घरमें आया है और वही भीषण रोगाक्रान्त होकर खाटपर पड़ा है। बालकके वे गुलाबी होठ सूख गये हैं, वह मन्द मुस्कान जो उसके अधरोंपर निरन्तर खेलती रहती थी वह नहीं है। जिन अंगोंको फुला-फुलाकर दादीके अन्तर हृदयमें वह आनन्दस्रोत बहा देता था, वे अंग शिथिल पड़ गये हैं, वह उन्हें स्वेच्छापूर्वक हिला भी नहीं सकता। आँखें खोलकर बीच-बीचमें करुणा दृष्टिसे दादीकी ओर देख लेता है। उसकी वह वेदना मिश्रित दृष्टि दादीके वक्ष:स्थलको चीरती हुई हृदयके अन्तस्तलमें जा पहुँचती है। देवी रामकौर मन ही मन कराह उठती हैं। गाँवमें जितने अच्छे-अच्छे वैद्य हैं, रामकौर सबके पास जातीं। रामकौरपर समस्त गाँववालोंका अपार स्नेह है। अत: सभी वैद्य अपनी पूरी योग्यता लगाकर सलाह देते हैं, दवा देते हैं, विविध उपचार करते हैं पर रोग तो कम होता नहीं। रामकौरकी आँखोंके आगे अन्धकार-सा दीखने लगा। कितने दिन हो गये, रामकौरने न ठीकसे खाया है न सो सकी हैं। दिन- रात उसकी स्मृतिमें बालक हनुमान है। मनमें एक ही चिन्ता है, आह! किस प्रकार मेरे वंशका एकमात्र स्तम्भ यह बालक स्वस्थ हो जाय। देवी रामकौर कोई साधारण स्त्री नहीं थीं, पर इस बार उनका अन्तर हृदय उद्विग्न हो उठा। हठात् देवीके मनमें आया, यह बालक मेरे परिश्रमसे तो मेरे घरमें आया नहीं! यह तो संतोंका प्रसाद है, फिर क्यों न उन

संतोंकी शरणमें जाकर इसकी जीवन भिक्षा माँगू। बस, देवी संतोंके पास दौड़ गयीं। संतोंके चरणोंमें सारा दुःख निवेदन किया।

संतोंका आशीर्वाद प्राप्त हुआ। बालक के स्वास्थ्यके लिये विविध अनुष्ठान प्रारम्भ हुये। पाठ, पूजा, जप, हवन और दानादि किये गये। ब्राह्मणोंने मुक्त कंठसे आशीर्वाद दिया।

यह सारी बातें प्रभु देख ही रहे थे। देवी रामकौरकी व्याकुलता अब वे अधिक नहीं देख सके। संतों और ब्राह्मणोंके आशीर्वादका, वैद्योंकी सहानुभूति और उनकी औषधिका तथा देवी रामकौरके अन्तर्हृदयके भारसे सराबोर सेवा-शुश्रूषाका प्रभुने अनुमोदन कर दिया। फिर क्या विलम्ब था। बालक हनुमानप्रसाद स्वस्थ होने लगा और कुछ ही दिनोंमें पूर्ण स्वस्थ हो गया। भीषण रोगके चिह्न विलुप्त हो गये। बालकके अधरोंपर वही मुस्कान फिर खेलने लगी। बालक पुनः हाथोंको पैरोंको नचा-नचाकर दादीके वक्षःस्थलसे लिपट गया। दादीने एक बार प्रभुकी ओर देखा और एक बार बालककी ओर फिर कृतज्ञता और स्नेहके आवेशमें एक क्षणके लिये दोनों नेत्र छलक उठे। यह घटना सम्वत् १९५२-५३ की है।

पौत्र स्वस्थ हो गया। विवाहके उद्देश्यसे रतनगढ़ आना हुआ था, वह भी पूर्ण हो गया। अतएव देवी रामकौर सपरिवार शिलाँगके लिए चल पड़ीं। भगवान्‌की कृपासे उन दिनोंकी अति विकट यात्रा सानन्द पूर्ण हुई।

शिलाँगका मनोहर वन-प्रान्त, गृह-गलियाँ सभी मानो बालक हनुमानप्रसादकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इसीलिये वहाँ पहुँचकर, उनसे मिलकर बालकका हृदय खिल उठा। इस बार वह अपेक्षाकृत कुछ बड़ा होकर, कुछ अधिक धारणयोग्य शक्तिका विकास होकर यहाँ आया था। इसलिये अब वह समवयस्क बालकोंके साथ बाहर भी जाने लगा। बालकके स्वभावमें यद्यपि कुछ गम्भीरता थी एवं दादी भी प्यार बस इसे बाहर नहीं जाने देना चाहती थीं, फिर भी साथी इसे खेलनेके लिये बाहर ले ही जाते। अधिकांश समय दादीके पास रहनेपर भी बालकोंके साथ खेलनेका भी कार्यक्रम चलता रहता।

खेलमें मस्त एवं दादीके नित्य नूतन निरन्तर बढ़ते हुए प्यारसे सिक्त रहकर बालक हनुमानप्रसादके दिन सुखमें बीतने लगे। इसी बीचमें उसके जीवनके एक चिर स्मरणीय घटनाका क्षण उपस्थित हुआ।

भागवतकार कहते हैं—

पथि च्युतं तिष्ठति दिष्ट रक्षितं गृहे स्थितं तद्विहितं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षिते वने गृहेऽपि गुप्तोस्य हतो न जीवति॥

(७। २। ४०)

एक प्राणी पथमें पड़ा हुआ सर्वथा सबकी दृष्टिसे उपेक्षित जीवित बच जाता है, उसका बालतक बाँका नहीं होता क्योंकि विधाताके विधानमें उसकी रक्षा अभीष्ट है और दूसरा अपने गृहमें है, सर्वथा सब प्रकारसे उसकी रक्षा हो रही है, पर विधान है कि यह नष्ट हो और वह ठीक विधानके अनुसार ही कालका ग्रास बन जाता है। यह नियम केवल पथ एवं गृहतक ही सीमित नहीं है। सर्वथा सब देश कालमें यह नियम अचल रहता है। एक प्राणी एकान्त वनमें, सर्वथा अनाथ पड़ा है, उसके चारों ओर मृत्युकी विभीषिका नाच रही है, अन्तिम क्षणकी प्रतीक्षामें वह उद्विग्न बैठा है, परन्तु हठात् परिस्थिति बदल जाती है, अचिन्त्य विधानके द्वारा सर्वथा अप्रत्याशित रूपसे उसकी रक्षा हो जाती है और एक दूसरा सुन्दर प्रासादमें सुखकी नींद सो रहा है। चारों ओर सन्तरी पहरेपर सतर्क हैं पर विधान कुछ और ही है। आकाशमें मेघ उठने लगते हैं, धीरे-धीरे सर्वत्र घोर अन्धकार छा जाता है, कुछ बूँदें गिरने लग जाती हैं। सन्तरी धीरेसे गृहका द्वार बन्द कर देता है, इस आशंकासे कि बूँदकी ध्वनिसे गृहस्वामीकी सुखनिद्रामें व्याघात न हो। हठात् विद्युतकी ज्योति एक क्षणके लिये प्रासादको उद्भासित करती है और दूसरे ही क्षण वज्र ध्वनिसे प्रासाद प्रकंपित हो उठता है। वज्र, गृहस्वामीके हृदयको चीरता हुआ धराके अन्तस्तलमें विलीन हो जाता है। सन्तरी हाहाकार कर उठते हैं। सारा सुखमय प्रबन्ध था, सारी रक्षा थी, पर सभी निरर्थक, सभी व्यर्थ। ऐसा इसीलिये होता है कि विधाताका विधान था—नष्ट होना ही है।

भागवतके इस श्लोकको बालक हनुमानप्रसादने अपने जीवनमें ठीक-ठीक अनुभव किया। संवत् १९५३ वि० (सन् १८९६ ई०) में एक दिन सुन्दर सन्ध्या होने जा रही थी। शिलाँग नगर जन कलरवसे मुखरित था। सभी अपनी-अपनी धुनमें मस्त थे। किसीको पता नहीं था कि बहुतोंके लिये आजकी सन्ध्या ही अन्तिम सन्ध्या होगी, अपनी उमंगोंको हृदयमें लिये हुए ही कुछ ही देर बाद बहुतसे प्राणी पृथ्वीकी गोदमें समा जायँगे। पता होता भी कैसे? विश्वनाटकके सूत्रधारकी लीलाका पता पूर्ण रूपसे सूत्रधारहीको होता है। यत्किंचित् उन्हें भी होता है, जो सूत्रधारके हाथके सच्चे यंत्र होते हैं। अस्तु, उस दिनकी लीला प्रारम्भ हुई, पर अत्यन्त करुण, हृदयको रुला देनेवाली हुई। हठात् शिलाँगका धरातल जोरसे काँप उठा। देखते ही देखते कतारमें सहस्रों गृहावलियाँ धरतीमें लोटने लगीं। उनके साथ ही अनेक गृहस्वामी भी सपरिवार ईंट पत्थरके ढेरके नीचे छिप गये। जिनके जीवनके दिन अवशेष थे, जिनके जीनेका विधान था वे विभिन्न दैवयोगोंसे गृहावलिके धरासात होते समय उसकी चपेटसे बच निकले। पर हनुमानप्रसादकी रक्षा कैसे हुई, यह आश्चर्यसे भर देनेवाली घटना आप उसीके द्वारा सुनें। इसका विवरण इस घटनाके बहुत बाद चरित्रनायकने स्वयं ही कल्याणमें प्रकाशित किया है—

भूकम्पकी घटना

सन् १८९६ ई० में आसाम में भयानक भूकम्प हुआ था। उस समय मेरी उम्र लगभग चार वर्ष की थी। शिलाँग (आसाम) में हमारा कारोबार था। मेरे दादाजी कनीरामजी वहाँ रहते थे। पिताजी कलकत्तेका कारोबार सँभालते थे। माताजीकी बहुत छोटी उम्रमें मृत्यु हो जानेसे मेरी दादीजीने मुझको पाला। उनका मुझपर जो स्नेह था एवं उन्होंने मेरे लिए जितने कष्ट सहे, उसका बदला मैं हजार जन्ममें सेवा करके भी नहीं चुका सकता। उनके जीवित रहते मैंने इस ओर पूरा ध्यान नहीं दिया। अब पछतानेसे कोई लाभ नहीं। **जिनके माता-पिता आदि जीते हैं, उन्हें बड़ा सौभाग्य प्राप्त है, वे जीभर उनकी सेवा करके आनन्द लूट लें, नहीं तो पीछे मेरी तरह पश्चात्तापके सिवा प्रत्यक्ष सेवाका और कोई साधन नहीं रहेगा।** अस्तु, मैं दादीजी के पास शिलाँगमें रहता था। मेरी एक बूआ भी वहीं आई हुई थीं, उनके दो सन्तान थीं—एक कन्या और एक पुत्र। वे दोनों मेरे समवयस्क थे। हम तीनों साथ-साथ खेला करते। भूकम्पके दिन हमारे निकटवर्ती श्रीभजनलाल श्रीनिवासके यहाँ किसी व्रतका उद्यापन था। उनके यहाँ हमें भोजन करने जाना था। बूआके दोनों बालकोंने जानेसे इन्कार कर दिया। मैं अकेला ही गया, वे घर पर रह गये। सन्ध्याका समय था। लगभग पाँच बजे होंगे। मैंने श्रीभजनलाल श्रीनिवासके गोलेके पीछे रसोईमें जाकर भोजन किया, रसोईसे निकलकर गोलेमें घुस ही रहा था कि धरती बड़े जोरसे काँप उठी। मैं चिल्लाया और मेरे आस-पास पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। सारा मकान मिनटोंमें ही ध्वंस हो गया। मैं दब गया। परन्तु आश्चर्य! मेरे चारों ओर पत्थर हैं, उनपर एक तख्ता आ गया और उसके ऊपर पत्थरोंका पहाड़। मैं मानो खोहमें काली गुफामें पड़ गया, पता नहीं वायुके आने-जानेका रास्ता कैसे रहा, परन्तु मैं मरा नहीं। भूकम्प बन्द होनेपर मूसलाधार वर्षा हुई और उसी समय हमारे बगलके एक गोलेमें आग लग गई। चारों ओर हाहाकार मचा था। कौन दबा, कौन बचा कुछ पता नहीं। दादाजी हम तीनों बालकोंकी खोजमें लगे। मेरे बूआके दोनों बालक गोलेके पत्थरोंके नीचे मरे मिले। मेरी बड़ी बूआजीके पौत्र मुझसे कुछ बड़ी उम्रके थे। श्रीराम गोयन्दकाकी भी लाश मिली, ढूँढ़ते और पुकारते दादाजी भजनलाल श्रीनिवासके गोलेके पास आये। वे बड़े जोरसे पुकार रहे थे 'मन्नू-मन्नू।' मैंने आवाज सुन ली। नन्हा-सा बालक था, भयभीत था, रो रहा था, परन्तु न मालूम किस प्रेरणासे मैंने शक्तिभर जोरसे उत्तर दिया, 'यहाँ हूँ, जल्दी निकालिये।' पत्थरोंका ढेर हटाया गया। मैं निकलकर दादाजीके गोदी चढ़ गया, उन्होंने हृदयसे लगा लिया। दोनों रोने लगे। उनके रोनेके कई अर्थ थे। दादीजी अबतक अपने इष्ट श्रीहनुमान्‌जीको याद कर रही थीं। हनुमान्‌जीने उनकी पुकार सुनी—बूआजीके बालकोंके

दबनेका दु:ख क्षण भरके लिये कुछ हल्का हो गया। (कल्याण, ईश्वरांकके परिशिष्टांकके पृष्ठ ६१३)

इस प्रकार बालक हनुमानप्रसादकी जीवन रक्षा हुई। देवी रामकौर अपने प्राणस्वरूप पौत्रको जीवित पाकर सब कुछ पा गयीं।

दिन तो बीतते ही हैं। एक-एक करके तीन वर्ष बीत गये। ऊपर कहा ही जा चुका है कि श्रीकनीरामजीने सुविधाके लिये कलकत्तेमें भी दुकान कर ली। अत: सपरिवार अथवा एकाकी शिलाँग एवं कलकत्ता दोनों ही जगह रहना होता था। देवी रामकौर अपने पौत्रको वात्सल्यका दान देकर तथा उसके मधुमय कंठसे दादीकी पुकार सुनकर आनन्दमें विभोर थीं। इसी समय सहसा श्रीकनीरामजी रुग्ण हो गये और मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् १९५६ के दिन कलकत्तेमें 'सोहं सोहं'का जप करते हुये अपना पाञ्चभौतिक शरीर छोड़ दिया। देवी रामकौर एक बार तो पति-वियोगसे तिलमिला उठीं, परन्तु अवसर देखकर अपनेको सँभाला। वह एक असाधारण देवी थीं। पति-वियोगके दुसह दु:खको हृदयमें छिपाकर अपने सामनेके कर्तव्यमें जुट गईं।

इस घटनाके दो महीने बाद ही श्रीभीमराजकी द्वितीय संतान कमलाका, रामदेवीके उदरसे माघ कृष्णा १२ सम्वत् १९५६ वि० के दिनमें जन्म हुआ। बालक हनुमानप्रसादकी आयु उस समय ७ वर्षकी थी। अपनी बहनका मुख देखकर बालक-हृदय खिल उठा।

॥ श्रीहरि: ॥

पाँचवाँ पटल

पौगण्ड एवं अर्द्ध कैशोरका प्रवाह

कहते हैं संत नामदेवकी माँने एक बार कहा—बेटा, बनसे लकड़ी काट ला। नामदेव कुल्हाड़ी लेकर वन गये, पर लकड़ी काटकर न ला सके। माँ भी भूल गयी थीं, कुछ नहीं पूछा। पाँच दिन बाद माँने देखा—बच्चे नामदेवके घुटनेपर एक घाव हो गया है। माँने चिन्तित होकर पूछा—ओह! यह घाव कैसे हुआ, मेरे लाल! सरल नामदेवने उत्तरमें कहा—माँ, उस दिन लकड़ी लानेके लिये तुमने मुझे वनमें भेजा था। मैं वनमें जाकर जब कुल्हाड़ीसे वृक्षकी टहनीपर मारना चाहा तो हठात् एक विचार मनमें उत्पन्न हुआ। मैंने सोचा, कुल्हाड़ीकी चोटसे इस वृक्षको क्या पीड़ा नहीं होगी? अच्छा, जरा अपने पैरपर मारकर देखूँ, पीड़ा होती है या नहीं। यह सोचकर मैंने धीरेसे अपने पैरपर कुल्हाड़ीकी हलकी चोट की, दर-दर करता हुआ रक्त निकलने लगा तथा पीड़ासे मैं व्याकुल हो उठा। मैंने सोचा, आह! जरा सी चोटसे मुझे इतनी पीड़ा हुई, फिर वृक्षकी क्या दशा होती? अत: मैं बिना लकड़ी लिये ही वापस चला आया। नामदेवकी माँकी आँखोंमें आँसू भर आये। माँने कहा—बेटा! तूँ निश्चय ही एक दिन महान संत होगा, अद्भुत जीवनकी नींव तूँ अभीसे देने लग गया।

तात्पर्य यह है कि प्राय: ऐसी घटना देखी जाती है कि महान् संतोंकी बचपनकी चेष्टा भविष्यके जीवनकी सूचना देती है। विशाल प्रासाद निर्माणके पूर्व उसकी नींव भी स्वत: उसके अनुरूप ही होती है। बालक हनुमानप्रसादके जीवनमें भी इसी प्रकार आध्यात्मिक प्रवृत्तिका श्रीगणेश बचपनसे ही आरम्भ हुआ। दादी रामकौरकी गोदमें पला हुआ बालक न अधिक चंचल था न गंभीर। वह दादीको संतोंके पास जाते देखता। देवी रामकौरकी श्रद्धामयी चेष्टा देख-देखकर वह मन-ही-मन अनेक बातें सोचता। पवित्र हृदय संत जिस समय देवी रामकौरसे भजनकी चर्चा करते, उस समय बालक एकांत चित्तसे उनकी बातें सुनता। संतोंकी घटनायें, संतोंकी बातें सुन-सुनकर बालक आनंदमें भर जाता। जिस समय गुरु शिष्य विषयक चर्चा चलती, उस समय बालकके हृदयमें भी शिशु सुलभ उमंगका उन्मेष हो जाता तथा हृदयके अंतस्तलमें मूक चाह उत्पन्न होती—मेरे भी एक गुरुजी होते और मेरी दीक्षा होती। देवी रामकौर बालककी गंभीर मुद्रा देखतीं और देखते ही दोनों हृदयके भावतन्तु नैसर्गिक विद्युत-कणोंके द्वारा जुड़ जाते। देवी रामकौरके मनमें स्फुरणा होने लगती—इसे दीक्षा दिला दूँ। उच्च सम्प्रदायके उच्च संतके चरणाश्रयमें ही मेरा बालक फले फूले। अस्तु! मनके बारम्बारके विचार मूर्तरूप धारण करते ही हैं। रामकौरने एक दिन निश्चय कर लिया कि बालकका दीक्षा संस्कार करा देना है। तैयारियाँ होने लग गयीं।

उन दिनों निम्बार्क सम्प्रदायके बड़े विद्वान महंत मेहरदासजी रतनगढ़में रहते थे। उनके शिष्यका नाम रामरतनदासजी था तथा रामरतनदासजीके शिष्य श्रीब्रजदासजी थे। इन्हीं संत श्रीब्रजदासजीको बालक हनुमानप्रसादके दीक्षागुरु होनेका दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ। देवी रामकौरने संत श्रीब्रजदासजीसे दीक्षा-संस्कार सम्पन्न करनेकी प्रार्थना की। संत ब्रजदासजीने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया।

मंगलमय मुहूर्तमें बालकने स्नान किया। नवीन वस्त्र पहनकर श्रीगुरुदेवके चरणोंमें उपस्थित हुआ। हृदयमें उमंगका सागर लहरा रहा था। गुरुदेवने देखा, बालक हृदयसे चाहता है। एक दिन भगवान नारदने भी ध्रुव को ऐसे ही देखा था और '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' की दीक्षा दी थी। आज मानों उसीकी पुनरावृत्ति हो रही है। संत ब्रजदासजीने विधि पूरी की। बालकके सुकोमल कंठमें गुरुदेवने कंठी बाँध दी तथा कानमें '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' का मंत्रोपदेश कर

दिया। वैष्णवी दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ। यह संस्कार सम्वत् १९५७ वि० में रतनगढ़ में हुआ था।

इसी वर्ष देवी रामकौर अपनी पीहर अमृतसर गयीं। लाडला पौत्र भी साथ हो गया। बालककी वैधी दीक्षा तो हो चुकी, अब दादीकी क्रियात्मक दीक्षा प्रारम्भ हुई। देवी रामकौरको श्रीहनुमानजीका इष्ट था। उन्हें श्रीहनुमान्जीके साक्षात् दर्शन भी हुये थे। बालककी उमर भी आठ वर्षकी हो चुकी थी। देवी रामकौरने हनुमानकवचका पाठ बालकको सिखा दिया और बालकने भी सीखकर नित्य पाठ करना आरम्भ कर दिया। पाठका यह बीजारोपण इतना दृढ़ हुआ था कि इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती गयी। आगे चलकर तो यह बालक सूर्य, गणपति, देवी, शिव आदि अनेक देवताओंका नियमसे पाठ करने लगा। नवरात्रके दिनोंमें तो सांगोपांग सप्तशतीका अनुष्ठान एवं देवी भागवतकी कई स्तुतियोंका बड़ी श्रद्धासे पाठ करता।

इसी बीचमें व्यापारिक जीवनमें परिवर्तन आवश्यक हो उठा। कनीरामजीकी मृत्युके बाद श्रीभीमराजजी अकेले रह गये। इसलिये आसाम प्रान्तके विस्तृत व्यापारको न सँभाल सकनेके कारण वहाँका व्यापार बन्द करना पड़ा और कलकत्तेकी दुकान कनीराम भीमराजका काम चालू रखकर सम्वत् १९५८ के सालसे सपरिवार कलकत्ते आकर रहने लगे क्योंकि उस समय अकेले भीमराजजीको ही सब काम-काज देखना पड़ता था।

कलकत्तेमें आकर देवी रामकौरने सोचा था कि अब निश्चिन्त होकर रहेंगे। पुत्र भीमराज अत्यन्त पवित्र चरित्र, बहू रामदेवी अत्यन्त सुशीला, पौत्र हनुमानप्रसाद अत्यन्त सुशील एवं तीन वर्षकी पौत्री कमला अबोध शिशु है। छोटा सा परिवार है, निर्द्वंद्व जीवन बीतेगा पर—'तेरे मन कुछ और है, कर्त्ता के कुछ और।' भीमराजजीकी दूसरी पत्नी रामदेवी अपनी अबोध शिशु कमला एवं सास तथा पतिको छोड़कर चैत्र कृष्ण त्रयोदशी सम्वत् १९५९ के दिन परलोक चल बसीं। अबोध कमला माँ-माँ पुकारती रह गयी पर लोग अर्थी उठाकर ले गये। भीमराजजी अपनी जीवन संगिनीके शवके साथ-साथ गंभीर होकर चल पड़े। देवी रामकौरकी आँखोंसे अविरल अश्रुपात हो रहा था। बालक हनुमानप्रसाद एक ओर स्तब्ध खड़ा विचार कर रहा था—संसार भी अजब है।

श्राद्धका कार्य कठिनतासे पूर्ण हो पाया था कि लोग विवाहके लिये आने लगे। पहले तो भीमराजजीसे सहानुभूति प्रकट करते फिर धीमी कंठसे परामर्श देते—भैया! भगवानके आगे किसीका वश नहीं, यहाँ मनुष्य निरुपाय हो जाता है। तुम्हें धैर्य धारण करना चाहिये। सोचकर देखो, कमला निरी अबोध है, रामकौर देवी वृद्धा हो गयीं। कम से कम इनकी सेवाकी दृष्टिसे भी तुम्हें विवाह करना ही चाहिये।

भीमराजजी अन्यमनस्क रहकर सारी बातें सुना करते। पर लोकमत बड़ा प्रबल होता है। रामकौर भी परिवारको सुव्यवस्थित करनेकी दृष्टिसे भीमराजजीको विवाहके लिये प्रेरणा करने लगीं। भीमराजजीको स्वीकृति देनी ही पड़ी और शीघ्र ही सं० १९६० के आषाढ़ महीनेमें उनका तृतीय विवाह रतनगढ़ निवासी श्रीमन्नालालजी खेमकाकी पुत्री गौराबाईसे बर्दवानमें हो गया।

बालक हनुमानकी आयु इस समय ११ वर्षकी हो चली थी। उन दिनों कम उम्रमें ही विवाह कर देनेकी प्रथा थी। प्रतिष्ठित परिवारमें इसके विपरीत होना कुल प्रतिष्ठाके लिये अवांछनीय बात समझी जाती थी। अत: देवी रामकौरके मनमें भी अपने लाड़ले पौत्रको शीघ्र दुलहाके रूपमें देखनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। इच्छाकी देर थी, सम्बन्ध तो आ ही रहे थे। श्रीभीमराजजी का फर्म भी प्रतिष्ठित समझा जाता था, बालक भी देखनेमें बड़ा आकर्षक प्रतीत होता था। सब योग मिल गये और रतनगढ़ निवासी श्रीगुरमुखरायजी ढंढारियाकी पुत्री महादेवीबाईके साथ बालक हनुमानप्रसादकी सगाई स्थिर हो गयी। प्रथम ज्येष्ठमें विवाह होना भी निश्चित हो गया।

विवाह होनेमें अभी कुछ विलंब था। अचानक एक दिन महादेवीबाई भयानक चेचकसे आक्रान्त हो गयीं। सारे शरीरपर दाने निकल आये। महादेवीको रोगकी भीषण पीड़ा सहनी पड़ी। कुछ दिन बाद वह उस

रोगके चंगुलसे तो जीवित मुक्त हो गयी, पर रोगने उसके सौन्दर्यको नष्ट कर दिया। सारे शरीरपर चेचकके धब्बे हो गये। एक हाथ एवं एक पाँवपर सबसे अधिक रोगका आघात हुआ था। महादेवीकी माँ एवं पिताने अपनी पुत्रीकी ओर देखा तो गंभीर चिन्तामें निमग्न हो गये। उन्हें आशंका हो गई कि संभव है भीमराजजी अपने पुत्रकी सगाई महादेवीके साथ अस्वीकार कर दें, पर रामकौर देवीका भाव जब उन्हें ज्ञात हुआ तो उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। रामकौरने स्पष्ट कहा जैसे कन्याका वाग्दान एक बार ही होता है, एक बार किसी पुरुषके साथ सम्बन्ध स्थिर हो जानेपर दूसरे पुरुषके हाथ उसे नहीं देना चाहिये, वैसे ही मैं अपने पौत्रका वाग्दान महादेवीके लिये कर चुकी हूँ, महादेवीके जीवित रहते मैं अपने वचनको कदापि नहीं छोड़ूँगी। इस प्रकारका उत्तर रामकौर-जैसी भारतकी रमणीके लिये सर्वथा उपयुक्त था। गुरमुखरायजी एवं उनकी पत्नी दोनों आनन्दमें डूब गये।

अब शुभ विवाहकी तिथि निकट आयी। बालक हनुमानप्रसादका यज्ञोपवीत संस्कार भी कराना था। इसलिये पहले उसकी व्यवस्था हुई। विधिवत संस्कार हुआ फिर देशी प्रथाके अनुसार ब्रह्मचारी वेशमें बालक हनुमानप्रसाद भिक्षा माँगने चला। उस समयके दृश्यका क्या कहना। अद्‌भुत सुन्दर शोभा थी। लंगोटी बाँधे, झोली लटकाये बालक अपना सुकोमल हाथ फैलाकर सरलतासे भिक्षाकी याचना करता और देवियाँ अपने करकमलोंसे मेवा तथा रौप्यमुद्रा उसकी झोलीमें डाल देती थीं। बालक हनुमानप्रसादका यह भिक्षाटन अवश्य ही कृत्रिम था, उस पुनीत प्रथाकी पुनीत स्मृतिमें सिखायी पढ़ायी हुई वाह्य क्रिया मात्र थी, पर उसके मुखपर जो सरलता थी, वह कृत्रिम नहीं थी। वह सर्वथा उन ऋषि बालकोंके सदृश ही थी। अस्तु, बालककी झोलीमें मेवे और रौप्य मुद्राकी भिक्षा मिली, उन्हें लेकर वह भी गुरुचरणोंमें उपस्थित हुआ, गुरुने आशीर्वाद दिया।

प्रथम ज्येष्ठ कृष्ण ४ सम्वत् १९६१ वि० का दिन है। आज बालक हनुमानप्रसादका विवाह है। वह सुन्दर सजे हुये घोड़ेपर सवार हुआ। सबने मिलकर बालकको अपने प्राणोंके स्नेहसे सजाया था। सुन्दर बालककी शोभा सजावटके अन्तरालसे फूट पड़ रही थी। स्त्रियाँ मंगल गीत गा रही थीं। आगे-आगे बाजे बजते जा रहे थे। सजी हुई बारात श्रीगुरुमुखरायजीके द्वारपर पहुँची। आनन्दमें भरकर गुरमुखरायजीने बारातका सत्कार किया तथा शुभ मुहूर्तमें वर-वधूने भांवरी ली। युगल दम्पत्ति जिस समय देवी रामकौरके घर आकर उनके नेत्रोंके सामने खड़े हुये, उस समय रामकौरका हृदय पानी बनकर आँखोंमें झलकने लगा। देवीने बड़ी कठिनतासे उसे अपनी अंचलकी ओटमें छिपा लिया एवं वर-वधूको भीतर ले गयी।

चहल पहलके वे दिन इतनी शीघ्रतासे बीतते थे मानों दिनमान रात्रिमान घट गया हो। अवश्य ही कर्त्तव्यपरायण देवी रामकौरके सारे कार्य ज्यों-के-त्यों होते। संतोंके पास जाना रामकौरके जीवनका एक मुख्य अंग था और यह सदा चलता रहा। साथमें लाड़ला पौत्र हनुमानप्रसाद भी प्रायः अवश्य जाता था। हनुमानप्रसादने प्रारम्भमें गीता इसी सत्संगके फलस्वरूप ही सीखी थी। इसका वर्णन अब वे स्वयं इन शब्दोंमें करते हैं—रतनगढ़ जाना हो जानेपर संत श्रीबखन्नाथजी आदिके पास मैं जाया करता था। उनकी मुझपर बड़ी कृपा थी। मैं जब उनके पास जाता और बैठ जाता तो वे मेरी इच्छा देखकर पूछते, क्या बेर खाओगे? मेरे 'हाँ' कहनेपर वे मुझे आज्ञा दे देते और मैं वहाँकी झाड़ियोंमें जहाँ बड़े अच्छे बेर लगे रहते थे जाकर खाता। विशेषकर मैं इसी लोभसे वहाँ जाता था। उन्होंने मुझे गीताका अध्ययन करनेके लिये कहा और मैंने उनसे गीताका पाठ पढ़ लिया था। मुझे अभीतक याद है मैं उच्चारण करता, 'अश्वस्थामा' और वे प्रेम मिश्रित स्वरमें सुधारकर कहते छोरा-नहीं, उच्चारण करो अश्वत्थामा।

पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा जो इतना बड़ा विद्वान्-लेखक आगे चलकर हुआ, उस बालक हनुमानप्रसादने कहीं भी जाकर विधिवत पढ़ाई नहीं की। केवल बचपनमें एक मारवाड़ी ब्राह्मण श्रीजोरजीके पास

कुछ महीने महाजनी पढ़ी थी। इन श्रीजोरजीकी बात अब भी वे बड़ी श्रद्धासे कहा करते हैं। अस्तु,

इस बार कलकत्तेसे रतनगढ़ आना विशेषत: बालक हनुमानप्रसादके विवाहके उद्देश्यसे ही हुआ था। अत: विवाह समाप्त होनेके कुछ बाद ही भीमराजजी सपरिवार कलकत्ते चले गये। इस बारका कलकत्तेका जीवन बालक हनुमानप्रसादके जीवन नाटकका द्वितीय दृश्य समझना चाहिये। यहीं से बालकके जीवनमें स्वत: अपने ऊपर निर्भर होकर, अपनी बुद्धिके द्वारा औचित्य अनौचित्यका विवेचन करके आगे बढ़ना प्रारम्भ होता है। अबतक वह दादी रामकौर एवं पिता श्रीभीमराजजीके जीवन परिधिमें अपनी जीवन रेखाको सीमित कर चलता था। अब आगे मानो दादी रामकौरने, पिता भीमराजजीने बालकके विकासके लिये अपनी परिधि स्वेच्छासे किंचित् संकुचित कर ली और बालक हनुमान उसी प्रेमसे उनके चरणोंका अनुगमन करता हुआ ही कुछ आगे बढ़कर चलने लगा।

रतनगढ़से आये कुछ ही दिन बीते थे। विक्रमीय संवत् १९६२ का वर्ष था। कलकत्तेकी जनतामें एक दिन एक सिरेसे दूसरे सिरेतक सभ्य समाजमें चर्चा प्रारम्भ हुई—लार्ड कर्जनने बंग विच्छेदकी घोषणा करवा दी। बंगके नवयुवक, वृद्ध जिसने सुना वही उबल पड़ा। कासिम बाजारके मनीन्द्र चन्द्र नन्दीके सभापतित्वमें हजारोंकी संख्यामें जनता एकत्रित हुई तथा वहीं विदेशी वस्तुके बहिष्कारके आंदोलनका श्रीगणेश हुआ*। इसीका नाम आगे चलकर स्वदेशी आंदोलन हुआ जो समस्त बंगालमें आगकी तरह फैल गया। स्वदेशी आंदोलनका प्रभाव इतना बढ़ा कि कठिनतासे बंगालका कोई ग्राम या नगर बचा हो जहाँ बंग विच्छेदके विरुद्ध सभा नहीं हुई हो। सभा होती और वहाँ सम्मिलित 'राष्ट्रीय घोषणा' होती तथा 'स्वदेशी व्रत' धारण कराया जाता। 'स्वदेशी व्रत' की शब्दावली यह होती—'सर्वसमर्थ ईश्वरसे प्रार्थना है कि वे इस बातके साक्षी हों, हम अपनी भविष्य परम्पराके समक्ष खड़ा होकर यह पवित्र व्रत लेते हैं कि यथासम्भव हम देशमें बनी हुई वस्तुओंका ही व्यवहार करेंगे तथा विदेशमें बनी हुई वस्तुओंके व्यवहारसे बचेंगे। ईश्वर हमलोगोंके इस व्रतमें सहायक हों।'

आन्दोलनके प्रभावसे बाल-वयस्क-विद्यार्थियोंके दलके दल स्कूल कालेज छोड़कर अलग हो गये। कलकत्ता विश्वविद्यालयका नाम 'गुलामखाना' देकर विद्यार्थी स्वदेशी आंदोलनमें सम्मिलित होने लगे। छोटे-छोटे विद्यार्थी साथ दे रहे थे। बालक हनुमानप्रसादने भी ये बातें देखीं, सुनी, पढ़ी। उसकी उमर उस समय १३ वर्षकी थी। हृदय निष्पाप था, सरल था, उज्ज्वल धवल वस्त्रकी भाँति निर्मल था। स्वदेश प्रेमके रंगकी छाया बालक हनुमानप्रसादके हृदयपर भी पड़ी। रंगकी छाया ही थी, पर उस निर्मलतम हृदयपर पड़ते ही चमक उठी। बालक हनुमानप्रसादने भी निश्चय किया, आजसे मैं देशी वस्त्र ही पहनूँगा। बालकपनका वह निश्चय आजतक नहीं टूटा है बल्कि उज्ज्वलतम हो गया है। आज भी हनुमानप्रसादजी शुद्ध हाथका कता, हाथका बुना हुआ ही वस्त्र पहनते हैं।

पाठक! अर्द्ध कैशोरका संस्मरण समाप्त हो रहा है। अब आगे बालक हनुमानप्रसाद नवीन सरितामें स्वेच्छापूर्वक अवगाहन करने जा रहा है। यौवनकी तरंगोंपर नाचने जा रहा है। अवश्य ही अवगाहन करते हुये, उन तरंगोंपर नाचते हुये भी दादी रामकौर, माँ गौराबाई, पिता भीमराज, नवविवाहिता जीवन संगिनी महादेवी, बहन कमला एवं गौराबाईके उदरसे नवजात बहन पूर्णीबाई जो सं० १९६२ वि० से माँकी गोद में किलक रही है इन सबसे सन्नद्ध उसके हृदयके प्रेम तंतु अक्षुण्ण रहेंगे।

---
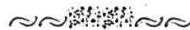
* यह सभा ७ अगस्त १९०५ ईस्वीके दिन हुई थी।

॥ श्रीहरिः ॥

छठाँ पटल

देवी सरोजनीका अलौकिक आत्मोत्सर्ग

आर्य रमणीका जीवन कैसा होता है, आज इस विलासिताके युगमें समझ लेना कुछ कठिन है। उस दिनकी बात है दिल्लीश्वरकी सेना एवं राजपूत वीरोंमें सारा दिन भयानक युद्ध हुआ। रणभूमि शवसे पाट दी गयी। अनेक राजपूत वीर, अनेक क्षत्रिय युवक अपनी मातृभूमिकी गोदमें चिर निद्रामें सो गये। संध्याकालीन सूर्यकी रश्मियोंमें उनका निर्मल प्रशांत मुख चमक रहा था। मातृभूमिके लिये अपना जीवन अर्पण करनेवाले उन वीरोंके साथ ही हजारों मुगल वीर भी सो रहे थे। सम्पूर्ण नीरवता थी। हाँ, कुछ काक एवं गृध्रोंका दल एकत्रित हो गया था और उनकी कर्कश ध्वनि बीच-बीचमें इस पुनीत नीरवतासे टकराती और अन्तरिक्षमें विलीन हो जाती थी। सूर्यदेव इस दृश्यको अधिक देर नहीं देख सके। अस्ताचलमें जा छिपे। धीरे-धीरे सर्वत्र घोर अन्धकार छा गया।

मुगल सेना कुछ दूरपर ही पड़ाव डाले हुये थी और चौकन्ना थी। कहीं प्राणोंकी बाजीसे खेलनेवाले वीरोंकी कोई टुकड़ी अवशिष्ट रह गयी हो और फिर भिड़ना न पड़े। इसीलिये बारंबार दृष्टि निविड़ अंधकारको चीरती हुई उस शवपुंजकी ओर जा लगती। अवश्य ही थकी आखें कुछ क्षण ही खुली रह सकीं। रात्रिके प्रथम पहरका अवसान भी न हो पाया था कि सेना गंभीर मुद्रामें बेसुध हो गयी। एक जग रहा था। गठीला जवान था। प्रत्येक अंगसे रोब टपक रहा था। पता नहीं, वह स्वयं दिल्लीश्वर था या सिपहसालार, पर था वीर। वह उठा, अपने आपको शस्त्रोंसे पहले सजाया। नीचेसे ऊपरतक लैस होकर, पर अपने इस वीर वेशको एक चादरसे छिपाकर, पैरोंको अत्यन्त धीमे-धीमे रखते हुये चल पड़ा। शवपुंजके पास जा पहुँचा। उसने देखा—तेरह वर्षकी एक सुन्दर सुकोमल बालिका अपने हाथमें एक प्रदीप लेकर शवोंके बीचमें घूम रही है। वह प्रत्येक शवके पास जाती है, दीपकके प्रकाशमें मुख देखती है, फिर आगे चल पड़ती है। मुगलवीर यह देखकर कुछ स्तब्ध-सा हो गया। बालिकाके सुन्दर केश उसके कंधोंपर बिखरे हुये मुखपर एक अनिर्वचनीय शान्ति, प्रेम एवं व्याकुलता-सी छायी हुई थी। मुगलवीरने सोचा, मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ, यह स्वर्गकी अप्सरा तो नहीं है। बालिका दीपक लिये शवोंको देखती हुई उस मुगलवीरके समीप आ पहुँची थी। दीपककी ज्योतिसे मुगलवीरकी सफेद चादर चमक उठी। बालिकाके नेत्र उस ओर गये। वीरने एक बार अपने शाल सुसज्जित अंगोंकी ओर देखा तथा दो कदम आगे बढ़कर बालिकाके ठीक सामने खड़ा हो गया। अब उस बालिकाने आँखें ऊपर उठाईं। एक क्षणके लिये वह किंचित् सहम गई, पर दूसरे क्षण ही एक अपूर्व तेजसे उसका सम्पूर्ण अंग चमकने लगा। बालिकामें भयकी गंध भी न रही। मुगलवीरने विनयपूर्ण धीमे स्वरसे पूछा—देवी!, क्या कर रही हो? एक क्षणके लिये मौन रहकर बालिकाने उत्तर दिया—'खोजने आयी हूँ।' इस बार उत्सुकता-मिश्रित, पर किंचित् झिझकके साथ मुगलवीरने कहा—'इस निस्तब्ध रात्रिमें इन शव-पुंजोंमें तुम किसे ढूँढ रही हो, देवि?' बालिकाने इस बार तेजीसे कहा—'अपने पतिदेव, प्रियतम, प्राणनाथकी देहको खोजने आयी हूँ। इस युद्धमें आज वे धराशायी हुये हैं। उनकी देह मुझे चाहिये। उनकी देहको अपनी गोदमें रखकर इस दीपकको अंचलसे लगाकर सती हो जाऊँगी। तुम्हें मैं बड़ा भैया कहकर पुकार रही हूँ, तुम ऊपरसे कुछ लकड़िये डाल देना।'

मुगलवीर उस बालिकाके तेजसे अभिभूत था। उसमें सामर्थ्य नहीं रह गयी थी कि कुछ पूछे, पर उसने सारा साहस बटोरा और बोला—देवि! बुरा न मानना, तुम्हारी उमर तो बहुत छोटी है, तुम्हारा विवाह कब

हुआ होगा? बालिकाने आंतरिक सरलतासे उत्तर दिया—'विवाह तो अभी नहीं हुआ था, सगाई हुई थी।' मुगलवीरने अंतिम प्रश्न किया—'देवि! जबतक विवाह नहीं हुआ तबतक वह आपका पति नहीं हुआ। उसके साथ प्राण देना.......। बालिका रोषपूर्ण कंठसे बीचमें ही बोल उठी—'चुप, सावधान, ऐसी बात जीभपर फिर न लाना। राजपूत रमणी एक बार ही पति वरण करती है।'

पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि देवी सरोजनीने अपना प्राण विसर्जन करनेके पूर्व अपने पत्रमें केवल एक शब्दके हेरफेरसे यही बात हनुमानप्रसादजीको लिखी थी—'हिन्दू रमणी वरे एके पति।' यह सरोजनी कौन थीं, हमारे चरित्रनायकसे उसका क्या सम्बन्ध था, इसका विवरण अंशत: चरित्रनायकके शब्दोंमें एवं शेष उसीकी टिप्पणी रूपमें मेरे हृदयके भावोंसे जुड़ी रहनेके कारण इस पवित्र घटनाका चित्रण करनेमें असमर्थ, मेरी लेखनी द्वारा अवलोकन करें। यह घटना आजसे कुछ वर्ष पूर्व स्वयं चरित्रनायकने अपने एक मित्रको दो बार सुनायी थी—

'सम्वत् १९६४ वि० का वर्ष था। अपने मामाजीके बुलानेसे ग्वालन्दे होते हुये अपनी ननिहाल चाँदपुर जा रहा था। साथ में सुखलाल जमादार था। उस समय ग्वालन्दोंसे चाँदपुर जहाज पर जाया जाता था। अत: मैं भी जहाज़पर सवार हुआ। मैं जहाँ जिस स्थानपर बैठा, भाग्यचक्रसे वहीं एक बंगाली सज्जन परिवारसहित बैठे थे। उनके साथ उनकी स्त्री और उनकी एक कन्या सरोजनी नामकी थी, जिसकी आयु १३-१४ वर्षकी होगी। उसका एक छोटा भाई ५-६ वर्षका था। वह भी उनके साथ था। मेरे पास कुछ मेवे थे। उनमेंसे मैंने स्वाभाविक ही कुछ मेवे उस बालकको दे दिये। उस बालकने भी वह मेवा ले लिया। थोड़ी देरमें जहाज एक स्टेशन 'लोहजंग' (तारपासा) आयी। उसी स्टेशनपर वे लोग उतरकर डोंगीमें बैठकर चले गये।'

पाठक, ऊपरसे यह घटना कितनी स्वाभाविक दीखती है। प्रतिदिन न जाने कितने यात्री ठीक इसी प्रकार मिलते हैं, मिलकर बिछुड़ जाते हैं। इसमें किसीको कुछ भी विस्मय नहीं होता, पर नहीं, सरोजनी देवीके परिवार एवं चरित्रनायकके इस मिलनके अंतरालमें एक पुनीत रहस्यमय घटना छिपी है, इसकी गंधतक स्वयं चरित्रनायक भी करीब चार वर्षतक न पा सके। इस मिलनकी स्मृतिको तो वे लौहजंग स्टेशनके जन कलरवके साथ ही विदा दे चुके थे। तबसे अनंत नूतन स्मृतियाँ आयीं, गयीं। उनके भारसे सरोजनीके मिलनकी यह स्मृति इतनी दब गयी थी कि चंचल मनके साथ यह मधुमय साज़के साथ पुन: नाच उठेगी, यह कल्पना स्वप्नमें भी चरित्रनायकके लिये संभव नहीं थी। पर, इससे क्या होता है, भाग्यचक्र तो निरंतर घूम रहा था। ऊषा आती, प्रभात हँसता, मध्याह्न रोषमें भर जाता, सन्ध्या गंभीर हो जाती, निशा सान्त्वना देती, इन काल स्रोतकी लहरियोंपर मंगलमय प्रभुका विधान नियंत्रित क्रमसे नाचता रहा था। एक क्षणके लिये इस नृत्यका विराम न हुआ। एक लहर नाचती हुई आती, हनुमानप्रसादके गलेमें एक माला डाल जाती, दूसरी आती तिलककर जाती, तीसरी आती पान खिला जाती, चौथी आकर अंजन लगा जाती। फिर नयी आती, आभूषण पहना जाती। इस प्रकार प्रत्येक लहर आती और लीलामय प्रभुके निर्धारित विधानकी भेंट देकर लौट जाती। और, हनुमानप्रसादजी क्या करते? वे अपनी जीवनसंगिनीके निर्मल प्रेमकी धारामें अवगाहन करते हुये ही, विधानके आगे हँसते हुये ही सिर नवा देते। अस्तु,

लहरोंमें बहता हुआ एक दिन एक पत्र श्रावण, वि०सं० १९६९ में आया। कलकत्तेकी पगैयापट्टीमें पारखकोठी स्थित अपनी दुकानमें हनुमानप्रसादजी बैठे थे। चादर डालकर कलकत्ता नगर विश्राम करने जा रहा था। पर, हनुमानप्रसादजी जाग रहे थे। सोते भी कैसे? अभी-अभी एक लहरी उनकी अज्ञात चेतनासे कह गयी थी, मेरी बहन तुम्हें एक पत्र देने आयी है, सो मत जाना भला। और, सचमुच दूसरे ही क्षण पत्र आया। पत्रपर किसी अज्ञात रमणीके अक्षर थे।

चरित्रनायकने पत्र खोला। वह अत्यन्त विस्तृत था। नीचे लिखा था—'सरोजनी' और पासही लिखा था,

'मेरे मिलनेका पता कालीघाट है।' पत्रके आरम्भमें पूर्ण विवरण दिया हुआ था, किस प्रकार आप ग्वालंदोसे चाँदपुर जहाजपर बैठे हुये जा रहे थे और मैं पिताके साथ आपके समीप ही बैठी थी। लोहजंगपर मैं उतर पड़ी थी तथा शेष पत्रमें क्या था, इसकी कल्पना पाठक मेरी असमर्थ लेखनीकी निम्नांकित शब्दावलीसे स्वयं करें। अवश्य ही ऐसा करनेके पूर्व अपने हृदयको पवित्र, पाशविक ऐन्द्रिय सम्पर्क, ऐन्द्रिय सुखसे सर्वथा शून्य, निर्मलतम प्रेम—मन्दाकिनीकी धारामें डूबो लें अन्यथा उस पूजनीया प्रेममयी देवी सरोजनीके मंगलमय आशीर्वादसे वंचित हो जायेंगे।

इस बातको जानता था विश्वनाटकका सर्वज्ञ सूत्रधार और जानती थीं सरोजनी। इसके बाद सरोजनीके जनानेसे जान पाये चरित्रनायक, जो सर्वथा सरोजनीकी स्मृतितक भूले हुये थे। लौहजंग स्टेशनपर सरोजनी उतरी थी, पर उतरी थी, अपना शरीर, अपना प्राण, अपना हृदय, अपना सर्वस्व हनुमानप्रसादके चरणोंमें सदाके लिये समर्पित करके। पर उसका यह समर्पण खोखला न था। वह अंतस्तलके निर्मलतम प्यारसे लबालब भरा था। इसीलिये प्रकट न हुआ। देवी सरोजनी वाह्य व्यवहारमें भी अत्यन्त कुशल थीं। इसलिये उसने प्रकटमें कुछ भी न कहकर श्रीहनुमानप्रसादजीके साथ जो सुखलाल नामक जमादार था, उससे उनका नाम और जाति, सब पूछकर अपनी डायरीमें नोट कर लिया। इस बातका हनुमानप्रसादजीको भी पता न लगने दिया, न हनुमानप्रसादजीको सुखलाल जमादारने ही कुछ कहा। चरित्रनायक उसे बिलकुल भूल ही गये थे। किन्तु जिस देवीने अपने जीवनको उनके चरणोंमें समर्पित किया था वह कब भूलनेवाली थी। उसके हृदय पटलपर तो वह मधुरमूर्ति उसी क्षणसे निरन्तर नाच रही थी। वह कैसे जीवन बिता रही होगी, इसका अनुभव किसी हृदयवान पुरुषको ही यत्किंचित् हो सकता है। यद्यपि उस देवीने अपने विशुद्ध और निश्छल शुद्ध प्रेमको किसीपर भी प्रकट नहीं किया, किन्तु उसके घरवालोंने चार-पाँच वर्ष बाद संवत् १९६७ में उसका विवाह किसी अन्य पुरुषके साथ करनेका विचार किया, तब उस देवीके मनमें बड़ी दुविधा उत्पन्न हुई। यदि वह अपने विवाहका विरोध करती है तो उसका प्रेम प्रकाशमें आ जाता है और प्रेमका प्रकाश में आना प्रेमीके लिये कितना असह्य होता है। संसारमें आसक्त मानव उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।

और, यदि विवाहकी स्वीकृति देती है तो अपने आराध्य देवकी वंचना होती है। सरोजनीका मन इस दुविधामें चंचल हो उठा, पर एक अचिन्त्य शक्तिने उसकी चिन्ता हर ली। उसे पथ मिल गया, प्रस्तुत होकर वह चल पड़ी। विवाहका नाटक रचे जानेमें उसने बाधा नहीं की, क्योंकि उसकी दृष्टिमें उसके आराध्यदेवके अतिरिक्त कोई दूसरा पुरुष था ही नहीं। उसके अंतरके पट खुल चुके थे। प्रेमकी निर्मल धारामें सभी मल धुल चुके थे। ***'उत्तमके अस बस मन माँहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥'*** की उज्ज्वल मूर्ति वह बन चुकी थी। अस्तु, सं० १९६९ वि० में मेदनीपुर जिलेके किसी ग्राममें विवाहका नाटक पूर्ण हुआ। संसारकी दृष्टिमें यह सच्चा था पर उसकी दृष्टिमें सर्वथा खेल था।

सरोजनी ससुराल पहुँची। ससुरालमें ४-५ महीने रही, पर रही 'चंचरीक जिमि चंपक बागा' की तरह। अब प्रेमकी परीक्षा प्रारम्भ हुई। सतीत्व रक्षाका प्रश्न उपस्थित हुआ। दयामय प्रभुने ४-५ महीने मानों प्रत्यक्ष सामने रहकर सरोजनीकी रक्षा की, पर अब परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे पीछे खड़े हो गये और देखने लगे, सरोजनी क्या करती है? सरोजनी तैयार थी। सं० १९६९ श्रावणके लगभगकी बात है। एक दिन नाटकके ससुरालको उसने अंतिम बार प्रणाम किया तथा सदाके लिये बाहर चल पड़ी। हृदयमें आराध्यदेव चरित्रनायककी मूर्ति सान्त्वना दे रही थी। बाहर श्रीभगवान्‌की कृपा रक्षा कर रही थी। सरोजनी जिस दिन अपनी माँसे विदा होकर नाटक खेलने ससुराल आ रही थी, उस दिन तीस गिन्नियाँ माँने उसे दी थी। खेल खेलकर जब वह अपनी वास्तविक ससुरालकी ओर चली तो उस समय भी वे ३० गिन्नियाँ उसके अंचलमें बंधी थीं।

एक दिन मीरा अपने गिरिधरलालको खोजनेके लिये चली। सरोजनी भी आज उसी तरह अपने आराध्य देवको ढूँढ़ने चली है। दोनोंके अंतस्तलके भावोंमें पूर्ण साम्य है पर बाहर कुछ अंतर है। सरोजनीने अपने ऊपरका भेष बदल लिया। उसने अपनेको एक सिक्ख बालकके रूपमें सजाया और घूमने लगी। कलकत्ते पहुँची। इस विशाल नगरमें अपने आराध्य देवको ढूँढ़ने लगी। उस समय वर्दवानमें बाढ़के कारण हाहाकार मचा हुआ था। पत्रोंमें उसकी सहायताके लिये सूचना मिली थी। सरोजनीने देखा उन्हीं समाचारोंमें उसके आराध्यदेवका नाम छपा है। नाम पढ़ते ही रोम-रोम आनन्दसे नाच उठा, पर अब मिलूँ कैसे यह प्रश्न था। सोचती, क्या स्वयं चली जाऊँ, पर दूसरे ही क्षण हृदयके अंतस्तलसे प्रेमकी किरणें फूट पड़तीं और सरोजनी निश्चय करती—भला प्रेम भी प्रगट करनेकी वस्तु होती है, ना, कभी नहीं, पर शीघ्र ही अंतस्तलका प्रेम उफनने लगा, एक बार दर्शनकी प्रबल उत्कंठासे, एक बार प्रियतमके चरणोंमें उपस्थित होकर दो-चार शब्द निवेदन करनेकी लालसासे उसके प्राण विकल हो उठे। प्रेमके आवेशमें उसे केवल एक ही पथ दिखा। वह यह कि प्रियतमको एक पत्र लिखूँ, जहाजपरके प्रथम मिलनसे लेकर आज तककी सम्पूर्ण घटना स्वामीको लिखकर भेज दूँ। तब वे यदि मिलना चाहेंगे तो अवश्य मिल जायँगे। इसी निश्चयका परिणाम यह पत्र है, जिसे हाथमें लिये हुये हनुमानप्रसादजी स्तब्ध बैठे हैं।

चरित्रनायकके निर्मलतम हृदयमें भावोंकी आँधी चल रही थी। हाथका पत्र शोणित धमनियोंमें विद्युतका संचार कर रहा था। अतीतकी स्मृति चित्रपटकी भाँति सामने आ रही थी। जहाजका वह दृश्य मानों अभी-अभीका है। चरित्रनायक भावमें विभोर होकर कुछ क्षणके लिये निश्चेष्ट हो गये। आजतक उनके जीवनको पापकी छायातक भी स्पर्श न कर सकी थी, पूर्ण सदाचार जीवनका व्रत रहा था। अत: इस पत्रसे उनके मनमें कोई ऐन्द्रिय मलिन विकार तो न हुआ, सर्वथा पवित्र भाव ही उत्पन्न हुआ, पर वे अपने वर्तमान कर्त्तव्यको लेकर गहरे विचारमें पड़ गये। सरोजनीके पत्रके प्रत्येक अक्षरमें निर्मल प्रेम छलक रहा था। इस विशुद्ध प्रेमने बाध्य कर दिया। एक बार उसे दर्शन देनेकी प्रार्थनाको पूर्ण करनेकी पवित्र इच्छा जाग उठी। पत्रमें लिखा था—कालीघाट मंदिरके पास हमसे कल ९ बजे प्रात:काल मिल सकते हैं। अत: वहीं निश्चित समयपर चल पड़े। साथमें एक मित्र थे जिनका नाम बालचन्द मोदी था। पर वह वहाँ न मिली और ये अन्य-मनस्क वहाँसे लौट आये। उसी रात्रि उपर्युक्त पतेसे एक पत्र फिर मिला। जिसमें लिखा था—'आप जब वहाँ थे, तब मैं वहाँ थी अवश्य, पर आपके साथ एक और सज्जन थे इसीसे मैं नहीं मिली। अब आप मुझे न खोजें। मैं आपका स्थान जान गयी हूँ। मैं ही आ मिल लूँगी।' इसके कुछ देर बार उसी रात्रिको दूसरा पत्र मिला—कल ६ बजे आउटराम घाटके स्टेचूके पास हमसे मिलें। दूसरे दिन चरित्रनायक उस स्थानपर जाकर उत्सुकताभरे नेत्रोंसे उस देवीको ढूँढ़ने लगे पर वह आज भी न मिली। हाँ, उस स्टेचूके पास कागज़की एक चिट मिली, जिस पर लिखा था—आपके आनेमें विलम्ब होनेसे मैं जा रही हूँ। यहाँ ठहरना मेरे लिये निरापद नहीं है। अब मैं आकर स्वयं मिलूँगी। सचमुच ही वे उस स्थानपर जब पहुँचे थे तब सात बज रहे थे।

वह दिन बीता, सन्ध्या हुई, रात्रि हुई। चरित्रनायकके मनमें चिन्ता सी लगी थी। रात्रिके समय वे दुकानसे घर लौट रहे थे जो हरीसन रोडपर था। पथमें घरसे थोड़ी ही दूरपर एक शिव मन्दिर था। वहीं एक सिख बालक मिला। उसने परिचय दिया—मैं सरोजनी हूँ, यह वेश कृत्रिम है। चरित्रनायकने भी पहचान लिया—सचमुच वही बालिका है। परिचय देनेके बाद रमणी सुलभ सौन्दर्य उसके सिख वेशके आवरणमें छिप ही कैसे सकता था?

अपने प्रियतम स्वामीको पाकर सरोजनीकी एवं प्रेमपुतलिका उस देवीको कुछ दूरपर खड़ी देखकर चरित्रनायककी क्या दशा हुई होगी? इसका चित्रण करना इस लौहकी बनी लेखनीसे असम्भव है। इतना

लिख देना संभव है, आवश्यक भी है कि यह निर्मल विशुद्ध प्रेम था। इसमें भोगवासनाकी गंधतक भी नहीं थी। इसीलिये दोनों परस्पर प्रेममें डूबकर बात करते हुये भी किसीने भी किसीके शरीरका किंचित्मात्र स्पर्श तक भी न किया। इस मिलनमें इसकी आवश्यकता भी न थी, क्योंकि यह प्रेमका मिलन था, कामका अधम उच्छ्वास नहीं।

कई घंटेतक बातें हुईं। सरोजनीके प्रत्येक शब्दसे सत्य झर रहा था। उसकी समस्त चेष्टायें आंतरिक सरलता, आंतरिक विशुद्ध प्रेमसे ओतप्रोत थीं, उनमें कृत्रिमताकी गंध भी नहीं थी। चरित्रनायकका हृदय सरोजनीके प्रति पवित्र अनुरागसे भर उठा। पर, शरीर तो वे अपनी विवाहिता पत्नीके हाथोंमें दे चुके थे। धर्मत: ऐसे सम्बन्धकी दृष्टिसे उनके शरीरपर एकमात्र अपनी विवाहिता पत्नीका ही अधिकार था। दी हुई वस्तुको छीनकर उससे फिर दूसरेको दे देना सच्चे सज्जनोंने सीखा ही नहीं। अत: सरोजनीके अनमोल प्रेमकी भेंटमें शरीर न्यौछावर करनेका प्रश्न समाप्त हो चुका था। अवश्य ही चरित्रनायकके मन- प्राण उस देवीके विशाल प्रेमसागरमें जा मिले। सरोजनीने अनुभव किया, उसके हृदयके अंतस्तलमें अभी-अभी जो प्रेमके बुदबुदे उठ रहें थे, वो प्रियतम स्वामीके प्राणोंका संयोग पाकर उत्ताल तरंगें बन गये हैं।

अब बाह्य जगतकी व्यावहारिक समस्या हल करनी थी। चरित्रनायकने अपने हृदयके प्रेमसे सानकर कहा—'देवी! तुम यहींपर एक अलग मकानमें रहो। तुम्हारे जीवन-यापनकी सारी व्यवस्था हो जायगी, सारा प्रबन्ध हो जायगा।' पर सरोजनी वास्तविक प्रेमको जानती थीं। उसके जीवनमें स्वसुख वासना थी ही नहीं। स्वामीका सुख ही उसके जीवनका सच्चा सुख था। भविष्यमें स्वामीके सुखमें व्याघात न हो, इस उद्देश्यसे बोली—'......! कदाचित् आपके और हमारे इस निर्मल प्रेममें आगे चलकर कलुषित विकार उत्पन्न हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। मेरा दूर रहना ही उचित है, अवश्य ही आपके प्रति मेरे इस प्रेममें कामवासना, अंग-संगकी इच्छाका रंच मात्र गंध भी हेतु नहीं है।'

जाते समय सरोजनी अपने आराध्यदेवको अपनी स्वर्णनिर्मित अँगूठी देती गयीं। यह अँगूठी मानो उसके अर्पित हृदयके रूप उसकी अंगुलीमें रहती थी। पर हृदय देकर प्रतीक रखना प्रेममें कलंक है, इस भावसे प्रतीकको भी वहीं रख दिया जहाँ हृदय था।

कुछ महीने बाद वि० १९६९ कार्तिकके लगभग सरोजनीके प्रेममय हाथका अंतिम पत्र आया। उसमें लिखा था—'शरीर वियोग व्यथा सहनेमें असमर्थ है, अब मैं इसे नहीं रखूँगी।' चरित्रनायकने पत्र पाकर उसे ढूँढ़नेकी बहुत चेष्टा की, पर कोई अनुसन्धान न मिला।

प्रेम-प्रतिमा देवी सरोजनीके हृदयकी वह प्रतीक अँगूठी जिसको स्वर्ण मेडल (तमगा) के रूपमें परिणत किया गया। प्रतीकके आकारमें अंतर न आया। पहले भी गोल था, अब भी गोल रहा, पर पहले खोखला था, होना ही चाहिये। हृदय भी प्रियतम वियोगकी वेदनामें घुल-घुलकर खोखला हो गया था और आज मानों उसके प्रियतम (चरित्रनायक) के पिघले हुये प्राण उस खोखले स्थलके पास जा पहुँचे, पोल भर गया। वह मेडल नहीं था, दो पिघले हुये, एकमेक हुये, प्रेमिल हृदयोंका प्रतीक था। मेडल जालन्धर कन्या महाविद्यालयकी एक कन्याको चरित्रनायकने दिया। उसकी एक ओर खुदा था—'**सरोजनीके स्मृत्यर्थ**' दूसरी ओर लिखा था—'**हिन्दू रमणी वरे एक पति।**'
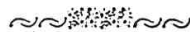
॥ श्रीहरि: ॥

सातवाँ पटल

यौवनकी प्रगति

चरित्रनायकके दाम्पत्य दिन सुखसे बीत रहे थे। महादेवी नित्य नूतन रागसे चरित्रनायककी सेवामें संलग्न रहती। चरित्रनायक भी अपनी जीवन संगिनीकी रुचि ढूँढा करते। परस्पर प्रेम-दान देकर एक दूसरेको जीवनमें आगे बढ़ाते जा रहे थे। महादेवीका स्वभाव इतना सुन्दर था कि सभी उससे प्रेम करते। घरमें दास दासी तो उस समय थी नहीं। महादेवी स्वयं सारा गृहकार्य अपने हाथसे करतीं। चक्की पीसतीं, वर्तन माँजतीं, भोजन बनातीं एवं अपनी प्यारी ननद पूर्णीबाईकी संभाल रखतीं। इन सबसे छुट्टी पाकर अपने नवजात देवरको* गोदमें लेकर दुलरातीं। घरकी मालकिन थीं रामकौरबाई। उनकी छत्रछायामें रहकर महादेवी आदर्श गृहिणी बन गयी थीं।

ज्येष्ठ कृष्ण ८ सम्वत् १९६६ के दिन महादेवीने रतनगढ़में अपनी प्रथम संतानका मुँह देखा। घरमें थाली बजायी गयी। झुंड के झुंड लोग बधाई देने आ रहे थे। सभी कहते रामकौर तेरे जैसा भाग्य किसीका नहीं। तुमने पड़पोतेका मुँह देखा, तू धन्य है। पर कालकी गतिसे अनभिज्ञ वे भोले प्राणी यह नहीं जानते थे कि आज जैसे बधाई देने आये हैं, वैसे ही कुछ ही दिनोंमें मातमके आँसू पोंछने आना है। यह न जानना ही उत्तम है, अन्यथा प्राणीके लिये एक क्षण भी सुखसे हँस बिताना असम्भव हो जाय। भगवान्‌की मंगलमय यह देन ही है कि अतीतकी स्मृति लुप्त हो जाय और अनागत का ज्ञान न हो, ऐसा न होता तो यह संसार कितना नीरस होता।

जो हो, महादेवी उसी प्रसूतिगृहमें ही थीं। अचानक रुग्ण हो पड़ीं। उपचार कम नहीं किये गये पर सभी व्यर्थ सिद्ध हुये। ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठीका प्रभात उनके लिये जीवनका अंतिम प्रभात था तथा देखते ही देखते महादेवीने सदाके लिये आखें मूँद ली। परिवार शोकमें डूब गया।

मातृहीन शिशु रामकौरकी गोदमें पलने आया। महादेवीके शोकको कम करनेके लिये रामकौर इसे हृदयसे लगातीं और सोचतीं—वाह! यह कितना सुन्दर है, महादेवी इसे धरोहर रख गयी हैं, भगवान्‌की दयासे यह जीवित रहे तो फिर बड़ा सहारा हो। इसी बीचमें श्रावण कृष्ण ५ सम्वत् १९६६ के दिन भीमराजजीकी द्वितीय पुत्री चन्दाबाईका जन्म हुआ। इसके जन्मसे भी महादेवीके वियोगका दु:ख कुछ हलका हुआ पर विधाताकी इच्छा दु:खका पलड़ा भारी रखनेकी थी और इसीलिये श्रावण कृष्ण चतुर्दशी सम्वत् १९६६ वि० के दिन रतनगढ़में ही चरित्रनायकका यह नवजात शिशु हठात् परलोक चल बसा। महादेवीके वियोग दु:खसे परिवारका जो हृदय छिल गया था उसपर नमक पड़ गया।

चरित्रनायकके कोमल हृदयमें महादेवीके वियोगकी गहरी टीस होती थी पर वे किसीपर कुछ भी प्रकट नहीं करते थे। अब महादेवीकी स्मृतिका आधार वह शिशु भी छोड़कर चला गया था। अत: रतनगढ़ रहना खलने लगा। चरित्रनायक कलकत्ते चले आये। हृदयको हलका करनेके लिये एक ही उपाय था—मनको विविध पुनीत उद्देश्योंकी ओर केन्द्रित कर देना। चरित्रनायकने भी यही किया। एक साथ ही धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक प्रवृत्तियोंमें पहलेकी अपेक्षा विशेष तत्परतासे मन लगाना प्रारम्भ कर दिया।

उन दिनों स्वामी जगदीश्वरानंद भारतीजी महाराज कलकत्तेमें आये हुये थे। सनातन धर्म पुष्टिकारिणी सभामें वे प्राय: आया-जाया करते थे। यह सभा हमारे चरित्रनायकके पिता श्री भीमराजजीकी स्थापित की हुई थी। भीमराजजी बड़े ही सदाचारी तथा सनातन धर्मके सिद्धांतोंमें निष्ठा रखनेवाले थे। धर्मकी रक्षाके लिये

---

* इसका देहान्त कुछ समय बाद हो गया था।

सर्वदा प्रयत्नशील रहते। स्वयं उनका नियम था कि प्रतिदिन दो घंटा घरपर व दो घंटा दुकानपर रामायण, महाभारतादिकी कथा बांचा करते थे। लोग उनपर बहुत स्नेह रखते थे क्योंकि वे हर किसीका यथा साध्य काम कर देते। सनातन धर्म पुष्टिकारिणी सभा, श्रीमदन गोपाल कोठारी, शिवप्रतापजी आचार्य, शिवनारायणजी व्यास इन्हीं स्नेही मित्रोंको लेकर स्थापित हुई। इस सभाके श्रीभीमराजजी ही उन दिनोंमें मंत्री थे। स्वामी श्रीजगदीश्वरानन्दजी महाराज भी बड़े विद्वान एवं सनातन धर्मके पोषक थे। अतः इस सभासे एवं भीमराजजीसे स्वामीजीका स्वाभाविक ही सम्बन्ध हो गया। इसीलिये हमारे चरित्रनायकको इनका सत्संग संम्वत् १९६५ वि० के लगभग प्राप्त हुआ था। इस बार जब पत्नी- वियोगसे व्यथित हृदय होकर कलकत्ते आये तो स्वामीजीके सत्संगसे धार्मिक प्रवृत्तिमें और भी प्रोत्साहन मिला। इधर इसी समय स्वामी श्रीशंकरानंदजी महाराजका भी सत्संग प्राप्त हुआ। स्वामी श्रीशंकरानंदजी मद्रासकी तरफके रहनेवाले थे। कलकत्तेमें श्रीहरिरामजी गोयनकाके बगीचेमें ठहरे हुये थे। हठयोग आदिमें बड़े निपुण थे तथा एक बार श्रीहरिरामजी गोयनकाके बगीचेमें इन्होंने सात दिनकी समाधि भी लगायी थी। स्वामीजीके राजनैतिक विचार थे। इनके सत्संगमें हमारे चरित्रनायकको राजनैतिक प्रवृत्तिमें प्रोत्साहन मिला। सभा आदिमें जाना, समाचारादि पढ़ना पहले आरंभ हो चुका था। अब इस ओर और भी रुचि बढ़ी। साहित्यका अंकुर पहले कुछ था ही, अब वह पल्लवित होने लगा तथा ये लेख भी लिखने लगे। इन्होंने 'निवृत्तिका सच्चा स्वरूप' शीर्षक लेख लिखा, जो बड़े आदरसे 'नवनीत' पत्रमें छपा। और भी कई पत्रोंमें लेख देते। मारवाड़ी समाजमें उस समय इने गिने ही लेखक थे। इस प्रकार सभामें आने-जानेसे तथा लेखादि लिखनेसे मित्रोंकी मंडली भी बढ़ने लगी तथा बंगालके बड़े-बड़े नेता एवं सम्पादकोंसे धीरे-धीरे परिचय बढ़ने लगा। पं० श्रीश्यामसुन्दर चक्रवर्ती, श्री ब्रह्मबान्धव उपाध्याय, पं० गिरीशपति काव्यतीर्थ, बाबू सुबोधचन्द्र मल्लिक, तपस्वी श्री अरविन्द घोष के यहाँ आते जाते थे, तथा विपिनचन्द्र पाल, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, पांच कौडी बनर्जी, सी०आर०दास आदि बंगीय नेताओंसे काफी सम्बन्ध था। पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्दे सम्पादक-भारतमित्र, पं० श्री बाबूरावजी पराड़कर, पं० अम्बिकाप्रसादजी बाजपेयी, (सम्पादक-स्वतंत्र), बाबू रामलालजी बर्मन, बाबू नवजादिकलालजी श्रीवास्तव, बाबू राधामोहन गोकुलजी प्रभृति विद्वान एवं पत्र-सम्पादकोंसे अतिशय प्रेमका सम्बन्ध स्थापित हो गया। पं० अमृतलालजी चक्रवर्ती, पं० राधाकृष्णजी, पं० झाबरमल्लजी शर्मा (संपादक-कलकत्ता समाचार), पं० दुर्गा प्रसादजी, पं० उमापतिजीसे भी बड़ा प्रेम था।

श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया नामके एक सज्जन जो चरित्रनायकके प्रायः समवयस्क थे। सेवा कार्य एवं सामाजिक संस्थाओंमें प्रमुखतासे भाग लिया करते थे। सजातीय वासना, सजातीय चेष्टा मित्रतामें स्वाभाविक हेतु हुआ ही करती है। अतः चरित्रनायक एवं श्रीज्वालाप्रसादजी परस्पर सच्चे मित्र बन गये। शीघ्र ही श्रीज्वालाप्रसादजी की अध्यक्षतामें लिलुआमें एक समिति स्थापित हुई। समितिका उद्देश्य समाज एवं देश-सेवा था। चरित्रनायकके निर्मल हृदयपर समाजसेवा एवं देश सेवाका रंग चढ़ने लगा।

इस समितिमें एक तो प्रधान समिति थी और उसके साथ कई उपसमितियाँ थीं। उसमें निम्नलिखित पाँच नियम प्रधान थे।

१-सूर्योदयसे पूर्व उठना। २-व्यायाम करना। ३-गीता पाठ करना। ४-परस्परमें प्रेम करना। ५-मेम्बरोंके प्रत्येक कार्यमें परस्परमें सहायता करना और समितिकी बातोंको अत्यन्त गुप्त रखना।

इसकी बैठक १५ दिनसे होती थी। बैठकका स्थान शुद्ध वस्तु प्रचारक कम्पनी, लिलुआका बगीचा था। समितिके मेम्बरोंके कुछ नाम इस प्रकार थे—

१-श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया (प्रधान), २-फूलचन्दजी चौधरी, ३-हनुमानप्रसादजी पोद्दार (चरित्रनायक), ४-घनश्यामदाजसी बिड़ला, ५-ओंकारमल्लजी सराफ, ६-बैजनाथजी केड़िया, ७-नागरमलजी

मोदी, ८-आनन्दरामजी जालान, ९-रामेश्वरजी मुरारका, १०-राम प्रतापजी सराफ, ११-रामकुमारजी जालान, १२-शंकरलालजी रूँगटा, १३-हरिबक्सजी सांवलका, १४-प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका १५-बैजनाथजी देवड़ा, १६-विलासरायजी डालमिया, १७-मोतीलालजी झंवर, १८-मदनलालजी डालमिया, १९-रंगलालजी जाजोदिया, २०-बनारसीप्रसादजी झूंझनूवाला, २१-महावीरप्रसादजी शर्मा, २२-रामकृष्णजी मोहता आदि। यह समिति तीन चार वर्षतक सुचारु रूपसे चली।

राजनैतिक एवं सामाजिक जीवनके साथ ही व्यापारिक जीवन गहरा होता जा रहा था। अपने व्यापारिक जीवनकी बातें सुनाते हुये चरित्रनायक कहा करते थे—

सम्वत् १९६७ की बात है। जब मैं कलकत्तेकी कपड़ेकी दुकानका काम करता तब पूजाके दिनोंमें ग्राहकोंकी बड़ी भीड़ रहती थी। सारी दुकानका काम करना पड़ता था। मेरे मनमें ग्राहकोंको देखते ही यह बात आती कि ये लोग अपनी दुकानसे बिना कुछ भी लिये लौटने न पायें। कुछ न कुछ अवश्य खरीदकर जायँ। मुझे अभीतक स्मरण है कि भोजन करनेका अवकाश नहीं मिलता था। घरपर जाकर भोजन करनेकी बात तो दूर रही, दुकानपर पूड़ी मंगाकर खानेका अवसर भी नहीं मिलता था। तब नींद लेनेका प्रश्न ही नहीं बनता।

व्यापारियोंसे मेरा बहुत प्रेम था। मेरे यहाँ एक बार आनेके बाद दूसरी दुकानपर जाना नहीं चाहते थे। व्यापारी स्वयं न आनेपर अपने आदमियोंको लिख देते थे कि मेरी दुकानसे ही माल खरीदकर भेजें।

सफल व्यापारी पुत्रको देखकर पिताजीको बड़ी प्रसन्नता होती पर उनके मनमें एक चिन्ता निरंतर लगी रहती। पुत्रवधू महादेवीके देहान्तके बाद पुत्रकी बहुमुखी प्रवृत्ति पितासे छिपी नहीं थी। स्वाभाविक वे व्यापारके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रोंमें पुत्रकी चेष्टा सीमित रखना चाहते थे। इसका सर्वोत्तम उपाय था, पुत्रको पुनः दाम्पत्य-प्रेममें बाँधना। सरिताके मध्य प्रवाहमें तरंगोंपर नाचती हुई तरणीको तटपर लानेके लिये एक अन्य तरणी आवश्यक होती है। यौवन तरंगमें बहती हुई चरित्रनायककी जवान तरणीको समतल जलपर लानेके लिये भी उसके अनुरूप ही तरुणी तरणीकी व्यवस्था करनेमें स्नेहमय पिता लग गये। चरित्रनायक उतने इच्छुक न थे पर पिताकी स्नेहमयी इच्छाकी वे अवहेलना भी करना नहीं चाहते थे। अतः वैशाख शुक्ला तृतीया संवत् १९६८ वि० के दिन राजगढ़ निवासी मँगतूरामजी सरावगीकी पुत्री सुबटीबाईसे चरित्रनायकका द्वितीय विवाह सम्पन्न हो गया। पुत्रको अनुरागके बंधनमें बाँधकर पिताका हृदय खिल उठा।

सुबटीबाई आयीं। पर चरित्रनायककी विविध प्रवृत्तियाँ बंद न कर सकीं। अवश्य ही सुबटीबाईने यह अनुभव किया—मेरे स्वामीके हृदयमें जिन-जिन प्रवृत्तियोंके लिये स्थान है, उन सबको अक्षुण्ण रखकर मुझे प्रेमदान करनेमें भी उतने ही तत्पर हैं। परम उदार मेरे प्रियतमने हृदयको फैलाकर सबको समुचित निभाते हुये मेरे लिये भी स्थान बना दिया तथा खुले हाथ प्रेमदान करते हैं। अस्तु, चरित्रनायक सब कुछ करते हुये ही दाम्पत्य जीवनका सुख भी लेने लगे। परिवार बड़ा न था। परस्परके सभी सदस्य एक दूसरेसे प्रेम करते थे। व्यापार भी अच्छा चलता था। इसलिये पारिवारिक चिन्तासे सर्वथा मुक्त रहते। हाँ, एक चिन्ता बढ़ती जा रही थी—देशकी, समाजकी दशा देखकर हृदय इन्हें सुखी करनेके लिये उत्तरोत्तर चिन्तित होता जा रहा था।

अब पितृवियोगका चित्रपट सामने आया। विधाताने मानों अब चरित्रनायकको सुयोग्य समझकर भीमराजजीको स्थानांतर कर देना चाहा। बेचारी गौराबाई नौ वर्ष ही सौभाग्य सुख लूट सकीं। श्रावण कृष्ण चतुर्थी सम्वत् १९६९ वि० के दिन रतनगढ़में सायंकालके समय भीमराजजीने अपना पांचभौतिक शरीर छोड़ दिया। उस दिनके सूर्यास्तके साथ ही गौराबाईका सौभाग्य भी अस्त हो गया। गौराबाई रो रही थीं और उससे भी अधिक दुःखसे माता रामकौरबाई रो रही थीं। देवी रामकौरका हृदय रह-रहकर कराह उठता था। वह सोचतीं मैं इतनी उमरकी वृद्ध होकर भी रह गयी और मेरा लाल भीमराज

मेरे सामने चला गया। पर निरुपाय बात थी।

यथासमय समुचित श्राद्ध-आदिसे निवृत्त होकर चरित्रनायक कलकत्ते गये और संसार संभालनेमें प्रवृत्त हो गये। अब दुकानका सारा भार इनपर आ पड़ा। पूरे मनोयोगसे दुकानका काम करते पर पिताकी मृत्युके साथ ही विविध सामाजिक, राजनैतिक आदि प्रवृत्तियोंमें जो एक नियंत्रण था, वह समाप्त हो गया। अत: अब पूरी स्वतंत्रतासे सभा सोसाइटियोंमें जाने लगे, प्रमुख भाग लेने लगे। वैश्य सभा खुली थी इसमें प्रमुख भाग इनका, हिन्दू क्लब चल रहा था, उसमें प्रमुखतासे भाग इनका, हिन्दी साहित्य परिषद्की संस्था थी, उसके प्राण ये, साहित्यवर्द्धिनी समितिके कर्णधार ये, बड़ा बाजार लायब्रेरीके कार्यकर्त्ता ये, सावित्री कन्या पाठशालामें पूर्ण सहयोग देनेवाले ये, अर्द्धोदय योगपर जनताकी अपार भीड़में सेवकोंके दलके संचालक ये, शीतलाके मेलेमें सेवा कार्य करनेवाले ये—इस प्रकार तन-मन-धन लगाकर विविध संस्थाओंमें कार्य करने लगे। इन्हीं दिनों सं० १९६९ में मारवाड़ी सहायक समितिकी स्थापना हुई थी, इसीका नाम आगे चलकर मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी हुआ। उन दिनों इस संस्थाके भी इने-गिने प्रमुख कार्यकर्ताओंके साथ हमारे चरित्रनायक भी प्रधान कार्यकर्ता थे। कलकत्ता हिन्दू महासभाकी विशाल संस्थामें भी इनका प्रमुख स्थान हो गया। आगे चलकर तो ये इसके मंत्री ही हो गये थे। बर्दवानके बाढ़ पीढ़ितोंकी इन्होंने बड़ी सेवा की। पत्रोंमें समाचार छपाकर सेवा की अपील करते। अपनी ओरसे यथासाध्य सब व्यवस्था की। सं० १९६९ वि० में अपने खास प्रेमी श्री डूंगरमलजी लोहियाको सेवा कार्यके लिये बर्दवान भेजा। बाढ़की सेवा समाप्त होनेपर इसी साल श्रीडूंगरमलजीको मारवाड़ी सहायक समितिके दातव्य औषधालयकी स्थापना करनेके लिये रतनगढ़ भेजा।

पिताके जीवनकालमें हृदयमें अनेक बार तरंगें उठती थीं पर किनारे लगनेके पहले ही विलीन हो जातीं। इसमें हेतु था चरित्रनायकका शील, इनकी पितृभक्ति। पुत्र स्नेहवश पिता भीमराजजी काफी देखरेख रखते थे। यद्यपि पुत्र बड़ा हो जानेके कारण वाह्य संभालमें कुछ शिथिलता आई थी, फिर भी इनके अन्तरके भावमें यह इच्छा वर्तमान थी कि मेरा पुत्र संयत रहे। पहले तो यहाँतक नियम था कि चरित्रनायक जब कभी भी बाहर जाते तो उनके साथ एक जमादार अवश्य ही रहता और पिताकी इस स्नेहभरी व्यवस्थाका चरित्रनायक भी हृदयसे आदर करते, इसके अनुसार ही चलते। यह नियम आगे शिथिल हो जानेपर भी वे पिताकी भावनामें ठेस पहुँचाना नहीं चाहते थे और इसीलिये हृदयमें भाव उठनेपर कार्यान्वित नहीं हो पाते थे। अब जब पिताकी इच्छाका प्रतिबन्ध जाता रहा तो फिर देर ही क्या थी। हृदयमें स्फुरणा होती एवं शरीर स्फुरणाको क्रियामें परिणत कर देता। देशकी, समाजकी सेवाके लिये जो विचार उठते उन्हींकी पूर्तिमें ये लग जाते। संस्थाओंकी सेवाका तो दिग्दर्शनमात्र कराया गया है। ऐसी और बहुत-सी गुप्त एवं प्रगट सेवायें इन्होंने की हैं, जिसका पूर्ण बिवरण प्राप्त ही नहीं हो सकता है।

सेवाकी यह प्रवृत्ति आजतक चरित्रनायकमें वर्तमान है, पर वाह्य रूपमें अंतर है। आजकी सेवायें अधिकांशत: गुप्त होती हैं, जिन्हें पासमें रहनेवाले तक नहीं जान सकते।
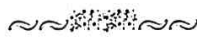
॥ श्रीहरिः ॥

आठवां-पटल

श्रीजयदयालजी गोयनकासे परिचय

श्रीजयदयालजी गोयनका मारवाड़ी समाजमें ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें लोग जानकर भी नहीं जानते। अपनी अपनी दृष्टि ही तो है। कोई समझता है, ये बड़े कुशल व्यापारी हैं, इनसे व्यापारके भाव पूछकर व्यापार करनेपर बड़ा लाभ होगा। कोई सोचता है कि ये बड़े चतुर हैं और ईमानदार हैं ये पक्षपात नहीं करेंगे, परिवारमें झगड़ा है, इनको पंच बना दूँ, ये सलटा देंगे। कोई सोचता है, ये परम सदाचारी व्यक्ति हैं, इनके संगसे बड़ा लाभ होगा, इनका संग करूँ। कुछ वर्ग ऐसा है जो विश्वास करता है कि ये सच्चे संत हैं, और इनकी सलाहसे आध्यात्मिक जीवनका निर्माण करूँ। सारांश यह है कि विभिन्न व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टिसे इन्हें देखते हैं, और फिर इनका उपयोग करते हैं। मेरे एक साधु मित्रने एक बारकी घटना सुनायी—ये चूरू (राजपूताना) आ रहे थे। गाड़ी भिवानी स्टेशनपर खड़ी थी। एक सज्जन उसी डिब्बेमें सवार हुए जिसमें ये जा रहे थे। थर्ड क्लासका डिब्बा था पर भीड़ नहीं थी। मेरे साधु मित्र इनके पास ही बैठे थे। इन आगन्तुक सज्जनने साधु समझकर प्रश्न करना प्रारम्भ किया। साधुने कुछ देर जवाब दिया, फिर श्रीजयदयालजीकी ओर उसने इशारा कर दिया कि इनसे पूछें। आगन्तुकने पूछा—ये कौन हैं? मित्रने कहा—ये श्रीजयदयालजी गोयनका हैं। इतना सुनना था कि आगन्तुक सज्जन आश्चर्यमें डूब गये। वे विश्वास न कर सके कि ये जयदयालजी गोयनका हो सकते हैं। उस समय जयदयालजीका मुख दूसरी ओर था। वे स्टेशनपर खड़े कई सज्जनोंसे बात कर रहे थे। आगन्तुक सज्जन बार-बार इनकी ओर देखते। फिर गाड़ी से उतरकर सामने मुँह देखा। फिर ऊपर चढ़े, फिर नीचे उतरे, और मुखकी ओर देखा और ऊपर आये। साधुसे बोले—ये जयदयालजी हैं ना? साधु हँस पड़ा और बोला—इन्हींसे पूछ क्यों नहीं लेते? थोड़ी देर बाद गाड़ी चल पड़ी। आगन्तुकने सेठजीसे पूछा—आपका नाम? उत्तरमें नम्रता भरा शब्द निकला—लोग मुझे जयदयाल गोयनका कहते हैं। आगन्तुकके आश्चर्यकी सीमा न रही। बात यह थी कि उन सज्जनने इनकी बातें सुनी थी, इनके प्राणोंमें स्थान बनानेवाले लेख पढ़े थे, पर इनकी सादगी एवं मारवाड़ी मिश्रित हिन्दीका उच्चारण सुनकर विश्वास न कर सके कि वे श्रीजयदयालजी ऐसे साधारण ढंगका रहन सहन, इतना प्रेमिल हृदय रखते होंगे। उनसे बात करके उसके आनन्दकी सीमा न रही।

पाठक, सचमुच ही इनका बाह्यवेश, बाह्य-व्यवहार इतना सादा, इतना सरल है कि इसका चित्रण करना इस अल्पज्ञ लेखकके लिये तो सर्वथा असम्भव है। इनके सम्पर्कमें आकर इन्हें देखकर ही कोई अनुभव कर सकता है। पर, इस सादे वेशके अन्तरालमें कोई महान् संत छिपा हो सकता है, यह धारणा तो विरले भाग्यशाली प्राणी ही कर पाते हैं। कोई शब्दोंमें वर्णन करना चाहे तो प्रथम तो वह असफल ही रहेगा, पर यत्किचिंत् लिख भी दे तो वह जनसाधारणकी दृष्टिमें पागल या पाखण्डका विस्तार करनेवाला समझा जायगा। क्योंकि सहसा उन बातोंपर विश्वास होना ही कठिन है। मनुष्यका स्वभाव होता है जब वह ऐसी बातको सुनता है जो उसकी बुद्धिके आकलनमें न आये तो पागलका प्रलाप ही मान बैठता है। विशेषत: आजके युगमें जब कि सर्वत्र नास्तिकताका प्रसार बढ़ रहा है, ऐसी बातोंपर आस्था रखना अत्यन्त कठिन है। फिर भी कुछ कहना है, और कहना आवश्यक है क्योंकि उनका विवरण दिये बिना चरित्रनायक हनुमानप्रसादजीके आध्यात्मिक जीवनका चित्रपट अधूरा रहेगा। यह कल्पना न हो सकेगी कि

चित्रपटमें आये हुए उपवनका माली कौन था, कैसा था। इसीलिये संक्षेपमें श्रीजयदयालजीके सम्बन्धमें कुछ लिखना है। यह न समझें कि लेखक मानों कृष्णलीला गाते गाते रामायण गाने जा रहा है। जीवन सुना रहा था श्रीहनुमानप्रसादका, अब सुनाने लगा श्रीजयदयालका। यह तो चरित्रनायकके जीवन-उपवनके मालीकी ही हलकी सी ढकी हुई झाँकी है। निर्मल चित्तसे, श्रद्धापूर्ण चित्तसे सुनिये, देखिये। सच मानिये, इस माली की पवित्र स्मृति पवित्रतम दर्शन मात्रसे आपका हृदय रसमय बन जायगा, उससे रस-मन्दाकिनी फूट पड़ेगी, उसकी धारामें आप भी बरबस बह चलेंगे, बहते हुए अनन्त असीम रस-सागरसे जा मिलेंगे और मानव जीवन कृतार्थ हो जायगा।

वि० सं० १९४२ के ज्येष्ठ कृष्ण ६ को रात्रिके ९ बजे श्रीजयदयालजीका चूरू (राजस्थान) में जन्म हुआ है। पिताका नाम श्रीखूबचन्द्रजी गोयनका है। चंचल बालपनके वे दिन अभी भी उन्हें स्मरण हैं, जब वे पिताके सामने बहाना बना बनाकर खेलनेके लिये बाहर चले जाते। उनके नानाजी रतनगढ़के बाजोरिया परिवारमें थे। लगभग ६ वर्षकी उम्रमें एक बार ननिहाल गये। नानीजीने कुछ पैसे आलेमें एकत्रित कर रखे थे। इन्होंने उसमेंसे उठाकर कुछ खर्च कर दिये। नानी ढूँढ़ रही थी, और पास बैठे हुए वे हँस रहे थे। नानीसे बोले—मारो नहीं तो सच बता दूँ। नानीने वचन दिया। तब कहा—मैं ले गया था। नानीने पूछा—क्या किया? बोले—बच्चोंको दे दिया।

सत्यकी ओर रुचि बचपन ही से थी। इनके मित्र कहा करते हैं खेलनेमें भी ये अन्याय करना पसन्द नहीं करते थे तथा सत्यका पक्ष ग्रहण करते।

बालकपन समाप्त हुआ। १२-१३ वर्षकी अवस्थामें विवाह कर दिया गया। शिक्षा बहुत कम पायी।

अब जीवनमें परिवर्तनका समय आया। नाथ सम्प्रदायके बड़े ऊँचे संत मंगलनाथजी महाराज चूरू आये हुए थे। त्याग, वैराग्य, ज्ञानकी ज्वलंत मूर्ति ही थे। सच्चे संतके एक-क्षणका संग ही अमोघ होता है। वही बात हुई। इनके मनपर मंगलनाथजी महाराजके त्याग, वैराग्यकी गहरी छाप पड़ी और वहीं ऐसा निश्चय हुआ कि मैं भी ऐसा ही बनूँ। साधना भी आरम्भ हो गयी। जप-ध्यान, स्वाध्यायमें बड़ी तत्परतासे जुट पड़े। यह घटना सं० १९५६ वि. की है।

इनके दो मित्र थे एकका नाम श्रीहनुमानदासजी गोयनका, दूसरेका नाम बद्रीदासजी गोयनका। हनुमानदासजी बचपनके सच्चे साथी थे। बद्रीदासजीसे मित्रता बहुत पीछे हुई। श्रीहनुमानदासजी गोयनकाको इन्होंने अपने प्रारम्भिक आध्यात्मिक साधना एवं अनुभूतियोंकी जितनी बातें बतायी उतनी किसीको नहीं। इन्हीं श्रीहनुमानदासजीने कृपा करते हुए बद्रीदासजीके समक्ष इनके सम्बन्धकी कुछ बातें आषाढ़ शुक्ल १२/१९९१ वि० के दिन कलकत्तेमें इस लेखकको बतायी थी उसका संक्षिप्त भाव इस प्रकार है—

(१) इन्हें चलते फिरते ध्यान होता रहता था। वे आँखें बन्द कर लेते। नाम-जप एवं भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान निरन्तर चलता रहता तथा मेरे (हनुमानदासजी गोयनकाके) कन्धेपर हाथ रखकर रास्ता चलते रहते। पहले तो मुझे भी नहीं बताया था कि आँखें बन्द करके क्यों चलते हैं। पर एक दिन ऐसे चलते हुए गणेशदास खेतानके मकानकी दीवालसे सिर टकरा गया, चोट भी आयी। फिर पूछनेपर बताया मेरेको आँख बन्द करके चलनेका शौक है इसलिये नेत्र बन्द करके चलता हूँ।

(२) विवाहके बादसे ही दिनमें महाभारत पढ़ा करते थे।

(३) खाने पीनेकी वस्तुओंमें आसक्ति न रहकर उपरामता रहती।

(४) नियम पालनमें बड़ी दृढ़ता रहती।

(५) सत्यवादिताके कारण दूकानदारीमें पिताजीसे मतभेद रहता। पिताजीका सिद्धान्त था कि ग्राहकोंको

* हनुमानदासजी गोयनकाका जन्म चैत्र शुक्ल १ सं० १९४० वि० के दिन चूरूमें हुआ था।

जब मुलाई (मोलभाव) करते देखते तो मुलाईका दाम बताते, जितनेमें बेचना होता उससे कुछ ज्यादा बताते और, जो एक दाम पूछता उसे एक दाम ही बताते फिर एक दाम कह देनेके बाद न एक पैसा अधिक लेते न कम। तथा मुलाईवाला यदि मुनाफा ज्यादे दे देता, तो हँसकर अधिक रकमको वापस कर देते। पर ये (श्रीजयदयालजी) एक दाम ही ग्राहकोंसे कहते थे। उचित मुनाफा रखकर एक दाम कहनेके बाद उसमें जरा भी परिवर्तन नहीं करते थे। पिताजी अपने सिद्धान्त पर अटल रहे, ये अपने सिद्धान्तपर।

(६) बड़े पितृभक्ति थे। एक बार इनके पिता अस्वस्थ हुए। उनकी आज्ञासे ये उन्हें पंखेसे हवा करने लगे। हवा करनेसे पिताजीको गाढ़ी नींद आ गयी। सारी रात ये हवा करते रहे। प्रातःकाल नींद खुलनेपर पिताने देखा उसी तत्परतासे हवा करते हैं। पूछनेपर सारा रहस्य खुला। तबसे पिताजी पहलेसे ही ये कह दिया करते थे कि बेटा मुझे नींद आवे तो तुम चले जाया करो।

(७) सं० १९६० में अपने मामाके फर्म मुरलीधर शिवबक्सरायके यहाँ काम करनेके लिये बाँकुड़ा (बंगाल) आये। वहाँ दो अढ़ाई वर्ष रहकर कलकत्तेमें मुझ (हनुमानदासजी) से मिलने आये एवं मुझसे मिलकर चूरू चले गये। इन दिनों इनकी मुद्रामें तीव्र वैराग्य भरा रहता था। जाते समय घरके लिये कोई भी वस्तु साथ न ले गये।

(८) सं० १९६३ की बात है। एक दलालने मुझसे कहा कि संसार तो स्वप्नवत् है। उसकी यह बात सुनते ही मुझे ऐसी प्रतीति होने लगी कि सचमुच संसार स्वप्नवत् है। ऐसी प्रतीति अब नहीं होती। मैंने जयदयालको यह बात पत्रमें लिखी। उत्तरमें जयदयालने लिखा, एक बार तुमसे मिलना है, या तो तूँ आ जा, या मैं आ जाऊँ, तुमसे जितना प्रेम है उतना किसीसे नहीं, माता, पिता, स्त्री भाईसे भी नहीं।

(९) उपर्युक्त पत्रका मुझपर बड़ा असर हुआ। मैं चूरू गया और मिला। मैंने पूछा क्यों बुलाया है? यह बोले—देखो संसारमें जिस कामके लिये आना हुआ है, उसे सबसे पहले कर लेना चाहिये। वह काम है, श्रीभगवान्‌का दर्शन कर लेना।

उन दिनों हमलोगोंमें भगवान्‌के प्रेम-प्रभावकी बहुत बातें होती थीं। दिन रात हमलोग अधिकसे अधिक एकान्तमें रहते और भगवद्विषयक पारमार्थिक बातें होतीं। भगवद्दर्शनके सम्बन्धमें बहुत ही रहस्यमय बातें हुईं। जयदयालने उन बातोंको प्रगट कर देनेके लिये मना कर दिया था, फिर भी सूत्ररूप से कह दे रहा हूँ।

वि०सं० १९६४ में जयदयाल एक दिन अपने घरके चौबारेमें लेटा हुआ था। सर्वथा जाग रहा था, निद्राका लेश भी न था। उसी समय भगवान् श्रीविष्णुके उसे साक्षात् प्रथम दर्शन हुए। उस समय वह चद्दरसे मुँह ढके हुए था। आनन्दातिरेकसे उसकी ऐसी मुग्धा अवस्था हुई कि उसका वर्णन सर्वथा असम्भव है। सं० १९६६ तक ये खेलमें इतने तल्लीन रहते कि शतरंजके खेलमें बैठ जानेपर छोटे भाईके कई दफे बुलानेपर भी ये उठना नहीं चाहते थे। तासके खेलमें भी ये बड़े दक्ष थे।

(१०) वेदान्तकी बातें भी हुआ करती थीं ज्ञानकी प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ भूमिकामें ज्ञानीके क्या लक्षण हुआ करते हैं, ये बातें मुझे जयदयालने बताया। क्योंकि इन दिनोंमें योग वासिष्ठात्मक ग्रन्थका स्वाध्याय करते थे। भगवद्दर्शन एवं इन बातोंके सुननेसे मेरे मनमें एकान्तकी प्रबल इच्छा जाग्रत् हुई। मैं घर बार छोड़कर संन्यास लेनेके लिये बार-बार जयदयालसे आग्रह करने लगा। जयदयालने कहा कि चार छः महीने यहीं रहकर निरन्तर भजन स्मरण करते हुए अपनी स्थिति दृढ़ कर लेनी चाहिये। इससे संन्यास लोगे तो बड़ी सहायता मिलेगी।

(११) इसके बाद तीन चार महीने हमलोगों में भगवद्‌चर्चा होती रही। चार महीने पूरे होते ही मैंने जयदयालसे संन्यासके लिये कहा। वह थोड़ी देर सोचता रहा, फिर बोला—तुम्हारे भविष्यकी बातोंकी स्फुरणा मेरे मनमें हो रही है, तुम इसे निभा नहीं सकोगे क्योंकि तुम्हारा वैराग्य स्थायी नहीं है। तुम्हारे लिये संन्यास लेना ठीक नहीं है पर मैं आग्रह करने लगा। मेरे आग्रहके

उत्तरमें उसने कहा—देखो मैं तुम्हारे साथ चलनेका वचन दे चुका हूँ और तुम कहोगे तो मैं अवश्य चलूँगा, पर तुम्हें भोग भोगना अनिवार्य है, यदि तुम संन्यास लोगे तो फिर तुम्हें अपने गृहस्थमें आना पड़ेगा और मैंने यदि संन्यास ग्रहण किया तो मैं वापस नहीं लौटूँगा। मैं तो, यदि बना ही तो कानोंसे बहरा, मुखसे गूँगा, पाँवसे पंगु संन्यासी बनूँगा। मेरे मनमें अपने एवं तुम्हारे पूर्वजन्मकी बात स्फुरित हो आयी है। लगभग २००० वर्ष पहले तूँ एक राजा था। मैं तेरा मंत्री था। उस समय भी हम दोनोंने राज्य छोड़कर अन्तमें संन्यास ग्रहण किया था। संन्यासके बाद हमलोगोंके पास बहुत लोग सत्संग करने आते। वृक्षोंके नीचे सत्संग होता। कुछ समय बाद मेरा शरीर छूट गया। तूँ अकेला रह गया। लोग तेरा अत्यधिक सम्मान करते थे। मैं जब जीवित था तो सम्मान मेरा भी बहुत होता था पर मैं मनसे स्वीकार नहीं करता था। मेरी मृत्युके पश्चात् तुमने सम्मान स्वीकार करना आरम्भ कर दिया अर्थात् पूर्व प्रकृतिके अनुसार उस त्यागाश्रममें भी गद्दे तकिये एवं खानपान आदि भोग तू भोगने लगा जिससे तेरी बड़ी हानि हुई। तेरा पतन हो गया। समयपर तेरी मृत्यु हुई। मृत्युके बाद तबसे अबतक तुझे मनुष्य जन्म न मिला। तुम स्वर्ग एवं पशु पक्षी योनियोंमें भ्रमण करते रहे। पर मैं इतने दिनोंतक ऊपरके लोकमें ही रहा। अब इतने दिनों बाद दैवयोगसे तेरे शुभ कर्म प्रगट हुए, तुम्हें मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ। और, मेरा भी आना हुआ। अब यदि तूँ हठ करेगा तो वचनबद्ध रहनेके कारण मैं तेरे साथ चलकर संन्यास ग्रहण करूँगा, पर निश्चय मान कि तुझे लौटना होगा और मैं लौटूँगा नहीं। मेरा तेरा संग छूट जायगा।

इन बातोंको लेकर बहुत देरतक विचार होता रहा। अन्तमें संन्यासका विचार स्थगित कर दिया गया। यह निश्चय हुआ कि मैं तो कलकत्ते रहूँ और जयदयाल बाँकुड़ामें। समय समयपर हम लोग मिलते रहे, यह निश्चय कई वर्षतक चलता रहा, हमलोग जब मिलते तो कई बार सारी रात चर्चा करते बीत जाती। फिर भी बातें समाप्त न होतीं। हमलोग देश भी प्रायः साथ ही जाया करते थे।

(१२) सम्वत् १९६४ के लगभग मुझे उपदंशका रोग हो गया था भयानक पीड़ा होती। मैंने जयदयालसे कहा—मेरा विश्वास है यदि तूँ अपने मुँहसे यह कह दे कि बीमारी मिट जाय तो मेरा यह रोग मिट सकता है। अवश्य ही तेरे भजन ध्यानकी पूँजीमें कोई क्षति न होनी चाहिये। जयदयालने कहा—ठीक है। तेरा रोग तो अवश्य मिट सकता है पर भोग समाप्त होनेके पूर्व मिटानेसे अवशिष्ट अंश दूसरे जन्ममें भोगना पड़ेगा। तथा तुम्हें दूसरा जन्म धारण करना पड़े, ऐसी चेष्टा मेरे द्वारा नहीं हो सकती। हाँ, एक उपाय है अपना यह रोग मुझे दे दे। मैंने कहा—भला अपना रोग तुम्हें कैसे दे दूँ, यह हमसे नहीं होगा। जयदयालने कहा—देख! तूँ यह अस्वीकार कर रहा है, पर अब जो कह रहा हूँ उसे अस्वीकार मत करना, उसे अवश्य मान लेना। तूँ मुझे अपनी आधी बीमारी अवश्य दे दे, मैं ले लेता हूँ। इससे तुम्हारी आधी पीड़ा कम हो जायगी।

इतनी बात होनेके बाद तत्काल ही सचमुच मेरा आधा रोग जयदयालके शरीरपर चला गया, केवल आधा रह गया। जयदयालकी मूत्रेन्द्रियपर तत्क्षण ही आधा घाव मैंने प्रत्यक्ष देखा तथा मेरी मूत्रेन्द्रियपर जो दो एक क्षण पहले पूरा घाव था, वह आधा हो गया। मेरी पीड़ा भी आधी हो गयी। जयदयालने कहा—दवाकी शीशियाँ फेंक दे। मैंने शीशियाँ फेंक दीं। मैं आश्चर्यमें डूबा हुआ उसकी बातें सुनता रहा। तब मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही जबकि मैंने देखा—पाँच सात दिनमें ही घाव बिलकुल आराम हो गया।

(१३) सं० १९६८ के लगभग की बात है। मैं चूरूमें था मुझे अचानक हैजेका रोग हो गया। तकलीफ बढ़ने लगी। रातमें १२ बजे मेरे जीवनकी आशा जाती रही। वैद्योंने जवाब दे दिया। उस समय जयदयाल चक्रधरपुर रहता था। जयदयालके पिता खूबचन्दजी मेरे पास थे—उन्होंने पूछा—तेरी कोई इच्छा हो तो बता। मैंने कहा—क्या बताऊँ? फिर उनके आग्रह करनेपर मैंने कहा—और तो कोई इच्छा नहीं, केवल इच्छा है जयदयालसे मिल लेता। खूबचन्दजीने कहा—वह तो

समयपर पहुँच नहीं सकता। उनका यह कहना ही था कि मैंने देखा कि जयदयाल सशरीर मेरे सामने खड़ा है और कह रहा है कि मैं क्या नहीं आ सकता? फिर हमलोग आपसमें बातें करने लगे। जयदयालने कहा—तूँ चिन्ता मत कर, तेरी बीमारी मिट जायेगी। आश्चर्यकी बात यह थी कि लोग मेरे मुँहसे निकले हुये शब्दोंको सुन पाते थे परन्तु जयदयाल जो उत्तर देता वह नहीं सुन पाते। इससे लोगोंने अनुमान किया कि मुझे सन्निपात हो गया है। जो हो, मुझे तो उससे बात करनेके बाद नींद आ गई। जागनेपर मैंने लोगोंसे कहा कि मुझे कोई तकलीफ नहीं है। वस्तुत: मेरी बीमारी मिट गई थी। किन्तु जब जयदयालसे यह बात पूछी गई तब उन्होंने कहा कि मुझे इस बातका कुछ भी पता नहीं है।

(१४) एक बार बद्रीदासजी गोयनका कलकत्तेसे चक्रधरपुर गये। साथमें कुछ सन्तरे ले गये थे। जयदयालने भगवान्‌की मानसिक पूजा की तथा उन्हीं सन्तरोंका भोग लगाया। भगवान्‌ने भी स्वीकार कर लिया। वनमें जाकर हमलोग उन सन्तरोंको खाने लगे तो जयदयालने कहा—आजके सन्तरे भगवान्‌के भोग लगे हुये हैं। सचमुच ही उन सन्तरोंका स्वाद बड़ा विलक्षण था।

(१५) वि०सं० १९७४ की बात है। मैं चक्रधरपुर गया था। एक दिन मैंने जयदयालसे कहा—लोग समाधि लगाते हैं, उसी तरह मेरी भी समाधि लगा दे। वह बोला—समाधि दो प्रकारकी होती है। एक तो प्राणायामके द्वारा योग पद्धतिसे लगायी जाती है। दूसरी समाधि भगवान्‌के सगुणरूपका ध्यान करनेसे आनन्दमें विभोर होकर वाह्य सांसारिक ज्ञान लुप्त होनेसे लग सकती है। इस दूसरे प्रकारसे तुम्हारी समाधि लगानेकी चेष्टा करके तो मैं समाधि लगा सकता हूँ परन्तु समाधिको पुन: उतार देनेकी क्रिया मैं नहीं जानता। और, यदि तुम्हारी समाधि लग गई और फिर नहीं उतरी तो लोग तुम्हें मरा हुआ समझकर तुम्हारे शरीरको जला देंगे। अतएव समाधिकी बात जाने दे। मैंने पूछा—इस प्रकारकी समाधिमें स्थित मनुष्यको यदि लोग जला दें तो उसकी क्या गति होगी? उत्तरमें उसने कहा कि वैसे मनुष्यको भगवत् प्राप्ति हो जायेगी क्योंकि उसकी वृत्तियाँ भगवद्स्वरूपमें लीन रहती हैं। उस मनुष्यके लिये तो लाभ ही लाभ है। क्योंकि उसका जीवन तो सफल हो गया। भगवद्प्राप्तिके उद्देश्यसे ही मनुष्य जीवन प्राप्त हुआ था, वह उद्देश्य पूर्ण हो गया। उसकी बात सुनकर मेरी उत्कण्ठा और भी बढ़ गयी। मैं आग्रह करने लगा कि तूँ मेरी समाधि लगा दे। उसने स्वीकार कर लिया। हमलोग जिस मकानमें रहते थे, उसके समीप ही एक टूटा हुआ दूसरा मकान था। लोगोंकी धारणा थी कि उस मकानमें भूत रहता है। जयदयालने वहीं चलनेके लिये कहा क्योंकि उस मकानमें किसीके आनेकी सम्भावना न थी। हमलोग वहाँ जा पहुँचे। थोड़ी सी जगह साफ करके ओढ़नेकी चादर बिछायी और बैठ गये। जयदयाल प्रभावसहित सगुण भगवान्‌के ध्यानकी बातें कहने लगे। कुछ समय बीत गया, पर मेरा ध्यान नहीं लग रहा था। यह देखकर वह अपने स्थानसे उठा। जहाँ स्वयं बैठा था वहाँ मुझे बैठा दिया, और मेरी जगह आप बैठ गया। इस बार ध्यानकी बात प्रारम्भ होते ही मुझे रोमांच होने लगा, नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह निकले, ध्यान होने लगा तथा कुछ देर बाद ही समाधि सी अवस्था होनी प्रारम्भ हो गयी। जयदयालने कहा—मेरी रायमें तो अब समाधिकी चेष्टा यहीं बंद करनी चाहिये क्योंकि लोग तुम्हें देखकर कदापि नहीं समझेंगे कि समाधि लगी हुई है, तुम्हें मरा हुआ मानकर जलानेकी व्यवस्था करेंगे। इससे तुम्हारे घरवालोंको बड़ा दु:ख होगा। लोग डरसे मेरे पास आना बन्द कर देंगे, तथा उन्हें जो भगवद्विषयक यत्किचिंत् सहायता मिलती, उससे वे वंचित रह जायँगे। और, ऐसे कार्यमें तुम निमित्त बनो यह मैं नहीं चाहता। तुम्हारे कल्याणमें तो कोई संशय है नहीं। आज हुआ तो क्या, कुछ दिन बाद हुआ तो क्या। तूँ मेरी बात मान ले अब आगे समाधिमें स्थित करानेकी चेष्टा बन्द करनेके लिये मुझे अनुमति दे दे। मैं तो वचन दे चुका हूँ, तुम्हारे कहे बिना मैं बंद कर नहीं सकता।

जयदयालके उस प्रेममय रायकी अवहेलना मैं न कर सका। समाधिकी चेष्टा बन्द कर दी गयी। कुछ देर

बाद जयदयालने कहा—वास्तवमें ही इस मकानमें एक मनुष्य मरकर प्रेत हो गया था। वह अबतक यहीं था। अभी हमलोगोंके बीचकी भगवद्‌चर्चाको सुनकर वह प्रेत योनिसे छूटकर सद्‌गति पा गया। अतः हमलोगोंका किया हुआ परिश्रम तो सफल हो गया।

(१६) जयदयालके प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा थी, पर मेरे घरवालोंकी नहीं। एक दिन बात ही बातमें मैं अपनी स्त्रीसे कह बैठा कि जयदयाल तो दूसरेके मनकी बात बता देता है। पर मेरी स्त्रीको इसपर विश्वास न हुआ और वह बोली कि यदि मेरे मनकी बात बता दें तो समझूँ। परीक्षाके लिये उसने मनमें किसी विशेष बातका चिन्तन किया, तथा जयदयालने ज्यों की त्यों वह बातें बता दीं। तबसे मेरी पत्नीकी भी इसके प्रति श्रद्धा हो गयी।

(१७) सत्संगके प्रसंगमें एक दिन जयदयालने मेरी पत्नीसे कहा कि भगवान्‌का दर्शन का ध्यान करना चाहिये। वह बोली उसका ध्यान होना तो सम्भव है, जिसे पहले देखा हो, भगवान्‌को तो मैं कभी देखा नहीं, उनका ध्यान कैसे करूँ? जयदयाल ने उसे समझाना प्रारम्भ किया तथा कहा कि ऐसी धारणा रखनेमें तो भगवान्‌के दर्शन होने बड़े कठिन हैं। पर वह अपनी बातका समर्थन करती हुई बोली कि प्रत्यक्ष न सही, स्वप्नमें ही यदि दर्शन हो जाय तो उसके अनुसार ध्यान किया जा सकता है। जयदयालने अंत में कहा—अच्छी बात है, यदि स्वप्न में तुम्हें भगवान्‌के दर्शन हो जाय तो फिर ध्यान करोगी? मेरी पत्नीने तुरन्त उत्तर दिया—फिर तो अवश्य करूँगी। कहना नहीं होगा, उसी दिन रातमें मेरी पत्नीको भगवान् विष्णुके स्वप्नमें दर्शन हुए।

(१८) बद्रीदास गोयन्दका की पत्नीने जयदयालसे एक बार कहा कि मेरे पतिको तो आप साथ रखते ही हैं, मुझपर भी कुछ कृपा करें, मुझे भी भगवान्‌के दर्शन होने चाहिये। इस पर जयदयालने भगवन्नाम जप एवं ध्यान करनेकी प्रेरणा की। बद्रीदासकी पत्नीने कहा कि यदि नेत्र बंद करनेपर मुझे कोई मूर्ति दीख जाय तो फिर ध्यान हो जाता। जयदयाल बोला—अरे, तूं ध्यान कर तो सही। यह सुनकर उसने ध्यानके लिये आँखें बंद कर ली। नेत्र बंद करना था कि उसे भगवान् विष्णुका स्पष्ट ध्यान होने लग गया।

पाठक! श्रीजयदयालजीके मित्रके मुखसे उपर्युक्त बातें सुन चुके। अब अपने प्रसंगपर आनेके पूर्व स्वयं श्रीजयदयालजीके मुखसे थोड़ीसी बातें और सुनें। सुनानेका उद्देश्य इतना ही है कि इनके जीवनके प्रथम अंशकी एक हलकी-सी झाँकी आपके मनपर अंकित हो जाय। चरित्र नायक हनुमानप्रसादजीके जीवनसे आगे चलकर अच्छेद्य अभेद्य सम्बन्ध रखनेवाले इस परमपावनतम संतके प्रारम्भिक आध्यात्मिक जीवनकी यत्किंचित् कल्पना हो जाय। यह झाँकी यह कल्पना आपके साथ रहेगी। चरित्र नायकके जीवन उद्यानमें भ्रमण करते हुए जब कभी मालीसे मिलेंगे उस समय ये अपरिसीम सुख अतुलनीय रसका संचार करेंगी। अस्तु, आजसे कई वर्ष पहले (माघ कृष्ण १४ १९९० वि.के) दिन सत्संगमें प्रातःकाल गोरखपुरमें श्रीघनश्यामदासजीके मकानमें अतिशय अनुग्रहके बाद श्रीजयदयालजीने अपने जीवनकी ये बातें सुनायी थीं—

"मैंने प्रारम्भमें श्रीहनुमानजीकी उपासना की थी। इसके पश्चात् शिवजीकी, फिर रामचन्द्रजीकी और अंतमें भगवान् विष्णुकी, बीचमें सूर्यकी भी उपासना की थी। मुझे स्वप्नमें श्रीहनुमानजीके बंदर रूपमें दर्शन हुए। मैं डरने लगा। वे बोले—तुमने प्रसाद बाँटनेका संकल्प किया था, क्यों नहीं बाँटा? मैंने कहा—अब बाँट दूँगा। मेरे यह कहते ही वे अन्तर्धान हो गये।

मैंने महाभारतमें सूर्यकी उपासना की कथा पढ़ी थी। उसीके अनुसार सं० १९५६ वि० से १९६६ वि०तक सूर्यकी उपासना भी की। १० वर्षतक मेरा यह नियम था कि सूर्यका दर्शन करके ही भोजन करना। कई बार मुझे भूखा रहना पड़ा। मैं भगवान् सूर्यसे प्रार्थना करता—हे भगवन्! परस्त्रीसे यदि मेरा किसी प्रकार भी संसर्ग हो जाय तो मेरा शरीर भस्म हो जाय। जब मैं नेत्र बंद करके सूर्यकी ओर देखता तो एक प्रकाशमय आनन्दका पुंज सा दीखता। इससे मुझे प्रकाशमय निराकार भगवान्‌के ध्यानमें सहायता मिली।

उस समय मुझे सत्य बोलनेकी आदत पड़ गयी थी इसमें पिताजीका सत्संग तथा उनका भय ही हेतु था। पिताजी सत्यपर बड़ा जोर देते थे तथा बचपनमें कभी भी मुझे झूठ बोलते देखकर बड़े नाराज होते थे। यही कारण था कि मेरा झूठ सर्वथा छूट गया। महाभारतका स्वाध्याय भी मैं बहुत प्रेमसे किया करता था। उसमें पतिव्रता की महिमा पढ़कर मनमें आता, यदि मैं स्त्री होता तो पतिव्रता होता। जब मैं जीवनमुक्तकी प्रशंसा सुनता तब जीवनमुक्त बननेकी इच्छा होती।

शिवजीकी उपासनाकी महिमा सुननेसे शिव-उपासनामें प्रवृत्ति हुई। इसके साथ दो तीन देवताओंकी उपासना चलती। शिवजीकी उपासना मैं विधिपूर्वक करना नहीं जानता था; पर उनमें भक्ति अवश्य थी। शिवजीके मन्दिरमें जाया करता था। शिव, विष्णुमें भेद नहीं मानता था। एक दिन स्वप्नमें मुझे शिवजीके दर्शन हुए। स्वप्न इस प्रकार था।

मैंने नित्य प्रति शिव मन्दिर जानेका दृढ़ नियम कर लिया। तबसे कई साल बीत गये, उस नियमका बराबर पालन करता रहा। एक दिन मन्दिरमें जानेमें विलम्ब हो गया, मन्दिरका द्वार बन्द हो गया था पर मेरा तो दर्शनका नियम था। इसलिये मैं मन्दिरके ऊपरके तरफ़वाली एक खिड़कीकी राहसे भीतर चला गया। भीतर जाकर देखता हूँ—शिवजी महाराज एक पलंगपर सोये हुए हैं। मुझे देखकर शिवजीने पूछा—तूं कैसे आया?

मैं—मोरीकी राहसे।

शिवजी—भीतर क्यों आया?

मैं—आपका दर्शन करनेके लिये।

शिवजी—अच्छा तो तुम अपनी माता पार्वतीके साथ जाकर सो जाओ।

शिवजीकी आज्ञानुसार मैं माता पार्वतीके पास जाकर सो गया पर मुझे नींद नहीं आयी क्योंकि शिवजीके दर्शनसे मेरा हृदय उल्लाससे पूर्ण था। थोड़ी देर बाद मैं पुनः शिवजीके पास जाकर खड़ा हो गया।

शिवजी बोले—यहाँ क्यों आया, सोया नहीं?

मैं—आपकी आज्ञा मानकर गया तो था पर जब मुझे नींद नहीं आयी तो लौट आया।

शिवजी—अच्छा तो वरदान माँग।

मैं—आपके दर्शन मुझे हो गये। बस, अब मेरी कुछ भी इच्छा नहीं है।

मेरी बात सुनकर शिवजीने दो तीन बार आग्रह किया। उनके आग्रह करनेपर मैंने पूछा कि इस शरीरसे सुख अधिक होगा या दुःख? शिवजी बोले—अरे मूर्ख! जबतक शरीर रहेगा, तबतक सुख दुःख दोनों हुआ ही करते हैं। वे यह कह ही रहे थे कि मेरी आँखें खुल गयीं। शिवजीकी आकृति मनुष्य जैसी थी। सिरपर जटा थी, ओढ़नेको एक काला कम्बल था, अवस्था ४०-५० वर्ष की सी प्रतीत हुई। श्रीपार्वतीजीका मुख मैंने नहीं देखा।

मैं रामायण पढ़ता था उसमें शिवजी एवं हनुमानजी भगवान् रामके सेवक थे, यह बात मिलती। अब भगवान् रामके प्रति विशेष स्नेह होने लगा। ये साक्षात् परमेश्वर हैं। ऐसा जानकर रामनामका जप एवं श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका ध्यान करता था। मेरे ध्यानकी स्थिति बड़ी अच्छी हो गयी थी। एक दिन घरपर मैं आँखें बंद किये हुए भगवान् रामका ध्यान कर रहा था। मुझे दृढ़ विश्वास था कि भगवान् श्रीराम मेरे सामने खड़े हैं, मनकी आँखसे वे मुझे दीख रहे थे। सायंकालका समय था। माँजीने भोजनके लिये आवाज दी। पहले तो मैं बोला नहीं, पर माँजीका अधिक आग्रह देखकर उनकी बार-बार आवाज सुनकर भोजन करने जा बैठा। भोजन करते समय धीरे-धीरे मेरे ध्यानकी गाढ़ता कम हो गयी। इसके बादमें रास्ते चलते हुए रामनामका जप एवं भगवान्के स्वरूपका ध्यान करने लगा। लोग मुझे पागल हो जानेका भय दिखाते थे। पर मैं उनकी बातकी ओर ध्यान न देता था। फिर मुझे योगवाशिष्ठ पढ़नेका अवसर प्राप्त हुआ। उसमें निराकार ब्रह्मकी महिमा अधिक पाता।

इसी बीचमें मुझे एक दिन स्वप्नमें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन हुए। स्वप्नमें मुझे अनुभव हुआ कि मैं सो रहा हूँ। किसीने मुझे बाहरसे आवाज दी। मैंने उठकर द्वार खोल दिया। एक आदमी बाहर खड़ा था। मैंने पूछा—क्यों? उसने कहा—भगवान् रामचन्द्रजी यहाँ आये हुए

हैं तुम्हें बुला रहे हैं। मैं तुरन्त उसी आदमीके साथ चल पड़ा, धानुकोंकी धर्मशालाके पास जा पहुँचा। वहाँ देखा भगवान् राम एक उत्तम महलमें विराजमान हैं। पीछे ऐसा प्रतीत हुआ, यह महल नहीं, महलके समान विमान है। वह हीरे पन्नोंसे चमचम कर रहा था। मैं जिस व्यक्तिके साथ यहाँ आया था उसीके साथ ऊपर गया। ऊपर जानेपर पहले पहल मुझे लक्ष्मणजीके दर्शन हुए। वे उत्तरकी ओर मुँह किये हुए बैठे थे। भगवान् रामका मुखारविन्द दक्षिणकी ओर था। मुझे देखकर लक्ष्मणजीने पूछा कि यह कौन है? भगवान् रामने उत्तर दिया—यह जयदयाल गोयनका है, अपना भक्त है, इसीके लिये हमलोग यहाँ ठहरे हुए हैं। भगवान् रामने फिर मुझसे कहा कि तू अपनी माता सीताजीके पास जाकर सो जा। उनकी आज्ञानुसार मैं वहाँ जाकर सो गया, पर भगवान्के दर्शनोंसे मुग्ध होनेके कारण मुझे नींद न आयी। मैं वहाँसे उठा और भगवान्के चरणोंमें जाकर बैठ गया। भगवान् बोले—तूं क्या चाहता है?

मैं—आपके दर्शन हो गये अब मुझे कुछ नहीं चाहिये।

भगवान्—अब चले जाओ।

मैं—महाराज आपको छोड़कर न जाऊँगा।

भगवान्—तुम्हें जाना पड़ेगा (भगवान्के वचनोंमें कुछ कड़ापन था)।

मैं—कितने दिन मुझे खरड़े घीसना पड़ेगा। अर्थात् संसारके पचड़ोंमें रहना पड़ेगा।

भगवान्—जन्मसे लेकर ७८ वर्षतक

मैं—महाराज मैं तो नहीं जाऊँगा।

भगवान्—तुमने जाना स्वीकार क्यों किया? अब तो जाना पड़ेगा।

मैं—इतने वर्षके लिये तो मैं नहीं जाऊँगा।

भगवान्—फिर तुम हमसे आकर मिलोगे।

भगवान्के दर्शनसे, वार्तालापसे बड़ा आनन्द हुआ पर उसी समय स्वप्न टूट गया। मैं प्रात:काल उसी धानुकाकी बगीचीकी तरफ गया। पर वहाँ तो कुछ भी नहीं दीखा।

इसके पश्चात् मैं भगवान् रामकी भक्ति करता। एवं वेदान्तकी पुस्तकें देखा करता। इससे निराकार सर्वव्यापी ब्रह्मकी ओर टान होने लगी। मैं ऋषिकेश चला आया। वहाँसे देश गया। फिर किसी कारण विशेषसे निराकारके साथ विष्णु भगवान्के साकार रूपका ध्यान करने लगा। साकार निराकारमें भेद नहीं मानता था। यह बात सम्वत् १९६३-६४ विक्रमीय की है। तबसे आज पच्चीस वर्षतक एक ही क्रम रहा है। इन २५-२६ वर्षोंमें क्या क्या बातें मेरे अनुभवमें आयीं यह मेरा बतानेका विचार नहीं है। आजकल निराकार स्थिति अधिक रहती है; साकारकी इच्छा करनेपर होती है। बीचमें मुझे एक बार ऐसा भान हुआ था कि मुझे ब्रह्मकी प्राप्ति हो गयी। क्योंकि उस समय मेरी बड़ी अच्छी स्थिति थी। पर मेरा यह भ्रम निकल गया क्योंकि मेरे मनमें यह विचार आया कि जिसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है उसे तो यह अनुभूति हो ही नहीं सकती कि मैं ब्रह्म प्राप्त हूँ।"

उपर्युक्त बातें जिस दिन श्रीजयदयालजीने कही थी, उस दिन परम सौभाग्यसे इन पंक्तियोंका लेखक भी वहाँ उपस्थित था। उनके मुखसे ये बातें निकल रही थीं तथा वह संक्षेपमें लिखता जा रहा था। उसीका सारांश यहाँ दिया गया है। यत्र-तत्र भाषाके संशोधन किये गये हैं पर भाव सर्वथा अक्षुण्ण रहे हैं। अस्तु, लेखकके पूछनेपर उसी दिन उन्होंने यह भी कहा था—"मेरे बचपनकी बातें हनुमानदास गोयनकाको कही हुई हैं। वह मेरा सबसे पुराना मित्र है। मेरे पहलेकी कोई बात उससे छिपी नहीं है। वह चूरूमें हर समय मेरे साथ रहता था एवं प्रतिदिनकी बात पूछ लिया करता था। मैं किस मंत्रका जप करता हूँ, इस बातके सिवाय उन दिनोंकी मेरी कोई भी बात उससे छिपी नहीं। हाँ, अब ६ वर्षोंसे मैंने उसे अपनी बातें बताना बन्द कर रखा है।"*

श्रीजयदयालजीके सम्बन्धमें अबतक जो ऊपर

* श्रीजयदयालजीने अतिशय जोर देकर हनुमानदासजी गोयनकाको यह कहा था कि तुम मेरी कही हुई बातें किसीपर भी प्रगट मत करना पर हनुमानदासजीने अपने मित्रकी इस इच्छाकी अवहेलना कर दी। लोगोंसे बातें कह दी। लेखकका अनुमान है, इसीलिये आगे श्रीजयदयालजीने अपने अनुभवकी बातें उन्हें बताना बन्द कर दिया।

लिखा गया है उसे पढ़कर आर्य संस्कृतिमें पले हुए प्रत्येक पाठकको यह धारणा तो होगी ही कि साधारण मनुष्यकी अपेक्षा श्रीजयदयालजीके व्यक्तित्वमें कुछ न कुछ विशेषता अवश्य है। पर इससे उनका वर्तमान आध्यात्मिक जीवन किस स्तरपर है, हो सकता है, यह नहीं समझा जा सकता। ऐसा इसीलिये कि वास्तविक आध्यात्मिक अनुभूति मन वाणीका विषय ही नहीं है। कल्पना करें, हमलोगोंमेंसे कोई नीचेके किसी लोकमें जा पहुँचे, ऐसे लोकमें जहाँ कभी भी सूर्यका प्रकाश न जाता हो, जहाँ विद्युत अथवा अन्य किसी तैजस् वस्तुका प्रकाश ही तेजकी परमोत्कृष्ट वस्तु हो। वहाँके देशवासी आनन्दमें भरकर उस नवीन आगन्तुकका आतिथ्य करें, अपने राज्य प्रासादमें ले जाकर परमोज्ज्वल रत्नपुंजोंका दर्शन करावें, पर आगन्तुक यह कह बैठे कि भैया, मेरे देशमें तो सूर्य प्रकाशित होता है उसके आलोककी तुलनामें तुम्हारे देशकी समस्त रत्नराशि अत्यन्त तुच्छ है। उस समय उन देशवासियोंकी क्या दशा होगी? जिन्होंने कभी सूर्य ही नहीं देखा है, उन विचारोंकी कल्पना भी नहीं हो सकती कि हमारी अनन्त रत्न राशिकी अपेक्षा प्रकाशमान सूर्य नामक कोई पदार्थ सम्भव हो सकता है। वे यदि सूर्यकी सत्तामें विश्वास कर भी लें तो वह कैसा है, उसका परमोज्वल प्रकाश कैसा है, यह उनकी धारणामें आ नहीं सकता। अनंत राशिके सम्मिलित प्रकाशपुंजके आधारपर की हुई ऊँचीसे ऊँची प्रकाश कल्पना सूर्यकी रश्मियोंके समकक्ष हो ही नहीं सकती। सूर्य कैसा है यह बात तो सूर्य दर्शनसे ही समझी जा सकती है, सुनकर नहीं। भले ही सुननेवाला सूर्यकी अनुभूति कर चुकनेवाला ही क्यों न हो पर ऐसे प्राणीको कि जिसने सूर्य नहीं देखा है, वह नहीं समझा सकता। वस्तुतः सूर्य क्या है, यह अनुभव करनेके लिये सूर्यको देखना पड़ता है। इसी तरह आध्यात्मिक अनुभूतिकी रूपरेखा भी सुनकर समझी नहीं जा सकती। बिना वास्तविक अनुभूति हुए जो हमारी आध्यात्मिक कल्पनायें हैं वे ठीक रत्नपुंजोंके प्रकाशके आधारपर हुई सूर्यकी कल्पनाके समान ही हैं। इसीलिये जिन्हें वास्तविक अनुभूति है, उनके सम्बन्धमें यह कहना, यह सोचना कि इनकी अनुभूति ऐसी है, यह अमुक आध्यात्मिक स्तरपर है, सर्वथा भ्रम है। श्रीजयदयालजी भी उन्हीं इने गिने बिरले सन्तोंमेंसे हैं जिन्हें वास्तविक आध्यात्मिक अनुभूति हो चुकी है और इसीलिये उनके वर्तमान आध्यात्मिक जीवनका चित्रण करना हमारे जैसे विषयोंमें रचे पचे प्राणियोंके लिये तो सर्वथा असम्भव है। ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह उनके वाह्य जीवनकी ही झाँकी है और उसीका चित्रण भी सम्भव है। आध्यात्मिक मार्गमें प्रवृत्त प्रत्येक पाठक मेरे इस उपर्युक्त कथनकी सत्यता अनुभव करेंगे, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। अस्तु, सभी पाठकोंसे अपनी असमर्थताके लिये क्षमा चाहता हुआ अब अपने इस प्रसंगपर आता हूँ कि किस प्रकार श्रीजयदयालजीसे चरित्र नायकका प्रथम मिलन हुआ।

ऊपर कहा ही जा चुका है कि श्रीहनुमानदासजी गोयन्दका श्रीजयदयालजीके सबसे पुराने मित्र थे। श्रीजयदयालजी उन दिनों जब कलकत्ते जाते तब या तो अपने इस बालसखाके घर ठहरते या जोखीरामजी गोयन्दकाके घर। श्रीबद्रीदासजी एवं केदारनाथजी धानुकाका भी श्रीजयदयालजीके प्रति बड़ा प्रेम था। ये दोनों सज्जन चरित्रनायकके यहाँके दलाल थे।

इन्हीं दिनों (वि० सम्वत् १९६७-६८) के करीब प्रेमवश सत्संगके उद्देश्यसे श्रीजयदयालजीको चरित्र नायककी दुकानके सामने हरिबक्सजी सांवलका की दुकान पर उन्होंने लाना आरम्भ किया। सुन्दर सत्संग होता। चरित्रनायक भी कभी-कभी जाया करते। यह नियम होता है, हृदयके भाव वक्ताकी वाणीमें फैले हुए होते हैं। ऊँचे-से-ऊँचे सिद्धान्त हों, सुन्दरसे सुन्दर भाषामें हों, वक्तृत्वकी सुन्दरतम शैलीसे व्यक्त किये गये हो, पर वक्ताका अन्तर्हृदय यदि मलिन है, विषयोंकी दुर्गन्धसे, दंभसे पूर्ण है, तो वे ऊँचे सिद्धान्तकी ऊँची-ऊँची बातें श्रोताके हृदयमें स्थान नहीं बना पातीं। हृदयकी मलिनता, हृदयकी दुर्गन्धसे लिपटी हुई ऊँची बातें श्रोताके जीवनको पलट नहीं सकतीं। और, दूसरी तरफ साधारण-सी बात हो, साधारण भाषामें कही गयी हो, कहनेकी शैली भी वक्तृत्वोचित न हो, पर यदि वह

निर्मल सरल अंत:करणसे निकली हुई हो, तो वह तत्क्षण ही श्रोताके जीवनतकको पलट देती है। हाँ, यह अवश्य होता है कि सजातीय वक्ता श्रोता होनेपर प्रभाव अधिक पड़ता है, विजातीय पर कम। इसलिये ही श्रीजयदयालजीकी बातें सत्संगके उद्देश्यसे प्रगट किये हुए उनके निर्मलतम उद्गार चरित्रनायकको भी खींचने लगे। श्रीजयदयालजीके प्रवचनमें कला न थी, साहित्यका रस न था, पर उसमें था उनकी शुभ-भावनाका पुट, दम्भहीन अंत:करणके साँचेमें ढले हुए भगवद्रसका संकेत। अत: बरबस मनको खींच लेता था। श्रीजयदयालजी कहते—विचारना चाहिये, मनुष्य जीवन क्यों मिला है? यदि भोग ही मनुष्य जीवनका उद्देश्य होता तो हमारे एवं पशु पक्षी आदि प्राणियोंमें क्या अंतर है? जो भोग हमें प्राप्त हैं उन्हें भी प्राप्त है। किसी भोगको भोगते समय हम जितने सुखका अनुभव करते हैं, उसे पाकर पशु भी अपने जगत्में उतने ही सुखका अनुभव करते हैं। पर एक बात ऐसी है कि जिसे पशु पक्षी नहीं कर सकते, वे दु:ख पानेपर दु:खका अनुभव कर सकते हैं पर दु:खसे कैसे छूटे, सदाके लिये मेरे दु:खोंका अंत कैसे हो जाय, यह बात पशु-पक्षी नहीं कर सकते। उनके पास बुद्धि नहीं कि वे इस बातपर विचार कर सकें। एक क्षणके लिये यदि कल्पना करें, उनमें बुद्धि आ भी जाय तो भी वे इतने साधनहीन हैं कि दु:खसे छूटनेका प्रयास नहीं कर सकते। पर मनुष्यको परमात्माने बुद्धि दी है। वह विचार कर सकता है कि हमें दु:ख क्यों है, दु:खसे हम सदाके लिये मुक्त कैसे हो सकते हैं? बुद्धिके द्वारा निश्चय करके वह दु:खसे छूटनेका प्रयास भी कर सकता है, क्योंकि उसके पास पर्याप्त साधन है। साधन करनेसे उसके दु:खका नाश भी हो जाता है, उसका दु:ख मिटकर वह एक ऐसे नित्य सुखको पा लेता है कि जिसका कभी नाश नहीं होता। वह नित्य सुख परमात्मा है। मनुष्य जन्म मिला भी इसीलिये है कि परमात्माकी प्राप्ति की जाय। परमात्माकी प्राप्तिके लिये वेष बदलनेकी आवश्यकता नहीं है। गृहस्थ रहकर ही अहंकार, ममता, आसक्तिका त्याग करनेसे पवित्र जीवन बनानेसे परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। इसीमें जीवनकी सच्ची सफलता है। इसीमें तत्पर होकर मनुष्यको लगना चाहिये। अस्तु,

चरित्रनायक जब कभी श्रीजयदयालजीकी बातें सुनते तो उनके मनपर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता। वे उत्तरोत्तर श्रीजयदयालजीके प्रति आकर्षित होने लगे। श्रीजयदयालजीके प्रेमिल स्वभावने इसमें और भी सहायता की। अब श्रीजयदयालजी जब कलकत्ते आते तो चरित्रनायक भी सत्संगके लिये इन्हें अपनी दुकानपर लाने लगे। साथ ही इनके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर अपने मित्रोंको भी इनसे मिलाने लगे। श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, श्रीबनारसीप्रसादजी झूंझनूवालेको इनसे मिलाया। एक दो और मित्रोंको भी उनके पास ले गये। यद्यपि श्रीजयदयालजीसे अबतक चरित्रनायकका विशेष परिचय नहीं हुआ था, इनका झुकाव भी अभी विशेषत: व्यापारिक, राजनैतिक, सामाजिक जीवनकी ओर ही था, फिर भी भगवान्की अचिन्त्य शक्तिकी प्रेरणासे इन दोनोंके मिलनमें बाधा नहीं आयी। दोनों सत्संगको निमित्त बनाकर कलकत्तेमें मिलने लगे। यह मिलन ऐसा प्रतीत हुआ मानो अध्यात्मका सुन्दर उद्यान निर्माण करनेके लिये माली भूमि ढूँढ़ने आया था। मालीको भूमि मिल गयी, पर उसपर ढोंके, कंकडिया फैली हुई थीं। उन्हें बहाकर भूमिको समतल कर देनेके लिये प्रबल प्रवाहकी आवश्यकता थी जो सब कुछ बहा ले जानेमें समर्थ—भगवद्कृपाका सागर भी निकट ही था पर ज्वार आनेमें किंचित् देर थी। माली भूमिके किनारे खड़ा होकर उसीकी प्रतीक्षा करने लगा।

~~~
~~~

॥ श्रीहरि: ॥

नवम पटल

देश प्रेमके प्रवाहमें

अब वे दिन तो बीत चुके थे, जब हृदयकी उमंगें पितृस्नेहवश हृदयमें दब जाती थीं। अब तो देश सेवाका जोश जवानीके जोशके साथ होड़ मार रहा था। प्रात:कालसे लेकर सोनेतक चरित्रनायक भिन्न-भिन्न संस्थाओंका काम देखते। दुकानपर बैठे-बैठे ही अपने सीरवाले (पार्टनर) उदरामसर(बीकानेर)के चाँदमलजी मलको संचालनका परामर्श देते। समाजमें नवयुवकोंपर काफी प्रभाव था। यद्यपि कार्यक्षेत्र कलकत्ता ही था पर वह विस्तृत होता जा रहा था। अब बाहरसे जो नेता कलकत्ता आते, उनका आतिथ्य उनकी अभ्यर्थना करनेमें इनका ही प्रमुख स्थान हो गया।

सं० १९७१-७२ वि० के लगभग पं० मदनमोहन मालवीय कलकत्ता आये। इन्हीं दिनों हिन्दू-महासभाकी स्थापना हुई थी। चरित्रनायकका इनसे परिचय हुआ। दोनों परस्पर मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। दोनोंमें उसी समयसे स्थायी प्रेमका सम्बन्ध स्थापित हो गया। चरित्रनायकने मालवीयजीको हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये लोगोंके द्वारा आर्थिक सहायता भी दिलवायी। हिन्दू-महासभाकी ओर भी काफी सहानुभूति दिखलायी। आगे चलकर तो शीघ्र ही ये हिन्दू-महासभाके मंत्री ही चुन लिये गये थे।

सम्वत् १९७२ वि० के लगभग महात्मा गाँधी रंगूनसे कलकत्ते आ रहे थे। यह बात उनके दक्षिण अफ्रीकासे लौटनेके बाद की है। कलकत्तामें महात्माजीका अपूर्व स्वागत हुआ। हिन्दू-महासभाकी ओरसे भी देशके इस परमोज्ज्वल संतानकी अभ्यर्थना हुई। मानपत्र दिया गया। चरित्रनायक ही उस हिन्दू-महासभाके मंत्री थे। इनकी धमनियोंमें भी उस समय देश सेवाका जोश लहरा रहा था। अत: महात्माजीको मानपत्र देते हुए इनका हृदय खिल उठा। महात्माजी एवं इनके प्रेमका बीजारोपण भी यहीं हो गया था। आगे जाकर तो दोनोंमें ऐसी घनिष्ठता बढ़ी मानो चरित्रनायक महात्माजीके आत्मीय परिवारमेंसे एक हों।

इधर तो चित्त उत्तरोत्तर देश-प्रेमसे भरता जा रहा था, उधर इसी अनुपातसे दूकानकी साज-सँभाल शिथिल होती जाती थी। यह बात न थी कि दूकान छोड़ बैठे थे। काम करते थे, पर रुपया कमाना ही जीवनका उद्देश्य न होनेके कारण दूकानका काम गौण होता जा रहा था। फल यह हुआ कि कपड़ेकी दूकान बंद करते समय चरित्रनायकके ऊपर कुछ ऋणका बोझ भी लद गया। इस ऋणका परिशोध कहीं वि०सं० १९९२ में जाकर हुआ।

समाज एवं देशकी सेवामें लगे हुए चरित्रनायकका जीवन बड़े सुखसे बीत रहा था। सेवा करते-करते शरीर थक जाता था पर मन सेवासे नहीं थकता। थके हुए शरीरको लेकर जब चरित्रनायक घर आते तो पत्नी सुवटी बाईका निर्मल प्रेम उनके शरीरकी सारी थकान हर लेता। देवी सुवटी विवाहके बादसे ही प्राय: शरीरसे अस्वस्थ रहतीं पर चरित्रनायक जैसा स्वामी पाकर उन्हें कोई मानसिक क्लेश न था। स्वामीसे उसने कभी घृणा न पायी, सर्वथा निर्मल प्रेम ही पाया। शरीरसे थके हुए चरित्रनायकके शरीरपर सुवटीदेवीकी प्रेममयी दृष्टि पड़ती तथा रोगसे थके हुए सुवटीदेवीके शरीरको चरित्रनायकके प्रेममय नेत्र सिक्त करते। दोनोंकी ही पीड़ा जाती रहती। पर अब सुवटीदेवीकी विदाईका समय था। माघ कृष्ण १२, १९७२ वि० को सुवटीदेवीने एक पुत्र प्रसव किया। यह चरित्र नायककी द्वितीय संतान थी। पर जन्मसे दो ही दिन बाद शिशु परलोक चल बसा। जाते समय मानों माँसे प्रार्थना कर गया, माँ तुम्हारे बिना मैं अकेला परलोकमें सुखी न हो सकूँगा, तूं भी चल। माँने भी प्रार्थना सुन ली। उसके ६ दिनों बाद ही माघ शुक्ला ४ वि०सं० १९७२ के दिन माँ भी

प्रसूति रोगके रथपर परलोक चल बसी। परिवारके हृदयमें विधाताने मानों क्रमसे दो शूल चुभो दिये। देवी रामकौर विचारने लगी—वे (पति) गये, रिखी बाई गयी, रामदेवी बाई (भीमराजजीकी द्वितीय पत्नी) गयी, भीमराज गया, महादेवी गयी, सुवटीदेवी गयी पर मेरी बारी नहीं आयी।

यह धक्का मामूली नहीं था। पर देवी रामकौरने इसे भी सह ही लिया। वह थी ही ऐसी आदर्श आर्य देवी। जबसे होश सँभाला तबसे जीवनको संयम तपस्यासे खरादती रही थी, खरादमें पड़कर जीवन सब ओरसे चिकना बन गया था, मल चिपकनेके लिये स्थान ही कहाँ था। जबतक देशमें रही तबतक दिनचर्या यह थी—गृहकार्यसे अवकाश पाते ही संतोंके चरणोंमें उपस्थित हो जाती। लक्ष्मीनाथजी, मोतीनाथजी महाराज, वखन्नाथजी महाराज, टूँटिया बाबा आदि सबका दर्शन इन्होंने किया था, सबकी सेवा इन्होंने की थी। स्वयं कष्ट उठा-उठाकर इनकी सेवा शुश्रूषा की थी। इसीलिये रतनगढ़के सभी संतोंकी इनपर अपार कृपा थी और ब्राह्मणोंका तो कहना ही क्या है? उनका रोम-रोम रामकौरको आशीर्वाद देता। रतनगढ़ रहते हुए ऐसा कोई महीना नहीं बीतता जबकि रामकौरके घर बहुतसे ब्राह्मणोंका भोजन न हुआ हो। जिस श्रद्धाके साथ रामकौर ब्राह्मणोंको भोजन कराती, जिस तत्परतासे ब्राह्मणोंका सेवा-सत्कार करती, उसका नमूना आज रतनगढ़में ढूँढ़नेपर एक भी न मिलेगा। संत सेवा, ब्राह्मण सेवाके अतिरिक्त रामकौर प्रतिदिन नियमित रूपसे ग्राम सेवाके लिये भी समय निकाल ही लेती। पड़ोसियोंके, ग्रामवासियोंके घर जाती और उनके दु:ख सुखमें हाथ बँटाती। तन, मन, धन सभी प्रकारसे उनके हितके लिये जो कर सकती थी वह सब करती। यह थी देशकी दिनचर्या। और, कलकत्तेकी? रात्रिमें २-२॥ बजे निद्रा त्यागकर उठ बैठती, हृदयके प्यारसे सानकर अपनी बहू गौरा बाई (चरित्रनायककी तृतीय माँ) को कहती—क्यों गंगा-स्नानकी इच्छा है क्या? इच्छा हो तो मेरे साथ चली चल, मेरे साथ नहीं जानेपर फिर तो जा पायेगी नहीं। इस प्रकार बहूको साथ लेकर स्नान करती। स्नानादिसे निवृत्त होकर साढ़े तीन बजे साँवलियाजीके मन्दिरमें जा पहुँचती मंगलाका दर्शन करती, कलकत्तेमें रहकर रामकौर मंगला-आरतीके दर्शनसे प्राय: कभी न चूकती। फिर वहाँसे पंचमुख हनुमानजी एवं सत्यनारायणजी आदिका दर्शन करने जाती। अब बहूको घर छोड़ने आती और तुरन्त ही वहाँसे चल देती, भगवान्‌की कथामें जा बैठती। कथा समाप्त होते ही साँवलियाजीके दर्शनके लिये पुन: जाती। वहाँसे घर लौटती पर घर पहुँचनेमें काफी विलम्ब होता। रामकौरको वैद्यकका साधारण ज्ञान था। अत: दीन परिवारोंके घर पैदल जा पहुँचतीं, उनके रोगियोंकी यथोचित व्यवस्था करके दवा आदिका प्रबन्ध करती। गरीबोंके घर तो पैदल ही अतिशय प्रेमसे जाती, पर कोई उन्हें बुलानेके लिये गाड़ी भेजता तो कह देती—वैद्यको बुला लो। इन कामोंको सलटाकर तब कहीं घर पहुँच पाती। घरपर भी आवश्यक कार्यसे अतिरिक्त जो भी समय मिलता उसे भजन पूजनमें ही बिताती। त्याग, तपस्या, भजनसे निरन्तर हृदयको धोती रहती थी। इसलिये ही एक पर एक उनपर न जानें कितने दु:ख आये सबको सह सकी, अपनी शक्ति सामर्थ्यके अनुसार सर्वोत्तम ढंगसे संसार सँभाल सकी। देवी रामकौरके हृदयमें श्रीहनुमानजी एवं भाईजीकी माता रिखीबाईमें प्रवेश करके उनके मुखसे प्राय: प्रत्येक विपत्तिके समय बोला करते। जिसमें हनुमान्‌जी तो सं० १९८० वि० देवी रामकौरकी मृत्यु हुई तबतक बोलते थे और रिखीबाई सं० १९६९ वि० भीमराजजीकी मृत्यु हुई जिसके अंतिम समय निकट आ गया तब दादी रामकौरके मुखसे कह गई अब मैं मेरे पतिके साथ जाऊँगी क्योंकि जबतक मेरे पतिका इस घरसे सम्बन्ध था तबतक मेरा भी आपके घरसे सम्बन्ध था। अब ये गमन कर रहे हैं इसलिये मैं भी अब यहाँ नहीं आऊँगी।

चरित्रनायकके परिवारकी मालकिन सदासे रामकौर ही थी, यह अबतककी घटनाओंसे स्पष्ट है ही। विशेषत: भीमराजजीकी मृत्युके बादसे तो बाह्य व्यवहारकी

साज सँभालमें भी उनका प्रमुख हाथ रहना अनिवार्य-सा हो गया था। इसीलिये सुवटीदेवीके परलोक गमनसे रामकौरपर एक नई चिन्ता आ गयी थी। जिस प्रकार महादेवीकी बिदाईके बाद पुत्रको एकाकी रहने देना भीमराजजीको अभीष्ट न था, वैसे ही रामकौरको भी सुवटीदेवीकी विदाईके पश्चात् पौत्रको अकेले रहने देना अच्छा न लगा। चरित्रनायकके तृतीय विवाहकी बात चलने लगी। पर चरित्रनायक तो अपनी धुनमें मस्त थे। देश सेवाके उत्साहमें पुत्रका जन्म, तुरन्त ही उसकी मृत्यु, फिर सुवटीदेवीका देहावसान, फिर विवाहकी बातचीत सबका स्थान गौण हो गया था। जिस समय तृतीय विवाहका प्रस्ताव सामने आया उस समय न तो उन्होंने विरोध किया न अभिरुचि ही दिखायी, इसे अपने भाग्यचन्द्रकी धुरी समझकर इसके लिये सम्मति दे दी। रतनगढ़ निवासी श्रीसीतारामजी साँगानेरियाकी पुत्री रामदेईसे सम्बन्ध स्थिर हुआ था। श्रीसीतारामजी उस समय गौहाटी रहते थे वहीं देवी रामकौर अपने पौत्रको लेकर गयीं। वैशाख शुक्ला ३ सं० १९७३ वि० के दिन विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह हो रहा था पर देश-प्रेमके रंगमें रंगे हुए दूल्हेका मन तो कहीं और ही था, देशको स्वतंत्र बनानेकी अनेक योजनाएँ मनको न जाने कहाँसे कहाँ उड़ाये लिये जा रही थीं। उनके साथ उड़ते हुए ही उन्होंने रामदेईसे पाणिग्रहण किया। गौहाटीका मलय समीर मंदगतिसे प्रवाहित हो रहा था, साँय-साँय ध्वनि हो रही थी, मानो मलयाधिष्ठात्री देवता रामदेईके कानमें कह रहे थे कि पुत्री! तुम्हारा स्वामी देशका पुजारी है, तूं उसकी सच्ची संगिनी बनना भला!

विवाह करके चरित्रनायक कलकत्ते लौटे। पर अब इन्हें कलकत्तेसे शीघ्र ही विदा लेना था। स्वेच्छासे नहीं, ब्रिटिश सरकारकी इच्छासे। बात यह हुई कि लिलुआकी गुप्त समितिपर सरकारकी दृष्टि गयी। सभी नवयुवक सदस्य थे। सरकारके सी०आई०डी० विभागको सन्देह हुआ। खोज आरम्भ हुई तथा कतिपय कारणोंसे उस समयके कलकत्ता पुलिस कमिश्नरके मनमें यह बात आयी कि यह संस्था बंगालके क्रान्तिकारियोंसे सम्बन्ध रखती है। फिर क्या था, किसी एक्टके अनुसार संस्थासे सम्बन्ध रखनेवाले ४-५ सज्जनोंके नाम वारंट निकल गया। चरित्रनायक भी उनमें एक थे। मैं बंदी होने जा रहा हूँ, यह सूचना चरित्र नायकको किसी सूत्रसे एक मास पूर्व ही मिल चुकी थी। ठीक इसके अनुसार ही ये सं० १९७३ वि० के श्रावण कृष्ण ५ (१६-७-१६ ई०) संध्या समय ६ बजेके दिन बंदी बना लिये गये। कुछ दिन डुलेन्डर हाउसमें रखे गये। फ़िर अलीपुर सेन्ट्रल जेल कलकत्तेमें भेज दिये गये।

चरित्रनायकके जीवनमें यह प्रथम अवसर था कि अपने प्रियजनोंसे बरबस अलग कर दिये गये हों। दादी रामकौर, माँ गौराबाई एवं नव विवाहिता रामदेईको सर्वथा अनाथ छोड़कर उनकी कोई भी व्यवस्था किये बिना ही आये थे। कितने दिन यहाँ रहना है यह पता तो था नहीं। मनमें यह विचार आया—जीवनके शेष दिन बन्दीगृहमें ही बिताना पड़े तो आश्चर्य ही क्या। मनमें मृत्युका भय न था, पर बंदीगृहकी दीवारको चीरता हुआ हृदय, दादी रामकौरके पास जा पहुँचा और दादीके करुण असहाय मुखका प्रतिबिम्ब लेकर लौटा। चरित्रनायक उस मुखको देखकर मृत्युसे भी अधिक यंत्रणाका अनुभव करने लगे। अभी-अभी हृदयमें देशप्रेमका सागर लहरा रहा था, ऊँची-ऊँची तरंगें दीख रही थीं, पर अब प्रत्येक तरंगके स्थानमें दादीका करुण, असहाय मुख दीखता था। चरित्रनायक अपने देशप्रेमके आदर्शसे गिर गये हों या उनमें कायरता आ गयी हो यह बात बिलकुल न थी। यह तो उनके प्रेमिल हृदयका एक स्वाभाविक परिणाम था। जो हो, उनकी व्याकुलता बढ़ने लगी। उस समय मनकी क्या दशा थी, कैसे शान्ति मिली यह बात आप उनके मुखसे ही सुनें—

"ज्वालाप्रसादजी आदि हमलोग कई साथी थे। पर पकड़े जानेके दिन ही जेल जानेपर मुझे बड़ा दु:ख हुआ। मेरा हृदय तड़फड़ाने लगा। मेरे हृदयमें व्याकुलता छा गयी, चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखायी पड़ता था। जब कोई सहारा न मिला तो अन्तमें मुझे उस परमपिता परमेश्वरका नाम-स्मरण हो आया, अशरणकी

शरणको स्मरण करना ही मुझे एक अवलंब मालूम हुआ। मैंने नामकी रट लगा दी। भजन करनेकी देर थी, शांतिका आविर्भाव होने लगा। धीरे-धीरे व्याकुलता दूर हो गयी, हृदयमें शान्तिका साम्राज्य छा गया। इसी समय मुझे नामका माहात्म्य मालूम हुआ। मुझे मालाकी आवश्यकता मालूम पड़ी। पहरेदारसे प्रार्थना की पर माला नहीं मिल सकी। दूसरा उपाय न देख पहरेदारके परामर्शसे मैंने एक बात सोच निकाली। वहाँ एक कील पड़ी थी। बस भजन करता और उसीसे लकीर खींचकर संख्या करता जाता। धीरे-धीरे मेरा भजन, भगवन्नाम और भगवान्के माहात्म्यपर विश्वास होने लगा। मेरी उन्नतिका प्रथम सूत्रपात यहींसे हुआ।''

सरकारके पास कोई स्पष्ट प्रमाण तो था नहीं कि अदालतमें मुकदमा चल सकता। पर इनपर दृढ़ सन्देह अवश्य था। अतः सरकारने इन्हें नजरबन्द कर देनेका निश्चय किया। साथियोंसहित चरित्रनायक अनिश्चित कालके लिये नजर बंदकर दिये गये। सभी अलग-अलग भेज दिये गये। चरित्रनायकको बाँकुड़ा (बंगाल) के समीप शिमलापाल नामक ग्राममें भाद्रपद शुक्ला ७ को ४ बजे भेज दिया गया। शिमलापाल बांकुड़ा नगरसे १८ कोसपर है। पौने दो सालतक इसने अपने वक्षस्थलपर चरित्रनायकको रखा। शिमलापालके इतिहासमें ये २१ मास जागतिक दृष्टिमें भले ही कोई महत्त्व न रखते हों, पर भक्तों एवं इतिहास लेखकोंके लिये ये चिरस्मरणीय रहेंगे।

॥ श्रीहरिः ॥

दसवाँ पटल

शिमलापालकी साधना

भगवान्‌की मंगलमयतापर संतलोग दृष्टान्त देते हैं—एक बुढ़िया थी। घरमें दरिद्रताका साम्राज्य था। संपत्तिके रूपमें बुढ़ियाके पास एक टूटी-फूटी झोपड़ी, ओढ़नेका कंथा, पुआलकी एक चटाई, तीन वस्तुएँ ही थीं। दिनमें भिक्षा माँग लाती जिससे किसी प्रकार उदर पूर्ति हो जाती।

दैवयोगसे बुढ़ियाकी झोपड़ीमें आग लग गयी। कुछ ही क्षणोंमें कंथा एवं चटाईके साथ झोपड़ी राखके रूपमें परिणत हो गयी। दूर बैठी हुई बुढ़ियाकी आँखोंसे झर-झर करते हुए आँसू बह रहे थे। गाँवके लोग सभी एकत्र होकर सहानुभूति प्रगट करने लगे। एकने कहा—बिचारी बड़ी नेक है, ऐसी नेकपर रामजीका कोप भला क्यों हुआ? दूसरा बोला—होना था सो हो गया, अब हम लोग क्या कर सकते हैं यह सोचो। तीसरेने कहा—अजी तीन साल पहले भी आग लगी थी। काकाने चेष्टा करके एक झोपड़ी बनवा दी थी। ग्रामका सरपंच सारी बातें सुन रहा था। अंतमें वह बोला—भाइयों! मेरी एक राय है, भगवान्‌की दयासे इस वर्ष फसल अच्छी हुई है। हमलोग सभी प्रसन्न हैं, एक बुढ़िया दुःखी है, इसका दुःख हमलोगोंको मेट देना चाहिये।

सरपंचकी बातका सबने हृदयसे समर्थन किया। दूसरे दिन काम प्रारम्भ हो गया। ग्रामवासियोंने राख साफ किया। सरपंचका जवान बेटा पास ही खड़ा था। वह बोला—पिताजी कच्ची झोपड़ीका क्या ठिकाना, फिर कहीं आग लग जाये। जब करना ही है तो एक ईंटकी पक्की झोपड़ी बनवा दी जाय, बुढ़िया जीवन भर आशीर्वाद देगी।

यह बात सबने पसन्द की। अब देर क्या थी। दूसरे दिन काम प्रारम्भ हो गया। ग्रामवासियोंने राख साफ किया। नींव खोदी जाने लगी। पक्का बनना था, इसलिये नींव गहरी खोदी गयी। खोदते समय गड़ा हुआ एक रत्नोंसे भरा हुआ गगरा निकला। सभी आश्चर्यमें पड़ गये। सरपंचने कहा—वर्षोंसे बुढ़िया इस स्थानपर रह रही है। इतनी भूमि मेरे पिताने इस बुढ़ियाको दानकी थी। अतः धन तो बुढ़ियाका ही है। परमात्मा झोपड़ी जलाकर महल बनाना चाहते हैं। महल ही बनना चाहिये। कुछ दिनों बाद वहाँ एक सुन्दर महल शोभा पाने लगा। बुढ़िया उसकी मालकिन थी।

उपर्युक्त दृष्टान्त भले ही कल्पित हो, पर सिद्धान्त सच्चा है। सचमुच ही भगवान्‌का प्रत्येक विधान ही परम मंगलमय होता है। देखनेमें अत्यन्त भयानक होनेपर भी उसमें अनन्त असीम मंगल भरा होता है। भगवान् जितना छीनते हैं उससे अनंत गुना अधिक, अनंत गुनी सुन्दर वस्तु देते हैं। वे देनेके लिये ही छीनते हैं। भगवान्‌ने चरित्रनायकके भी देश-प्रेमकी सारी उमंगें छीन लीं, सारा अरमान नष्ट कर दिया; मित्र मण्डली तोड़ दी, प्रियजनोंसे अलग कर दिया, परिवारके किसी भी प्राणीको साथ नहीं रहने दिया। पर छीनकर नष्टकर बदलेमें ऐसी वस्तु दी कि जिसकी तुलनामें विश्वकी समस्त लोभनीय वस्तु सर्वथा तुच्छ, अत्यन्त नगण्य है। वह वस्तु थी भगवान्‌का मंगलमय स्मरण। द्वापरके अन्तमें देवी कुंतीने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा था—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्याद पुनर्भव दर्शनम्॥

(भागवत् १।८।२५)

नाथ! मैं सुख-सम्पत्ति नहीं चाहती, ऐश्वर्य मुझे नहीं चाहिये, मेरे ऊपर तो सर्वथा सर्वत्र विपत्तिका पहाड़ ही टूटता रहे, दरिद्रता, दुःखमें ही मैं सनी रहूँ, जहाँ

---

* यहाँ परिशिष्टमें पृष्ठ सं० २६३ पर यह 'Detaintion order of Govt. of Bangal' पर दिया गया है।

जाऊँ वहीं विपत्तिका जाल मेरे सामने विछा हो। ऐसा होनेसे ही हे जगद्गुरो! मैं तुम्हें देख पाऊँगी, तुम्हारा वह मुख देख पाऊँगी जिसके देखनेसे मैं फिर अपना जन्मोत्सव देखने नहीं आऊँगी। नाथ! दुःखमें ही तुम्हारा स्मरण होगा, आर्तकंठसे तुम्हें पुकार सकूँगी, निरन्तर मेरा मन तुम्हारे स्मरणसे पूर्ण रहेगा, इसलिये नाथ! मुझे दुःख दो मुझे सुख नहीं चाहिये।

राजमाता कुंती जिसकी प्राप्तिके लिये, विपत्तिका वरदान माँगती है, वह परम दुर्लभ वस्तु भगवान्ने चरित्रनायकको बिना माँगे ही दी। चरित्रनायकका मन भगवद्स्मरण, भगवद्भजनकी ओर झुकने लगा। शिमलापालका वह गृह संत-कुटीर बन गया, दूरतक फैली हुई वृक्षावली मानो वन प्रान्त था, पास बहनेवाली पयस्विनी सुरसरि धारा थीं। चरित्रनायकने सोचा— जीवनकी धारा मंगलमय प्रभुने ही पलटी है, अब उसीमें बह चलूँ, धाराके विरुद्ध जा भी नहीं सकूँगा।

एक दिन था जब कलकत्तेके जन-कोलाहलमें बैठकर चरित्रनायक देश-सेवाकी नाना कल्पनाएँ करते। जागनेसे सोनेतक विभिन्न कार्योंमें व्यस्त रहते। मनकी वृत्तियाँ वायुकी तरह चंचल रहकर हिमालयके उत्तुंग शिखरसे कुमारी अंतरीपकी अगाध जलराशितक, काश्मीरके झलझल करते हुए सरोवरसे ब्रह्मदेशके गिरिपुंजतक दौड़ती रहती। स्वतंत्र भारतकी जय-पताका लिये मन ही मन ये एक क्षणमें सारे भारतकी परिक्रमा कर आते परन्तु आज शिमलापालमें सब कुछ बदल गया। यहाँ वह जनकोलाहल नहीं, देश-सेवाकी अनेक योजनायें नहीं, देश प्रेममें मतवाला रहनेवाला वह चंचल मन भी नहीं। यहाँ तो नीरव एकान्त देश है, एक ही योजना है, और एक ही योजनाको लिये हुए मन धीरे-धीरे भगवत् चरणारविन्दोंमें विलीन होता जा रहा है। वहाँकी दिनचर्या कुछ और थी, यहाँकी कुछ और है। शिमलापालकी दिनचर्या सुनाते हुए चरित्रनायकने एक बार सत्संगमें कहा था—

मैं प्रातःकाल बहुत शीघ्र उठ जाता था। उठते ही माला हाथमें लेकर, "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे" महामंत्रका जप प्रारम्भ कर देता। जब ३० माला जप हो जाता तो उठता, उठकर शौच जाता। शौचादिसे निवृत्त होकर नदीपर स्नान करता। वहीं सन्ध्या करता। फिर घर आकर भगवान्का ध्यान करता। शिमलापाल जाते समय रवि वर्माका बनाया हुआ भगवान् विष्णुका एक चित्र मैं साथ लेता गया था। इसीके सहारे ध्यान करता। मैं नियमित रूपसे प्रतिदिन बड़ी लगनसे प्रातः, मध्याह्न एवं रात्रि, तीन बार ध्यान करता। सब मिलाकर ध्यानके ६-७ घंटे होते थे। प्रातःकाल ध्यान समाप्त होनेके बाद भोजन करता। भोजन हाथसे बनाना पड़ता था। पहले पहल हाथसे बनानेमें बड़ा कष्ट प्रतीत हुआ, पर आगे चलकर अभ्यास हो गया।

जब मैंने ध्यान करना आरम्भ किया था तो पहले-पहले तो मन घबड़ाता, कभी-कभी ध्यान छोड़ देनेकी भी इच्छा होती पर मैंने अभ्यास बंद नहीं किया। अभ्यास चालू रखनेसे मुझे ध्यान भी होने लगा। अब मुझे नेत्र बंद किये हुए ही क्रमशः भगवान्के हाथ पैर शंख, चक्र आदि कोई अंग या आयुध दीखता। फिर नेत्र बंद किये हुए ही मुझे सारा स्वरूप दीखने लगा। इसके पहले मैं ऐसा किया करता था कि कुछ देर नेत्र खुला रखकर भगवान्की मूर्ति देखता रहता। फिर नेत्र बंद करके उस मूर्तिको भावनासे देखनेका अभ्यास करता। इस अभ्यास से मुझे नेत्र बंद किये हुए भावनाके द्वारा भगवान्की स्पष्ट मूर्ति दीखने लग गयी। जब नेत्र बंद रखकर स्पष्ट ध्यान होने लग गया तो फिर मैंने आँखें खुली रखकर ध्यानका अभ्यास प्रारम्भ किया। इसमें भी पूर्ण सफलता मिली तथा मुझे खुली आँखसे भगवान् श्रीविष्णुका विग्रह स्पष्ट दीखने लग गया। अब मेरी जहाँ दृष्टि जाती वहीं स्पष्ट रूपसे भगवान् विष्णुकी चतुर्भुज मूर्ति भावनाके द्वारा दीखती। गाय, वृक्ष, मकान, मनुष्य आदि प्रत्येकके स्थानपर भगवान् ही दीखने लग गये। उस समय भजन, ध्यान करनेकी मेरी जैसी लगन थी, अभ्यासकी वैसी लगन (यद्यपि मेरी स्थिति पहलेसे बदल गयी है) आज तक नहीं हुई। ऐसा लगातार चार महीने अभ्यास करनेसे मुझे मानसिक पूजा करनेका भी अभ्यास हो गया था।

भगवन्नामका जप भी प्राय: निरन्तर करता। कोई मेरे पास आ जाता तो मनमें डरने लगता कि कहीं स्मरण छूट न जाय। वह जबतक बोलता रहता तबतक मैं नामजप करता रहता। जब मुझे उत्तर देनेकी आवश्यकता होती तो कमसे कम शब्दोंमें उत्तर देकर फिर नामजप करने लग जाता। उस समय एक-एक क्षणका हिसाब रखनेकी इच्छा होती थी।

जब एकादशी आती तो उस दिन निर्जल, निराहार रहकर एकादशीव्रत रखता। एकादशीके दिन प्रात:काल उठकर जपमें लग जाता। जबतक एक लाख नामकी संख्या पूर्ण न होती तबतक जप करता रहता। एक लाख पूर्ण होनेपर शौच आदिके लिये जाता। एकादशी तो निराहार होती थी, अन्य दिनोंमें भी कई बार एक लाख नामजप कर लेनेपर प्रात:कालका भोजन करता।

साथमें स्वाध्याय भी खूब करता था। एक पोस्टमास्टरके पास उपनिषद्, पुराण, महाप्रभु चैतन्यकी जीवनी एवं अन्यान्य वैष्णव ग्रन्थ बंगलामें थे। उनसे लेकर उनका खूब स्वाध्याय करता। उस समय यदि किसीके प्रति मेरा रुखा व्यवहार हो जाता तो मुझे पश्चात्ताप होता। एक दिन मैं स्वाध्याय कर रहा था। एक सज्जन मुझसे चाकू माँगने आये। स्वाध्यायमें विघ्न होनेके भयसे मैंने कह दिया—अभी नहीं, पीछे ले जाना। वे तो चले गये पर उनके जानेके बाद मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। मैं उनके पास गया। उनसे क्षमा माँगी तथा अत्यन्त प्रेमका व्यवहार करके सन्तुष्ट किया।

मेरा स्वास्थ्य देखनेके लिये कुछ दिनोंके अंतरसे सरकारकी ओरसे सिविल सर्जन आया करता था। इसी ग्राममें एक अंत्यजके लड़केको जंघेके पास बड़ा फोड़ा हो गया था। जब सिविल सर्जन मुझे देखने आया तो लोग उस लड़केको उसके पास ले आये। दया परवश सिविल सर्जनने मुझसे कहा कि यदि तुम मेरे पीछे इसकी मरहम पट्टी करना स्वीकार कर लो तो मैं चीरा लगा दूँ। मैंने स्वीकार कर लिया और उसने चीरा लगा दिया। मैं उसके घरपर जाकर प्रति दिन मरहम पट्टी (Dressing) कर दिया करता। जब उसे आराम हो गया तब सिविल सर्जनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने मुझसे कहा कि यहाँ कोई डॉक्टर नहीं है, यदि तुम लोगोंको दवा दे दिया करो तो बड़ी सेवा हो सकती है। मैंने स्वीकार कर लिया। और, सिविल सर्जनने जाकर होमियोपैथिक किताब एवं कुछ होमियोपैथिक दवाईकी शीशियाँ भेज दीं। मैं पुस्तकके आधारपर रोगके लक्षण मिलाकर दवा देने लग गया। लोगोंको बहुत लाभ हुआ। एक बार वहाँ हैजा फैला था। मैंने ६१ मनुष्योंकी चिकित्सा की थी उसमें ५८ को आराम हुआ।

एक मुसलमान गूँगा था। गूंगापन बहुत वर्षोंका था। उसकी स्त्री या माँ उसे लेकर मेरे पास उसके लिये दवा लेने आयी। मैं निर्णय नहीं कर पा रहा था कि इसे क्या दवा दूँ। उधर मेरी दृष्टि गयी। मैंने देखा, वह ऊँघ रहा है। इस ऊघनेका लक्षण मिलाकर मैंने तीन पुड़िया दवाकी बाँध दी। तीन दिन बाद वह बोलता हुआ आया। लोगोंकी भीड़ उसके साथ थी। लोग बँधाई देने आये थे, पर मैं आश्चर्यमें पड़कर सोच रहा था कि सर्वथा भगवद्-इच्छासे ही इसकी दवाका संयोग लग गया। मैंने इस आशासे दवा ही नहीं दी थी कि इसका गूँगापन मिटे। हाँ, औरोंको दवा देते समय उनके रोगकी निवृत्तिकी आशासे ही दवा देता था। तथा लोगोंको लाभ भी बहुत होता था। दीन, दु:खी रोगियोंकी इस तुच्छ सेवाका मुझे कई गुना अधिक पुरस्कार उनके स्नेहपूर्ण सच्चे आशीर्वादके रूपमें मिलता। इस आशीर्वादसे सचमुच ही मेरे अन्त:करणकी शुद्धि हुई।

इसी बीचमें मुझे दादीकी अस्वस्थताका समाचार मिला। मेरे मनमें दादीसे मिलनेकी इच्छा हुई। मैंने सरकारको इसके लिये तार दिया पर उत्तरमें मिलनेकी अस्वीकृति आ गयी। मेरे पास तो एक ही बल था। मैं भगवान्‌से सकाम प्रार्थना करने लगा। भक्तवत्सल भगवान्‌ने प्रार्थना सुनी। अस्वीकृति आनेके बाद मैंने सरकारसे फिर प्रार्थना की पर सरकारका अपने आप तार आया कि जाकर मिल सकते हो। आश्चर्य यह था कि सरकारकी ओरसे यह तार मुझे ठीक उसी समय दिया गया था, जिस समय मैं भगवान्‌से इस बातके लिये प्रार्थना कर रहा था।

भगवत्प्रार्थनापर मेरा बड़ा विश्वास है। पहले मैं राजनीतिक एवं सामाजिक जीवनमें भी दिनभरमें भोलापनवश

न जाने कितनी बार सकाम प्रार्थना करता। अशरणशरण दीनबंधु प्रभु भी जिन प्रार्थनाओंकी पूर्तिमें मेरा अहित था उनके अतिरिक्त मेरी प्रत्येक प्रार्थना सुनते। इस विषयमें मुझे बहुत बड़े-बड़े अनुभव हैं।

मुझे वहाँ रहते हुए ८०/- मासिक सरकारकी ओरसे खर्चके लिये मिलता था। इसमें मैं ५०/- दादीके पास भेज देता। तीसमें मकान भाड़ा, नौकर आदिका वेतन देकर बीस मेरे पास बचते जिसे मैं भोजन-वस्त्रमें खर्च कर देता।

शिमलापाल जानेके दस महीनों बाद सरकारने मेरी पत्नी (रामदेई) को मेरे पास रहनेकी आज्ञा दे दी थी। उसके आ जानेपर भोजन वही बनाती तथा दवाकी पुड़िया बाँधा करती। शेष समय खूब भजन करती। उस समय उसे भी भगवान् विष्णुके ध्यानका अच्छा अभ्यास हो गया था।

शिमलापालमें मैं कुल १९॥ महीने रहा। ६ बजे सन्ध्यासे प्रातः ६ बजे तक घरसे बाहर जानेका निषेध था।*

पाठक! उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट है कि चरित्र नायकके ये लगभग पौने दो वर्ष कितने सात्त्विक ढंगसे बीते। निरन्तर भगवत्स्मरण, भगवद्भजनसे मनकी सारी चञ्चलता धुल चुकी थी। दीक्षा संस्कारके समय हृदयमें भगवद्भजनका, भगवद्स्मरणकी चाहका जो अंकुर उग आया था वह इतने दिनों बाद पल्लवित हो सका। इनके पल्लवित होनेमें अबतक अनेकों बाधाएँ थीं। नवयौवनकी उमंगें थीं; कर्त्तव्य-पालनका अंहकार था, संसारका अपना होनेका विश्वास था—इस प्रकार अनेकों बोझोंसे दबा हुआ वह अंकुर उगकर भी बढ़ न सका था। पर अब सूत्रधारने अपना कोमल हाथ बढ़ाकर बोझको हटा दिया था, हृदय हलका हो गया था। चरित्रनायक अलग खड़े हुए, अपने बोझोंसे अपनेको अलग अनुभव करते हुए सोच रहे थे—मेरी उमंगें, मेरा कर्त्तव्यका अहंकार सब मिथ्या है। मैं अपनी उमंगोंको मूर्त नहीं बना सकता, कर्त्तव्य पालनकी सामर्थ्य भी मेरे अन्दर नहीं है तथा जिसे मैं अपना मानता था, वह भी अपना नहीं। अपना होता तो वह मुझसे भय नहीं करता। अपनेसे अपनेको तो भय नहीं होना चाहिये। पर मुझे नजरबंद हुए देखकर तो सभी डरते थे। सचमुच यही बात है, मैंने व्यर्थके बोझ हृदयपर लाद रखे थे। पर ये उतर कैसे गये? किसने इन्हें उतार फेंक दिया? ओह! उस अशरणशरण दीनबंधुने ही उतारा था। बंदी होकर मैं छटपटा रहा था, व्याकुल था, शांतिके लिये हाथ फैलाता था, पर किसीने जब शान्ति नहीं दी तो मैंने उनका नाम लेकर पुकारा और वे तत्क्षण आये थे, उन्होंने मेरे हृदयपर का सारा बोझ हर लिया था, मेरी सारी थकान मेट दी थी। तो अब? बस, अब उन्हीं दीनबन्धुके चरणोंमें ही न्यौछावर होना है, अब उन्हीं पद्म-पलाश लोचन श्रीहरिके चरणोंमें आश्रय लेकर निहाल होना है।

चरित्रनायकके इस निश्चयने हृदयमें प्रेमकी मंदाकिनी बहा दी। इस मंदाकिनीकी धारामें सिक्त होकर वह भगवत्स्मरणका अंकुर वेगसे पनपने लगा। चरित्रनायकका जीवन भगवन्मय होने लग गया। अस्तु,

पौने दो वर्ष शिमलापालमें रहकर चरित्रनायकने सचमुच ही एक नयी गृहस्थी बसा ली थी। सरल ग्रामवासियोंके ये अपनेसे अपने बन गये थे। उनके सुख- दुःखमें हाथ बँटाकर इन्होंने उनके हृदयपर अधिकार कर लिया था। बाहरके मित्रोंकी सहानुभूति तो उसी दिन बंद हो चुकी थी जिस दिन ये पकड़े गये। इनके पकड़े जानेके बाद इनके परिवारसे किसी प्रकारका सम्बन्ध रखनेमें लोग डरते थे। एक श्रीजयदयालजी गोयन्दका ही ऐसे थे जो जब कभी भी कलकत्ते जाते तो निर्भय होकर इनकी दादीसे मिलते, सुख-दुःख पूछते और जो आवश्यक सहायता होती, वह सहर्ष देते। श्रीजयदयालजीके ममेरे भाई श्रीशिवबक्सरायजी बाजोरियाकी भी चरित्रनायकके प्रति सहानुभूति रहती। बाँकुड़ासे शिमलापाल केवल १८ कोस ही दूर रहनेके कारण स्नेहवश शिवबक्सरायजी बैलगाड़ीपर चावल तथा अन्य कुछ आवश्यक सामान चरित्रनायकके पास भेजा करते।

* ये बातें गोरखपुरमें ज्येष्ठ कृष्ण ६ सं० १९८९ वि० के दिन (२६ मई १९३२) हनुमानप्रसादजी (चरित्रनायक) ने सुनायी थीं। लेखक वहीं उपस्थित था।

इन दो (श्रीजयदयालजी एवं शिवबक्सरायजी) के अतिरिक्त और सबोंने सम्बन्ध तोड़-सा लिया था। उनकी पूर्ति मानो ये शिमलापालके ग्रामवासी कर रहे थे, अपने अंतस्तलका स्नेह देकर चरित्रनायकको मानो यह संकेत कर रहे थे—वीर! छोटी सी मित्र मण्डलीके क्षुद्र स्रोतके सूखनेसे क्या हुआ? तुम्हारी मित्र मण्डली, तुम्हारा परिवार तो कई गुना बढ़ गया।

दिन जाते देर नहीं लगती। सं० १९७५ वि० का बसंत था। आम्रशाखाओंपर कोयल 'कूहूं' 'कुहूं' करती हुई अपनी धुनमें मस्त थी। चरित्रनायक अपनी धुनमें मस्त थे।

एक दिन सरकारकी ओरसे आदेश आया कि यदि आगेसे किसी भी राजनीतिमें भाग न लें—ऐसा चरित्रनायक लिख दें तो सरकार छोड़ सकती है। यद्यपि राजनीतिमें भाग लेनेका चरित्रनायकका विचार नहीं था। परंतु किसी बन्धनमें नहीं रह सकते थे। वैशाख शुक्ल १४ के दिनकी बात है। सरकारकी ओरसे आज्ञा आयी- नजरबंदीकी अवधि समाप्त कर दी गयी, पर तुम बंगालमें नहीं रह सकते, बंगालकी सीमामें प्रवेश भी नहीं कर सकते, बंगालसे बाहर चले जाओ। चरित्रनायकने आज्ञा सुनी, चरित्रनायककी पत्नी रामदेईने सुनी और सुनी शिमलापालके ग्रामवासियोंने। पर सुननेका प्रभाव तीनोंपर भिन्न-भिन्न ही हुआ। चरित्रनायक अपने अग्रिम कार्यक्रमकी बात सोचने लगे। रामदेवी आनन्दमें फूली हुई अपने बंधन मुक्त पतिको साथ लिये मन ही मन देश पहुँच गयी। तथा ग्रामवासी? शिशु, तरुण, वृद्ध सभी भौचक्केसे होकर अभूतपूर्व पीड़ाका अनुभव करने लगे। आह! जो प्रतिदिन हमारी साज-संभाल करता था, अपने हाथों, अपने हृदयके प्रेमसे सानकर दवा खिलाता था, जिसके पास अपना रोना सुना-सुनाकर हम हृदयको हलका करते थे, वह हनुमानप्रसाद आज जायेगा। हमलोगोंसे विदा होकर अपने देशमें जायेगा, अब अपने परिवारमें रहेगा। क्या यह उसका अपना देश नहीं था? हम उसके अपने परिवार नहीं थे? ओह! सचमुच हमलोग तो भूल ही गये थे। वह तो सरकारका बन्दी था। अब बंधन मुक्त होकर घर जा रहा है।

ग्रामवासियोंकी आँखोंमें आँसू बह रहे थे। चरित्रनायक हाथ फैला-फैलाकर आंतरिक स्नेहसे उन्हें हृदयसे लगाकर उनके आँसू पोछते थे। सामने बाँकुड़ा ले जानेके लिये बैलगाड़ी खड़ी थी। गद्‌गद् कंठसे सान्त्वना देते हुए चरित्रनायक पत्नीसहित गाड़ीपर सवार हुए। गाड़ी चली। आगे-आगे गाड़ी जा रही थी और पीछे-पीछे चल रहा था शिमलापालका जनसमूह। स्नेहार्द्र हृदयसे भावोंका स्रोत बहता हुआ चरित्रनायकके कंठदेशमें आकर रुकता जाता था। इसलिये वाणी अस्पष्ट हो गयी थी और हाथ जोड़े हुए चरित्रनायक संकेत कर रहे थे—भैया! बहुत दूर चले आये, अब लौट जाओ। अब आगे मत जाओ, कितनी दूर चलोगे? पर मानो गाड़ीकी धुरीसे उन ग्रामवासियोंका शरीर, मन, प्राण सब कुछ बंधा-सा था। धुरी घूमनेके साथ ही सब कुछ घूमता हुआ वे धुरीका अनुगमन कर रहे थे। शिमलापालसे कोससे भी अधिक दूर गाड़ी आ चुकी थी, पर ग्रामवासी पीछे-पीछे आ ही रहे थे। इस बार अपने हृदयका सारा साहस बटोरकर चरित्रनायक कुछ बोल पाये—मेरे प्यारे भाई! तुम लोगोंका यह स्नेह मेरे हृदय पर सदा अंकित रहेगा।.........इससे अधिक बोलनेकी सामर्थ्य न थी। पर इतने शब्द मानों मन्त्र थे, ग्रामवासी मंत्रमुग्धसे होकर चुपचाप खड़े हो गये। गाड़ी आगे बढ़ने लगी। कुछ देर बाद आँखोंसे ओझल हो गयी। निराश, खिन्न, उतरे हुए मुखको लेकर ग्रामवासी लौट रहे थे। उधर गाड़ी भी चिंतामग्न-सी हुई बाँकुड़ा स्टेशनकी ओर बढ़ रही थी। चरित्रनायक बाँकुड़ेसे सीधे रतनगढ़ (बीकानेर) चले आये। रामकौरको समाचार मिल चुका था। वह भी कलकत्तेसे सीधी रतनगढ़ पहुँची। रतनगढ़ पहुँचकर जिस समय पौत्रकी ओर दृष्टि गयी तथा पौत्रने जिस क्षण दादीके चरणोंमें माथा टेका उस क्षणका दृश्य देखने ही लायक था। दोनोंकी आँखें भरी हुई थीं, हृदय भरा हुआ था। भरी हुई आँखोंसे, भरे हुए हृदयसे निकली हुई रसधाराका अंतरिक्षमें एक मण्डल बन गया था। दर्शककी आँख इस मण्डलको देख न पाती थी पर इसके सम्पर्कमें आकर उनका हृदय भी बरबस भरता जा रहा था।

॥ श्रीहरिः ॥

ग्यारहवाँ पटल

बम्बईका जीवन

मुखका प्रतिविम्ब दर्पणमें मुखके अनुरूप ही होता है। वैसे ही जीवन भी वासनाके ठीक अनुरूप ही निर्मित होता है। जीव अनादिकालसे अनन्त योनियोंमें भ्रमण करता आ रहा है, पर यह भ्रमण यों ही अनियमित हो रहा है। ऐसी बात बिलकुल नहीं है। इस भ्रमणके अंतरालमें वासनाओंकी एक सुन्दर श्रेणी छिपी होती है। कल्पना करें, एक मनुष्य बैठा-बैठा सोच रहा है, मैं धनी हो जाऊँ, और नहीं तो लखपति ही बन जाता। कुछ देर सोचकर वह अन्य चिन्तनमें निमग्न हो जाता है। अब स्थूल दृष्टिसे विचारनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि मनमें धनकी बात आयी, चली गयी, इसमें रखा ही क्या है? पर ऐसी बात नहीं है। वह क्षणभरकी वासना ऊपरसे ही विलीन-सी दीखती है परन्तु वह तो अनंत वासना पुंजोंके पास जाकर स्थायीरूपसे बैठ जाती है। अनादिकालसे असंख्य जन्मार्जित वासनायें जिस मनमें संचित हैं, संचित हो रही हैं, वहीं जाकर यह भी संचित हो गयी। जीव भले भूल जाय कि मैंने अमुक समयमें अमुक वासनाको स्थान दिया था, पर वे तो अक्षुण्ण बनी रहती हैं, इतना ही नहीं मूर्त होनेका अवसर ढूँढ़ा करती है। भगवान्‌के मंगलमय विधानसे, असीम सुन्दर ढंगसे, व्यवस्थित क्रमसे इनके मूर्त होनेका अवसर भी आता है। भगवान्‌की अचिन्त्य लीलाशक्तिकी यह भी एक विशेषता ही है कि जीवकी क्षुद्रसे क्षुद्र वासनाकी भी वहाँ उपेक्षा नहीं की जाती। क्षुद्रतम वासनाओंकी पूर्तिका अवसर भी अचिन्त्य लीलाशक्तिके नियन्त्रणमें एक न एक दिन आता है। हाँ, यह सम्भव है कि तुरन्त न आकर एक, दो, पाँच, दस, सौ, हजार जन्मोंके बाद आवे। आज लखपति बननेकी क्षणभरकी वासनाकी पूर्तिका अवसर कल ही आ सकता है अथवा अगणित जन्मोंके बाद आ सकता है, पर आयेगा।

अवश्य ही इस नियमका एक अपवाद है। जीव जिस क्षण सचमुच भगवत् चरणोंमें समर्पित हो जाता है, या तत्त्व साक्षात्कार करके अपनी स्वतंत्र सत्ता खोकर भगवान्‌की अचिन्त्य, अनन्त, असीम, सर्वव्यापी चित्सत्तामें विलीन हो जाता है, उसी क्षण उसके अनादि जन्मार्जित वासना-पुंजमें आग लग जाती है। तत्क्षण वासनाकी वह ढेर भस्म हो जाती है, इनका अत्यन्त अभाव हो जाता है। वासनाओंका नियंत्रण करनेवाली भगवान्‌की लीलाशक्ति इनपरसे अपना नियंत्रण उठा-सी लेती है। उठा-सी कहनेका तात्पर्य है कि वासनाओंका अभाव हो जानेके कारण वे वासना सम्बन्धी नियमोंके तो पार जा पहुँचते हैं, पर यह अर्थ नहीं है कि वासनाओंके नियंत्री भगवान्‌की लीलाशक्तिका भी अतिक्रमण कर गये हों। लीला शक्तिके क्षेत्रमें तो वे रहते ही हैं। अवश्य ही उनपर लीला शक्तिका नियंत्रण साधारण ढंगसे न होकर अत्यन्त अप्राकृत भगवदीय नियमोंसे होता है। उस नियंत्रणकी कल्पना प्राकृत मन, बुद्धिसे हो ही नहीं सकती। वह तो अप्राकृत मनसे ही अनुभव होता है। अस्तु,

जो भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित होते हैं वे तो सर्वथा अहंकार-शून्य होकर भगवान्‌के हाथका यंत्र हो जाते हैं। उनमें स्व-वासनाका अत्यन्त अभाव रहनेके कारण उनकी कोई भी चेष्टा अपनी वासनाकी पूर्तिके लिये होती ही नहीं, हो सकती नहीं। यही यदि कहा जाय कि जिन वासनाओंके आधार पर प्रारब्धका निर्माण हुआ था उनकी पूर्तिके लिये ही प्रारब्धानुसार प्रारब्ध शेषतक स्वतः क्रिया होती है तो यह ठीक नहीं क्योंकि शास्त्र कहते हैं कि भक्तके प्रारब्धका भी नाश हो जाता है। उसके प्रारब्ध रहते ही नहीं। अतः यह मानना पड़ता है कि पूर्ण रूपसे भगवत् चरणोंमें समर्पित हुए प्राणियोंके सम्बन्धमें वासना, वासनाके अनुरूप चेष्टा और उसके अनुरूप फल प्राप्तिका कोई प्रश्न ही नहीं बनता। वे

बडभागी प्राणी इस घेरेसे सर्वथा ऊपर उठे हुए होते हैं। उनका परिचालन ही अनियमित नियमोंसे होता है। पर जो भगवत् चरणोंमें पूर्ण समर्पित नहीं हैं, अभी समर्पणकी तैयारी कर रहे हैं, यहाँतक कि किसी प्रकार भी भक्तोचित भावसे भगवान्से यत्किंचित् जुड़ गये हैं, उनपर भी वासना सम्बन्धी नियमोंका नियंत्रण कुछ और ही ढंगसे होता है। यों तो जीव भगवान्से ही आया है, भगवान्में ही है, भगवान्में ही लीन होगा, इतना ही नहीं बल्कि स्वयं भगवान् ही जीवके रूपमें हैं। अत: जीव एवं भगवान्का नित्य, अच्छेद, अभेद्य संबन्ध है। पर जिस क्षण जीव भक्तोचित भावसे भगवान्के साथ किसी भी प्रकारसे जुड़ जाता है, उसी क्षणसे उसपर भगवान्की कृपाशक्ति काम करने लगती है। यह कृपाशक्ति लीलाशक्तिके साथ मिलकर जीवको वासना सम्बन्धी साधारण नियंत्रणसे ऊपर खींच लाती है। प्रत्येक क्षुद्रतम वासनाकी पूर्तिका अवसर आयेगा ही और तबतक यह जन्म-मरणका चक्र अनिवार्य रूपसे चलता रहेगा ही, यह नियम किसी प्रकारसे भगवान्के सम्पर्कमें आते ही समाप्त हो जाता है। उसपर तो कृपा शक्तिके संरक्षणमें लीलाशक्तिका नियंत्रण होता है तथा अमुक-अमुक वासनाओंकी पूर्ति होगी, अमुक अमुककी नहीं होगी। अमुक दिनतक पूर्ति होनेवाली वासनाओंकी पूर्ति करके वह वासनाहीन अन्त:करण बन जाय, इस प्रकारका एक नया ही विधान बनता है। इसी विधानसे ही उस बड़भागी जीवका संचालन होता है। वैसी ही परिस्थिति बन जाती है, वैसी ही चेष्टा होती है, और वह अज्ञातरूपसे भगवद्चरणोंकी ओर बढ़ता है।

यही बात हमारे चरित्रनायकके लिये हुई। ये भगवत् सम्पर्कमें आ चुके थे, उन प्रेमार्णव श्रीहरिके चरणकमलोंके चंचरीक बन चुके थे। अत: श्रीहरिकी कृपाशक्ति इन पर काम कर रही थी। कृपा शक्तिकी प्रेरणासे लीलाशक्तिने अनन्त योजन विस्तीर्ण भवपथकी सीमा बांध दी थी। कुछ ही दिन और उस पथपर चलना था, फिर मुड़कर श्रीहरिके अनन्त प्रेम पथका पथिक बनना था, इसलिये अनादि संचित वासनापुंजको भी कुतरकर काट-छाँट करके छोटा कर दिया गया था। प्रेम-पथके मोड़पर आनेके पूर्व ही वासनापूर्तिका खेल दिखा देना था, समय कम था और मोड़ निकट आ गया था। अत: शिमलापालका दृश्य समाप्त होते ही यह खेल प्रारम्भ कर दिया गया। कृपाशक्ति और लीलाशक्ति संकेत करने लगी और चरित्रनायक खेलने लगे।

चरित्रनायकने घर आकर देखा कि सब कुछ अव्यवस्थित हो गया है। आर्थिक अवस्था अत्यन्त खराब हो रही थी। घरमें कमानेवाले यही थे, अत: इनकी अनुपस्थितिमें व्यापार तो सर्वथा बन्द ही हो चुका था। शिमलापालसे छूटनेपर ये कलकत्ता जा भी नहीं सकते थे। जानेकी मनाही थी। इस परिस्थितिमें पहलेकी संचित क्षुद्र पूंजी ही आधार रह गयी थी। पर वह पूंजी ही कितनी? पहले तो खर्चेसे बचाकर ५०/- मासिक दादीको भेजते थे। इससे बड़ा सहारा था। पर अब तो वह भी बंद हो गया था। इसलिये एकाएक पारिवारिक जीवन-निर्वाहमें चरित्रनायक को विशेष कठिनाईका सामना करना पड़ा। साधारण ढंगसे जीवन निर्वाह हो रहा था। पर मनमें कोई दु:ख नहीं था श्रीहरिको रसोईकी सामग्री अर्पण करते तथा वह अमृतमय प्रसाद पाकर तृप्त हो जाते। पत्नी अनुकूल थी, माँ चुप थी, दादीकी सहिष्णुताका तो कहना ही क्या है। तीनों मिलकर दु:खके दिन हँसते-हँसते काटने लगे।

पर अब रतनगढ़का दृश्य बदलना था। श्रीजमनालालजी* बजाजकी ओरसे प्रेरणा होने लगी कि बम्बई चले आओ, बम्बईमें कामकाज शुरू कर दो। चरित्रनायकने हृदयमें विराजमान नारायणकी ओर देखा और विचारने लगे—बात तो ठीक है, आर्थिक अवस्था अत्यन्त गिरी हुई है, कुछ काम करना तो आवश्यक है। किन्तु भजन-स्मरणका क्या होगा? मन तो एक है, श्रीहरिमें लगा दूँ या धनोपार्जनमें।

विचारके इस कम्पनसे मानों इसी समय वासनाओंपर टँगी हुई यवनिका भी हिल उठी। भीतरसे नेत्रोंको चकाचौंध कर देनेवाली कोई वस्तु क्षणभरके लिये चमक पड़ी। चरित्रनायकने भीतर झाँककर देखना चाहा

* श्रीजमनालालजी बजाज एक परम देशभक्त थे। उस समयके नेताओंके आश्रयदाता थे। महात्मा गाँधी इन्हें अपना पुत्र मानते थे। चरित्रनायकका इनसे कलकत्तासे ही घनिष्ठ सम्बन्ध था।

कि किसकी चमक है। बस यही मौका था। सूत्रधारने यवनिका उठा दी—यह तो रजत-स्वर्णकी ढेर चमक रही है। एक बार उसकी ओर देखकर फिर पीछेकी ओर देखा। सूत्रधारने पीछेकी ओर भी एक नयी यवनिका गिरा रखी थी जिसपर मार्मिक चित्रण था, चरित्रनायककी वर्तमान आर्थिक दुरवस्थाका। चरित्रनायक खिचने लगे। उधर दृष्टि डालते ही चमचम करती हुई रजत-स्वर्णकी ढेर दीखती, इधर देखते तो परिवारकी दुरवस्थाका दृश्य था। हृदयस्थित सूत्रधारने प्रेरणा दी—देखते क्या हो? यह ढेर तुम्हारे लिये ही है, बढ़कर ले लो। यह प्रेरणा व्यर्थ करनेकी सामर्थ्य किसमें है? चरित्रनायकने निश्चय कर लिया कि अब तो ढ़ेरकी ओर बढ़ना है।

विचार निश्चय हो गया कि बम्बई चलना है, गिरी हुई आर्थिक दशाको सुधारनेके लिये नये सिरेसे कुछ काम करना अनिवार्य है। तिथि भी निश्चित हो गयी, मुहूर्त्त भी देख लिया गया तथा चरित्रनायक सं० १९७५ वि०के भाद्रमासमें रतनगढ़से बम्बई चले गये। वहाँ जाकर पहले गुलाबरायजी नेमाणीके साझेमें रूईकी दलालीका कार्य आरम्भ किया। तीन-चार मास यह काम करनेके बाद शेयरोंकी दलाली की ओर झुकाव हुआ और श्रीमदनलालजी चौधरीके साझेमें शेयरोंकी दलाली करने लगे। शेयरोंकी दलाली १२ महीने चली, पर घाटा-मुनाफा बराबर-सा ही चलता था। इसीलिये कुछ नया आयोजन आवश्यक हुआ। नया आयोजन श्रीजमनालालजी बजाजके कौटुम्बिक भाई श्रीगंगाविष्णुके साझेमें हुआ तथा गंगाविष्णु हनुमानप्रसादके नामसे शेयरोंकी दलाली करने लगे। इसमें भी लाभ कम नहीं हुआ। पर बम्बईकी रहन सहन साधारण न थी, तथा रामकौर जैसी मालकिन एवं चरित्रनायक जैसे पौत्रके घरमें दान पुण्यका खाता छोटा न था। अत: खर्च भी लाभके साथ-साथ चलता था। इसलिये पुन: कुछ नया काम चाहिये था ही। उसकी भी विधि बैठ गयी। सं० १९७७ वि० में सर्वश्री ताराचन्द घनश्यामदास फर्मके मालिक श्रीबालकृष्णलालजी एवं श्रीनिवासदासजी पोद्दारके साझेमें शेयरोंकी दलाली शुरू हुई। एस० डी० पोद्दारके नामसे दलाली होती थी। इसमें लाखों रुपये डूब गये। चरित्रनायकका निवासदासजी तथा बालकृष्णलालजीसे प्रेम बहुत था। नाटकके सूत्रधारने देखा जरा इस प्रेमकी भी परीक्षा होती चली जाय। फिर क्या था, एक साथ ही तीन लाख रुपये लोगोंमें लेने रह गये। चरित्रनायकके हृदयपर एक धक्का लगा। कोमल हृदय श्रीहरिको दया आ गयी। दो लाख तो आ गये पर एक लाख रह ही गये, नहीं आये। आते कैसे श्रीनिवासदासजीकी परीक्षा जो होनेवाली थी। उनके मुनीमोंने जाकर चरित्रनायककी चुगली की, उलटा सीधा समझाया, पर श्रीनिवासदासजी एवं बालकृष्णलालजीका प्रेम सच्चा ही था। वह झूठा न था। श्रीनिवासदासजीने कह दिया, मेरी सम्मतिसे सब कार्य हुए हैं, मैंने करवाये हैं, घाटा हुआ, हुआ। दोनों भाई परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये। अवश्य ही चरित्रनायकपर इस घाटेका तेज असर पड़ा। वे इस चिन्तासे रुग्ण हो गये। स्वास्थ्य सुधारके लिये बम्बईसे नासिक चले गये। इन्हीं दिनों श्रीजमनालालजी बजाजके साले श्रीचिरंजीलालजी जाजोदियाके साथ चिरंजीलाल हनुमानप्रसादके नामसे तीसी आदिके सट्टेकी दलाली, निजी व्यापार एवं आढ़तका काम भी प्रारम्भ हो गया था। यह काम जबतक बम्बई रहे तबतक चलता रहा।

जिस प्रकार धनकी वासना निवृत्त करनेके लिये व्यापारी जीवनका दृश्य बम्बईमें चल रहा था। उसी प्रकार अन्य दबी हुई वासनाओंका परिपाक भी आवश्यक था। चरित्रनायकने जबसे होश सँभाले तबसे देश-सेवा, समाज सेवाकी प्रबल इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही थी। यदि नजरबंदका प्रतिबंध बीचमें न आ जाता, तो न जाने उस इच्छाका मूर्तरूप अबतक क्या हो जाता। पर प्रतिबन्ध आया और वह इच्छा मानो अपनेको अत्यन्त फीकी अनुभव करती हुई श्रीहरिके चरणोंकी ओटमें जा छिपी थी। सचमुच श्रीहरिके चरणारविन्दकी ज्योति कुछ ऐसी ही विलक्षण और ऐसी ही सुन्दर होती है कि विश्वकी समस्त वस्तुओंका समस्त चाकचिक्य, समस्त वस्तुओंका समस्त सौन्दर्य एक साथ फीका पड़ जाता है। उन अरुण चरणोंकी होड़ कोई वस्तु कर नहीं सकती। इसीलिये देश, सेवा, समाज-सेवाकी पवित्र इच्छाका सौन्दर्य श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी ओटमें जा

छिपा। चरित्रनायकका मन उन चरणोंसे एकमेक होकर मत्त मधुपकी तरह सबकी सुधि बुधि भूल गया था। पर अब मनोवासनाकी बयार लगकर वे चरणारविन्द हिलने लगे, मन मधुप भी हिलने लगा, सोई हुई चेतना जाग गयी, स्वभाववश पुन: देशसेवा- समाजसेवाका मकरन्दपान करनेकी इच्छा भी जाग पड़ी और वह उनकी ओर उड़ पड़ा। चरित्रनायकके व्यापारिक जीवनके साथ पुन: सामाजिक और राजनैतिक जीवन भी चलने लगा। ये पुन: समाज सुधार एवं देशकी नीतिमें भाग लेने लगे। सं० १९७६ वि० में अ०भा० काग्रेस अधिवेशन पं० मोतीलाल नेहरूके सभापतित्वमें अमृतसरमें हुआ, उसमें ये सम्मिलित हुए। उस समय ये गरम दलके नेता श्री तिलक महाराजके अनुयायी थे। सं० १९७७ वि० के श्रावणमें लाला लाजपतरायजीके सभापतित्वमें अ०भा० कांग्रेसका विशेष अधिवेशन कलकत्तेमें हुआ। उसमें भी ये गये। (तबतक सरकारने बंगाल प्रवेशकी निषेधाज्ञा उठा ली थी।) सं० १९७७ में नागपुर कांग्रेसने सी विजयराघवाचार्यके सभापतित्वमें कुछ परिवर्तनके साथ असहयोग प्रस्तावको स्वीकार किया। इस अधिवेशनमें भी आप उपस्थित थे। सं० १९७८ में हकीम अजमलखाँके सभापतित्वमें अहमदाबादमें कांग्रेसका अधिवेश हुआ तो उसमें भी भाग लिया। पर कांग्रेसके साथ क्रियात्मक सहयोगकी यहींसे इति हो गयी। चरित्रनायककी आध्यात्मिक प्रवृत्ति ही इसमें कारण हुई। शिमलापालसे लौटनेपर यह दब अवश्य गयी थी, पर इसका मूल अत्यन्त गम्भीर था। और, इसीलिये ऊपर इतना बोझ रहनेपर भी यह अंदर-अंदर पनप रही थी। अपनी ओर खींच लेनेमें यह अब समर्थ हो चुकी थी। अस्तु

अब आप राजनैतिक प्रवृत्तिके साथ समाजकी प्रमुख संस्था अग्रवाल महासभाकी सेवा भी करने लगे थे। अ०भा० मारवाड़ी अग्रवाल महासभाके लिये श्रीरामलालजी गनेड़ीवालको सभापति बनाना था। ये स्वयं अपना व्यापारिक कार्य गौण करके उनकी सम्मति लेने हैदराबाद गये। ये सं० १९७६ वि० की बात है। सं० १९७७ में अ. भा. अग्रवाल महासभाका द्वितीय अधिवेशन अत्यधिक सफलतापूर्वक बम्बईमें सम्पन्न हुआ। उक्त संस्थाके बम्बई प्रांतीय शाखा मंत्रीके पदसे इन्होंने बहुमूल्य सेवायें की। महासभाके १९७८ वि० में होनेवाले कलकत्तेके तृतीय अधिवेशनमें तथा १९७९ वि० के इन्दौर वाले चतुर्थ अधिवेशनमें भी ये उपस्थित थे। संस्थाओंके अतिरिक्त ये स्वतंत्र सामाजिक सेवा भी बहुत करते थे। बचपनसे ही निर्भीकता इनमें थी ही। सं० १९७७ वि० के लगभग इन्होंने गुण्डोंसे कई स्त्रियोंकी सतीत्व रक्षा करके अनमोल सेवायें की।

बम्बई आकर काम प्रारम्भ करनेके दस महीने बाद ही एक बार इन्हें अपनी छोटी बहन अन्नपूर्णा बाईका ब्याह करनेके लिये बाँकुड़ा जाना पड़ा था। ब्याह आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी, सं० १९७६ वि० के दिन सम्पन्न हुआ। इस ब्याहके निमित्तसे भी जयदयालजीका सत्संग भी प्राप्त हो गया। लगातार कई दिनोंतक दोनोंके साथ रहनेका अवसर पहले नहीं आया था। इस बार तो दोनों पावन हृदयोंका सम्मेलन अत्यन्त निकटसे हो रहा था। दो हृदय किसी अचिन्त्य भगवद्भावोंका आदान-प्रदान कर रहे थे। सम्भव है, श्रीजयदयालजी अपने प्रियपात्रको पहचान गये हों, पर चरित्रनायक तो फ़िर भी जान नहीं पाये। अपने पथ-प्रदर्शकको अत्यन्त निकटसे देखकर भी पहचान न पाये। एक दिन इन्हींकी चरणरज आँखोंमें आँज कर श्रीहरिके चिन्मय विग्रहको साक्षात् देखूँगा, इस कल्पनाका आभासतक चरित्रनायकके मनमें उस समय उदय नहीं हुआ। वह केवल मात्र इतना ही जान पाये—ऐसे कोमल हृदयके प्राणी, आड़े समयमें काम आनेवाले दयार्द्र अंत:करणके प्राणी जगत्में कुछ विरले ही होंगे। श्रीजयदयालजीके प्रति चरित्रनायकका हृदय कृतज्ञतासे पूर्ण था। जब सबोंने डरकर साथ छोड़ दिया था, उस समय एक इन्होंने ही इनकी अनुपस्थितिमें इनके परिवारसे प्रेम निभाया था। चरित्रनायक इनसे मिलकर अघाते नहीं थे। जो हो, ब्याहका कार्य समाप्त करके कुछ दिन बाद ही बाँकुड़ासे बम्बई लौट आये।

इसी वर्ष सं० १९७६ वि.में ही बम्बईमें एक घटना हुई थी जिससे चरित्रनायकके मनमें श्रीभगवान् पर अत्यधिक विश्वास बढ़ा। यह घटना उनकी लेखनीसे ही आगे चलकर कल्याणमें प्रकाशित हुई है। ईश्वरांकके

परिशिष्टांकमें वे कहते हैं—

सन् १९१९ ई० की बात है। मैं बम्बईमें रहता था। रातको अपने फूफाजी श्रीलक्ष्मीचन्दजी लोहियाके घरपर जो बम्बईसे कुछ दूर वी.वी. एस.सी.आई. रेलवेके शांताक्रूज स्टेशनके पं० शिवदत्तरायजी वकीलके बंगलेमें रहते थे। मैं वहाँ जाकर खाया और सोया करता था। एक दिनकी बात है। रातको करीब ८ बजे थे। कृष्णपक्षकी अंधेरी रात थी। मैं लोकल ट्रेनसे जाकर शांताक्रूजके प्लेटफार्मपर उतरा। अब तो दोनों ओर प्लेटफार्म है, उस समय एक ही ओर था और रोशनीका भी प्रबन्ध नहीं था। न इंजनकी सर्चलाइट थी। श्रीशिवदत्तरायजीके बंगलेमें जानेके लिये रेलवे लाइन लाँघकर उस ओर जाना पड़ता था। मैंने बेवकूफी की। दौड़कर इंजनके सामनेसे लाइन पार करने चला। लोकल ट्रेन एक ही मिनट ठहरती है। मैं नया था, मैंने समझा गाड़ी छूटनेके पहले ही मैं लाइन पार कर जाऊँगा। परन्तु ज्यों ही मैंने लाइनपर पैर रखा त्यों ही गाड़ी छूट गयी, परंन्तु ईश्वरीय प्रेरणा और प्रबन्धसे उसी समय किसी अन्जान पुरुषने मेरा हाथ पकड़कर जोरसे खींच लिया। मैं दूसरी लाइनपर जाकर गिर पड़ा, गाड़ी सर्राटेसे निकल गयी। तीन काम एक साथ हुए—मेरा लाइन लाँघने जाना, गाड़ी छूटना और अज्ञात व्यक्ति द्वारा खींचे जाना। एक ही दो सेकेण्डके विलम्बमें मेरा शरीर चकना चूर हो जाता। परन्तु बचानेवाले प्रभुने उस अंधेरी रातमें उसी जगह पहले ही मुझे बचानेका प्रबन्ध कर रखा था। मैं थर-थर काँप रहा था, ईश्वरकी दयालुता पर मेरा हृदय गद्गद् हो रहा था। आँखोंसे आँसू बह रहे थे। मैंने स्टेशनके धुंधले प्रकाशमें देखा, एक नौजवान बोहरा मुसलमान खड़ा हँस रहा है और बड़े प्रेमसे कह रहा है—आइन्दा ऐसी गलती न करना, आज भगवान्ने तुम्हारे प्राण बचाये। मैंने मूक अभिनन्दन किया, कृतज्ञता प्रगट की। लाइनपर रोड़ोंमें गिरा था, पर दाहिने पैरमें एक रोड़ा जरा-सा गड़नेके सिवा मुझे कहीं चोट नहीं लगी। मैं दौड़कर घर चला गया और ईश्वरको याद करने लगा।

पाठकवृन्द! समदर्शी, अनन्त दयामय प्रभुने हम सबकी भी न जाने कैसे-कैसे कितनी बार रक्षा की होगी, अब भी करते हैं, पर हम अभागे प्राणी उनकी इस अयाचित अप्रत्याशित करुणाकी बात भूल जाते हैं, इन घटनाओंसे हमारे मनमें उनकी मधुर स्मृति नहीं जाग उठती। बल्कि कई तो यहाँतक कह बैठते हैं—अजी! यह अपने आप विधि बैठनेकी बात (Chance) है। पर यदि एक क्षणके लिये भी हम मस्तिष्ककी दौड़से अलग आकर हृदयकी अनुभूतिसे पूछते तो फिर मन उस करुणामयकी अयाचित करुणामें संदेह नहीं कर पाता। चरित्रनायक हृदयकी अनुभूतियोंका आदर करना जानते थे। इसीलिये उन्होंने इसे मस्तिष्क पर न तौलकर हृदयकी अनुभूतिसे परखा और आनन्दमें डूब गये।

ऊपर कहा भी जा चुका है कि अन्नपूर्णा बाई के ब्याहपर श्रीजयदयालजीके सम्पर्कमें चरित्रनायक कई दिन तक रहे थे। तबसे मन ही मन श्रीजयदयालजीके प्रति ये और खिंच गये थे। मिलनेकी भी इच्छा होती थी। इच्छाके अनुरूप संयोग भी लग गया। श्रीजमनालालजी बजाज श्रीजयदयालजीसे मिलने चक्रधरपुर जा रहे थे। उन्हींके साथ ये भी हो लिये। इस बारका इनका चक्रधरपुरका आना मतलबसे खाली नहीं था। इनकी दृष्टिसे नहीं, नाटकके सूत्रधारकी दृष्टिसे। क्योंकि कृपा वर्षा होनेवाली ही थी। मालीको उद्यानका लता संवेष्ठित वृक्षावलीसे घेरा (बाड़) निर्माण करना था। उसके लिये बीज बोया था। दूसरे शब्दोंमें चरित्रनायकपर अब भगवद्कृपाकी उद्दामवर्षा होनेवाली थी। उस कृपा-नीरका पूर्ण सदुपयोग हो इसके लिये ज्ञान और भक्तिकी बाड़ चरित्रनायकके अंत:करणमें श्रीजयदयालजीको अब लगा ही देनी थी। इसलिये इस मिलनमें श्रीजयदयालजीने अपने दो लेख—त्यागसे भगवत्प्राप्ति एवं प्रेमभक्तिप्रकाशकी भाषा संशोधन कर देनेके लिये इन्हें कहा। त्यागसे भगवत्प्राप्ति, ज्ञान एवं प्रेमभक्ति प्रकाश, भक्तिका मानो बीजारोपण था। अबतकके भक्तिभाव तो अपने स्वभावके दान थे, अब मानों आचार्यकी भक्ति सम्पत्ति शिष्यको दी जानेवाली थी और यह उसका उपक्रम था। अत: चरित्रनायकने उसकी भाषा सुधार दी तथा कुछ दिन चक्रधरपुर रहकर बम्बई लौट आये। यह सं० १९७७ वि. के श्रावणकी बात है। इसी वर्ष मार्गशीर्षके महीनेमें बम्बईमें इनके तृतीय पुत्रका रामदेईके उदरसे जन्म हुआ था।

॥ श्रीहरि: ॥

बारहवाँ पटल

पुन: भक्तिभावका उद्रेक

चरित्रनायकके अतीव धन-उपार्जनका ही परिणाम उनका बम्बईका व्यापारिक जीवन था, इसमें कोई सन्देह नहीं। लाखों रुपये कमाये, लाखों खोये और खुले हाथ याचकोंको रुपये लुटाये। इस प्रकार उस वासनाको मूर्त होनेका अवसर मिल गया। इधर न जाने कितने जन्मोंसे देशकी दुर्दशा देखते रहे थे, समाजका अध:पतन देखकर रो चुके थे। इससे मनमें सर्वस्व त्यागकर समाज एवं देशकी सेवाका भाव इस जीवनके बचपनसे ही जाग उठा था। यह भाव मनतक ही सीमित न रहकर शरीरको भी कार्यक्षेत्रमें घसीट ले गया। यदि शिमलापालमें ये नजरबन्द न होते तो शरीर संभवत: देशप्रेमके आवेशमें फाँसीके तख्तेकी भेंट हो जाता। पर ऐसा नहीं हुआ। साथ ही प्राकृतिक नियमोंमें भी कुछ हेरफेर-सा हो गया। प्राय: यह देखा जाता है कि किसी प्रवृत्तिमें बाधा आनेसे वह प्रवृत्ति कई गुनी तेज होकर सामने आती है। किन्तु बाधा पाकर इनकी देश सेवा, समाजसेवाकी प्रवृत्ति बढ़ी नहीं। इतना ही नहीं, धनेच्छाके नियमोंमें भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि अतिक्रमण हुआ। क्योंकि यह देखा जाता है कि आज जिसके पास सौ है, वह हजारकी वासना करने लगता है, हजार होते ही उसका मन लाखपर चलता है, तथा लाख होते ही वह करोड़का स्वप्न देखता है। इन्होंने भी लाखों रुपये कमाये थे। अत: करोड़पति बननेकी वासना ही इनमें जागनी चाहिये थी पर यह भी नहीं हुआ। फिर इसमें कारण क्या है? धनोपार्जनकी प्रवृत्ति भी शिथिल पड़ने लगी। देशसेवा, समाजसेवाका उत्साह भी कम होने लगा। कुछ न कुछ विशेष कारण होना ही चाहिये। इसका उत्तर यह है कि इस कारणका संकेत पाठक पहले पा चुके हैं। बिलकुल जैसा प्राकृतिक नियम इन इच्छाओंके सम्बन्धमें चलता है, इनके जीवनमें भी चलता है, ये भी ठीक उन रंगोंमें पूर्णरूपसे उत्तरोत्तर रँगते ही चले जाते। पर बीचमें भगवच्चरणोंकी वासना जाग पड़ी। यह भगवद् चरणोंकी वासना इतनी विलक्षण इतनी बलवती होती है कि अपने साथ किसीको रहने नहीं देती सबको खाकर अकेली बच जाती है। इसके एक बार उदय होनेपर फिर वासना जगत्के सारे अन्य नियम कुछ के कुछ हो जाते हैं। वासना जगत्के ही नहीं, उसके लिये स्थूल प्रकृतिके भी नियम बदल जाते हैं। यहाँतक कि आवश्यकता होनेपर उसके लिये विष अमृत हो जाता है, आग शीतल हो जाती है, पाषाण तरल बन जाता है, काँटे फूल बन जाते हैं। ऐसी विचित्र यह भगवच्चरणोंकी वासना होती है। यह आई कि जगत्, जगत्के नियम सभी कुछका कुछ हो जाता है। चरित्रनायकके जीवनमें भी इसी भगवद्वासनाने ही उलट- पुलट मचाया। इसीने जीवनका मानचित्र पलट दिया था। अन्तर सुप्त अनेक वासनायें न जाने कबसे पड़ी थी, सबको एक-एक करके पूर्ण करनेमें तो न जाने कितने जीवन धारण करने पड़ते। इसलिये सबका संक्षेप करके केवल तीन वासनाएँ रहने दी गयीं और उनके जीवनकी भी अवधि बाँध दी गयी। भगवद्रस प्रकट होनेके लिये सर्वथा वासनाहीन अन्त:करण आवश्यक है। इसलिये भगवद्रसके संगमकी ओर बढ़ती हुई जीवन-धाराको कुछ समयके लिये मोड़ दिया गया। धाराका मुख सीधे न करके तिरछे कर दिया गया जिससे उन तीन वासनाओंके क्षुद्र स्रोत इसमें मिल सकें और संगमके आनेके पूर्व ही अपना अस्तित्व खो बैठें। शिमलापालमें पौने दो वर्ष धारा अत्यन्त वेगसे सीधे भगवद्रसके संगमकी ओर बढ़ी। वहाँसे आनेके बाद वासनाके स्रोतकी ओर मुड़कर बहने लगी। पर अब स्रोत इसमें एक-मेक हो चुके थे, जीवनधाराकी स्वाभाविक गतिमें अपनी स्वतंत्रता खो चुके थे। चरित्रनायककी धन-इच्छा तथा देश-सेवा, समाज-सेवाकी इच्छा अब कोई जीवनसे स्वतंत्र स्थान रखनेवाली वस्तु नहीं रह

गयी थी। ये इच्छाएँ अब जीवनसे घुल मिल गयी थीं। इसलिये अब जीवनधाराका पुन: भगवद्रसकी ओर सीधे मुड़ जाना आवश्यक हो गया था। इसी मोड़का उपक्रम भिवानीके भक्त श्रीलक्ष्मीनारायणजीके मिलनेसे हुआ।

श्रीलक्ष्मीनारायणजी नवद्वीपके भक्त श्रीरामकरणजीके अनुयायी थे। नवद्वीप एवं भगवन्नामसे एक विशेष सम्बन्ध है। ४०० वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो गया। महाप्रभु चैतन्यदेव नवद्वीपकी गलियोंमें अपनी मंडलीके साथ कीर्त्तन करते हुए घूमते थे। सुन्दर केशराशि कन्धोंपर झूलती रहती, दोनों हाथ भावावेशमें ऊपर उठे रहते, आँखोंसे अजस्त्र अश्रुधारा बहती रहती, तथा मुखसे अविराम ध्वनि निकलती रहती—बोलो हरे कृष्ण, हरे राम; बोलो हरे कृष्ण हरे राम। पीछे-पीछे हजारों भक्त भी तुमुल ध्वनिसे स्वरमें स्वर मिलाकर बोलते—बोलो हरे कृष्ण, हरे राम, बोलो हरे कृष्ण हरे राम। सैकड़ों साथी खोल, करताल झाँझ लेकर मंडलाकार खड़े हो जाते, बीचमें प्रभु नृत्य करते। यह हरे कृष्ण हरे राम पदका नृत्य इतना मनोहारी होता कि जो देखता वही बरबस नाच उठता। यहाँतक कि नवद्वीपके वृक्षलता एवं सुरसरिकी धारामें यह तुमुल कीर्त्तन प्रतिध्वनित हो जाता और ऐसा प्रतीत होता मानो नवद्वीपका अणु-अणु नृत्य करते हुए प्रभुके स्वरमें स्वर मिलाकर गा रहा है—बोलो हरे कृष्ण, हरे राम; बोलो हरे कृष्ण हरे राम। इसके पश्चात् महाप्रभु जब नवद्वीपसे बिदा लेकर संन्यास लेने चले गये तो नवद्वीपमें हाहाकार मच गया। भक्त मण्डलीके करुण-क्रन्दनसे आकाश विदीर्ण होने लगा। नवद्वीपके प्राण तो महाप्रभु थे। प्राणके चले जानेपर बहुत वर्षोंतक शवकी तरह चेतना-शून्य नवद्वीप पड़ा रहा। फिर जब महाप्रभुके आदेशसे नित्यानन्द महाप्रभु गौड़देश लौटे तब कहीं जाकर नवद्वीप चैतन्य हुआ। मानो, महाप्रभुने गौड़में, नवद्वीपमें प्राण संचार करनेके लिये ही अपनी द्वितीय मूर्ति नित्यानंद महाप्रभुको भेजा था। पर लीलाका समय पूर्ण होते ही महाप्रभु चैतन्य भी अन्तर्धान हो गये और उसके बाद नित्यानन्द महाप्रभु भी। हाँ, अपने पीछे भगवत्प्रेममें पागलकी एक टोली छोड़ गये। जो सब कुछ भूलकर नवद्वीपकी गलियोंमें रोते हुए पुकारती फिरती थी—बोलो हरे कृष्ण हरे राम, भजो निताई गौर राधेश्याम। आज यद्यपि वह पागलोंकी टोली नवद्वीपमें नहीं है, पर वंश परम्परा प्राप्त पागलपनका असर, हरिनाम मत्तताका असर आज भी नवद्वीपमें वर्तमान है। आज भी नवद्वीपमें उन पागलोंके वंशज हैं और उनपर एक पवित्र नशा छाया रहता है। प्रत्येक निर्मल अन्त:करणका प्राणी आज भी यह बात नवद्वीपमें स्पष्ट अनुभव कर सकता है। जो कुतर्क छोड़कर सरलचित्तसे इन पागलोंके वंशजोंसे सम्पर्क जोड़ता है उनपर तो हरिनामके पागलपनका कुछ-न-कुछ असर आये बिना रह नहीं सकता। यही कारण था कि भक्त लक्ष्मीनारायणजी जबसे नवद्वीपवासी भक्त रामकरणजीके सम्पर्कमें आये तबसे उनपर हरिनामकी मत्तताका असर हो गया था। उनपर हरिनाम प्रचारका आवेश-सा चढ़ गया था और वे जगह-जगह घूमकर हरिनामका प्रचार किया करते। हरिनाम प्रचार करनेके लिये ही वे सं० १९७८ वि० में बम्बई आये थे। बम्बईमें श्रीरामकृष्णजी डालमियासे भक्त श्रीलक्ष्मीनारायणजीका परिचय था तथा रामकृष्णजी डालमिया चरित्रनायकके घनिष्ट मित्रोंमेंसे एक थे। आगे चलकर यह मित्रता यहाँतक बढ़ी कि रामकृष्णजी डालमिया एवं चरित्रनायक मानों सहोदर भाई हों। इसीलिये मित्रके प्रति सच्ची मित्रता निभाते हुए श्रीरामकृष्णजी डालमियाने लक्ष्मीनारायणजीको चरित्रनायकसे मिलाया। बस, मिलनेकी देर थी फिर तो असर होना अनिवार्य ही था। चरित्रनायकके भजनके वे प्रबल संस्कार नष्ट थोड़े ही हो गये थे, वे तो सूत्रधारकी इच्छासे ही कुछ कालके लिये छिपा दिये गये थे। अब उद्देश्य पूर्ण हो चुका था, लीला शक्तिने पर्दा हटा दिया। भक्त लक्ष्मीनारायणजीके मुखसे नि:सृत श्रीकृष्णचन्द्रकी गुणगाथा बेरोक अन्तस्तलमें जा पहुँची। जहाँ भजनका प्रशान्त सागर लहरा रहा था तथा चन्द्रदर्शनसे जो दशा इस सागरकी होती है, वही श्रीकृष्णचन्द्रके नाम-गुण दर्शनसे भजन सागरकी हुई। भजनका सागर उमड़ पड़ा, नामकी उत्ताल तरंगें उठने लगीं। चरित्रनायकके मन, प्राण, वाणी, शरीर सब इसमें डूब गये। फिर वही सत्संग, भजन, कीर्त्तनका प्रवाह जीवनको जगत्की

ओरसे मोड़कर अनंत पथकी ओर बहा ले चला। बह चलनेमें भाई रामकृष्ण डालमियाने सहायता ही की।

उन दिनों रामकृष्णजी डालमियाके विचार बड़े भक्तिपरक एवं ज्ञानपरक थे। व्यापारिक जीवनमें रहकर भी उनका मन उत्तरोत्तर संसारसे हटकर भगवान्की ओर मुड़ता जा रहा था। सत्संग भजनमें रुचि रहती, कीर्त्तन भी करते थे। जब कभी भी इनकी चरित्रनायकसे बातें होतीं, परमार्थ सम्बन्धी ही होतीं। आगे चलकर तो कुछ समयके लिये ये संसारसे इतने विरक्त हो गये थे कि संन्यास लेनेकी तैयारी करने लगे। चरित्रनायकके प्रति ऐकान्तिक सद्भाव होनेके कारण इन्होंने इनसे संन्यास लेनेकी आज्ञा माँगी, पर चरित्रनायकने वैराग्यका आधार कच्चा देखकर सन्यास लेनेसे इन्हें रोक दिया। कालके प्रवाहमें श्रीडालमियाजीके विचार बहकर कहाँसे कहाँ चले गये हैं। यह पंक्तियाँ जिस समय लिखी जा रही हैं उस समय आज उनके सामाजिक, धार्मिक विचारोंमें काफी परिवर्तन हो गया है। स्थूल दृष्टिसे विचारनेसे यह प्रतीत होता है मानो श्रीडालमियाजी अपने सिद्धान्तसे बहुत नीचे गिर गये हैं, पर जिन्हें अन्तर्दृष्टि प्राप्त है, वे स्पष्ट देखते हैं कि बिलकुल सब कुछ नियमित ही हो रहा है। भगवान्के मंगलमय विधानसे ही इनकी छिपी वासनाओंको खुलकर खेलनेका अवसर दिया गया है। इसके बाद एक दिन यह दृश्य पलटेगा ही। अस्तु, एक बात और है। भले आज उनका जीवन भजनमय न हो, भोगमय ही हो, फिर भी आज भी उनमें कई गुण हैं, जिन्हें देखकर निष्पक्ष व्यक्ति आनन्दसे मुग्ध ही हो जायगा। जिस समय ये चरित्रनायकके साथ बम्बईमें थे, उस समयका तो कहना ही क्या है ? वास्तवमें इनके संगसे चरित्रनायकको भजन-सत्संगमें प्रोत्साहन मिला था। भक्त लक्ष्मीनारायणजीसे मिलानेका इनका ऋण तो चरित्रनायक पर सदा रहेगा ही।

सं० १९७८ वि. के माघ या फाल्गुन मासमें पुनः साधना आरम्भ हुई थी और इसीके लगभग चरित्रनायकके तृतीय पुत्रकी मृत्यु हुई। चौदह महीनेके लिये ही यह पुत्र सम्बन्ध जोड़ने आया था। चरित्रनायकके पवित्रवंशमें अपना नाम लिखकर मानो लौट गया। चरित्रनायकने पुत्रकी इस मृत्युपर कैसा अनुभव किया, यह कहा नहीं जा सकता, पर जैसा भक्त नरसीने सैकड़ों वर्ष पूर्व अपने पुत्र वियोगके अवसरपर गाया था—'भली थयूं भागी जंजाल, सुखे भजिस्यू श्रीगोपाल।'* इस पदकी अन्तिम अर्द्धाली चरित्रनायक पर पूर्णरूपसे चरितार्थ हुई। पुत्र यदि जीवित रहता तो बहुत सम्भव था, भजनके प्रवाहकी पुनः सीधे बहनेमें कुछ न कुछ बाधा देता। वह नहीं रहा, इसलिये चरित्रनायक और भी निश्चिन्त चित्तसे प्रियतम प्रभुकी ओर बढ़ चले। पर ये गृहस्थ थे, संसार-त्यागी फकीर नहीं। इसलिये इन्हें गृहस्थोचित कार्यकी सभी सम्भाल रखनी पड़ती थी। भजनमें मन रखते हुए ही संसार भी सँभालना पड़ता था। ब्याह-शादी, लेन-देन सब कुछ ही करना पड़ता था। अब छोटी बहन चंदाबाईका विवाह करने रामगढ़ (राजपूताना) जाना था। सपरिवार वहाँ गये। ज्येष्ठ शुक्ला ६ सं० १९७९ के दिन विवाह सम्पन्न हुआ।卐 किन्तु यह विवाह परिवारके पहले बहुतसे सम्पन्न हुए विवाहोंसे कुछ निराला-सा था। पहलेके विवाहोंमें स्त्रियाँ अपने मनमाने गीत गाती थी। देशकी जैसी प्रथा थी उसके अनुसार गीत गाये जाते थे, पर इस विवाहमें चरित्रनायकके स्वरचित्त बहुतसे गीत गाये गये। चरित्रनायकने "मारवाड़ी धार्मिक गीत"* शीर्षककी एक छोटीसी पुस्तक लिखी थी। उसमें मारवाड़ी भाषाके कई तरहके पद हैं। उन पदोंको स्त्रियोंने समय-समयपर बड़े प्रेमसे गाया। सबसे बड़ी बात यह हुई कि लक्ष्मणगढ़ निवासी श्रीरामनामके आढ़तिया जैसे संतकी उपस्थितिसे इस विवाहमें एक नयी चहल-पहल मच गयी। संसारमें विद्वत्ताकी कमी नहीं, पर सर्वथा अनपढ़ होकर इतना भजनानन्दी तथा

---

* अच्छा हुआ जंजाल टूट गया अब सुखसे गोपालका भजन करूँगा।

卐 बाई चंदाका विवाह श्री चिरंजीलालजी गोयनकासे सम्पन्न हुआ था।

* ये पद चरित्रनायक द्वारा रचित ग्रन्थ 'पद-रत्नाकर' में छप गये हैं।

देशके कोने-कोनेमें घूमकर रामनामकी माला लिखवानेवाले रामनामके आढ़तिया जैसे संत बहुत कम होंगे। आढ़तियाजीने सचमुच ही भजनका मर्म समझा था। भजनका क्या प्रभाव होता है, यह भी उनके जीवनसे प्रत्यक्ष था। जब उनके जवान पुत्रकी मृत्यु हुई तो बड़े प्रेमसे करताल बजाते हुए शवके साथ चले। लोगोंने समझा शायद पागल हो गये हों। पर बात ऐसी न थी। वे सर्वथा अपने आंतरिक आह्लादसे ही कीर्त्तन करते जा रहे थे। जब लोगोंको ज्ञात हुआ कि यह पूरे होश हवाशमें रहकर ही कीर्त्तन कर रहा है तो एकसे रहा नहीं गया। उसने कहा, भगतजी यह समय दूसरा है, आपको चुप रहना चाहिये। भगतजी भला कब चुप रहनेवाले थे। उन्होंने हँसकर जवाब दिया। अरे! उसी दिनकी तो बात है जब मैं कीर्त्तन करते हुए, करताल बजाते हुए इसे ब्याहने ले गया था, अब भगवान्‌के घर जाते हुए इसके साथ कीर्त्तन करते हुए जा रहा हूँ तो कौन-सी बुरी बात कर रहा हूँ? लोग उत्तर सुनकर चुप हो गये। बड़े ही प्रसन्नचित्तसे शवका संस्कार करके घर लौट आये। देशकी प्रथाके अनुसार रोती हुई स्त्रियाँ सहानुभूति प्रगट करने आ रही थीं। इन्होंने क्या किया कि लंगोटा बाँध लिया और लगे आँगनमें कीर्त्तन करके नाचने। स्त्रियाँ इन्हें नाचते देखकर चुप होकर धीरेसे लौट जातीं। बारह दिनोंतक इनका यही क्रम रहा। जब भी देखते कोई स्त्री रोती हुई आ रही है कि ये खड़े होकर नाचने लगते। स्त्री बिचारी रोना बंद कर देती। श्राद्ध होनेतक ये धूमधामसे कीर्त्तन करते रहे। फिर रामनामकी आढ़त करते हुए घूमने लगे। अभिमान इन्हें छू नहीं गया था। पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसे नेतासे लेकर साधारण दीनहीन ग्रामीण तकसे समान प्रेमभावसे मिलते और सबके सामने बही रख देते। बहीमें रुपयाका चन्दा नहीं था, केवल राम नामका। बस, अपना नाम लिख दो, हस्ताक्षर कर दो कि मैं रामनाम लूँगा। बस, मेरे आढ़तिया हो गये। उनका नाम इसीसे रामनामका आढतिया पड़ा था। ऐसे प्रसन्नचित्त भजनानन्दी संतकी उपस्थितिसे चंदा बाईके ब्याहकी शोभा विलक्षण हो गयी। इसमें कहना ही क्या है! चरित्रनायकका संकेत पाकर आढ़तियाजी मौजमें भरकर भजन गाते, गीत गाते तथा वर-वधूके परिवारके लोग एवं अन्य नगर निवासी सुनते और आनन्दसे मुग्ध हो जाते। इस प्रकार ब्याहकी चहल-पहल इस बार नई ही रही। ब्याह हो जानेके बाद ब्याहकी मिठाई बाँटी गयी। मिठाईके साथ-साथ धार्मिक पुस्तकें भी दी गयीं। इन सबसे अवकाश पाकर चरित्रनायक रतनगढ़ आये। यहाँ कुछ दिन ही रहकर आषाढ़के महीनेमें अपने ममेरे भाई रामेश्वरजी बाजोरियाको साथ लेकर बम्बईके लिये चल पड़े। रास्तेमें अपने मित्र दानचन्दजी चोपड़ासे मिलनेके लिये सुजानगढ़ ठहरकर फिर बम्बई जा पहुँचे।

भजनका क्रम तो चल ही रहा था। यहाँ आनेसे और भी लगनसे जुट पड़े। उस समय ये नाम-जप खूब करते थे इसी समय पुन: एक ऐसी घटना हुई जिससे इनका भगवान्‌पर और भी विश्वास बढ़ा। इन्हें अनुभव हुआ कि सचमुच ही भगवान् जीवोंकी कितनी सँभाल रखते हैं। आगेसे आगे सारी व्यवस्था ठीक रखते हैं। आवश्यकता होते ही जीवके पास उनकी असीम करुणा भरी सहायता आ पहुँचती है। बिना प्रार्थना किये ही, ऐसे ही उनकी सहायता मिलती है। फिर प्रार्थना करनेपर मिले, इसमें तो कहना ही क्या है। जो हो घटना यह हुई थी—एक गुजराती सज्जनको फाटकेमें बड़ा घाटा लगा। उस समय उसे कोई सहायक नहीं मिला। ये उसके परिचित थे। इनके पास आकर करुण हृदयसे उसने अपनी सारी परिस्थिति बता दी तथा २७०००/- उधार माँगे। दयासे पूर्ण इनका हृदय आरम्भसे ही था। भजनके प्रभावसे और भी कोमल होता जा रहा था। इन्होंने बिना अपने सांझीदारसे परामर्श किये ही एक मुश्त २७०००/- रोकड़में लिखे बिना ही उसे अपने रोकड़ियेसे दिला दिये। रुपये लेकर वह चला गया। पर जिस दिन रुपये वापस देनेका वचन दे गया था परिस्थितिवश उस दिन रुपये लौटा न सका। इधर दूसरे दिन ही सांझीदार द्वारा रोकड़ सँभालनेकी बात थी। न तो इन्होंने कोई बेईमानी की थी, न उस गुजराती सज्जनके

मनमें ही कोई बेईमानी थी, पर परिस्थिति ऐसी हो गयी थी कि दूसरे दिन रोकड़ सँभालते समय इन रुपयोंके सम्बन्धमें इनके पास कोई उत्तर न था। सच-सच बतला देनेपर भी इनपर साझीदारको विश्वास उस समय न होता और ये बेईमान सिद्ध हो जाते। इन सब बातोंको सोचकर इनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो गया। २७०००/- कहींसे उधार मिलनेका भी ढंग नहीं था। अत: सर्वथा उद्विग्न चित्तसे ये दुकानसे बाहर निकल पड़े! निरुद्देश्य चले जा रहे थे, मुखसे भगवन्नामकी रट लग रही थी। दो-तीन मील पैदल चले गये। यह भी ज्ञान नहीं था कि किस पथसे किस तरफ जा रहा हूँ। हठात् एक मित्रसे भेंट हो गयी। मित्रने पूछा—उदास क्यों हो, कहाँ जा रहे हो? इन्होंने कहा यों ही। मित्रने आग्रहसे पूछा, बताओ बात क्या है? इन्होंने बतला दिया कि २७०००/ – की जरूरत है। उस मित्रने सहानुभूति प्रगट करते हुए कहा कि मेरे आज रुपये आनेवाले थे, चलो बैंकमें पता लगा लूँ। यदि आये होंगे तो मैं तुम्हें दे दूँगा। इधर विधि ऐसी बैठी थी कि सामने ही इण्डिया बैंक था, दैवयोगसे दोनों मित्र ठीक बैंकके सामनेके फुटपाथपर मिले थे। अत: १ मिनटके अंदर ही बैंकमें जा पहुँचे। मित्रने जो सहानुभूति प्रगट की थी उसमें सर्वथा शिष्टाचार ही था तथा उसे यह निश्चय पता था कि आज तो बैंकमें मेरे रुपये नहीं ही आयेंगे। इस प्रकार रुपये भी देनें न पड़ेंगे तथा सुन्दर ढंगसे मित्रोचित्त व्यवहार भी निभ जायगा। पर दैवका विधान था, बैंकके बाबूसे पूछते ही उत्तर मिला कि अभी-अभी रुपये आये हैं तथा उतनी ही रकम आयी थी जितनी चरित्रनायकको आवश्यकता थी। बैंकके क्लर्कका स्पष्ट उत्तर वह चरित्रनायक मित्रके बगलमें खड़े होकर सुन चुके थे, अत: कोई बहाना भी चल नहीं सकता था। मित्रने असमंजसमें पड़कर उतने रुपयेका चेक काट दिया। रुपये मिल गये। रुपये लेकर इन्होंने अपनी दूकानकी रोकड़में जमा करा दिया। इनकी प्रतिष्ठा बच गयी। कुछ दिन बाद उस गुजराती सज्जनने भी रुपये लौटा दिये और उन्होंने भी अपने मित्रको रुपये दे दिये।

भगवान्‌की यह अप्रत्याशित आशा पाकर इनका रोम-रोम कृतज्ञतासे भर गया। अशरण-शरण किस सुन्दर ढंगसे सारी व्यवस्था बैठा देते हैं, यह देखकर आश्चर्यमें डूब गये। तरह-तरहसे अनेकों बार भगवान्‌की कृपाकी अनुभूति ये कर चुके थे। इससे भगवत् निष्ठाका पलड़ा बोझल होता हुआ उत्तरोत्तर झुकता जा रहा था। इस बारकी अनुभूतिमें तो वह धरतीमें जा लगा। अब जीवनकी दिनचर्या यह थी—आवश्यकता भर कमसे कम बोलनेके बाद जीभ तो श्रीभगवन्नामका उच्चारण करती रहती, और मन भगवच्चिन्तन करता रहता। चिन्तनके प्रभावसे अंत:करणमें दैन्यका संचार होने लगा। दैन्यसे अन्त:करण जब लबालब भर जाता तो सारा शरीर चंचल हो उठता। हाथ भी चंचल हो जाते। वह दैन्य पद-रचनाके रुपमें निकलने लगता। दैन्यसे भरी हुई धमनियोंसे जुड़ी रहनेके कारण लेखनी मानों अपनेआप चलने लगती और लिखा जाने लगता—

अब हरि! एक भरोसो तेरो।
नहिं कछु साधन ज्ञान भगति को, नहिं विराग उर हेरो॥
अघ ढोवत अघात नहिं कबहूँ, मन विषयन को चेरो।
इन्द्रिय सकल भोग रत संतत, बस न चलत कछु मेरो॥
काम-क्रोध-मद-लोभ सरिस अति प्रबल रिपुन ते घेरो।
परबस पर्‌यो, न गति निकसुन की, यद्यपि कलेश घनेरो॥
परखे सकल बंधु नहिं कोऊ विपद-कालको नेरो।
दीनदयाल दया करि राखहु, भव-जल बूड़त बेरो॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२८)

इस प्रकार पद रचना भी प्रारम्भ हो गयी। इन्हीं पदोंमें चरित्रनायककी कुछ नवीन रचनायें मिलाकर आगे चलकर पत्र पुष्प शीर्षक (भजन-संग्रह ५) से एक छोटा सा संस्करण छापा गया।
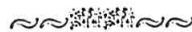
॥ श्रीहरि: ॥

तेरहवाँ पटल

श्रीजयदयालजीसे पुन: भेंट

श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया चरित्रनायकके उन मित्रोंमें से हैं जिन्हें सच्चा मित्र कहा जा सकता है। वास्तवमें सच्ची मित्रता वही है जो अंत तक निभे। किसी भी परिस्थितिकी अपेक्षा न रखकर हृदयका प्रेमिल भाव मित्रके प्रति उत्तरोत्तर बढ़ता रहे। मित्रका सुख अपना सुख, मित्रका दु:ख अपना दु:ख हो जाय, शरीरके अतिरिक्त मन-प्राण- आत्मा, सभी मित्रके मन-प्राण-आत्मामें मिलकर सर्वथा अभेद की अनुभूति होने लग जाय, यह सच्ची मित्रता है। पर आजकलकी मित्रता कुछ और ही हो गयी है, यह मित्रता एक क्षणमें हो जाती है और दूसरे क्षणमें ही टूट जाती है। जहाँ हमारे स्वार्थका किंचित् अंश भी पूर्ण होता दीखता है, वहाँ मित्रताका दम भरा जाने लगता है और स्वार्थमें किंचित् बाधा लगते ही मित्रताका बंधन भी शिथिल होने लग जाता है। पासमें संपत्ति है, संसारमें मान है, शरीरसे स्वस्थ है तबतक मित्रोंकी कमी आजकल होती ही नहीं। पर जहाँ धन, मान, स्वास्थ्य गया कि बिरले ही मुख मिलाकर दो बात करनेवाले बच जाते हैं, उस समय बहानेकी कोई कमी नहीं होती। कोई कहता है—अजी इसका चरित्र ठीक नहीं है, मैं इसे बहुत समझा चुका, पर यह मानता नहीं, इससे अलग रहना ही ठीक है। दूसरा कहता है—भाई! मुझे तो आशा ही नहीं थी कि यह इतना धोखेबाज है, मैंने इसके साथ जैसा व्यवहार किया है, वह इसका मन ही जानता है और बदलेमें इसने जैसा व्यवहार किया वह मैं ही जानता हूँ, अब कहनेसे क्या लाभ है? तीसरे जो अपनेको सच्चा मित्र सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हुये मित्रता छोड़ते हैं वे कहते हैं—उसके हितकी दृष्टिसे मुझे उपराम हो जाना ही उचित है। सारांश यह कि मित्रता छोड़ते समय मित्रमें कुछ न कुछ दोष सिद्ध करना, अपने अलग होनेका औचित्य सिद्ध कर देना तो आजकल साधारण-सी बात हो गयी है। मित्रताकी जैसी छीछालेदर आजके युगमें हो रही है, प्राचीन आर्य इतिहासमें वैसा एक उदाहरण भी ढूँढ़नेपर कठिनतासे ही मिलेगा।

पर आज ऐसे युगमें भी हम श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाकी मित्रताको मित्रताकी खरी कसौटीपर पूरा उतरते पाते हैं। चरित्रनायक और ये जब मिले थे, तबसे आज बहुत वर्ष हो गये। इतने वर्षोंमें कानोड़ियाजीके विचार, रहन-सहन, कार्यक्षेत्र सभी समयानुसार बदलते रहे हैं, पर एक वस्तु न बदली। वह वस्तु है, चरित्रनायकके प्रति मित्रताका भाव। कहा नहीं जा सकता, यह मित्रता आज किस स्तरमें पहुँची है, पर इतना तो कानोड़ियाजीके व्यवहारसे प्रत्यक्ष है, इन पंक्तियोंके लेखकका सर्वथा संशयहीन विश्वास है कि मित्रताके प्रथम क्षणसे लेकर आजतक उनका हृदय चरित्रनायकके प्रति प्रेमसे भरता आ रहा है। वे सचमुच ही चरित्रनायकके सुखको अपना सुख एवं इनके दु:खको अपना दु:ख मानते हैं। कानोड़ियाजीके जीवनमें अनेकों हेरफेर होनेपर भी ये दो बातें अक्षुण्ण बनी रहीं। लिलुआ-समितिके प्रधानके रूपमें पाठक इनका परिचय पा चुके हैं, तथा यह भी सुन चुके हैं कि चरित्रनायकने ही इन्हें श्रीजयदयालजीसे मिलाया। तबसे अबतककी इन दोनोंकी मित्रताका विवरण देने लगें तो सम्भवत: विषयान्तर हो जायगा। अत: और कुछ न लिखकर इतना सुनाकर ही संतोष कर रहा हूँ कि कानोड़ियाजीने अपनी मित्रता निभायी तथा आज भी निभा रहे हैं। मित्रको सुखी बनानेके लिये जो कुछ वे कर सकते थे, किया। इन्हीं सच्चे मित्र ज्वालाप्रसादजीकी मित्रताका यह फल था कि चरित्रनायक एवं श्रीजयदयालजी बम्बई में मिल सके।

बात यह हुई थी कि जबसे ज्वालाप्रसादजी श्रीजयदयालजीसे मिले तबसे इनका आकर्षण

श्रीजयदयालजीके प्रति बढ़ता ही गया। चरित्रनायकका श्रीजयदयालजीके प्रति जितना आकर्षण था उनसे बहुत अधिक श्री ज्वालाप्रसादजीका था। इनकी दृष्टिमें श्रीजयदयालजी कुछ और ही होते चले जाते थे। वे इनका सत्संग सुनते, इनसे बातें करते, अनेकों आध्यात्मिक प्रश्न करते हुए इनपर श्रीजयदयालजीकी पवित्रताका इतना गहरा असर पड़ने लगा कि ये उनपर लुट पड़े। मन-ही-मन अपने आपको श्रीजयदयालजीके प्रति न्यौछावर कर दिया। कानोड़ियाजीकी दृष्टिमें उस समय श्रीजयदयालजीसे बढ़कर आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न और कोई व्यक्ति नहीं था। इनके चरणोंमें अपने आपको देकर ये आनन्दमें आत्म विस्मृतसे होने लगे, पर यह आनन्द अकेले-अकेले लेना उन्हें खला। आनन्दमें सब कुछ भूलते हुए-से भी अपने मित्र हनुमानप्रसादको ये न भूल सके। श्रीजयदयालजीके सत्संगका आनन्द लेते समय मित्रकी बात याद आ ही गयी। पर मित्र तो पासमें थे नहीं। वे कलकत्तेमें और मित्र बम्बईमें। बम्बईसे मित्रको बुलाना भी उचित प्रतीत नहीं हुआ। अत: मनमें आया कि उसे लिख दूँ, वह स्वयं श्रीजयदयालजीको बम्बई बुलाने की चेष्टा करे। आग्रहपूर्ण चेष्टाकी उपेक्षा श्रीजयदयालजी नहीं कर सकते। वे बम्बई जायँगे और इस प्रकार मेरे मित्रको इनके सत्संगका लाभ प्राप्त होगा ही। मित्रके प्रति मेरे कर्तव्यकी यत्किंचित् पूर्ति भी होगी। विचार आनेकी ही देर थी। ज्वालाप्रसादजीने चरित्रनायकको बम्बई पत्र लिख ही डाला—चेष्टा करके श्रीजयदयालजीको बम्बई बुलाओ।

इधर बम्बई में मानों इस पत्रकी प्रतीक्षा ही थी। पत्र पाते ही श्रीजयदयालजीको बम्बई बुलानेके लिये चेष्टा होने लगी। चरित्रनायकने स्वयं तो पत्र और तार दिये ही, अपने मित्रोंसे भी तार-पत्र बार बार दिलवाकर श्रीजयदयालजीको बम्बई पधारनेके लिये प्रार्थना करवायी। प्रेमसे भरे हुए इस आग्रहकी उपेक्षा श्रीजयदयालजी कर ही कैसे सकते थे। वे बम्बई पधारे। सं० १९७१ की शरद् ऋतुमें बम्बई नगर जगत्के एक परमोच्च संतका दर्शन पाकर पवित्र हो गया। चरित्रनायकके उत्साहका क्या कहना। स्टेशनपर सैकड़ों प्रतिष्ठित मारवाड़ी सज्जनोंके साथ उमंगमें भरे हुए ये खड़े हुए थे। गाड़ी आयी। श्रीजयदयालजी अपने २०-२५ मित्रों के साथ उतरे। मिलनेके समय सबका रोम-रोम आनन्दसे पुलकित हो उठा। आनन्दमें मस्त सभी पैदल ही चल पड़े। यदि श्रीजयदयालजी गाड़ीमें बैठकर जाते, तो अधिक से अधिक ४-५ व्यक्ति ही उनके पास बैठकर उनके सुखमय सान्निध्यका सौभाग्य पाते। पर सच्चे संतमें विषमता होती ही नहीं। उनकी प्रत्येक क्रियामें ही सबके लिये समान भावसे प्रेम झरता है। यह नहीं है कि उसके लिये वे चेष्टा करते हैं। स्वाभाविक ही उनमें दिव्य समता निरन्तर बनी रहती है। श्रीजयदयालजी भी सबके थे, उनके भी सभी अपने थे, सबके प्रति उनके हृदयमें अगाध, अनन्त, असीम प्रेमका सागर लहरा रहा था। सभी उसमें अवगाहन कर रहे थे। वे भला किसीको प्रेमतरंग दान में भेद क्यों करते? क्या सागर भी कभी तरंग दानमें भेद करता है? नहीं तो। अत: श्रीजयदयालजीने भी पैदल ही चलना पसन्द किया। अपने आप जुलूस बन गया। मान-अपमानसे ऊपर उठे हुए संतके लिये जुलूसका किंचित्मात्र भी महत्व नहीं था। वे तो स्वाभाविक निजानन्द स्वरूपमें स्थित थे, उनका शरीरमात्र चिन्मयस्वरूपानंद सागरकी लहरियों पर नाचता हुआ प्रारब्धकी निर्धारित गतिसे आगे बढ़ता जा रहा था। जो हो, जुलूस सुखानन्दजीकी धर्मशालामें पहुँचा। यहीं श्रीजयदयालजी दस दिन ठहरे। अब सत्संग प्रारम्भ हुआ। धर्मशालामें ही पहला व्याख्यान निष्काम कर्मयोगपर हुआ। प्रत्येक शब्दमें ओज था। फिर नरनारायणजीके मन्दिरमें कीर्तन आरम्भ हुआ। इसके बाद सुखानन्दजीकी चाल (मकान)में नवधा भक्तिपर तथा कपड़ा कमेटीके हालमें यम-नियम पर मनोहारी सुन्दर विवेचन हुआ। इसके पश्चात् शिवनारायणजी नेमाणीकी बाड़ीके चौकमें गीता एवं स्त्री-धर्मपर प्रवचन हुआ। इस प्रकार दस दिन सत्संगकी पवित्र धारामें न जाने कितने प्राणियोंके अनन्त जन्मके कलुष बह गये। पर अब श्रीजयदयालजीके बम्बईसे लौटनेका समय भी आ गया था। इसलिये

सत्संग करते हुए श्रीजयदयालजीने एक मधुर सुन्दर विदाईकी याचना की। विदाई यह थी कि मेरे जानेके बाद आप लोग प्रतिदिन नियमसे सत्संग करें। श्रोतामण्डलमें पूर्ण जोश भरा था। श्रीजयदयालजीकी याचनाके उत्तरमें श्रीशिवनारायणजी नेमाणी बोल उठे—अवश्य सत्संग होना चाहिये, नित्यप्रति होना चाहिये। सत्संगके लिये स्थान तो मैं अपनी बाड़ीमें कम-से-कम ५ वर्षके लिये देता हूँ, पर वक्ताकी व्यवस्था आप करें। श्रीजयदयालजीने यह कहा कि श्रीज्वालाप्रसादजी कुछ दिनके लिये सत्संग करा सकते हैं। हाँ, एक बार तो उन्हें कलकत्ते जाना पड़ेगा, अपनी माँजीकी आज्ञा लेकर यहाँ फिर आ सकते हैं। आप लोग स्वयं सत्संगकी चेष्टा करें, वक्ता यहीं आप लोगोंमें से ही निकल आयेगा।

यह विचार होना था कि दूसरे दिन ही नेमाणीजीकी बाड़ीमें सत्संग भवनकी स्थापना हो गई। सत्संग भी प्रारम्भ हो गया। चरित्रनायकने पहले कुछ देर गीताके मूल श्लोकका पाठ कराया। पश्चात् श्रीजयदयालजीने गीताके दूसरे अध्यायसे अर्थसहित प्रवचन प्रारम्भ किया। श्रोतामण्डल आनन्दमें भर गया। अस्तु,

दस दिन बाद श्रीजयदयालजी बम्बईसे लौट आये। पर अपनी स्मृतिमें सत्संगकी धारा छोड़ गये। धारा चरित्रनायकको साथ लिये तेजीसे बह चली। चरित्रनायककी स्वयं रुचि थी ही। श्रीजयदयालजीके जानेके बाद वे स्वयं विस्तारसे गीतापर प्रवचन करने लगे। कई वर्षतक यह क्रम रहा। गीताकी दो आवृत्तियाँ पूरे विस्तारके साथ समाप्त हुईं। १६वें अध्यायके पहले तीन श्लोकोंपरकी व्याख्या तो लगातार कई महीनों तक रही। १८वें अध्यायके ६६वें श्लोकपर भी एक महीना प्रवचन हुआ। गीतापर आचार्योंके जो भाष्य हैं, टीकाएँ हैं, उन सबकी व्याख्या करके ये सुनाते, साथ ही श्लोकोंपर अपने मनपर नये-नये भावोंकी जो स्फूर्ति होती, उसका वर्णन भी करते जाते। सत्संग पहले तो दिनमें ही प्रारम्भ हुआ था पर कुछ ही दिनों बाद रात्रिमें भी होने लगा। उपस्थिति ६०-७० के लगभग रहती। रात्रिमें श्रीरामचरितमानसपर प्रवचन होने लगा। यह भी चरित्रनायक ही करते थे। प्रवचन आरम्भ करनेसे पहले प्रतिदिन 'वर्णानामर्थसंघानां' से लेकर 'वन्दौ गुरुपद कंज०' तक स्तुति करते, फिर प्रवचन आरम्भ होता। बड़ा ही गम्भीर, ओजस्वी, प्रभावपूर्ण विवेचन होता। श्रोता आनन्द- मुग्ध हो जाते। इन्हीं दिनों गांग्यासर (राजपुताना) निवासी पं० हरिबक्षजी जोशी रात्रिके सत्संगमें आने लगे थे। चरित्रनायकसे मित्रता हो गई थी। जोशीजी संस्कृतके सुन्दर-सुन्दर श्लोक सुनाया करते। उनसे श्रीकृष्ण भक्ति, श्रीकृष्ण प्रेमके अत्यन्त सुन्दर सरस श्लोक सुन-सुनकर चरित्रनायकको बड़ा सुख मिलता। गायनाचार्य पं० विष्णु दिगम्बरजी महाराजसे भी परिचय हो गया था। वे भी इनसे बड़ा प्रेम रखते। सं० १९८० वि० के पुरुषोत्तम मास (ज्येष्ठ) में तो प्रातः ७ से ९ बजेतक पं० विष्णु दिगम्बरजी महाराजकी ही कथा सत्संग भवनमें हुई। कथा रामायणकी थी तथा साज-बाज भजन-कीर्तनके सहित होती। कथाके समय रसका स्रोत बहता था, ऐसा स्रोत कि श्रोताका मन बरबस बह जाता। चरित्रनायकसे परिचय एवं प्रेम बढ़ जानेके कारण कभी-कभी विशेष आयोजनपर पं० विष्णु दिगम्बरजी महाराज रातमें भी सत्संग भवनमें पधारकर कथा कहते। समय-समयपर नगर कीर्तनका भी आयोजन होता। रामनवमी, जन्माष्टमी एवं छारंड़ी (होली)के अवसरपर वृहत् नगर कीर्तन निकलता। हजारों व्यक्ति सम्मिलित होते। चरित्रनायक कभी-कभी कीर्तनमें बेसुध हो जाते।

इस तरह भजन सत्संगका उत्साह दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा था। श्रीजयदयालजीके बंबई शुभागमनका ही यह परम शुभ परिणाम था। उनके परम पुनीत सत्संगसे चरित्रनायककी आध्यात्मिक साधना अतिशय उद्दीप्त हो उठी। उसका आलोक चारों ओर फैलने लगा। इस दिव्य आलोकमें कई भूले भटके पथभ्रष्ट प्राणी रास्ता पाकर घरकी ओर बढ़ने लगे। आगे-आगे चलने लगे चरित्रनायक और उनके पीछे सत्संगियोंका एक छोटा दल। यात्रियोंके इस दलको प्रसन्न होकर भगवान् देख रहे थे तथा देख रहीं थीं दादी रामकौर। अपने पौत्रकी इस दिनचर्यासे उसके आनन्दकी सीमा नहीं थी। एक

दिन था जब वह संतोंके पास जाकर पौत्रकी भिक्षा मांग रही थी। तबसे अबतकका सारा चित्र उनके सामने था। पौत्रके जीवन वृक्षका अंकुरित होना, पल्लवित पुष्पित होना वह देख चुकी थी। अब भजन स्मरणका इतना सुन्दर, इतना सरस फल लगते देखकर वह आत्मविस्मृत-सी होने लगी। अन्तर्हृदयमें स्थित प्रभुकी ओर उन्होंने देखा। प्रभु मानों बधाई दे रहे थे—रामकौर! ऐसा पौत्र पाकर तू धन्य हो गई है। बधाई स्वीकार करते हुए रामकौरने कहा—सत्य है नाथ! सर्वथा सत्य, मेरा जीवन भी सफल हो गया। पर अब स्वामिन्! आगे........ मेरे लिये .... क्या आदेश? उत्तरमें प्रभु केवल हँस रहे थे और सामनेकी यवनिका धीरे धीरे नीचे गिर रही थी। रामकौर समझ गईं—मेरा अभिनय समाप्त हो गया है। सचमुच रामकौरका अभिनय समाप्त हो गया था। यवनिका गिर गई। देवी रामकौर हँसती हुई नृसिंह जयन्तीके दिन वैशाख शुक्ला १३ सं० १९८० वि० में बंबईमें इस लोकसे अदृश्य हो गईं। सूत्रधारके चरणोंमें जा पहुँचीं। दर्शकोंने देखा—अदृश्य होते समय रामकौर प्रसन्न चित्रसे सोहं सोहं जप रही थीं। सोहंका जाप करते हुए अपने असली घरको चली गईं।

चरित्रनायकके परिवारकी कर्णधार थीं रामकौर। उनके चले जानेसे परिवार सूना-सा हो गया। पर चरित्रनायकके हृदयासनपर विश्वकर्णधार श्रीहरि विराज रहे थे। वे आश्वासन दे रहे थे—चिन्तित न हो—रामकौर मेरे पास विश्राम करने आ गई हैं, अब रामकौरकी जगह मैं ही तुम्हारा, तुम्हारे परिवारका कर्णधार रहूँगा। चरित्रनायकको शान्ति मिल गई। खूब उदारताके साथ धन व्यय करके रामकौरका श्राद्ध सम्पन्न हुआ। ऐसा प्रतीत होता था मानो यह श्राद्ध नहीं, कोई विशेष आनन्द महोत्सव है। बात भी यही थी। परमपद प्राप्त मंगलमय प्रभुके चरणोंमें पहुँची हुई देवी रामकौरके उपलक्ष्यमें किया हुआ यह आनन्दोत्सव ही था।

॥ श्रीहरि: ॥

चौदहवाँ पटल

निराकारकी साधना

भक्ति एवं ज्ञानकी बात करनी सहज है, पर भक्ति रसका अन्तःकरणमें सचमुच उदय हो जाना अथवा ब्रह्मानुभूति हो जाना कुछ और ही बात है। जबतक मनमें जगत्की सत्ता बनी हुई है तबतक न भक्ति है न सच्चा ज्ञान। सच्चे भक्तकी दृष्टिमें भगवान्के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं होगी और सच्चे ज्ञानीकी दृष्टिमें शुद्ध ब्रह्मके अतिरिक्त सबका अव्यक्ताभाव रहेगा ही। जगत्के लिये स्थान न तो भक्तके मनमें है न ज्ञानीके। यह बात दूसरी है कि साधन कालमें भक्तके लिये जगत्के अभावकी प्रक्रिया दूसरी होती है, ज्ञानीके लिये दूसरी। किस साधकके लिये कौन-सी प्रक्रिया अधिक उपयुक्त होगी, इसका निर्णय गुरुदेव करते हैं अथवा अन्तर्हृदयमें स्थित भगवान्। गुरुदेव एवं भगवान्में अन्तर नहीं है, लीला सौष्ठवके लिये ही भगवान् अपनेसे भिन्नकी भाँति गुप्त रूपमें साधकके सामने आते हैं, साधनाका पथ दिखाते हैं। कोई गुरुदेव विधिवत् दीक्षा देते हैं, विधिवत् साधनाका निर्देश करते हैं, कोई दीक्षा आदि कुछ भी नहीं देते, केवल पथका इशारा मात्र कर देते हैं और सो भी इस ढंगसे कि साधक इतना भी अनुभव नहीं कर पाता कि मेरा पथ प्रदर्शन हो रहा है। श्रीजयदयालजी बंबई आये, लौट गये। भक्त-मंडलीने, चरित्रनायकने यह समझा कि सत्संग कराया और लौट गये। पर गहराईसे विचारनेपर पता चलता है कि उन्होंने केवल सत्संगमात्र किया, इतनी ही बात नहीं, बल्कि एक सच्चे गुरु, सच्चे पथ प्रदर्शकका भी कर्तव्य पूरा कर गये और सो भी ऐसे सुन्दर ढंगसे कि किसीको कल्पनातक न हो सकी। उन्होंने चरित्रनायकके हृदयको फिर परखा। देखा, एक ओर तो इसके हृदयमें भक्तिरसका स्रोत झर रहा है और दूसरी ओर मस्तिष्कमें ज्ञानका निर्मल अरुणोदय हो रहा है। इन दोनोंके बीचमें जगत्के अस्तित्वका पर्दा है। इस पर्देके पास न तो स्रोत पहुंच पाया है जो इसे तोड़-फोड़कर, बहा ले जाकर मस्तिष्क एवं हृदयको एकमेक कर दे, न ज्ञानकी किरण ही पहुँच पायी है जो पर्देको चीरकर हृदयमें बहती हुई रसधारामें मिल जाय। अतः या तो स्रोतकी गति अत्यन्त तीक्ष्ण हो जाय या वे किरणें प्रखर होकर यहाँ आ पहुँचें, दो में एक करना ही है। श्रीजयदयालजीने यह भी देखा कि हृदयमें तो मल रह ही नहीं गया है, रसकी धारासे सारा मल बहकर कहाँसे कहाँ चला गया, पर मस्तिष्क पूरा मँजा हुआ नहीं है, किरणें पूर्ण उद्भासित नहीं हो पा रही हैं। अपने निज स्वरूप प्यारे हनुमानप्रसादको तो हमें सर्वांग-सुन्दर बनाना है। फिर क्यों नहीं मस्तिष्कको अपने हाथों ही माँज दूँ। मँजे हुए मस्तिष्कसे प्रतिविंबित होकर ज्ञानकी किरणें भी अपने आप जगत्के पर्देको चीरती हुई हृदयकी रसधारामें जा मिलेंगी। हाँ, इस प्रक्रियामें स्रोतका वेग एक बार रुक-सा जायगा। पर इससे क्या हुआ रुककर वह और भी गंभीर और वेगशाली हो जायगा। इस बार पथ पानेपर इतने प्रबल वेगसे उमड़ेगा कि सर्वत्र सभी कुछ रसमय हो जायगा। अस्तु, श्रीजयदयालजी मस्तिष्क माँजनेका ही इशारा कर गये। दीक्षा देकर उपदेशके रूपमें नहीं, सर्वथा अज्ञात ढंगसे सलाहके रूपमें। अवश्य ही भगवत्स्वरूप संतोंका ढंग, सलाह आदि सब कुछ अमोघ ही होता है। ठीक संकल्पके अनुरूप ही परिणाम होगा यह अनिवार्य ही है। इसलिये अब चरित्रनायक भगवान्के निर्विशेष स्वरूपकी उपासनामें जुट पड़े।

श्रीजयदयालजीसे निर्विशेष ब्रह्मकी धारणा-ध्यानकी बात भी दस दिनोंमें काफी हुई थी। उसीके अनुसार नियमित रूपसे ध्यान करने लगे। कितनी शीघ्रतासे एवं कितनी ऊँची स्थिति होने लग गई थी, इसका विवरण स्वयं चरित्रनायकके श्रीजयदयालजीके प्रति समय-समयपर लिखे हुए पत्रोंसे ही पता चलता है। वे लिखते हैं—

"मेरे ध्यानकी स्थिति ठीक मालूम होती है। कार्य करते समय समष्टि चेतनमें स्थिति निरन्तर बनी रहती है। यों भी शायद कहा जा सकता है कि कार्यकालमें क्रियासहित और जो कुछ भी भान होता है सो स्वप्नकी सृष्टिवत् होता है। साथ-ही-साथ यह प्रत्यक्ष-सा भास होने लगता है कि स्वप्नवत् भी नहीं है, वास्तवमें परमात्मा-ही-परमात्मा है। ऐसी स्थितिमें किसी-किसी समय बिल्कुल अचिन्त्य अवस्था हो जाती है, तब कार्यमें रुकावट भी आती है। ध्यान करते समय तो अब प्राय: बाहरके शब्दोंका भी खयाल नहीं रहता है। सारे आकारोंका अभाव करनेवाली वृत्ति भी शांत होकर अचिन्त्यके अस्तित्वमें विलीन हो जाती है। केवल बोधस्वरूप आनन्दघन ही रह जाता है। ध्यानके बाद और समय जो स्थिति रहती है वह ऊपर लिखी ही गई है। शरीरको या जगत्को सत्य मानकर तो शरीरमें स्थिति कभी होती ही नहीं। पर न मालूम क्यों जगत्की क्रियाओंमें, जो शरीरद्वारा होती हैं और जो समय-समयपर केवल स्वप्नकी सृष्टि या आकाशके तिरमिरोंके समान ही अपना अस्तित्व रखती हैं, उनसे भी उपराम होनेकी स्फुरणा होती है। ऐसी स्फुरणा होती है कि ये क्रियाएँ भी न हों तो अच्छा है। आपके साथ या किसी गंगा स्थित देशमें रहा जाय तो ठीक है—ऐसी स्फुरणा हुआ करती है। सम्भवत: ये सब अपनी कमजोरियाँ होंगी। पर ऐसी स्फुरणा होते समय भी जगत्का अस्तित्व स्वप्नवत् ही रहता है, यह अच्छी बात है। और जो कुछ मेरे लिये ठीक समझा जावे लिखना चाहिये। ध्यानकी स्थिति निरन्तर गाढ़ बनी रहे। जगत्की स्वप्नवत् स्फुरणा भी न हो।[१]"

".....रातमें सोनेके अतिरिक्त अन्य समयमें अधिकांश कालमें प्राय: इस प्रकारकी भावना हुआ करती है। किसी समय भूल हो जानेपर फिर तत्क्षण भावना जाग्रत हो जाती है। भूलकी स्थिति अधिक कालतक नहीं रहती। जगत् स्वप्नवत् मृगतृष्णाके जलवत् प्रतीत होने लग जाता है। इस प्रकारकी स्थिति है। हर्ष-शोकका विकार बहुत ही कम होता है। अब मेरे लिये जो कुछ ठीक समझा जावे उसी तरह करना चाहिये।"[२]

"........ पत्र लिखते समय आनन्दमय बोधस्वरूप परमात्मामें प्रत्यक्षवत् स्थिति है। कलमसे अक्षर लिखे जा रहे हैं, लिखनेकी जो स्फुरणा हो रही है, वह सच्चिदानंदके अन्तर्गत कल्पितरूपसे भास रही है। कभी-कभी यह भी नहीं भासती। एक परमात्माके अतिरिक्त किसी भी वस्तुके अस्तित्वका अनुभव नहीं रह जाता—मानो अनन्त जलके अथाह समुद्रमें एक बरफ पिण्डके आकारकी प्रतीति हो रही थी—वह भी मिट गई, केवल जल-ही-जल रह गया। ....फिर भी कलम चल रही है, लिखी जा रही है, हाँ बोधस्वरूप आनन्द, भूमानन्दमें, स्थितिमें कोई अन्तर आती हुई नहीं दीखती। स्थिति क्या है, वह लिखी नहीं जा सकती......बहुत देर बाद फिर लिखनेकी स्फुरणा-सी अनुमान होती है, पर भाव उसी तरह है........ इस समय जैसी स्थिति है, वह सदा एक-सी नहीं रहती....... बीच-बीचमें कुछ परिवर्तन-सी दीखती है, पर परिवर्तन कालमें भी अधिक-से-अधिक इतना ही परिवर्तन होता है—अचिन्त्यकी स्थितिसे एक प्रकारके अनुभवगम्य आनन्दकी स्थिति तथा इससे भी कुछ नीचे आनन्दकी स्थितिसे द्रष्टाकी स्थिति होती है। काम करते समय जिस समय विषयोंकी स्फुरणा होती है उस समय उस शरीरके सहित सारे विषय अपने समष्टि सर्वव्यापी चेतन स्वरूपमें कल्पित, भ्रमवत् ही प्रतीत होते हैं, पर प्रतीत अवश्य होते हैं। हाँ कभी-कभी इस तरह होते-होते विषयोंके अस्तित्वकी प्रतीति भी सर्वथा नष्ट हो जाती है। कोई वृत्ति अवशिष्ट नहीं रहती। एक अनुपम अनिर्वचनीय अप्रमेय आनन्दकी इन्द्रिय, मन, बुद्धिसे अतीतकी अवस्था प्राप्त हो जाती है। वह अवस्था पीछे अच्छी तरह स्मरण भी नहीं रहती, विस्मृत भी नहीं होती। शब्दोंमें उसका वर्णन नहीं कर पाता......।"[३]

१-यह पत्र सं० १९८० वि० के वैशाख मासमें दिया गया था।

२-यह पत्र सं० १९८० वि० के श्रावण शुक्लाको बम्बईसे बाँकुड़ा दिया गया था।

३-यह पत्र सं० १९८० वि० के कार्तिक कृष्णमें बम्बईसे बाँकुड़ा दिया गया था।

उपर्युक्त पत्रोंके विवरणसे यह स्पष्ट है कि ज्ञानकी बातें चरित्रनायकके लिये केवल सुनने-सुनानेकी चीज नहीं रही थी, बल्कि सचमुच ही अन्तस्थलमें जा पहुँची थी, उन बातोंने मनमें घर कर लिया था। जगत् उनके लिये सत्य वस्तु नहीं रह गया था। पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि जगत्को मिथ्या माननेके साथ वे आजकलके ज्ञानाभिमानीकी भाँति भगवान्, भगवान्के विग्रह, अवतार आदिको भी मिथ्या, मायाकल्पित मानते थे। एक तरफ तो उनके ध्यानकी ऐसी ऊँची अवस्था होती थी कि रात्रिमें लगातार ९-९ घंटे वे समाधिस्थ-से रहते थे—बात करते हुए उन्होंने सत्संगमें स्वयं कहा था कि उस समय मुझे शरीरका बिल्कुल भान नहीं रहता था। यदि मेरे शरीरमें कोई सूई चुभो देता तो मुझे बिल्कुल प्रतीति नहीं होती, इतनी गाढ़ अवस्था ध्यानकी होती थी—और व्यवहार करते समय यह प्रतीति होती थी कि आकाशमें तिरमिरोंकी भाँति जगत् शुद्ध अनन्तानन्द बोध स्वरूपानंद ब्रह्ममें भ्रमवत् है। पर यह होते हुए भी भगवान्, भगवन्नामपर उनकी आस्था ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी। साकार विग्रहके प्रति उनके मनमें यह भाव कदापि नहीं था कि यह भी तिरमिरेकी भाँति एक मिथ्या प्रतीति है। वे तो भगवान्, भगवत्कृपा, भगवन्नामकी कृपाका पद-पदपर निरन्तर अनुभव करते रहते थे। उन दिनों एक अनुभव तो इन्हें ऐसा हुआ कि जिसके लिये बड़े-बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र भी लालायित रहते हैं। उसका वर्णन करते हुए गोरखपुरमें एक दिन[१] सत्संगके समय उन्होंने स्वयं कहा था—"बम्बईकी बात है। मैं सागरमल गनेड़ीवालेके साथ सूरदासका नाटक देखने जानेवाला था। सागरमलका घर रास्तेमें ही श्रीसुखानन्दजीकी चाल (मकान) में था। सागरमलने कहा—चलो घर चलकर पानी पी लें। मैंने स्वीकार कर लिया और हम दोनों उसके घर पहुँचे। घर पहुँचनेपर श्रीभगवन्नामके सम्बन्धमें बात चल पड़ी। सागरमलका कहना था कि भगवन्नाम जप भगवत्स्मृतिके साथ होनेसे ही विशेष फल होता है, अन्यथा नहीं। मैं कहता था कि नहीं, किसी भी भावसे जान या अनजानमें भगवान्की स्मृति हो या न हो, भगवान्के नामसे परम लाभ होता ही है। शिमलापालमें मुझे दृढ़ विश्वास हो गया था और वह विश्वास आजतक ज्यों-का-त्यों बना हुआ है कि किसी भी भावसे जान या अनजानमें अन्त समय यदि 'रा' और 'म' ये दो अक्षर मुखसे निकल गये तो प्राणीकी सद्गति होगी ही; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इस मन्त्रके अक्षरोंमें ही ऐसी शक्ति है। यह सुनकर सागरमलने कहा—आर०ए०एम०—राम (Ram) का अर्थ अंग्रेजीमें मेढ़ा होता है। यदि कोई अँग्रेज मरते समय मेढ़ेके भावसे राम पुकार उठे तो क्या उसकी सद्गति हो जायगी? उसके ज्ञानमें रामका अर्थ मेढ़ेके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं? बोलो क्या उत्तर है? मैंने कहा—मेरे विश्वासके अनुसार तो उसकी सद्गति हो ही जानी चाहिये। यह बात हो ही रही थी कि हठात् मेरा वाह्य ज्ञान जाता रहा। मेरे नेत्र तो खुले हुए थे, पर बाहरसे कुछ भी होश नहीं रहा। नेत्र खुले हुए मैं ज्यों-का-त्यों उसी स्थानपर बैठा रहा। मुझे इतना स्मरण है कि मुझे उस समय वन-वेशधारी भगवान् राम, लक्ष्मण और सीताके दर्शन हुए। कितनी देरतक दर्शन होते रहे यह याद नहीं। बातें भी हुई थीं पर सब बातें स्मरण नहीं रहीं। केवल दो बात याद रही। एक तो भगवान्ने कहा था—किसी प्रकार भी नाम ले, नाम लेनेवालेकी सद्गति ही होगी। दूसरी, यह कि भगवानने भक्त विष्णु दिगम्बरजी (गायनाचार्य) का किसी सिलसिलेमें नाम लिया था। इसके अतिरिक्त और कुछ भी याद नहीं रहा। होश आनेपर दूसरे दिन सागरमलने मुझसे कहा कि तुम उस समय कह रहे थे—"ये भगवान् हैं इनके चरण पकड़ लो आदि आदि।" पर मुझे न तो बाहरका ज्ञान था, न मैंने अपने ज्ञानमें कुछ कहा ही था। अस्तु, इस प्रकार सारी रात बीत गई, मुझे बाह्य ज्ञान नहीं हुआ। अब सागरमल घबड़ा गया कि इसे क्या हो गया? आखिर उसने मेरा हाथ पकड़ कर खड़ा किया। पकड़े हुए ही मुझे सीढ़ियोंसे नीचे उतार लाया, इसी तरह मेरे घर ले आया। घर आनेपर मुझसे कहा कि शौच हो

१-ज्येष्ठ कृष्ण ६। १९८९ वि०

आओ। पर मुझे तो बिल्कुल ही होश नहीं था कि बाहर क्या हो रहा है। इसीलिये मैंने उसे कोई उत्तर न दिया। मुझे उसी तरह बाह्यज्ञान-शून्य देखकर उसने मुझे पानीके नलके नीचे बिठा दिया। मेरे सिरपर ज़लकी धारा गिरने लगी और स्वयं सागरमल जोरसे नाम-कीर्तन करने लगा। अब जाकर मुझे कहीं धीरे-धीरे बाह्यज्ञान हुआ। उसी दिन दोपहरके समय श्रीविष्णु दिगम्बरजी मुझसे मिले। मैंने उन्हें सारी घटना सुना दी। सुनकर वे रोने लग गये।''

पाठकोंको अब सहज ही अनुमान हो सकता है कि किस प्रकार चरित्रनायकका हृदय एवं मस्तिष्क दोनों ही भगवान्से जुड़ते जा रहे थे। भगवान्के निर्विशेष ब्रह्मस्वरूपकी ज्योति मस्तिष्कको उद्भासित कर रही थी, इधर रसमय भाव हृदयमें संचित होता जा रहा था। यद्यपि ये सारी बातें भगवत्कृपासे ही इनके जीवनमें हो रही थीं, पर निमित्तके लिये कहा जा सकता है कि इनकी साधनाकी लगन भी अद्भुत ही थी। साधनाकी तत्परता ऐसी थी कि रातमें नींद प्रायः दो ढाई घंटेसे अधिक नहीं लेते थे। कामकाज अथवा अन्य पारमार्थिक प्रचारमें शरीरको, मष्तिष्कको काफी परिश्रम पड़ता था, फिर भी बड़ी लगनके साथमें रातको साधना करते। पर शरीर तो आखिर प्राकृतिक नियमोंके बंधनमें ही रहता है। नींद नहीं लेनेके कारण इनके सिरमें भयानक पीड़ा प्रारम्भ हुई। बड़े-बड़े वैद्य डाक्टरोंके द्वारा औषधोपचार हुआ, हजारों रुपये खर्च किये गये पर कोई लाभ नहीं हुआ। दो-तीन वर्षके बाद जब वेदान्तकी साधना छूट गई तब दर्द भी अपने आप चला गया। वेदान्तकी साधना छूटनेमें साक्षात् भगवान्की ही इच्छा हेतु थी। इसका विवरण पाठक आगे पढेंगे। अस्तु।

ये स्वयं तो साधनामें तत्परतासे जुड़े हुए थे ही, अविराम गतिसे इनके मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ मनुष्य जीवनके एकमात्र उद्देश्य श्रीभगवान्की ओर दौड़ रही थीं ही, पर साथ ही अपने साथियोंकी ओर भी वे उदासीन नहीं थे। श्रीभगवान्ने गीतामें ज्ञानयोगके साधकोंका एक लक्षण **'सर्वभूतहिते रताः'** बताया है। वास्तवमें सच्चे ज्ञानी, सच्चे भक्तके द्वारा जगत्का हित हुए बिना रह नहीं सकता। यह तो कसौटी है। प्रत्येक अच्छे-बुरे भाव सजातीयको विकसित करते ही हैं। अतः सिद्धकी बात तो छोड़ दें, जो सच्चा साधक होगा उसके इर्द-गिर्द भी साधकोंकी टोली इकट्ठी हो ही जायगी, वातावरण साधनका बनेगा ही। स्वाभाविक ही उस वातावरणमें जानेसे भगवान्की ओर रुचि बढ़ेगी, मंगलका विस्तार होगा। यही कारण था कि चरित्रनायकके समीप भी साधकोंका दल इकट्ठा होने लग गया। इन्होंने पूरी सहानुभूति दिखलायी। एक साधकोंकी कमेटी बनी। कमेटीमें बीस नियम बनाये गये।* पचासों साधक उस कमेटीके सदस्य थे तथा बड़ी तत्परतासे अतिशय उत्साहपूर्वक नियमोंके पालनकी चेष्टा करते थे। सबके मनमें यह बात उत्पन्न हो रही थी कि जीवनका उद्देश्य तो भगवत्प्राप्ति ही है।

अपनी साधना तथा कमेटीके साधकोंकी देखभाल रखनेके अतिरिक्त इन्होंने समय निकालकर गीता प्रचारके

---

* बीस नियम ये थे—

१-प्रातकाल उठते ही भगवन्नामका स्मरण करना।

२-स्नानसे पूर्व अशुचि अवस्थामें कम-से-कम श्रीभगवन्नाम स्मरण।

३-स्नान करते समय कम-से-कम एक बार श्रीभगवन्नामका स्मरण करना।

४-कम से कम एक कालकी संध्या करना।

५-श्रीगायत्री मंत्रकी कम-से-कम एक माला जपना।

६-श्रीगीताजीके प्रधान विषयोंका पाठ करना।

७-श्रीगीताजीके कम से कम एक अध्यायका अर्थसहित पाठ करना।

८-श्रीगीताजीका पाठ करते समय श्रीभगवन्मूर्तिका चिन्तन करना।

कार्यको भी बम्बईमें खूब बढ़ाया। प्राय: मारवाड़ी विद्यालयोंमें प्रत्येक क्लासमें एक घंटी धर्म शिक्षा की हुआ ही करती है। बम्बईके मारवाड़ी विद्यालयमें भी यह बात थी। वहाँके प्रिंसिपल श्री एन०एन० लालानीने चरित्रनायकसे अत्यन्त आग्रहपूर्वक अनुरोध किया कि आप स्वयं कृपाकर गीताकी शिक्षा छात्रोंको दें। इन्होंने भी स्वीकार कर लिया तथा ऊँचे क्लासोंमें गीता नियमित रूपसे पढ़ाने जाया करते। वहाँ छात्रोंको गीता सम्बन्धी सुन्दर-सुन्दर बातें सुनाया करते थे। बच्चोंकी गीताके प्रति श्रद्धा बढ़ने लगी तथा ये चुन-चुनकर कुछ अध्याय पढ़ाने लगे। गीताकी साप्ताहिक एवं पाक्षिक परीक्षा भी होती थी। परीक्षामें बच्चोंकी प्राय: रुचि नहीं होती, यह मानी हुई बात है। इसीलिये वे इसमें शामिल नहीं होते थे। चरित्रनायकका भी कोई आग्रह नहीं था कि बच्चे परीक्षामें शामिल हों ही। वे तो अनन्य प्रेमसे उन्हें कहा करते—देखो, तुम लोग परीक्षामें सम्मिलित नहीं होते इस बातसे मेरे मनमें तनिक भी दु:ख नहीं है। हाँ, यदि तुम इन सुनी हुई बातोंका मनन करके इनसे अपने जीवनमें कुछ भी लाभ उठा सकोगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा। फिर क्या था! बच्चे इनसे और भी प्रसन्न हो जाते। अध्यापक भी सभी प्रसन्न थे। इनकी अध्यापन शैली बड़ी सुन्दर थी। इनके आचरणको देखकर तो लोग और भी प्रसन्न होते थे। इन दिनों पं० रमापतिजी शास्त्री वहीं पढ़ाया करते थे। वे तो इनके सम्बन्धमें यहाँतक कहा करते थे कि भैया, हनुमानप्रसाद जैसा गीताके अनुसार आचरण बनानेवाले पुरुष बिरले मिलेंगे।

अपनी साधना, साथियोंकी साधनासे इनका अनुभव बहुत बढ़ गया था। मनकी दौड़ कैसे-कैसे किस ढंगसे होती है। इसका अध्ययन इन्होंने खूब किया था। मन:संयममें क्या क्या कठिनता होती है, मन:संयम हो कैसे, इन सारी बातोंका इन्हें क्रियात्मक ज्ञान हो गया था। इसीका परिणाम "मनको वशमें करनेके कुछ उपाय" नामकी पुस्तक है जिसे इन्होंने इन्हीं दिनों लिखी थी। पुस्तक बड़ी सुन्दर है, वह सुनी सुनायी बातके आधारपर नहीं लिखी गयी है। वह तो सच्चे साधकके द्वारा अनुभव करके लिखी गई है। सच्चे साधक आज भी, उस पुस्तकसे लाभ उठाते हैं। *(यह पुस्तक गीताप्रेस, गोरखपुरसे मँगायी जा सकती है)*
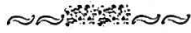
९-कम से कम पाँच मिनट ध्यान करना।
१०-'कर प्रणाम तेरे चरणोंमें' 'पत्र-पुष्प'के इस पदका अर्थ समझते हुए प्रात:काल पाठ करना।
११-कम से कम पाँच मिनट व्यायाम करना।
१२-अपनेसे बड़े जो घरमें हों (माता-पिता आदि) उनके चरणोंमें प्रणाम करना।
१३-सत्संग अथवा सच्छास्त्रोंका कम-से-कम आधे घंटे संग करना।
१४-श्रीतारकमंत्र (हरे राम हरे राम०) की कम-से-कम पाँच माला जपना।
१५-भोजन करते समय श्रीभगवन्नामका चिन्तन करना।
१६-बलिवैश्वदेव करना।
१७-शयन करते समय श्रीभगवन्नामका स्मरण करना।
१८-एक मासमें ६ बारसे अधिक स्त्री संग न करना।
१९-विदेशी मिलके बने एवं हिंसायुक्त रेशमी वस्त्रोंको न पहनना।
२०-मादक द्रव्यों (भाँग, गाँजा, शुलफा, तमाखू, बीड़ी आदि) का सर्वथा त्याग।

॥ श्रीहरि: ॥

पन्द्रहवाँ पटल

पं० श्रीविष्णु दिगम्बरजीके प्रति मित्रता निभाना तथा सत्संगार्थ भ्रमण

पं० विष्णु दिगम्बरजीका नाम पूर्वमें आ चुका है। भारतीय संगीत जगतमें पंडितजीका नाम सदा अमर रहेगा। यह पंडितजीका ही काम था कि वे संगीत जगत्‌में आज बीसवीं शताब्दीमें भी सात्त्विकता भर सके। भारतवर्षमें संगीतज्ञोंकी कमी नहीं, एक से एक बढ़कर बजानेवाले, रागके ज्ञाता मिलते हैं, पर पंडितजी तो पंडितजी ही थे। जिनको उनके साक्षात् दर्शनका अवसर हुआ होगा, वे पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं कि पंडित जी संगीत जगत्‌में अपने ढंगके अद्वितीय ही थे। उनके मुखसे निकला हुआ उनका अत्यन्तप्रिय—**रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम॥** तथा रामायणकी चौपाइयाँ—आज भी इन पंक्तियोंके लेखकके मनमें गूँज रही हैं। पंडितजी व्यास आसनपर विराजमान होकर कथा कह रहे थे। जनता मंत्रमुग्ध-सी होकर कथा श्रवण कर रही थी, वह दृश्य आज भी लेखकके मानसिक नेत्रोंके सामने ज्यों का त्यों बना है। पर उनके विषयमें विशेष लिखना विषयान्तर होगा। अत: उनके जीवनसे चरित्रनायकका जितना सम्बन्ध है, उसीको संक्षेपमें पढ़कर पाठक सन्तोष करें।

पंडितजीने गान्धर्व महाविद्यालयकी स्थापना कर रक्खी थी। गान्धर्व विद्यालयमें खर्च बहुत होता था। पंडितजीका चित्त उदार रहनेके कारण खुले हाथसे पैसे लगते थे। अत: विद्यालयपर ऋण हो गया। अब पंडितजी सोच-विचारमें पड़ गये। जगत्‌का यह नियम है कि सुखमें हाथ बँटानेवाले तो बहुत मिलते हैं, पर दु:खके साथी इने-गिने ही होते हैं। पंडितजीने और भी चेष्टाएँ कीं कि जिससे ऋण चुककर विद्यालयकी रक्षा हो, पर कोई सफलता नहीं मिली। अब चरित्रनायकके मित्रताकी परीक्षा होनेवाली थी। यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है कि पंडितजी सत्संग भवनमें पधारा करते थे तथा चरित्रनायकसे प्रेमका सम्बन्ध स्थापित हो गया था। चरित्रनायक भी पंडितजीके द्वारा निमन्त्रित होकर उनकी स्थापित की हुई संस्था 'राम नाम आधार मण्डल' में जाने लगे थे। पंडितजी उन्हें अतिशय प्रेमसे भगवच्चर्चा सुनानेके लिये आग्रह करते। इस तरह रामनाम आधार मण्डलमें चरित्रनायकके कई प्रवचन हुए। इसी मंडलके लिये चरित्रनायकने एक पदकी रचना की थी—

मेरे एक राम नाम आधार।
ढूँढ थक्यो पर मिल्यो न दूजो, भीर परे को यार॥ १॥
देखे-सुने अनेक महीपति, पंडित, साहूकार।
जद्यपि नीति-धरम-धन संजुत, नहि अस परम उदार॥ २॥
मात-पिता, भ्राता, नारि सुत, सेवक बन्धु अपार।
विपदकाल महँ कोउ न संगी, स्वारथमय संसार॥ ३॥
करि करुणा दयालु गुरु दीन्हों, राम नाम सुख सार।
दुस्तर भव-सागर महँ अटक्यो बेरो उतर्‌यो पार॥ ४॥

यह पद मंडलमें प्राय: प्रतिदिन ही गाया जाता था। पंडितजी वास्तवमें जिसे सच्चा भक्त कहते हैं, वह थे। **'रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम॥'** उनके जीवनका आधार बन गया था। एक क्षणके लिये भी वे इस ध्वनिके श्रवणसे अपनेको वंचित नहीं रखना चाहते थे। यह नियम था कि जब वे सोते तो शिष्योंकी पारी बाँध दी जाती। एक शिष्य मधुर कण्ठसे उनके पास हर समय **'रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम॥'** गाता रहता। इस तरह अखण्ड भगवन्नाम कीर्तन उनके पास होता रहता था। पंडितजीके इस सुन्दर भावसे चरित्रनायक उनकी ओर बहुत आकर्षित हुए। पंडितजी भी अतिशय प्रेम रखते। समय-समयपर मधुरातिमधुर कंठसे गा-गाकर चरित्रनायकको भजन सुनाते। सारांश यह कि इन दोनोंका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। अस्तु, उसकी परीक्षा अब शुरू हुई। विद्यालयके नीलाम

होनेकी नौबत आ गई। पंडितजी सब प्रकारकी चेष्टासे निराश हो चुके थे। यह बात चरित्रनायकके पास पहुँची। स्वयं उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि अपने घरसे रुपयोंकी व्यवस्था कर देते। दो-चार हजारकी बात होती तो फिर तो कहना ही क्या था, पर बात भी पौन लाख (पचहत्तर हजार) रुपयेकी। अब क्या किया जाय, किस प्रकार अपनी मित्रताका कर्तव्य पूरा हो यह प्रश्न चरित्रनायकके सामने उपस्थित हुआ। अन्तर्यामी भगवान्ने संकेत किया—पासमें रुपये नहीं हैं, ठीक, पर तुम ऋण ले सकते हो, विष्णु दिगम्बरको नहीं मिलेंगे पर तुम्हें तो मिल सकते हैं......। बस देर ही क्या थी? चरित्रनायक चल पड़े। बिड़ला बन्धुओंके पास गये, बालकृष्णलालजी, श्रीनिवासदासजी पोद्दारके पास गये, श्रीनिवासजी बजाज, हीरालाल कारीवाल, वंशीलाल अबीरचंद फर्मके मुनीम लक्ष्मणदासजी डागा, लच्छीरामजी चूड़ीवाले आदिसे मिले और सबसे थोड़ा- थोड़ा करके अपने नामपर ऋण लिया, पौन लाख इकट्ठा कर ही लिया तथा विद्यालयका ऋण चुका दिया गया। पं० विष्णु दिगम्बरजीका रोम-रोम चरित्रनायकके प्रति कृतज्ञतासे भर गया। चरित्रनायककी आर्थिक स्थितिकी ओर देखते हुए यह रकम मामूली न थी तथा इस ऋणको लेकर इन्हें कठिनाई भी कुछ उठानी ही पड़ी। पर इनके निर्मल मनमें एक क्षणके लिये भी यह भाव नहीं आया कि मैंने भूल की। यह ऋण ये शीघ्र चुका नहीं सके। १२ वर्ष बाद वि० १९९२ में ऋण परिशोध कर पाये। उपर्युक्त प्रत्येक सज्जनोंके पास गये। जिन सज्जनोंने विद्यालयको दानके रूपमें समझकर खाता उठा दिया था, उन्होंने तो नहीं लिया। शेष सभीको इन्होंने चुकाया। किसी किसीको तो सूदसहित। ध्यान देनेकी बात है कि ऐसा करते हुए इनके मनमें तनिक भी गौरवका बोध नहीं हुआ कि मैंने कुछ अनोखा कृत्य किया है। इनकी दृष्टिमें यह सर्वथा स्वाभाविक, जीवनकी एक तुच्छातितुच्छ क्रिया थी। दान देते समय मनुष्य अनुभव करता है—मैं दया कर रहा हूँ, यह दयाका पात्र है तथा एक अभिमानकी वृत्ति जाग पड़ती है। अपनेमें अच्छेपनका, उदारता आदि गुणोंका आरोप करके वह फूल उठता है। पर चरित्रनायकका हृदय इन मलिन भावनाओंसे बहुत ऊपर उठ चुका था, इन भावोंकी गंध भी नहीं पहुँच सकती थी। उन्होंने तो अपने एक मित्रको एक बार अपने पत्रमें लिखा था—'मेरे पास कोई सहायताकी आशासे आता है तो उसके सामने आते ही मुझे ऐसा प्रतीत होता है—जैसे कर्जदारको महाजन प्रतीत होता है और जैसे उसका सिर संकोचसे नीचा हो जाता है, वैसे ही मेरा भी हो जाता है।'

अब भला जिसके मनमें ऐसा भाव है, वह देकर गर्व कर ही कैसे सकता है? अवश्य ही ऐसे भाव रखनेवाले सन्त जगत्में थोड़े ही होते हैं।

उपर्युक्त घटना वि० १९८० के लगभग हुई थी। इसीके लगभग श्रीगोयन्दकाजी के शुभ सत्संगका सौभाग्य इन्हें पुनः प्राप्त हुआ था। व्यवहारिक जगतका सारा कार्य सुचारुरूपसे निर्वाह होते हुए भी इनकी आन्तरिक ध्यानकी साधना जरा भी शिथिल नहीं हुई थी तथा बीच-बीचमें पत्र द्वारा श्रीगोयन्दकाजी से साधनाके सम्बन्धमें अपनी स्थितिके सम्बन्धमें परामर्श होता ही रहता था। अब साधन सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें उपस्थिति हो गई थीं कि जिन्हें पत्र द्वारा श्रीगोयन्दकाजी समझा नहीं सकते थे तथा उस समय कतिपय व्यवहारिक अड़चनोंके कारण चरित्रनायक भी स्वयं श्रीगोयन्दकाजीके पास बाकुँड़ा जाकर परामर्श नहीं कर सकते थे। श्रीगोयन्दकाजीका सत्संगके लिये देश भ्रमणका भी विचार था। बम्बईवालोंकी भी बड़ी इच्छा थी कि सेठजी पुनः बम्बई पधारें, दैवकी भी यही इच्छा थी। अतः सभी कारण मिलकर श्रीगोयन्दकाजीका बम्बईकी तरफ आना निश्चित हो गया। माघ शुक्ला चतुर्थी सं० १९८० वि० के दिन श्रीगोयन्दकाजी वर्धा पहुँचे। अपने परम श्रद्धास्पद पथप्रदर्शककी दर्शनोत्कण्ठा चरित्रनायकके मनमें इतनी तीव्र हो गई थी कि ये बम्बई रुक नहीं सके, पंचमी के दिन ये भी वर्धा जा पहुँचे। मधुर मिलनके आनन्दका तो कहना ही क्या है। श्रीगोयन्दकाजीके कई प्रवचन वर्धामें हुए तथा यथावकाश साधनकी बड़ी रहस्यमयी बातें एकान्तमें कुछ व्यक्तियोंके सामने चरित्रनायकसे कई बार हुईं। वर्धामें श्रीजमनालालजी बजाजने अतिशय प्रेमसे श्रीगोयन्दकाजीका आतिथ्य किया। दो तीन दिन

यहाँ ठहरे फिर यहाँसे अकोला पहुँचे। चरित्रनायक यहाँतक श्रीगोयन्दकाजीके साथ रहे। यहाँसे ये तो बम्बई चले आये और गोयन्दकाजी खांमगाँव होते हुए दूसरे दिन (माघ शुक्ला १३। ८०) को बम्बई पहुँचे। बम्बईमें पहलेकी भाँति उमड़ते हुए उत्साहसे सत्संगियोंने स्वागत किया। इस बार भी श्रीगोयन्दकाजी १० दिन बम्बईमें ठहरे। जगह-जगह बड़े उत्साहसे प्रवचन हुए। लोगोंकी श्रद्धा देखने ही योग्य थी। लोग इन्हें बम्बईके आस-पासके कस्बोंमें चलकर सत्संग करानेका आग्रह करने लगे। श्रीकस्तूरचंदजी गाड़ोदियाका अतिशय आग्रह देखकर भयन्दर (बम्बईके पास एक कस्बा) सत्संग करानेके लिये जाना ही पड़ा। साथ में, चरित्रनायक भी गये। बड़ा ही सुन्दर सत्संग हुआ। दस दिनतक निरन्तर भगवच्चर्चाकी अमृतमयी धारा बहाकर श्रीगोयन्दकाजी वहाँसे लौटे तथा अन्य कई स्थानोंमें होते हुए ऋषिकेश जा पहुँचे।

चरित्रनायकमें वे इस बार नया उत्साह भर गये थे। गत बार जब वे आये थे तभीसे बम्बईमें जप यज्ञका अनुष्ठान चरित्रनायकने प्रारम्भ कराया था। हजारोंकी संख्यामें भगवन्नामकी मालाएँ फेरी जाती थीं तथा होलीके अवसरपर पूर्णाहुतिके रूपमें हवन होता था। इस बार दूने उत्साहके साथ जपयज्ञकी समाप्ति की गई। वृहत् आयोजनके साथ हवन कराया गया, बड़े प्रेमसे ब्राह्मण-भोजनादि कार्य सम्पन्न हुए। इस वर्षके जप यज्ञका असर इतना गहरा था कि वह एक स्थायी वार्षिक पारमार्थिक योजनाके रूपमें परिणत हो गया तथा इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती गई। आगे चलकर तो जब **'कल्याण'** पत्र निकलने लगा, तब उसमें इसकी सूचना निकलने लगी। भारतवर्षके विभिन्न प्रान्तोंके हजारों-लाखों नर-नारी प्रतिवर्ष अब इस जप यज्ञमें सम्मिलित होते हैं तथा करोड़ोंकी संख्यामें—**'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'** इस महामन्त्रका जप होता है।

सच्चे प्रेममें आकर्षण कभी घटता नहीं, उत्तरोत्तर बढ़ता है, यह नियम है। यही कारण था कि चरित्रनायक श्रीगोयन्दकाजीसे मिलकर तृप्त तो कभी हुए ही नहीं, बल्कि पुनः मिलनेकी उत्कण्ठा अत्यन्त तीव्र हो गई। अभी एक मास भी नहीं हो पाया था कि ये पुनः श्रीगोयन्दकाजीके दर्शनार्थ ऋषिकेश जानेकी तैयारी करने लगे। शुद्ध पारमार्थिक इच्छाकी पूर्तिमें संयोग तो भगवत्कृपासे अपने आप लग जाता है। अग्रवाल महासभाका अधिवेशन कानपुरमें श्रीआनन्दीलालजी पोद्दारके सभापतित्वमें होने जा रहा था। महासभासे इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था ही। गत वर्ष महासभाका पाँचवाँ अधिवेशन[१] झरियामें श्रीमेलारामजीके सभापतित्वमें हुआ था तब गये ही थे। इस बार भी जाना ही था। बस और क्या चाहिये? इसीको निमित्त बनाकर बम्बईसे बाहर जानेका विचार निश्चित हो गया। पहले नासिक जाना पड़ा। महासभाके सम्बन्धमें ही श्रीजमनालालजी बजाजसे कुछ परामर्श करना था। परामर्श करके कानपुर[२] अधिवेशनमें सम्मिलित होने चले गये। अधिवेशन समाप्त होनेपर वहींसे सीधे ऋषिकेश श्रीगोयन्दकाजीके दर्शन करने चले गये।

उत्तराखण्डकी अत्यन्त पवित्र भूमि ऋषिकेशमें श्रीगोयन्दकाजी प्रायः प्रतिवर्ष जाया करते हैं। सत्संगियोंका एक दल बड़ी ही पवित्र श्रद्धा लेकर एकत्र होता है तथा सुरसरिकी कलकल धारासे गुंजित पुलिनपर भगवद्धाराका प्रवाह बहता है। यह क्रम वि० १९७८, ७९ के लगभग प्रारम्भ हुआ था तबसे अबतक निर्बाध चल रहा है। अस्तु, इसी सत्संगमें चरित्रनायक पहुँचे। श्रीगोयन्दकाजीके द्वारा बहुतसे सत्संगी जान गये थे कि चरित्रनायककी साधना एक अद्भुत स्तरतक पहुँच गई है। सभी इनसे मिलनेको उत्सुक थे। अतः मिलकर उनके आनन्दकी सीमा न रही। सबके मनमें बड़ी लालसा थी कि कुछ साधना सम्बन्धी अनुभवकी बात ये सुनाते। लोगोंका आग्रह देखकर चरित्रनायक भी चुप नहीं रह सके।

१-चैत्र शुक्ला १, २, ३। १९८० वि०।

२-वैशाख शुक्ल १, २, ३। १९८१ वि०।

साधनामें आपकी इतनी उन्नति कैसे हुई, इसका उत्तर देते हुए कहा—

१-महत्पुरुष एवं भगवान् तथा शास्त्रके वचनोंमें प्रत्यक्षके सदृश श्रद्धा-विश्वास, २-वे जैसा कहें उसीके अनुसार प्राण पर्यन्त साधन करना। ३-परमात्माकी अनिर्वचनीय कृपाका हर समय प्रत्यक्ष अनुभव करना, ४-अपनी साधनाका किंचित् भी अभिमान नहीं करना— इन चार बातोंसे मेरी साधनामें मुझे बहुत लाभ हुआ। इनके अतिरिक्त एक बातसे मुझे और भी सहायता मिली। जब श्रद्धालु श्रोता मुझसे मिलते थे तो अपने आप अन्त:करणमें बहुत ऊँची-ऊँची बातें स्फुरित होती थीं और मैं कहता था। कहनेके बाद स्वाभाविक ही उन कही हुई बातोंके अनुसार अपना जीवन बनानेका प्रयत्न होता था। इन्हें ही मेरी साधनाकी कुंजी समझें।

चरित्रनायक तीन दिन ही ऋषिकेश रह पाये। पर तीन दिनमें ही सभी सत्संगियोंमें श्रद्धा-प्रेमकी नदी बहा दी। सभी मुग्ध-से हो गये। अन्तस्तलकी अनुभूत बातोंका ऐसा असर होता ही है, अस्तु।

ऋषिकेशसे शीघ्र बम्बई लौट आये। इतने शीघ्र लौटनेमें हेतु था बम्बईकी व्यावहारिक परिस्थिति। बम्बईमें इनके जितने मित्र थे, सबके ये दाहिने हाथ थे, सभी व्यावहारिक सलाहके लिये इनपर निर्भर रहते थे, सबका इनपर अगाध विश्वास था। आजका जगत् तो अर्थका युग है। पैसेके लिये बाप-बेटेमें, भाई-भाईमें, पति-पत्नीमें कितना अवाञ्छनीय व्यवहार होता है। ऐसे युगमें चरित्रनायकको पैसेके प्रति सर्वथा उदासीन देखकर लोगोंके मनमें बड़ी भक्ति बढ़ती थी। एक बारकी बात है साँगीदास जैसीरामके नाममें इनके फर्म चिरंजीलाल हनुमानप्रसादको लगभग दस हजार रुपये लेने थे। चरित्रनायक यह जानते थे कि सट्टेके कारण साँगीदासजीकी अवस्था गिरी हुई है। अत: तकाजा करना तो दूर रहा जब साँगीदासजी कहीं रास्तेमें मिल जाते तो ये आँख बचाकर निकल जाते कि जिससे उन्हें मुझे देखकर संकोचमें न पड़ना पड़े। एक ओर इनका इतना तो साधु-व्यवहार था, पर इनके साझीदार चिरंजीलालजी रुपया वसूल करनेके लिये आकाश-पाताल एक कर रहे थे। उन्होंने देखा कि चरित्रनायककी जानकारीमें तो रुपये वसूल होना कठिन है, इसलिये इनसे कुछ नहीं कहकर उन्होंने नालिश कर दी तथा उनके नाम वारंट कट गया। वारंट कट जानेपर बात चरित्रनायकके पास जा पहुँची और पता लगते ही अविलम्ब पहली चेष्टा इनकी यह हुई कि टेलीफोनसे साँगीदासजीको सूचित कर दिया कि इस प्रकार मेरे अनजानमें बातें हुई हैं, तुम्हें पकड़वाने लोग जा रहे हैं, तुम अपना बचाव कर लेना। सचमुच ही अपने साझीदार चिरंजीलालजीके व्यवहारसे चरित्रनायकके मनमें बड़ा विचार हुआ, पर शीलतावश ये उनसे भी प्रकटमें कुछ नहीं कह सके। जो हो, इस प्रकारकी अनेकों अत्यन्त साधुतापूर्ण चेष्टासे लोग इनके प्रति बहुत विश्वास रखते थे। इसीसे बम्बईके मित्रोंका आग्रह देखकर इन्हें ऋषिकेशसे शीघ्र लौटना पड़ा था। इसके अतिरिक्त इनके बाहर चले जानेसे सत्संग भवनकी सँभालका काम भी अस्त व्यस्त हो जाता था। सत्संगका काम स्वयं इन्हें तथा इनके पथ प्रदर्शकको अतिशय प्रिय था। अत: यह भी शीघ्र लौटनेमें हेतु हुआ।

सत्संगकी लगन इनके परिचितोंमें बढ़ती जा रही थी। यद्यपि इनका बाहर जाना बम्बईवालोंको प्रिय नहीं लगता था पर बम्बईके कुछ लोगोंका बुलानेका आग्रह रहता था। साथ ही इनके मनमें श्रीगोयन्दकाजीसे मिलनेकी बड़ी उत्कण्ठा रहती थी। इसलिये बाहर जानेका क्रम चलता ही रहा। दूसरे वर्ष ही श्रीलच्छीरामजी चूड़ीवालेके साथ लक्ष्मणगढ़[1] गये। लक्ष्मणगढ़से चुरू[2] चले आये। चुरूमें साधन-सम्बन्धी बहुत-सी बातें हुईं। अब इनकी उत्कण्ठा बढ़ गई थी। भगवत्प्राप्तिके लिये मन अधीर होने लग गया था। पर साधनकी स्थितिमें नवीन उन्नति रुकी-सी प्रतीत होती थी। ये सोचते थे— अबतक जो उन्नति हुई उसमें मेरा पुरुषार्थ, सर्वथा हेतु

१-चैत्र शुक्ल ४। १९८२ वि०।
२-चैत्र शुक्ल ७। १९८२ वि०।

नहीं है, वह तो भगवत्कृपा एवं श्रीगोयन्दकाजीकी अहैतुक कृपाका ही परिणाम है पर अब विलम्ब क्यों होता है। इन बातोंको लेकर श्रीजयदयालजीसे बड़े प्रेमसे बातें हुईं। इनकी बड़ी इच्छा थी कि चुरूमें गोयन्दकाजीके पास कुछ दिन रहूँ, पर भगवदिच्छा दूसरी थी। परिस्थितिवश एक दिन चुरू रहकर इन्हें रतनगढ़ चला जाना पड़ा। रतनगढ़ भी एक दिन ही रहकर बीकानेर चले गये। इन पंक्तियोंके लेखककी तथा लोगोंकी बड़ी इच्छा थी कि चरित्रनायक बीकानेर पधारकर वहाँके रहनेवालोंको अपने सत्समागम एवं प्रवचनद्वारा कृतार्थ करें। उनकी इच्छा पूर्ण हुई। श्रीगोयन्दकाजीकी प्रेरणासे बीकानेरमें इन्हीं दिनोंमें श्रीरघुनाथजीके मन्दिरमें नित्यप्रति सत्संग हुआ करता था जिसमें सैकड़ों नर-नारी नित्यप्रति आया करते थे। चरित्रनायक उस सत्संगमें पधारे एवं अन्य कई स्थानोंमें भी इनके ओजस्वी भाषण हुए जिसे सुनकर लोग मुग्ध हो गये। बीकानेरसे रतनगढ़, थेलासर, सरदार शहर, सुजानगढ़ आदि स्थानोंमें भी सत्संग कराने गये। इधर और भी घूमना होता, पर सुजानगढ़में बम्बईका तार आ जानेके कारण वहाँसे बम्बई चले गये।

अनवरत गाढ़ साधनाके जो-जो परिणाम होते हैं, वे इनमें प्रकट होने लग गये। एक ओर तो मस्तिष्क अत्यन्त तेजीके साथ जगत्की सत्ताको भूल रहा था, दूसरी ओर हृदयमें भावोंकी जलराशि गम्भीर होती हुई जा रही थी। अपनी स्वतन्त्र पारमार्थिक इच्छा भी इस बार श्रीगोयन्दकाजीके मिलनसे मिट गई। अपने हृदयगत भावोंका परिचय देते हुए एक पत्रमें श्रीगोयन्दकाजीको वे लिखते हैं—

"........साधकके अन्तरकी प्रत्येक भावना और चित्त-तरंगकी प्रत्येक क्षुद्रसे क्षुद्र लहरीको अन्तर्यामी प्रभु जानता है। साधक तो बस प्रभुके इंगितके अनुसार चलता रहे। यह उपदेश अबकी बार प्राप्त हुआ। तबसे अब न आशा है, न निराशा, न इच्छा है, न अनिच्छा, न बन्धनका पता है, न मोक्षकी अभिलाषा।" बस—

अब तो बंध-मोक्षकी इच्छा व्याकुल कभी न करती है।
मुखड़ा ही नित नव बन्धन है मुक्ति चरणसे झरती है॥

अपनी उन्नतिकी चाह तो मिट गई थी, पर संसारके जीव सुखी हो जायँ, यह चाह और भी बलवती हो गई थी। जीवोंके दुःखका चित्र इनके सामने आता था। तथा—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(गीता ६। ३२)

श्लोकको ये सजीव मूर्ति बन गये थे। उनके दुःखका ठीक-ठीक अनुभव करते हुए इन्होंने गोयन्दकाजीको एक पत्रमें लिखा था—"......देखा जा रहा है संसारके जीव बहुत दुःखी हो रहे हैं। किसी भी दशामें शान्ति नहीं है। देश-देशमें, घर-घरमें कलह हो रही है, जीव एक दूसरेका अनिष्ट कर रहा है। ऐसी स्थितिमें इन जीवों का उद्धार अवश्य होना चाहिये। जगत् तो इस समय

१-पाठक सम्भवतः कुछ पारमार्थिक लाभ उठा सकें इसलिये इस सम्बन्धमें बम्बईसे जो पत्र चरित्रनायकने गोयन्दकाजीको लिखा था उसका कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—"......मेरा साधन एवं प्रेम तो पहले भी ऐसे ही था, फिर क्या कारण है कि उस वर्ष तो एक ही सालमें इतना साधन बढ़ा और उसके बाद वही साधन ठहर गया। मुझमें जैसा बल उस समय था, अब भी है, फिर साधन रुक क्यों गया? मुझे तो यही मालूम होता है कि उस समय मेरे साधनकी उन्नतिमें मेरा बल मेरा प्रेम कुछ भी नहीं था।" जो कुछ हुआ सो प्रभु के अद्भुत अनुग्रहसे ही हुआ। नहीं तो इतने अल्पकालमें इस प्रकार कैसे होता।

मेरा ही बल कुछ कर सकता तो अब वह क्यों नहीं करता? परन्तु आश्चर्य तो इस बातका है कि प्रभुने दया करके इतना योग प्रदान किया और अबतक उसका क्षेम भी बराबर हो रहा है, फिर क्या कारण है कि बचा हुआ 'योग' प्राप्त होनेमें विलम्ब हो रहा है। अतएव इसमें कहीं पर दोष है तो वह मेरी अनन्यतामें ही है। 'नित्याभियुक्त हुए बिना 'योगक्षेम' का वहन परमात्मा क्यों करें? परन्तु फिर वही प्रश्न आता है कि अनन्यता तो पहले भी नहीं थी, नित्याभियुक्त तो पहले भी नहीं था फिर क्या कारण है कि उस समय तो इतना लाभ हुआ और अब नहीं होता? क्या प्रभुके अनुग्रहमें विषमता है? पर यह तो असम्भव बात है। वहाँ अगर विषमता होती तो पहले ही इतनी दया क्यों होती? कहीं न कहीं मेरा ही कोई महान

दु:ख दावानलमें दग्ध हो रहा है। ऐसी स्थिति यदि बनी रही तो थोड़े ही दिनोंमें घर-घरमें, भाई-भाईमें भयानक मारकाट होनी सम्भव है। लोगोंमें भगवान्‌के प्रति विश्वास उठता चला जा रहा है। दिन पर दिन जगत्‌का भविष्य कम-से-कम एक बारके लिये तो अत्यन्त भयानक दीखता है। इस स्थितिमें जीव कब तक पड़ा रहेगा? ××× ×××भगवत्कृपाका अनवरत प्रवाह बहाये बिना भला जीवको किस प्रकार शान्ति मिल सकती है? यदि जीवको अपने ऊपर रहनेवाली नित्य भगवत्कृपाका सरलतासे अनुभव होने लगे तो जीव कृतार्थ हो जाय। पर मायाकी कितनी प्रबल शक्ति है! परमात्माकी असीम कृपाका पद-पदपर प्रत्यक्ष दर्शन करता हुआ भी मोहावृत जीव बार-बार भूल जाता है। घरका वह प्यारा अपनी मनोहर छटा दिखलाकर बारम्बार आता है। यदि जीव उसे पकड़ ले तो शायद वह पकड़वानेको भी तैयार ही मालूम होता है। पर आश्चर्य तो यह है कि जीव उसे पकड़ता नहीं। हाथमें आये हुएको छोड़ देता है। जिस समय वह किसी और रूपमें अपना रूप दिखलाता है उस समय तो कुछ आनन्द-सा होता है, पर आनन्दमें आनन्दरूपको न पहचानकर जीव उसे छोड़ देता है। फिर पश्चात्ताप होता है। मालूम नहीं वह पश्चात्ताप असली होता है या बनावटी। असली होता तो क्यों नहीं उसे पकड़ लेता। वह तो बारम्बार पकड़वानेका मौका देता है। ऐसी स्थितिमें जीवका मोह कैसे नाश हो, किस जादूके उपायसे जीव मोहसे छूट सके, किस उपायसे जीवके अन्तरमें तत्काल बिजली-सी दौड़ जाय—उसे चेतना हो जाय और वह उस चेतनाको पकड़ ले, उन्हें किसी तरहसे छोड़े ही नहीं, किसी भी भुलावेमें न भूले, यह उपाय होना ही चाहिये।

दोष है जो प्रभु की पद-पदपर प्रकट होनेवाली अपार कृपाका अनुभव नहीं होने देता। पर इस दोषको दूर करना भी प्रभुके ही अधिकारमें है। यदि मैं ही दोष हटा सकता तो अबतक हटा नहीं देता? अत: सब तरहसे दोषी-निर्दोष, साधक-असाधक जो कुछ भी क्यों न समझा जाऊँ वा होऊँ, पर अब तो बेड़ा पार ही होना चाहिये।

प्रेम नहीं है, परन्तु प्रेम दान जबरदस्ती देनेमें क्या आपत्ति है? अधिक क्या लिखूँ—'अब तो लाज तिहारे ही हाथ.......' मैं चुरू आया था, इच्छा थी कि चुरू ठहरूँ। कहीं उस इच्छामें ढूँढ़ने पर भी धोखा नहीं मालूम हुआ। पर चुरू नहीं ठहर सका, और गाँवों में घूमा। प्रभुने चाहा जैसी प्रेरणा की, वह हुआ। मनको देखनेपर भी इच्छा तो उस समय भी चुरूके लिये प्रबल ही मालूम होती थी फिर क्यों नहीं चरणों में स्थान मिला? पता नहीं क्या लीला है? माना कि प्रेम-परीक्षा होती होगी पर मैं कब कहता हूँ कि मुझमें प्रेम है, प्रेम होता तो बिना मरजीके ही प्रभुको बँधना पड़ता। फिर तो इतनी अनुनय विनयकी आवश्यकता ही मुझे क्यों होती। गरज होती, प्रेमकी भूख होती तो स्वयं सूरदासके कृष्णकी भाँति पीछे-पीछे फिरना पड़ता। परन्तु यहाँ तो प्रेमहीनको अपनाकर जबरदस्ती प्रेमी बनाना है। फिर प्रेमकी परीक्षा क्यों होती है? प्रेम हो तो परीक्षा हो। पता नहीं इसका क्या अर्थ है। मुझे तो कभी आश्चर्य होता है और कभी हर्ष। ये हैं केवल चित्तके उद्गार—जो बीच-बीचमें हुए बिना नहीं रहते, जिन्हें दर्शाये बिना रहा नहीं जाता। लिखना नहीं चाहता था क्योंकि अभी आपका स्वास्थ्य लोग ठीक नहीं बताते हैं (मेरी समझसे तो सदा ही ठीक था, बिगड़ा हो तब न सुधरे) लोगोंकी बात मानकर चुप था, पर अब नहीं रहा गया, मनमें आया सो लिख डाला।

प्रेम नहीं है, साधन नहीं है, भक्ति नहीं है, जो कुछ है सो है पर हूँ तो आपका ही? इसमें तो शंका है ही नहीं? बस, फिर मुझे क्या भय है? सँभालिये, जँचे जैसे। लिखिये जँचे सो, करवाइये जँचे जिस प्रकार।

मैं पत्र बहुत कम लिखा करता हूँ। कारण मुझसे केवल इसी प्रकारके उद्गार लिखे जाते हैं। जब-जब आपको पत्र लिखने बैठता हूँ तब-तब ही ऐसी भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। बार बार ऐसे पत्रोंसे न मालूम लोग क्या समझें इसलिये पत्र ही नहीं लिखता परन्तु जब रहा नहीं जाता तब अगला लिखना पड़ता है। पता नहीं, इसमें भी लीलामयका कितना हाथ है?.......'

१-चैत्र शुक्ल ९। ८२ वि०

ऐसा कोई सरल उपाय सारे जीवोंके कल्याणार्थ बतलाना चाहिये और उस उपायकी जगत्‌में सर्वत्र घोषणा कर देनी चाहिये कि जिससे सारे जीव मोहकी प्रहेलिकाको तोड़कर प्रियतमको पकड़ पावें। ××× ×× बरबस खींच-खींचकर पावन करनेका मौका है। तभी तो पतितपावन नामकी सार्थकता है।"

उपर्युक्त बातें ये पत्रमें इसलिये लिखते थे कि प्रत्यक्ष मिलनेपर श्रीजयदयालजीसे बहुत सी बातें पूछना भूल जाते थे। मिलनेका आनन्द इतना बढ़ जाता था कि सचमुच आत्मविस्मृत-से हो जाते थे। स्वयं एक पत्रमें ही यह बात लिखी थी। "××× मेरे पत्रके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें तो हो सकीं। बहुत-सी बातें पूछने और जाननेकी कल्पना हुई थी, बहुतसे प्रश्नोत्तर करनेका विचार था। परन्तु सन्मुख होनेपर सारी बातें भूल-सा गया। यह तो सुना है कि प्रेमास्पदसे दूर रहनेपर अनेक बातें प्रेमी पूछना चाहता है, अनेक प्रकारकी भावनाएँ आती हैं, परन्तु सामने आनेपर, मिल जानेपर उसे इतना सुख मिलता है कि वह आत्मविस्मृत-सा हो जाता है। अपने आपके विस्मरणमें प्रश्नोंका स्मरण कैसे हो सकता है? गहरे सुखसागरमें डूबा हुआ ऊपरकी बातोंका क्यों खयाल करें। परन्तु यह बातें तो प्रेमीकी हैं। सच्चा प्रेमी ही प्रेमास्पदके मिलनेमें इस प्रकारके मनोमुग्धकारी आनन्दके स्रोतमें बह जाता है। मैं तो अप्रेमी होकर प्रेमीके इन भावोंकी तुलना अपने भावोंके साथ कैसे कर सकूँ? पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि भले ही किसी भी कारणसे क्यों न हो, मैं उस समय पूछनेकी बहुत-सी बातोंको भूल जाया करता था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुतसे मूक प्रश्नोंका उत्तर बिना पूछे ही मिल गया। ×××"

राजपूतानेसे लौटकर इस बार बम्बई कुछ दिन रहनेकी बात थी। पर इनके मित्र श्रीजमनालालजी बजाज इन्हें अपने साथ बीकानेर ले चलना चाहते थे। क्योंकि तत्कालीन बीकानेर महाराजा श्रीगंगासिंहजीने बजाजजीको खादी प्रचारके सम्बन्धमें बात करनेके लिये बुलाया था। चरित्रनायकको भी बजाजजी साथ ही रखना चाहते थे। फलत: बजाजजीके ही आग्रहसे इन्हें पुन: तुरन्त बीकानेर आना पड़ा[१]। वहाँका कार्य समाप्त करके ये रतनगढ़ आये। रतनगढ़ आकर भला चुरू न जायँ, यह बात कैसे सम्भव थी। अत: श्रीगोयन्दकाजीके दर्शनार्थ चुरू चले गये[२]। कुछ दिन चुरू रहकर रतनगढ़ लौट आये। यहीं रतनगढ़में ही श्रीगोयन्दकाजीकी प्रेरणा और मेरी प्रार्थनासे चरित्रनायकने **श्रीमरुनायक सनातन धर्म कन्या** पाठशाला बीकानेरमें पढ़ाये जानेके लिये '**स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी**' नामकी पुस्तिका केवल १२ घंटेमें लिखकर प्रेस कापी तैयार की थी[३], जो तुरन्त ही गीताप्रेससे प्रकाशित हो गयी।

श्रीगोयन्दकाजी भी कुछ दिन बाद चुरुसे रतनगढ़ आ गये थे। यहीं "भक्तोंकी अद्भुत महिमा" शीर्षक लेख भी उन्होंने (गोयन्दकाजीने) इनसे लिखाया[४]। पौष मासतक रतनगढ़में रहकर माघमें चरित्रनायक बम्बई चले गये थे।
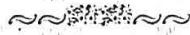
१-भाद्र शुक्ल १९८२ वि०

२-आश्विन शुक्ला १९८२ वि०

३-कार्तिक कृष्ण १३। १९८२ वि०

४-पौष कृष्ण १। १९८२ वि०

॥ श्रीहरिः ॥

सोलहवाँ पटल

कल्याणका आरम्भ

चरित्रनायकका मारवाड़ी अग्रवाल महासभाके साथ सम्बन्ध था केवल समाज सेवाकी दृष्टिसे। उनकी परमार्थ साधनाका अंग विशेष यह कदापि नहीं था। यों तो सभी शुभ चेष्टाएँ ही परमार्थमें सहायक होती ही हैं, पर जैसे कर्मयोगीका तो साधन क्षेत्र ही शुभ कर्म होता है, वैसे इन चेष्टाओंसे सम्बन्ध नहीं था। फिर भी ये प्रत्येक अधिवेशनमें ही जाया करते थे। उसमें हेतु था लोगोंका विश्वास, प्रेम तथा आकर्षण। कई लोग तो इन्हें अपना-से-अपना मानते थे। महासभाका ७वाँ अधिवेशन जब फतेपुर (सीकर) में हुआ था तो शिवनारायणजी नेमाणी सभापति हुए। नेमाणीजीका इनपर इतना विश्वास था कि सभापतिकी हैसियतसे दिया जानेवाला भाषण उन्होंने इनसे ही तैयार करवाया। इस बार सभाके प्रति चरित्रनायकने भी बड़ी रुचि प्रकट की। कई प्रस्ताव किये। अधिवेशन के साथ ही कवि सम्मेलन भी हुआ था। लोगोंने बड़े आग्रहसे इन्हें ही सभापति बनाया। हिन्दी साहित्यकी रक्षाके सम्बन्ध में इन्होंने बड़ा ही मर्मस्पर्शी भाषण दिया तथा भाषणके अन्तमें स्वरचित एक कविता पढ़कर सुनायी। साहित्यप्रेमी श्रोता कविता सुनकर आनन्दमग्न हो गये। अस्तु, इसके दूसरे वर्ष मा०अ० महासभाका आठवाँ अधिवेशन* दिल्ली में हुआ। इस बार सभापति श्रीजमनालालजी बजाज थे तथा स्वागताध्यक्ष थे श्री आत्मारामजी खेमका। दोनों से ही चरित्रनायकका घनिष्ठ सम्पर्क था। किसी कारणसे ही श्रीआत्मारामजीने तो पहले स्वागताध्यक्षका पद ग्रहण करना ही अस्वीकार कर दिया था। पर पीछे श्रीजयदयालजी गोयन्दका एवं चरित्रनायकके आग्रहसे स्वीकृति दे दी। स्वीकृति मिल जानेपर यह प्रश्न उठा कि इतनी शीघ्रतामें स्वागताध्यक्षका सर्वांग-सुन्दर भाषण तैयार हो जाना बड़ा ही कठिन है, क्योंकि २४ घंटेमें लिखकर, छपाकर दूसरे ही दिन उसे पढ़ना था। खेमकाजीने इसका भार चरित्रनायक पर डाला। सचमुच ही इनके सिवाय इतनी शीघ्रतामें गंभीरतापूर्ण भाषण तैयार कर देनेवाला और कोई था भी नहीं। ये भी खेमकाजीकी प्रेमभरी इच्छाकी उपेक्षा नहीं कर सके। रात-रातमें ही भाषण लिखकर छपाकर इन्होंने तैयार कर दिया। दूसरे दिन अधिवेशनमें भाषण पढ़ा गया। लोगोंको बड़ा सुन्दर लगा। अधिवेशनमें श्रीघनश्यामदासजी बिड़ला भी आये हुये थे। यद्यपि बिड़लाजीके एवं चरित्रनायकके विचारोंमें मतभेद था, पर बचपनकी मित्रता बिड़लाजी अभीतक निभा रहे थे। इस बारका भाषण उन्हें भी, मतभेद रहते हुए भी अच्छा लगा। वे अधिवेशनके समाप्त होनेपर बातके सिलसिलेमें चरित्रनायकसे बोले—भाई, तुम लोगोंके विचार क्या हैं, कैसे हैं, कहाँ तक ठीक हैं, इसकी आलोचना हमें नहीं करनी है, पर इसका प्रचार जगतमें तुम लोगोंके द्वारा हो रहा है, जनता इसे दूरतक मानती भी है। यदि तुम लोगोंके पास अपने ही विचारोंका, सिद्धान्तोंका एक पत्र होता तो तुम लोगोंको और भी सफलता मिलती। तुम लोग अपने विचारोंका एक पत्र निकालो।

बिड़लाजीने परामर्शके रूपमें एक चलती हुई-सी बात कह दी थी। पर सचमुच यही चर्चा ''कल्याण'' मासिकपत्रके जन्ममें हेतु बनी। अधिवेशन समाप्त होनेपर सभी अपने-अपने गन्तव्य स्थानकी ओर चल पड़े। चरित्रनायक भी बम्बईकी ओर चले। उस समय श्रीजयदयालजी चुरूसे भिवानी आये हुए थे। उन्हें बाँकुड़े जाना था, सत्संगके लिये भिवानीमें ठहर गये थे। चरित्रनायकके मनमें आया कि दर्शनका सुयोग क्यों छोड़ूँ, भिवानी चले चलूँ, वहाँसे साथ ही रिवाड़ी चला

* चैत्र शुक्ल १, २, ३। १९८३ वि०

सन् १९२६ ई० में 'कल्याण' के आरम्भ पर लिया गया चित्र

जाऊँगा, रिवाड़ीसे बम्बई चला जाऊँगा। यही हुआ। भिवानीका सत्संग समाप्त करके श्रीजयदयालजी बाँकुड़ाके लिये रवाना हुए। गाड़ीमें अधिवेशनकी चर्चा छिड़ गयी। उसी प्रसंगमें चरित्रनायकने घनश्यामदासजीकी पत्र निकालनेकी सलाह वाली बात कह डाली। पासमें बैठे थे श्रीलच्छीरामजी मुरोदिया। मुरोदियाजी सुनते ही बोले—बस, बस, बिल्कुल ठीक है, अवश्य निकलना चाहिये। इतना ही नहीं गाड़ीके एक कोनेमें ये चरित्रनायकको ले गये, तथा अत्यन्त प्रेमभरे आग्रहसे समझा-बुझाकर इनसे वचनतक ले लिया कि मैं प्रतिदिन दो घंटा सम्पादनका कार्य कर दिया करूँगा। इनसे वचन लेकर गोयन्दकाजीके पास आये तथा पत्र निकालनेकी स्वीकृति माँगने लगे। गोयन्दकाजीने जब यह सुना कि चरित्रनायकने सम्पादनका भार सँभालना स्वीकार कर लिया है तो उन्होंने भी सहर्ष अनुमति दे दी। वहीं गाड़ीमें ही यह निश्चय हुआ कि पत्रका नाम "कल्याण" रहेगा तथा यह व्यवस्था हुई कि बंबईसे इसका प्रकाशन प्रारम्भ हो। पास बैठे हुए सत्सङ्गियोंके आनन्दका पारावार न रहा। देखते ही देखते गाड़ी रेवाड़ी आ पहुँची। गोयन्दकाजी बाँकुड़ेकी ओर चल पड़े और चरित्रनायक बंबईकी ओर। हृदयमें एक नयी सेवाका भाव, नया प्रेम, नयी उमंग लेकर बंबई आ पहुँचे।

"कल्याण" की तैयारी आरम्भ हुई। सबसे पहले इसके रजिस्ट्रेशनका प्रश्न था। इस क्षेत्रका अनुभव तो इन्हें था नहीं कि कैसे क्या होता है? अतः किञ्चित् विचारमें पड़ गये, पर जिस विश्वसूत्रधार प्रभुको "कल्याण" निकालना अभिप्रेत था, उन्होंने अपनेआप सारा संयोग लगा दिया। चरित्रनायकके मित्रोंमेंसे वेङ्कटेश्वर प्रेसके मालिक श्रीनिवासदासजी बजाज भी थे। उनसे बात चलनेपर प्रकाशन सम्बन्धी सभी सरकारी कार्य करा देनेका भार उन्होंने उठा लिया। इनको साथ लेकर उन्होंने रजिस्ट्रेशन आदि सभी सरकारी कार्यवाहियाँ करा

---

* मुरोदियाजीका परिचय देते हुए स्वयं चरित्रनायकने 'कल्याण' में लिखा है—मारवाड़ी समाजके नररत्न सेठ श्रीलक्ष्मीनारायणजी मुरोदिया पिलानी (जयपुर) के निवासी थे। आपका जन्म विक्रमी सं० १९२७ में हुआ था। कलकत्तेमें इनका कारोबार था। ये बड़े ही कोमल हृदय, परदुःखकातर, परोपकाररत, दीनवत्सल, निस्पृह, सहनशील और सेवाव्रती पुरुष थे। किस तरह दूसरोंका दुःख दूर हो, किस तरह किसका हित हो जाय, किस प्रकार किसको सुख पहुँचे, प्रायः इसी चिन्तामें ये रहते थे। जहाँतक बनता शरीर और धनसे सबकी सहायताको तैयार रहते थे। किसी भी दुःखी मनुष्यको देखकर उसका दुःख दूर करनेकी चेष्टा किये बिना उनसे रहा नहीं जाता था। और, ये सब तरहसे इसी चेष्टामें लग जाते थे।

ये नवयुवकोंमें नौजवान, वृद्धोंमें वृद्ध, भजन करनेवालोंमें भजनानन्दी, विनोदप्रिय पुरुषोंमें विनोदी और व्यापारी समाजमें व्यापारी बन जाते थे, परन्तु इनमें जो कुछ था स्वाभाविक था।

दो मनुष्य आपसमें लड़ते, ये उनके पास जाकर खड़े हो जाते। मौका देखकर समझानेकी कोशिश करते। लड़नेवाले इनसे भिड़ जाते और इन्हें खोटी-खरी सुनाने लगते, ये चुपचाप सुन लेते, फिर समझाते। आखिर उनकी लड़ाई मिटाकर छोड़ते। किन्हीं भाइयोंमें या हिस्सेदारोंमें किसी चीजको लेकर झगड़ा होता तो बिना बनाये ये पंच बन जाते और अपने रुपयोंसे वैसी चीज बनवाकर उसे चाहनेवालेको दे देते और यह बात दोनों पक्षोंसे ही छिपाकर रखते। उनका झगड़ा मिटा देते।

बीमारोंकी सेवामें स्वयं लगे रहते। कोई मर जाता और उठानेवालोंकी कमी होती तो आप जाकर जुड़ जाते। इनके पीछे और लोग भी चले जाते और घाटपर ले जाकर मुर्देको जला देते।

किसी भी शुभ कार्यका प्रस्ताव सामने आनेपर आप उसका समर्थन ही नहीं करते, रुपये देते और स्वयं उसमें लगकर उसे पूरा करवा देते। कलकत्तेकी तथा अन्य स्थलोंकी अनेकों बड़ी-बड़ी संस्थाएँ इनके ही उत्साह, अध्यवसाय और परिश्रमका फल है। वर्तमानकी गीताप्रेसकी भूमिको खरीदनेमें उन्होंने बहुत बड़ा सहयोग दिया था।

शुद्धान्तःकरण भगवानके भजनमें प्रीति, सेवामें प्रसन्नता ये बातें इनमें प्रायः स्वाभाविक थीं।

××× सं० १९८४ वि० में कलकत्तेमें आपने देह त्याग किया था।

* चैत्र शुक्ला ९। १९८३ वि०।

दीं तथा 'कल्याण'के प्रथम अङ्ककी तैयारी होने लगी।

इसी बीचमें इन्हें पुनः एक बार राजपूताना जाना पड़ा। लक्ष्मणगढ़में लच्छीरामजी चूड़ीवालेका एक ब्रह्मचर्याश्रम है, उसीका वार्षिकोत्सव था। लच्छीरामजीका अत्यन्त आग्रह था कि चरित्रनायक उसमें पधारें। इसलिये उन्हें जाना ही पड़ा। रास्तेमें एक घटना हुई। सचमुच प्रभुने ही बाल-बाल इनके जीवनकी रक्षा की। अन्यथा जीवनी यहीं समाप्त हो जाती। वह घटना स्वयं चरित्रनायककी लेखनीसे ही आगे चलकर कल्याणमें इस प्रकार प्रकाशित हुई। 'सन् १९२६ की बात है, मैं लक्ष्मणगढ़ (जयपुर) के भाई श्रीलच्छीरामजी चूड़ीवालेके धन और परिश्रमसे स्थापित ऋषिकुलके उत्सवमें शरीक होनेको बंबईसे जा रहा था। अहमदाबादसे दिल्ली एक्सप्रेसके द्वारा रवाना हुआ। मैं सेकण्ड क्लासमें था। मेरे साथ एक ब्राह्मण-बालक ऋषिकुलमें भर्ती होने जा रहा था। मैं इधरकी एक सीटपर सोया था और सामनेकी सीटपर वह सोया था। दूसरे दिन सुबह अन्दाज पाँच बजे थे, व्यावर स्टेशनपर एक टी०टी० महोदय हमारे डिब्बेमें सवार हुए। मैं जिस सीटपर सोया था, उसीपर मेरे पैरोंके पास वे बैठ गये। मैं जग रहा था, अपने पैरोंके पास किसीका बैठना मुझे अच्छा न लगा। इससे शिष्टाचारके नाते मैं उठ बैठा। सोया था तब मेरा सिर सीटकी अन्तिम तीसरी खिड़कीके पास था, जागकर बैठा तो वह खिड़की खाली हो गयी, मैं बीचकी खिड़कीके पास बैठ गया और टी०टी० महोदय इधरकी तीसरी खिड़कीके पास बैठे थे। तीनों खिड़कियाँ बंद थीं। मैं टी०टी० महोदयके साथ बातें कर रहा था। इतनेमें ही पीछेसे बड़े जोरकी आवाज हुई और दूसरी सीटपर सोये हुए ब्राह्मण बालकने एक चीख मारी। हमलोग भौचक्के रह गये। पीछे घूमकर देखा तो मालूम हुआ कि एक बहुत बड़ा पत्थर खिड़कीके काँचमें लगा। खिड़कीका बहुत मोटा काँच टूटकर चूर-चूर हो गया और उसके टुकड़े उछल-उछलकर सब तरफ बिखर गये। उसीका एक जरा-सा टुकड़ा बालकके सिरमें लगा था, इसीसे उसने चीख मारी थी। मैं सोया होता तो अवश्य ही खिड़कीके पास मेरा सिर रहता और वह जरूर ही पत्थर और काँचकी चोटसे टूट जाता, परन्तु बचानेवालेने टी०टी० महोदयको भेजकर मुझे प्रेरणा की, मैं बैठ गया और बच गया। यह घटना अजमेरके पास मकरेरा और सरधना स्टेशनके बीचकी है।' *(ईश्वराङ्क पृष्ठ ६१४)*

× × ×

अस्तु, भगवान्के द्वारा यह अयाचित कृपाभरी रक्षा पाकर ये लक्ष्मणगढ़ पहुँचे। वहाँ सानन्द उत्सव समाप्त करके जितना शीघ्र बंबई लौट सकते थे, लौटने लगे, क्योंकि 'कल्याण' प्रकाशनकी मनोनिर्धारित तिथि निकट आ गयी थी। पर कहावत है, देर हो जानेपर और देर होती है। वैसे ही इन्हें भी रास्तेमें एक दिनकी और देर लग गयी। भूलसे डेगानेमें जोधपुर जानेवाले डिब्बेमें न बैठकर ये बीकानेर जानेवाले डिब्बेमें बैठ गये तथा सो गये। नींद तब खुली जब बीकानेर तीन स्टेशन बाकी रह गया था। अतः बीकानेर चले आये। दिनभर बीकानेर रहकर पूज्यनीया लालीमाईजी एवं इष्ट-मित्रोंसे मिले। मित्रोंकी बड़ी इच्छा थी कि बीकानेर एक-दो दिन और रहते पर समयका अतिशय अभाव था, इसलिये ये उसी दिन उनसे विदा होकर बंबई चले गये।

अब 'कल्याण' प्रकाशनके कार्यमें तत्परतासे जुट पड़े। मनमें एक बार आता—मैं किसी भी आध्यात्मिक पत्रके सम्पादक होने योग्य कदापि नहीं हूँ पर फिर सोचते अहङ्कार क्यों करूँ? विश्वनियन्ताकी इच्छा है कि मैं निमित्त बनूँ। एक क्षण अपनी अयोग्यताका चित्र सामने आता तो दूसरे क्षण भगवान्का स्पष्ट संकेत दीखता। आखिर भगवत्संकेतकी जय होनी ही थी। 'कल्याण'का प्रथम अङ्क सर्वथा शुद्ध आध्यात्मिकताके रंगमें रँगा हुआ श्रावण कृष्णा एकादशी १९८३ वि० के दिन सत्संग भवन बंबईके द्वारा वेङ्कटेश्वर प्रेसमें छपकर प्रकाशित हुआ। अङ्कके प्रथम पृष्ठपर भक्तवर सूरदासके पदके रूपमें मानो चरित्रनायकका प्रार्थनामय हृदय भगवान्के चरणोंमें लोटकर यह सन्देश दे रहा था— जगत्की ज्वालासे जलते हुए जीवों! आओ, इन शीतल

चरणोंकी छायामें दौड़ आओ। अनादिकालसे जलता हुआ तुम्हारा हृदय शीतल हो जायगा, तुम्हारे सारे दुःख सदाके लिये मिट जायँगे। बस एक बार यहाँ आ जाओ, मेरे स्वरमें स्वर मिलाकर गाओ—

बन्दौं चरन सरोज तुम्हारे।
सुन्दर श्याम कमलदल लोचन ललित त्रिभंगी माननि प्यारे॥
जो पदपद्म सदाशिव के धन सिन्धुसुता उरते नहिं टारे।
जे पदपद्म परसि जल पावन सुरसरि दरस कटत अघ भारे॥
जे पदपद्म परसि ऋषि पत्नी, बलि, नृग, ब्याध पतित बहु तारे।
जे पदपद्म तात रिस आछत मन वच क्रम प्रह्लाद संभारे॥
जे पदपद्म रमत वृन्दावन, अटि सिर धरि अगणित रिपु मारे।
जे पदपद्म परसि व्रजभामिनि सर्वस दै सुत सदन बिसारे॥
जे पदपद्म रमत पाण्डव दल दूत भये सब काज सँवारे।
सूरदास तेई पदपङ्कज त्रिविध ताप दुःख हरन हमारे॥

अङ्कके दूसरे पृष्ठपर था सम्पादकका निवेदन। था छोटा-सा पर अत्यन्त सारगर्भित तथा "कल्याण" को सदाके लिये प्रभुके चरणोंमें, एक मात्र प्रभुके चरणोंमें ही बाँध देनेवाला। ऐसा प्रतीत होता है, आजतक अपना १९ वर्षका* जीवन बिताकर भी "कल्याण" ठीक वहीं उस निवेदनके अनुसार ही प्रभुके चरणोंमें बँधा है। वह प्रथम निवेदन यह था—

"कल्याणकी आवश्यकता सबको है। जगत्‌में ऐसा कौन मनुष्य है जो अपना कल्याण नहीं चाहता? इसी आवश्यकताका अनुभव कर आज यह "कल्याण" भी प्रकट हो रहा है। शुभ, मंगल, शिव और भद्र आदि कल्याणके पर्यायवाची शब्द हैं, परन्तु इनका अर्थ करनेमें अपने-अपने उद्देश्यके अनुसार बड़ा अन्तर डाल दिया जाता है। कोई स्त्री, पुत्र, धन, मान और बड़ाईकी प्राप्तिको शुभ मानते हैं, तो कोई उन सबको त्यागकर निर्जन प्रदेशमें निवास करना ही शुभ समझते हैं, कोई परधन अपहरणमें ही अपना मंगल मानते हैं तो कोई परार्थ अर्थके उत्सर्गको मंगल समझते हैं। इस प्रकार अपनी-अपनी रुचिके अनुसार लोग कल्याणका भिन्न-भिन्न अर्थ किया करते हैं। वास्तविक कल्याण किस वस्तुमें है इसका एक मतसे निर्णय आजतक नहीं हो सका है, परन्तु त्रिकालज्ञ ऋषि, मुनियोंने, महात्माओंने और जगत्‌के बड़े-बड़े धीमान् पुरुषोंने अपनी दिव्य दृष्टिसे "परमात्माकी आज्ञासे शुभ कर्म करते हुए अन्तमें परमात्माकी प्राप्ति कर लेनेको ही" परम कल्याण माना है। इसीको ब्रह्मवेत्ता महापुरुष मोक्ष कहते हैं। इसीको भक्तोंने अपनी रसीली वाणीसे श्यामसुन्दरका "अनन्य प्रेम" कहा है और यही सबका एकमात्र सम्पादनीय परम पुरुषार्थ है। यही एक ऐसा विषय है, जिसमें सबका समान अधिकार है। इसमें स्त्री-पुरुष या ब्राह्मण-शूद्रका कोई भेद नहीं है। धन-ऐश्वर्य, रूप-गुण, विद्या-कला और वर्ण, जाति आदिसे यहाँ कुछ भी सम्बन्ध नहीं। यहाँ तो बस—"जिसने उत्कट उत्कण्ठासे उस प्रियतमको बुलाया। उसने ही तत्काल उसे अपने समीपमें है पाया॥"

भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम्॥

(९। ३२)

"हे पार्थ! स्त्री, वैश्य, शूद्रादि या पापयोनिवाले जो कोई भी हों, मेरे शरण होते ही वे परमगतिको प्राप्त होते हैं।"

पुरुष नपुंसक नारि नर जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भजि कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

(गो० तुलसीदासजी)

"जिसका उस परमपिता परमात्मामें प्रेम है, जो जगत्‌के जीवमात्रको उस परमात्माकी प्रिय सम्पत्ति समझकर सबसे "आत्मवत्" प्रेम करते हैं, जो उसकी आज्ञानुकूल अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, दान, क्षमा, शौच, तप और सन्तोषादि व्रतोंको पालते हैं, जो निरन्तर उस प्रियतमकी त्रिभुवन मोहिनी मधुर मूरतिका ध्यान कर उसके परम प्रेममय प्रभावको पल-पलमें

* वर्तमानमें कल्याणका ८९ वां वर्ष है। यह पटल सं० २००१ के चैत्रमें लिखा गया था इसलिये उस समय कल्याणका १९वाँ वर्ष चल रहा था।

स्मरण कर, उसके पावन नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए अश्रुपूर्ण लोचन और अवरुद्ध कण्ठ होकर अपने आपको भूल जाते हैं, जो चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, अग्नि, व्योम, वायु, जल, स्थल, समुद्र, सरिता, वृक्ष, पर्वत, देवता, मनुष्य, यज्ञ, राक्षस और पशु-पक्षी आदि समस्त जड़-चेतनमें केवल उसीका प्रकाश देखते हैं और जो उन सबके भिन्न-भिन्न रूपोंमें उसीका एक अरूपका ''नित्यरूप'' दर्शन करते हैं। बस, वे ही उसको प्राप्त करनेके अधिकारी हैं और उसे प्राप्त कर लेना ही परम कल्याण है।'' उसी बातका प्रचार करनेके लिये उसी कल्याणके स्वामीकी पवित्र प्रेरणासे और कुछ कल्याणमय तथा कल्याणकामी महानुभावोंकी अनुमतिसे इस ''कल्याण'' का जन्म हुआ है।

जिसको इस 'कल्याण'के सम्पादनका भार दिया गया है, वह इस बातको भलीभाँति जानता है कि उसमें कल्याणके सम्पादनकी योग्यता और सामर्थ्य नहीं, वह अभी कल्याणसे दूर है, परन्तु वह कल्याणकामी अवश्य है। इस 'कल्याण'की किञ्चित् सेवासे उसकी कल्याण कामनामें बहुत कुछ सहायता प्राप्त हो सकती है। इसी विश्वासमें वह सब प्रकारसे अपनी अयोग्यताका अनुभव करता हुआ भी परमात्माकी पल-पलपर प्रकट होनेवाली अपार अनुकम्पा और पूजनीय महापुरुषोंकी विशाल कृपाके भरोसे इस कार्यका भार उठा रहा है।

सम्पादकका विचार है कि इस 'कल्याण'के द्वारा यथा सम्भव उन प्रात: स्मरणीय ऋषि-मुनियों और महापुरुषोंकी दिव्य वाणीका ही प्रचार किया जाय जो अपने अलौकिक तेजसे पथभ्रष्ट पथिकोंको कल्याणके सुन्दर मार्गपर लानेमें समर्थ हैं। स्वलिखित लेखोंमें भी यथासाध्य महापुरुषोंके वचनोंको ही आधार बनानेका विचार है। मनुष्यके विचारोंका कार्यरूपमें परिणत होना प्रेरक प्रभुके अधीन है। उस मंगलमयकी इच्छासे जो कुछ भी हो रहा है सो भी कल्याण है। उसका कोई भी कार्य कल्याणसे रहित नहीं होता। विज्ञ पाठक और पाठिकाएँ अनुग्रहपूर्वक अपने प्रेमका वह बल दें कि जिससे ''कल्याण'' का यह तुच्छ सम्पादक भी प्रभुकी प्रत्येक क्रियाको कल्याणमय समझनेमें योग्य बन सके।

प्रथम अङ्कमें श्रीजयदयालजीके दो लेख तथा एक पत्रको स्थान दिया गया था। बाहरके विद्वानोंमें केवल महात्मा गांधीजीका एक लेख था। इसके अतिरिक्त प्राचीन-अर्वाचीन सन्तोंकी वाणीसे, शास्त्रोंसे संकलन था तथा शेष सम्पादककी कृतियाँ थीं।

परम पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कुछ महत्वपूर्ण पत्र

(१)

गोरखपुर, आश्विन शुक्ल २/१९८४ वि०

परमपूज्यवर!

हृदयसे प्रणाम। पत्र दिया सो पहुँचा होगा। लोगोंको संतोष हो तथा उनका शीघ्र भला भी हो, ऐसा उपाय मैं तो उन्हें केवल यही बतला सका हूँ कि वे आपकी बात मानकर साधन करें। इसीके अनुसार उन लोगोंके कहनेसे कल एक पत्र आपकी सेवामें भेजा गया है, उस पर जैसा उचित समझा जाय वैसा ही लिखना चाहिये। सर्वसाधारणके सामने ऐसी अलौकिक घटना हो जानेसे बड़ा हल्ला-सा मच गया है। सम्भव है कि कुछ लोग इसमें मेरा कोई प्रभाव समझें या बड़ाई करें, जैसे कि लक्षण दिख रहे हैं। वास्तवमें मुझे इसमें कोई भी अपनी बड़ाईकी बात नहीं दिखती। इससे मैं तो जो कुछ उचित समझता हूँ सो लोगोंसे कहता ही हूँ पर यदि लोग किसी तरहसे इस बातका यथार्थ तत्त्व जान जायँ कि इस घटनामें मेरा कोई बल, सामर्थ्य या प्रेम कारण नहीं है, इसमें केवल भगवत्कृपा ही प्रधान कारण है तो संभवत: बड़ाईका कलंक दूर हो सकता है। यदि लोगोंके पूछनेपर मैं कोई बात नहीं कहता तो वे दुखित होते हैं और समझते हैं कि यह बात छिपाता है। इधर कहनेमें अन्त:करण और वाणीमें संकोच होता है तथा उन लोगोंको या मुझको कोई लाभ नहीं दिखता। इस स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये? यदि इतना जोरका आन्दोलन

न होता तो इतनी बात नहीं होती। परन्तु प्रभुकी सदिच्छानुसार जो हुआ सो बड़े ही मंगलके लिये हुआ है, इसमें कोई भी शंका नहीं है। इस सम्बन्धमें अन्त:करणमें जो भाव उठते हैं सिर्फ वही आपकी सेवामें लिखे गये हैं।

दोनों समय संध्या करने और गायत्रीकी एक-एक माला जप करनेके लिये यहाँ लोगोंसे कहा गया है, बहुतसे लोग करने लगे हैं। कल्याणमें भी स्लिप लगा दी गयी है।

आपके स्वास्थ्यके समाचार लिखना चाहिये और जचे सो लिखना चाहिये। श्रीज्वालाप्रसादजी, हनुमानदासजी और हाजरवालोंसे सप्रेम यथायोग्य। पूज्य श्रीमाजीसे सादर प्रणाम। आनन्दमय! आनन्दमय! आनन्दमय!

(२)

गोरखपुर, आश्विन शु० ११/१९८४ वि०

परम पूज्य!

सादर प्रणाम। श्रीरामनरसिंहजी जिस पद्धतिसे बैठे और तप किया, यह बड़ी ही मार्केकी बात है। परन्तु इस सम्बन्धमें मेरे अन्त:करणमें कुछ स्फुरणायें हुई हैं उन्हें सरल भावसे आपके चरणोंमें निवेदन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। ये स्फुरणाकी बातें मैं कोई सलाह या सम्मतिके रूपमें नहीं लिख रहा हूँ। केवल प्रार्थनाके रूपमें अन्त:करणकी स्फुरणा जना रहा हूँ। श्रीरामनरसिंहजी बड़े श्रद्धालु और सच्चे मनुष्य हैं, उनपर भगवत्कृपा है। उनके सम्बन्धमें कुछ भी कहना नहीं है। स्फुरणा आगेके लिये हुई है। यदि देशमें यह बात फैल गयी कि तीन दिनोंतक उपवास तथा मल-मूत्र त्यागका निरोध करनेसे भगवान् मिल सकते हैं तो इसपर बहुतसे लोग स्त्री-पुरुष तैयार हो सकते हैं। इस प्रकारका भगवानका कानून बन जाय तो बड़े ही आनन्दकी बात है। जीवोंका जितनी बड़ी संख्यामें और जितना जल्दी उद्धार हो उतनी ही आनन्दकी बात है। परन्तु यदि सबके लिये ऐसे कानूनमें कुछ देरी हो और इस मार्गका लोग अनुकरण करते रहे तो उसमें कहीं-कहीं पर कुछ प्रमाद और कुछ मार्गमें रुकावट आनेकी संभावना है। इस तरह बैठनेवाले लोगोंमेंसे जो भगवत्कृपासे सफल हो जायँ उनकी तो बात ही न्यारी है। परन्तु कुछ लोगोंके नहीं सफल होनेसे तीन बातें हो सकती हैं—

(१) विश्वास कम हो जाना।

(२) जिन लोगोंको इस तरहका अभ्यास नहीं है, उनके भूख-प्यास परित्याग करनेसे संभवत: कुछ बीमार हो जाना और इसके परिणाममें उनके घरवालोंका तथा फलत: पब्लिकका बिगड़ना, द्वेषादि होना। अखबारोंमें आन्दोलन होना।

(३) कुछ मिथ्यावादियोंका ढोंग रचकर कह देना कि हमको दर्शन हो गये और ऐसा कहकर लोगोंसे पुजवाना और ऐसा होनेसे इस कामका महत्त्व लोकदृष्टिमें कम हो जाना।

एक बात और भी है, लोगोंको, विरोधियोंको निन्दा करनेका मौका मिलना, उनके उद्वेग होना जिससे उनके संभवत: नुकसान होना। मेरे अनुमानसे बहुतसे स्त्री-पुरुष इस कामके लिये तैयार हो सकते हैं। ऐसी अवस्थामें किस तरहसे क्या करना चाहिये? लोगोंको क्या कहना चाहिये? यह बात जैसे विचारे हुए हैं वैसी तो मेरे कल्पना भी होनी कठिन है। अतएव मैं कुछ भी लिख नहीं सकता। मेरा यह लिखना कोई सलाह, परामर्श, सम्मति, अनुरोध या ऐसा करनेके लिये प्रार्थनाके रूपमें नहीं है। केवल प्रार्थनापूर्वक अन्त:करणकी स्फुरणाओंको जता देना है। न तो मुझे किसी कार्यपर शंका है और न अविश्वासका ही कहीं अंश है, जो होता है, जो होगा सो आपके द्वारा परम पुनीत और जीवोंका कल्याणका ही कार्य होगा। इस विषयमें तनिक-सा भी सन्देह कल्पनामें भी नहीं है। मैंने तो केवल हृदयकी यह स्फुरणा मात्र लिख दी है। स्वास्थ्य ठीक न हो तो इस पत्रका उत्तर लिखवानेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है।

यहाँ वाले बहुत कहा-सुनी कर रहे हैं। मैं तो उन्हें सीधी-सी बात जो मेरे जची हुई है सो बता देता हूँ। 'एक भरोसो एक बल एक आश विश्वास'—और क्या कहूँ? 'मोहि तो सावनके अंधहि ज्यों सूझत हरो हरो'—इसी बातपर अर्जुनदासजी आपके पास आये हैं।

यदि वे सच्चे मनसे शरण हैं तो उनके काम होनेमें क्या सन्देह है। सन्मुख हो जानेपर स्वाभाविक ही भला होता है क्योंकि यह संग ही अमोघ है।

(नोट—इस पत्रका जो उत्तर पूज्य श्रीगोयन्दकाजीने दिया वह नीचे दिया जा रहा है।)

पूज्य श्रीगोयन्दकाजीका पत्र

कार्तिक कृष्णा २/८४ वि०

भाई हनुमानप्रसाद सेती जयदेवका प्रेम सहित राम राम बंचना। जसीडीहकी भाँति ५ या ७ मिनट तक श्रीगोरखपुर माँय भी भगवानके प्रत्यक्ष दर्शन हुए या भोत आनन्दकी बात छे। फिर भी चावे जने होनेकी उमेद लिखी सो भगवानकी दया छे तुमारे प्रसन्नताका, आनन्दका समाचार निगे कर्या भोत आनन्दकी बात छे। और मेरे पास आनेकी एक दिन फुरना हुई सो अच्छी छे तुमारे प्रेमको कारन छे। स्वप्नमें मेरे सेती मुलाकात हुई। कई आदमी एक सागे दूसरी जागा गया सो भी तुम्हारे प्रेमको कारन समजनो चाये।

श्रीरामनरसिंहजीके तपके विषय माँय तुम लिख्यो सो ठीक छे बाकी तीन दिन तक मलमूत्रको अवरोध और नींद, भूख, प्यासके त्यागसे भगवान मिलनेकी बात किसीके लिये भी नहीं हुई और होनेकी उम्मेद भी नहीं। इसलिये तुम्हारे मन मांय फुरना हुई तथा शंका हुई जेंको विशेष जवाब देनेकी जरूरत नहीं है। यदि तीन दिन मांय तुमारी समझके अनुसार बात हुवे ही, जणे तो तुमारी शंका बहुत ठीक थी। तीन दिन एक तार तेल धारावत् श्रीभगवान्को ध्यान होनेसे श्रीभगवान्का दर्शन होने सके छे या बात थी जिकी अब भी छे। विक्षेप नहीं हुवणो चाइजै। अन्न-जलपान करनेकी मनाई नहीं है और भी कोई क्रियाके लिये मनाई नहीं है। ध्यानकी गाढ स्थिति रेते हुए कोई करने सके तो करतो रेवो भूख पिपासा नींद आवे ही नहीं ध्यानकी तृप्तिके कारन जिकी उत्तम छे। बलसे इनकी त्याग उत्तम नहीं है। श्रीरामनरसिंहजीके तपके विषयकी बात तथा उसके फलकी बात बनाय कर ज्वालाप्रसादजी लिखी हुसी उससे पूरी बात समज मांय आई हुवे तो कल्याण मांय छापने सको छो बाकी छापनेके पूर्व मेरेको तथा श्रीज्वालाप्रसादजीको उसके प्रूफकी नकल भेजकर सुधार करा लेनो चाये। कारन तुमों रूपकार था नहीं इसलिये कोई भूल नहीं छप जाणी चाये।

अर्जुनदासजीकी बात निगे करी उनको जैसीडी आनो बोत आनन्दकी बात छे तथा उनके प्रेमकी बात छे। शरण होनेके योग्य तो श्रीनारायणदेव ही हैं और साधनके लिये उनकी सगली बात बतायी गयी छे बाकी साधन मांय फायदो मालूम देवे छे और उसको लड़को रतनगढ़ ऋषिकुल मांय पढ़े छे उसने रतनगढ़ ऋषिकुल सेती निकालनो नहीं चाये। इस माफक मैं राय देई बाकी उनके जची नहीं। इतने मांय तुमो समज सको छो। मेरी बात वे कठे तांई काम मांय लाणे सके छे।

श्रीरामेश्वरलालने भी हमां तो साफ लिखी हुई थी लड़कांने ऋषिकुल मांय राखनेके लिये तुमां निज मांय जाय कर समजा कर आवो बाकी उनके भी जची नहीं। साधारण बात भी लोगोंके जचणी मुश्किल छे। व्योहार सुधारनेकी बात भी बहुत दफे आगे कही बाकी अच्छी तरह जचे नहीं। थोड़ी जची जिके मांय सुधार भी हुयो, लाभ भी हुयो, व्यापार भी सुधरयो, रूजगार भी ठीक हुयो, भागवत् विषय मांय भी फायदो हुयो। आगीने सगले समाचार गोरखपुरवालोंने साफ समझाकर केया गया छे।

(१) हृदयमें मन बुद्धि इन्द्रियाँ है वे तुम्हारे साथ जावेगी। उनको सुधार करनो चाये याही तुमारी दुकान छे। इसके सुधर्‌यो तुम्हारो सुधार छे। इसको उपाय भी बतायी गयो छे—३ घंटा ध्यान सहित एक तार जप, १ घंटा सत्संग, १ घंटा सत्शास्त्रोंका अभ्यास, प्राप्त होनेपर लोक सेवा।

(२) बाहर सब जगत् या व्यौपार भगवानकी दुकान समझकर अपनेको नौकर समझकर बहुत कमती खर्च मांय आपणो काम चलाणे माफक प्रसाद ग्रहण कर काम करनो चाये। व्यौपारमें झूठ कपटको एकदम त्याग करनो चाये फेरूं सब आपेई ठीक होने सके छे। लोभ त्यागसे सब काम होने सके छे। जितने लोभ नहीं छूटे

ऊपर वाली बात छोड़नी चाये, सभी कुछ भगवान्‌को समजनो चाये।

(३)

गोरखपुर, आषाढ़ कृष्ण ४, संवत् १९९१ वि.

परम पूज्य,

चरणोंमें सादर प्रणाम। कृपा पत्र मिला मैंने कई बार ध्यानसे पढ़ा व आपकी कृपा, इतनी अपार कृपा देखकर एक बार हृदय गद्‌गद हो गया। बुद्धिसे यही जँचा कि आप जो कुछ लिखते हैं वही ठीक है और मुझको वही करना चाहिये, इसमें मेरा लाभ है। पहले भी कई बार ऐसा सोचा था। परन्तु क्या करूँ, मेरा मन काममें नहीं लग रहा है। मेरी बड़ी ही नीचता और पशुता है कि आपके स्नेहमय वाक्योंको पढ़कर और सुनकर भी मैं फिर उनपर लिखता और सोचता हूँ, परन्तु यह नीचता तो प्रत्यक्ष और अनेक बारके व्यवहारसे सिद्ध है।

कभी कुछ लिखने बैठता हूँ, दो-चार लाइनसे ज्यादा नहीं लिख पाता। जेठके अंकमें प्रायः कुछ भी नहीं लिख सका। बुलन्दशहरके एक व्याख्यानका अंश 'संकीर्तनवालोंने' छाप दिया था, उसीसे काम चला। वही हाल आषाढ़में हो रहा है।

बोलनेकी भी यही दशा है। बहुत साहस करके कुछ बोलना चाहता हूँ, शुरू करता हूँ परन्तु कुछ मिनटोंमें चुप हो जाना पड़ता है। मैंने लोगोंसे बहुत कहा है—ईश्वरकी इच्छांनुसार यंत्रवत हमें रहना चाहिये। परन्तु क्या करूँ अज्ञान और अभिमानसे भरा मन इस बातको नहीं काममें लाता।

'ऊपरसे अभिमानका कार्य भले ही दीखे, मनमें नहीं रहना चाहिये'— आपका यह लिखना उचित है। परन्तु मेरे तो मनमें प्रत्यक्ष दिखता है। आपने लिखा कि जिसपर भगवान्‌की असाधारण कृपा है, उसको अपने लिये कुछ भी विचार करनेकी जरूरत नहीं है। याने जो कुछ होवे उसीमें आनन्द मानना चाहिये। यह आपका लिखना सर्वथा सत्य है। मैं भी आपसे कई बार सुनी होनेके कारण यही बात लोगोंसे कहा करता हूँ। पर मैं देखता हूँ मेरे ही भगवत्प्रेरणासे होने चाहिये। नहीं तो भगवत्कृपा असाधारण है यह माननेमें भूल होनी चाहिये। यह तो मैं नहीं समझता कि मेरे मनके विचार भगवत् प्रेरित हैं। मैं तो यह समझता हूँ, मेरी ही नीचता है। सचमुच मुझे आजकल ऐसा ही दिखता है कि जगतमें सभी मुझसे अच्छे हैं। मैं तो दोषोंसे भरा हूँ। इसीसे यह भावना होती है और सत्य ही होती है कि मैं श्रीभगवान्‌का और आपका नाम वस्तुतः बदनाम ही कर रहा हूँ। आपकी समझमें नहीं आता सो भी ठीक है क्योंकि भगवान्‌का और आपका नाम आपकी दृष्टिमें वस्तुतः बदनाम हो नहीं सकता। मेरी यह सारी बातें बेसमझी की हैं। परन्तु क्या करूँ। अब तो चरणोंमें यही प्रार्थना है कि या तो मेरे मनमें उठनेवाले इन विचारोंका नाश हो जाना चाहिये। नहीं तो मुझे लिखने, बोलने, नाम देने आदि कार्योंसे छुट्टी मिल जानी चाहिये। मैं यहाँ रहता हूँ परन्तु काममें दिल नहीं है। अपनी धृष्टताके लिये मुझे शर्म भी नहीं आती यह नीचताकी पराकाष्ठा है।

(नोट : इस पत्रका जो उत्तर पूज्य श्रीगोयन्दकाजीने दिया वह आगे दिया जा रहा है।)

बांकुडा, आषाढ़ शुक्ल ६/१९९१ वि.

भाई हनुमानप्रसादसे जयदयालका पुनः प्रेम सहित राम राम बाँचना। तुम्हारे प्रेम और बर्तावके विषयमें कुछ लिखा नहीं जा सकता। मैं तो बदला चुका नहीं सकता। तुम हमारी जितनी बातें काममें लाते हो, हम तो बदलेमें कुछ भी काम ला नहीं सकते। कोई-कोई समय तो उसके विपरीत उल्टा आर्डर दे देते हैं, वह भी तुम सहन कर लेते हो। इसलिये भी मैं (तुम्हारा) कृतज्ञ हूँ।

तुमने लिखा मुझे लिखने, बोलने, नाम देने आदि कार्योंसे छुट्टी मिलनी चाहिये, सो ठीक है। तुम बहुत दिनसे कह रहे हो कि किन्तु मेरी रुचि देखकर तुम सब कार्य कर रहे हो यह तुम्हारे प्रेमकी बात है।

और तुमो लिख्यो मेरे मन माँय बारबार इस माफक फुरना क्यों हुवे छे सो ही ठीक छे भगवान् जाने तथा तुमों लिख्यो इस माफक फुरना मेरे मन मांय नहीं होनी चाये। इन विचारोंका एकदम नाश हो जाना चाये

सो ही ठीक छे। इन विचारोंका नाश करने या नहीं करनेकी शक्ति तो उस भगवान्‌की ही छे। हमाने हमारे मांय तो ऐसी कोई शक्ति मालूम देवैछ नहीं जिके द्वारा तुमारे मनके विचारोंको परिवर्तन कियो जा सके तथा तुमारो चित मांय विचार हुवे छे जिको ठीक छे या गैर ठीक जिको भी भगवान् जाने। हमां कुछ निर्णय कर सका नहीं और तुमों लिख्यो हमारे चितमांय विचार हुवे छे जिको या तो भगवान्‌की प्रेरणासे होनो चाये या भगवान्‌की साधारण कृपा नहीं समझनी चाये सो ही ठीक छे। हमां लोगोंको तो भगवान्‌की कृपा अपनेपर पूर्ण ही समजनी चाये। चित मांय विचार हुवे छे जिकेके विषय मांय कुछ समझ मांय आवे नहीं और तुम्हारो बार-बार लिखनो छे फुरना भी बहुत दिन सेती हुय रई छे इसलिये तुम्हारे जचे तो उसी माफक करने सको छो—

(१) तुमां लिख्यो लिखनेकी इच्छा नहीं होती, लिखने लगता हूँ तब विशेष नहीं लिख सकता ज्येष्ठ-आषाढ़के अंकमें इसी कारन विशेष लेख नहीं दिया गया सो ही ठीक छे यथाशक्ति लिखनेको काम तो रखनो ही चायें और कुछ नहीं लिखा सको तो कल्याणमें लेख तो जरूर ही देनो चाये। बिना तुम्हारे लेखके कल्याण फीको मालूम देवे छे। आगे जाय कर कल्याणके ग्राहक भी सायत कमती हुये जावे तो कोई बड़ी बात नहीं। शक्ति अंकमें अभीतक तुम्हारो लेख आयो नहीं इससे विशेषांक सुन्दर मालूम देवे नहीं। तुम्हारा लेख नहीं देवे तो संसार मांय साहित्यक दृष्टिसे लोगोंके लेखोंके विशेष प्रचारकी भी विशेष आवश्यकता मालूम देवे नहीं। कोई-कोई लेख तो ऐसो भी निकल जावे सायद बहुतसे भावोंके उलटो प्रभाव पड़ने सके छे जैसे आषाढ़में 'भंग भोगी भगवानकी भ्रांति' इसलिये तुम्हारे जचे तो लेख यथाशक्ति तुम्हारा ही जास्ती रेवे तो भोत ठीक रेवे इसलिये कोशिश पूरी करनी चाये। पीछे जो हुवे उसमें भगवान्‌की मरजी समझनी चाये।

(२) तुमां लिख्यो बोलने मांय भी याही बात है सो भी ठीक छे। कमती बोल्यो जावे तो भी विशेष अडांस छे नहीं। यद्यपि अडांस तो छे। बाकी भीतरकी इच्छा और फुरना कमती हुवे जने जोर देयकर लिख्यो भी जावे नहीं यो काम कमती करने सको छो।

(३) कल्याणमें नाम नहीं देनेकी बात लिखी सो ही ठीक छे बाकी तुम्हारो नाम दियो बिना कल्याणको प्रचार कमती पड़नेकी उमेद छे तथा दूसरो झूठो नाम देनो भी ठीक नहीं। कल्याणको काम कमजोर करनेकी इच्छा हुवे जने तुम्हारी इच्छा हुवे उसी मुजब करने सको छो। तुम्हारी राय मांय ही मेरी राय है। **स्वतंत्र हमारी इच्छा नहीं थी तथा है भी नहीं** तो भी हमारेको उचित यही मालूम देवे छे। तुम्हारी इच्छाको ही प्रधानता देनी चाये कारन तुम्हारे फुरना हुवे जिकी भगवानकी इच्छा सेती हीं हुवती हो तो उस मांय रूकावट डालनी ठीक मालूम देवे नहीं। इसलिये अब तुम्हारी इच्छा मांय ही हमारी इच्छा समझी जाये और चेष्टा भी इसके लिये यथाशक्ति करनेको विचार छे जहाँतक हुवे तुम्हारी इच्छा माफक सम्मति देनेके लिये कोशिश करनी जिस पर भी मन नहीं मानेगो तो हमारी इच्छा भी जनावनेको विचार छे और उपाय ही क्या है। मनमांय कोई प्रकार नहीं जचे उसके आगे मनुष्य लाचार है।

(४) सत्संग कमेटीके विषय मांय आगे तुमों लिख्यो थो उसको संचालक रहनेकी भी मेरी इच्छा नहीं है सो ही ठीक छे इसके लिये तुम ठीक समझो जिस माफक करने सको छो। न चलानेकी अपेक्षा तो कुछ चलाने मांय ठीक मालूम देवे छे और दूसरो संचालक कोई रेवे तो अच्छी बात छे बाकी दूसरेको आधिपत्य लोग कमती मानता दीखे छे बाकी जिस तरे तुमारे चित मांय जचे उसी मुजब करने सको छो हमारी भी उस मांय राय है।

(५) गीताप्रेसके कामको संचालनके लिये आगे तुमो लिख्यो थो मेरी इच्छा संचालक रहने की छे नहीं सोई ठीक छे। प्राय: लोगोंने काम बाँट दियो छे और भी निगाह राखने सेती कुछ ठीक होणे सके छे। जहाँतक हो तुमारे पर भार कमती देवे जिकी चेष्टा छे। बाकी कोई बहुत जरूरी काम आय जाय सो तो तुमांने करनो पड़े।
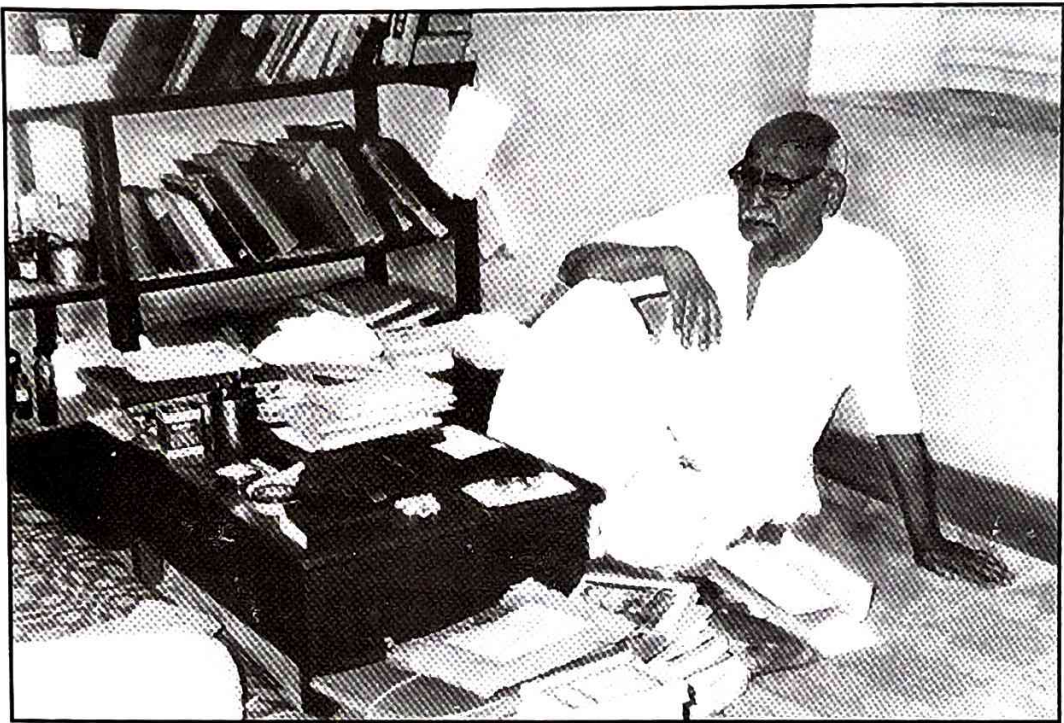
कल्याण कार्यकी मुद्रामें

लोग दूसरेकी बात माने भी नहीं दूसरा लोग कंट्रोल भी करने सके नहीं। मनुष्यने अपनी बुद्धिके अनुसार उचित कार्यवाही करनी चाये फिर उसके परिणाममें ईश्वर इच्छा मानकर संतोष करनो चाये।

(६) गोरखपुरके बाहर जानेकी तुमो इच्छा लिखी सो ही ठीक छे तुमों बाहर मांहे जावोगा जने तुम्हारे साथें भोतसा भाई लोग जाने सके छे तुमां गुप्त रेवो जणे तो कल्याणको काम होने सके नहीं प्रगट रहनेसे लोग तुम्हारे साथे जाने सके छे। इस हालत मांय वहाँ भी एकान्त विशेष मिलनी कठिन मालुम देवे है इसलिये हमां श्रीशुकदेवजीने बगीचे मांय मकान बनानेका समाचार दिया है तुम्हारो शरीर भी सुन्यो ठीक रेवे नहीं जिको सायद उस बगीचे मांय जानेसे ठीक रेने सके छे कारन उस तरफकी जल, हवा इसकी अपेक्षा अच्छी सुनी जावे छे। पीछे उसके लिये भी निश्चय होने सके नहीं तथा शरीरके लिये तो चावो जदही जाणेको विचार करने सकोछो फिर २ तथा ४ महीनों बाद वापस आनो संभव छे। तुम्हारे जचे तो सगले कामको भार श्रीगोस्वामीजीपर देकर २ या ४ महीनेके लिये तुमां बाहर मांय याने झूसी आदि स्थान मांय जहाँ तुम्हारी इच्छा हुवे जायकर तकमीनो करनो चाये पीछे जिसतरे तुमारे जचे उस माफक करने सको छे। तुमारी राय मुजब हमारी राय समझनी चाये। हमारे मन मांय आई जिकी बात भी सगली लिख देई छे राय भी देय देई छे। तुमो ठीक समझो जिके ही मुजब करने सको हो। तुमो करोगा जिको भी तो विचार कर ही करोगा जिस मांय तुमों सुभीतो समझो तथा लोगोंके भी फायदो समजो उस मुजब ही तो करोगा फिर हमारो विशेष आग्रह करनो भी हमारी भूल ही है।

और तुम्हारे भोत दफे चित्त मांय उपरामता हुवे तथा तुमारो विशेष आग्रह मालूम देवे छे और तुमारो हृदयमें फुरना भी प्राय: ऐसी होती रेवे है सोई तुम्हारे (फुरना) भगवान्‌की इच्छासे ही हुवे तो कून जाने इसलिये हमारी कमती मनसा होनेपर भी तुम्हारी इच्छाको बलवान् समझकर प्राय: तुम्हारी रायमें बहुत आनंदसे रायकर सम्मति देइ छे इसलिये एक दफे तुम्हारी राय मुजबही कामकर देखनो चाये सायद उससे विशेष फायदो हुय जावे तो कौन-सी बड़ी बात है। यदि विशेष फायदो नहीं हुवेगो तो फिर पहलेके मुजब ही काम मांय लग जानो उचित मालुम देवे है। इसलिये एक दफे थोड़ा दिनके लिये देखना चाये फिर सुभीतो हुवे फायदो विशेष मालुम देवे तो म्याद बढ़ाने मांय भी कुछ हर्ज नहीं है।

और कल्याणका सम्पादन करना उसमें लेख देना यह काम तो तुम्हारा ही है। कल्याणमें नाम नहीं देना इस बातको छोड़कर करीब-करीब तुम्हारी सगली बात ही कमती इच्छा होनेपर भी हमां मान ली।

संसार मांय अपने नामरूपको प्रचार करनो मनुष्यके लिये कुछ भी लाभदायक नहीं है इसलिये इससे सर्व प्रकारसे मनुष्यको हटना चाये यह न्याय है बाकी लेख पुस्तक अखबारोंमें लोगोंके आग्रहसे कहीं यदि देणा पड़े और उससे संसारके मांय फायदो हुवनेकी उमेद हुवे तो आग्रह नहीं करनो भी उत्तम है ऐसी समजकर ही लेखमें पुस्तकमें अच्छे पुरुष नाम देते हैं और कोई दूसरा कारन नहीं है।

और तुमो अपने प्रति नीचता पशुताके शब्द लिखे सो नहीं लिखना चाये तुम्हारा बर्ताव भोत ही सुन्दर है और तुमों लिख्यो संसार मांय सगले मुझसे अच्छे हैं। यह बात समझ मांय आवे नहीं तथा तुमों अपनेको अभिमान और अज्ञानसे भरा लिख्या और भोत-सी बातें लिखी जिकी भी साफ समझ मांय आवे नहीं। इस माफक लिखनेको तुम्हारो स्वभाव पड़ गयो या के बात छे कुछ भी अर्थ समज मांय बैठे नहीं।

और तुमो लिख्यो मैं जो भगवानको तथा आपको नाम बदनाम करता हूँ सोई इस माफक नहीं लिखना चाहिये तुमने कौनसा ऐसा नीच काम किया जो तुम इस माफक लिखते हो। श्रीभगवानको नाम तो कोई बदनाम कर ही नहीं सकता। भगवान् तो भगवान् ही रहते हैं। चाहे हम लोग कैसे ही क्यों न हों? मेरो नाम तो मामूली छे जैसो हूँ उससे तुमां ने कुछ विख्यात ही किया है। प्रतिष्ठा बढ़ाई है या प्रतिष्ठा वास्तवमें मेरे लिये

लाभदायक नहीं है इस कारन तुमों मेरो नाम बदनाम समजो तो समज सको छो।

आज मैं भोत सी बात लिख गयो तुम्हारे समय विशेष लागेगो बाकी कुछ हरज नहीं भोत चिठी भेली हुयोड़ी पड़ी थी एक साथ लिखनेके कारन लेख जास्ती हुय गयो समाचार बढ़ाकर लिखनेकी मेरी अनुचित आदत है।

श्रीदुजारीजीकी इच्छा ऐसी छे—भाईजी तथा आप दोनों जना मिलकर एक स्थानमें श्रीगीताजीकी टीका करो तो ठीक छे तथा आप लिखावो और भाईजी इसे ठीक करे उनको कहनो भोत ठीक मालूम देवे छे बाकी मेरा तुम्हारे पास रहनो होनेसे यो काम होने सकछे सो ही तुमाने समय मिले जने पीछे यो विचार उचित मालूम देवे तो कियो जाने सके छे।

भजन, ध्यान, सत्संग तो तुम्हारे लोगोंके हुवे ही छे तुम्हारी चेष्टा इस विषय मांय विशेष रेवे छे मैं के लिखूँ : भाई लोग भोत दिनसे इस काम मांय लाग रेया छे तुमारे बताये हुए मार्गकी तरफ ख्याल विशेष नहीं करनेके कारन विशेष लाभ उठाने पावे नहीं शायद इस कारन तो तुमारे उपरामता नहीं हुवे हैं?

(४)

गोरखपुर २१.७.६०

श्रीचरणोंमें सादर प्रणाम,

पूज्य श्रीभाभीजीके देहावसानका तार कलकत्तेसे १३ तारीखका दिया हुआ कल मिला। समाचार तो मुझे दूसरे दिन ही मिल गया था। कलकत्ते श्रीपरमेश्वरजीसे फोनमें बात की थी, तब उन लोगोंने बताया था। पर बाँकुड़ासे कोई समाचार नहीं मिला। हड़तालके कारण यह सब गड़बड़ी रही। पहले तो माननेको ही जी नहीं चाहा क्योंकि बीमारी कोई खास थी नहीं, कलकत्तेसे शायद शुक्रवार रातको ही गये थे। अकस्मात कैसे क्या हो गया फिर परसों शामको कलकत्ते नारायणप्रसादसे फोनपर बात हुई तब सारी बातोंका पता लगा। भगवान्का विधान जैसा होता है वैसी ही बात बन जाती है।

आपके आँखकी तकलीफ तो थी ही। यह एक और शोचनीय बात बन गयी। पर श्रीभाभीजीका तो अत्यन्त सौभाग्य था वे जीवनभर आपकी सेवा करती रहीं। सबके साथ अत्यन्त स्नेहका मधुर बर्ताव किया और अन्तमें बिना किसीसे सेवा कराये आपकी सन्निधिमें दिव्यलोकको प्रयाण कर गयीं।

योगवाशिष्ठका काम रुका है। पुस्तक जो आप देख रहे थे, यहाँ भेज दी होगी, नहीं तो तुरन्त कृपया भेज देनी चाहिये, जिससे आगे छँटाईका तथा अनुवादका काम चले। प्रूफ कल मिले। पर लेख तो पहले ही छप गया था। हड़तालके कारण डाककी अनिश्चितता थी, इसलिये प्रतीक्षा नहीं की गयी।

भाईजी श्रीहरिकृष्णदासजीके पहुँचका तार परसों ही मिला।

बांकुड़ाका उपद्रव बहुत ही बुरी चीज हुई अब शान्ति होगी। शेष भगवत्कृपा।

~~~

एक संदेश

'' मैं केवल एक संदेश लेकर आया हूँ और वह है 'श्रीभगवन्नाम'। शास्त्रोंका कथन है, मेरा अनुभव है, महापुरुषोंका उपदेश है, अनेकों बड़े-बड़े महात्माओंका अनुभव है, श्रीभगवान्की दिव्य वाणी है और मेरा विश्वास है कि इस घोर कलिकालमें नामके सिवाय और किसीका सहारा नहीं है।''

— श्रीभाईजी
~~~

॥ श्रीहरि: ॥

सत्रहवाँ पटल

बम्बई छोड़नेका उपक्रम

चरित्रनायक श्रावणमें कल्याणका प्रथम अङ्क निकालकर निश्चिंत हुए ही थे कि एक नयी चिन्ता आ पड़ी। श्रीगोयन्दकाजीका स्वास्थ्य विशेषरूपसे खराब हो गया। औषधोपचार जैसा होना चाहिये था, वह हो रहा था पर कोई खास लाभ नहीं प्रतीत हुआ। सभी सत्संगियों को चिन्ता थी कि स्वास्थ्य ठीक होना चाहिये। सत्संगियोंके लिये तो ऐसा होना स्वाभाविक ही था। उनके परिवारसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य सज्जनोंको भी चिन्ता होने लगी। बीकानेरके पण्डित श्रीगणेशदत्तजी व्यास गोयन्दकाजीके यज्ञोपवीत गुरु थे तथा गोयन्दकाजीपर उनका बड़ा स्नेह था। उन्हें रुग्ण देखकर वे भी चिन्तित हो गये। व्यासजी स्वयं ज्योतिषी एवं तन्त्रशास्त्रके अच्छे पण्डित थे। गोयन्दकाजीकी कुण्डली मिलाकर उन्होंने देखा तथा उनके विश्वासके अनुसार उन्होंने यही समझा कि बिना ग्रह शान्ति हुए गोयन्दकाजी अच्छे नहीं होंगे। अत: इसके लिये उन्होंने गोयन्दकाजीके परिवारको प्रेरणा की। परिवारके सभी लोगोंका व्यासजीपर बड़ा विश्वास था, फिर भी इस सम्बन्धमें उन्हें किसीने तनिक भी प्रोत्साहन नहीं दिया। यह बात बिल्कुल नहीं थी कि अर्थका संकोच हो। रुपये चाहे जितने व्यय किये जा सकते थे, पर बात अड़ रही थी सैद्धान्तिक आदर्शको लेकर। श्रीगोयन्दकाजीके सिद्धान्तमें निष्कामता कूट-कूटकर भरी थी। उन्होंने प्रभु उपासनामें मोल-तोलकी बात न तो अपने जीवनमें कभी की, न वे इसका प्रोत्साहन ही चाहते थे। वे तो उपासनाके लिये उपासना, भजनके लिये भजनका सिद्धान्त मानते थे तथा जब अपनेसे अपने प्राणाराम प्रभुके प्रति उनका यह भाव था तब वे अन्य देवताओं, ग्रहों, उपग्रहोंकी सकाम उपासनाके पक्षपाती क्यों कर हो सकते थे। अत: उनके सिद्धान्तका असर यत्किञ्चित् हेरफेरसे उनके परिवारवालोंपर भी पर्याप्त पड़ा था। यही कारण था कि गणेशदत्तजी व्यासका सकाम अनुष्ठान सम्बन्धी प्रस्ताव समर्थन नहीं पा सका और व्यासजी कुछ निराश-से हो गये। उन्हें निराशा इस बातकी थी कि अनुष्ठान अर्थसाध्य था, स्वयं उनके पास इतने रुपये थे नहीं कि वे लगाकर करते और परिवारवालोंने सकाम अनुष्ठान कराना नहीं चाहा, साथ ही वे अपने परमप्रिय गोयन्दकाजीको स्वस्थ देखना चाहते थे तथा उसके लिये अपनी समझसे जो सर्वोत्तम उपाय था, वही करना चाहते थे। आखिर उन्हें चरित्रनायक याद आये और उन्होंने सारा विवरण इन्हें लिख भेजा कि अनुष्ठान तो स्वयं मैं कर दूँगा, पर उसका खर्च तुम वहन कर लो। चरित्रनायकने ज्यों ही यह बात सुनी, वैसे ही चुपचाप बिना किसीको बताये पण्डित गणेशदत्तजीकी इच्छानुसार सारी व्यवस्था अपनी तरफसे कर दी। अनुष्ठान कर दिया गया। अब सम्भव है, तार्किक दृष्टिमें यह काकतालीय न्याय ही सिद्ध होता है, पर सचमुच ही अनुष्ठान पूर्ण होते ही श्रीगोयन्दकाजी पूर्ण स्वस्थ हो गये। सभीका चित्त प्रसन्न हो गया। यह घटना कार्तिक वि० १९८३ की है।

चरित्रनायकका रामकृष्णजी डालमियाके परिवारसे सदा ही परिवारका-सा सम्बन्ध रहा है। लगभग माघ मास संवत् १९८३ की बात है कि रामकृष्णजीके कनिष्ठ भ्राता जयदयालजीकी धर्मपत्नी कृष्णादेवी चिड़ावा में बहुत बीमार हो गईं। उस समय उनकी अवस्था लगभग १९ वर्ष की थी। उनको स्ट्रेचरमें लेकर बम्बई चिकित्साके लिये ले गये थे। बम्बईमें रामकृष्णजीके परिवारके सब लोग चरित्रनायक श्रीभाईजीके पास ही ठहरे। वहाँ कृष्णादेवी की लगभग अन्तिम अवस्था आ पहुँची। बीमारीकी बेहोशीमें राम नामका जप किया करती थीं। उनकी अन्तिम अवस्थामें उनसे पूछा गया कि किसीसे मिलनेकी इच्छा है क्या? कृष्णादेवी ने अपने पिताजीसे मिलनेकी इच्छा बताई। उन्हें तार देकर मिला दिया गया।

अवस्था इतनी खराब हो चली थी कि कोई तो जयदयालजीके लिये दूसरी लड़कीका प्रस्ताव भी रखने लगे। हठात् ऐसा हुआ कि वह बिना किसी चिकित्साके वहीं पर ठीक होनी आरम्भ हो गईं और कुछ दिनमें बिलकुल स्वस्थ हो गईं। इसके लगभग एक वर्षके बाद उनको पुत्र रत्नकी प्राप्ति हुई जिसका नाम रखा गया विष्णुहरि।

उपर्युक्त घटनामें अलक्षित रूपसे श्री भाईजीकी अनिर्वचनीय कृपा ही हेतु है।

इधर कल्याणका प्रकाशन सुचारु रूपसे चल रहा था। फाल्गुनतक चरित्रनायक बंबईसे बाहर नहीं गये। अपनी साधना, साथियोंकी सँभाल, प्रकाशन तथा होलीपर सदाकी तरह होनेवाले हरे राम० महामन्त्रके यज्ञमें ही लगे रहे। पर चैत्रमें पुनः बंबई छोड़ना पड़ा। जयदयालजीका चैत्र कृष्णा द्वादशीको तार आया, यदि काममें विशेष हर्ज न हो, माँजी स्वस्थ हों तथा वे आज्ञा दें तो महासभाके समय पहुँचना चाहिये। बस, आज्ञाकीही देर थी। माँके प्रसन्न हृदयकी अनुमति लेकर उसी दिन दोपहरको नागपुर मेलसे रवाने हो गये, चतुर्दशीको दोपहरमें बाँकुड़ा पहुँच गये।

अग्रवाल महासभामें दो पार्टी हो गयी थी। आपसमें बहुत विरोध हो गया था। एक पार्टी विधवा विवाह, सहभोज, विलायत यात्रा आदि सुधारोंका समर्थन महासभाके द्वारा कराना चाहती थी, दूसरी पार्टी जिसे पंचायत पार्टी कहा जाता था, इन सुधारोंको आर्यसंस्कृतिका घातक मानकर घोर विरोध कर रही थी। पंचायत पार्टीका तार श्रीगोयन्दकाजीके पास आया था, जिसमें प्रार्थना की गयी थी कि आप लोग महासभाको अपना सहयोग मत दें, अधिवेशनमें उपस्थित तक न हों। इसी प्रश्नपर श्रीगोयन्दकाजी चरित्रनायकके साथ परामर्श करने लगे। श्रीगोयन्दकाजीके भाई श्रीहरिकृष्णदासजी एवं हनुमानदासजी गोयन्दका आदि अन्य मित्रोंने भी अपनी-अपनी राय दी। अन्तमें सबकी रायसे कलकत्ते जानेका विचार ही स्थिर हुआ। रात्रिमें अन्य १४ साथियोंके साथ चरित्रनायक एवं गोयन्दकाजी कलकत्ते चले। महासभामें सम्मिलित होनेवालोंके प्रति बहुत विरोधका प्रदर्शन किया जा रहा था, अतः ये लोग शान्तिरक्षाकी दृष्टिसे हावड़ा स्टेशन न जाकर एक स्टेशन पहले राजारामतल्ला स्टेशनपर उतर पड़े। सत्संगी मित्रोंको सूचना मिल चुकी थी, अतः १०, १५ व्यक्ति राजारामतल्ला स्टेशनपर ही आ गये थे। इन पंक्तियोंका लेखक भी उन व्यक्तियोंमें सम्मिलित था। वहाँसे मोटरमें बैठकर सीधे गोविन्दभवन चले गये। वहीं शौचादिसे निवृत्त होकर चरित्रनायकने, दोनों दलमें आपसमें द्वेष मिटे, मित्रता हो, इस विषयपर बड़ा सुन्दर भाषण दिया। महासभाका अधिवेशन प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीयाको हुआ। तीनों दिन ही उनका अधिकांश समय समझौता करानेमें ही व्यतीत हुआ। दोनों पार्टियोंको बड़े प्रेमसे खूब समझाया, शान्त करनेकी बड़ी चेष्टा की, पर समझौता न हो सका। हाँ, इनके बीचमें पड़ जानेसे यह लाभ अवश्य हुआ कि जो बहुत गड़बड़ी होनेकी आशङ्का थी, सो न होकर अधिवेशनका कार्य सानन्द समाप्त हो गया। गोयन्दकाजी तो अधिवेशनमें सम्मिलित नहीं हुए। पहले सम्मिलित होनेका पूर्ण विचार था, सभापतिके भाषणमें विधवा विवाहका समर्थन देखकर विचार बदल गया। पर इनके मनमें तो किसीके प्रति दोष तो था नहीं अतः महासभाके कार्यमें अवाञ्छनीय अशान्ति न हो, इसलिये स्वयं न जाकर चरित्रनायकको शान्ति बनाये रखनेके लिये भेजा। अपने परमाराध्य पथप्रदर्शककी आज्ञासे चरित्रनायक तो प्राण दे सकते थे, यह तो तुच्छ बात थी। अतः चरित्रनायक सम्मिलित हुए तथा इनके रहनेसे सचमुच ही अधिवेशनकी शान्ति रक्षामें बड़ी सहायता मिली।

केवल अधिवेशनके उद्देश्यसे ही कलकत्ते आना हुआ था, पर आनेपर यह विचार हुआ कि जब यहाँतक चले आये तो गौहाटी भी एक बार हो आवें। वहाँ चरित्रनायककी सास रहती थीं। उनका शरीर भी कुछ अस्वस्थ रहता था तथा बहुत दिनोंसे मिलना भी नहीं हुआ था, उनका बड़ा आग्रह भी था कि एक बार चरित्रनायक उनसे मिल लें। अतः चैत्र शुक्ल वि०सं० १९८४ पंचमीके दिन गौहाटीके लिये चल पड़े। भगवान्‌की

असीम अनुकम्पासे इन पंक्तियोंके लेखकको भी इस बार साथ चलनेका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। यात्रा बड़ी सुखमय रही। गौहाटी तीन दिन रहे।

इधर गत एक वर्षसे इनके मनमें प्रपञ्चसे उपरामता बड़ी तेजीसे बढ़ रही थी। यों तो ये सारे काम यथोचित रूपसे ही करते थे, पर व्यवहारमें संकोच करनेकी वृत्ति बनी रहती थी। नश्वर जगत्‌के विविध चित्र सामने आते थे। इनका एक बड़ा शौकीन मित्र था। बंबईमें हठात् उसका शरीर छूट गया था। ये उस समय बंबईमें ही थे। शव-संस्कारके लिये ये भी श्मशान गये। चिता धू-धूकर जल उठी और मित्रका वह शरीर जिसे वह दिनभर सजाया करता था, जलने लगा। वे सुन्दर-सुन्दर केश फुर-फुर जलते हुए क्षणोंमें राख हो गये। चरित्रनायकके हृदयमें एक अजब कम्पन होने लगा। वहीं श्मशान भूमिमें बैठे-बैठे ही एक पदकी रचना मन-ही-मन होने लगी। वे मन-ही-मन गुनगुनाने लगे—

पल भर पहले जो कहता था, यह घर मेरा यह धन मेरा।
प्राणों के तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥

जिस चटक-मटक औ फैशन पर तू है इतना भूला फिरता।
जिस पद-गौरव के रौरव में दिन-रात शौकसे है गिरता॥
जिस तड़क-भड़क औ मौज-मजोंमें फुरसत नहीं तुझे मिलती।
जिस गान-तान और गप्प-शप्पमें सदा जीभ तेरी हिलती॥
इन सभी साज-सामानों से छुट जायेगा रिश्ता तेरा।
प्राणों के तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥

जिस धन-दौलतके पानेको तू आठों पहर भटकता है।
जिन भोगोंका अभाव तेरे अन्तरमें सदा खटकता है॥
जिस सबल देह सुन्दर आकृतिपर तू इतना अकड़ा जाता।
जिन विषयोंमें सुख देख रहा पर कभी नहीं पकड़े पाता॥
इन धन, जौवन, बल, रूप सभीसे टूटेगा नाता तेरा।
प्राणों के तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥

जिस तनको सुख पहुँचानेको तू ऊँचे महल बनाता है।
जिसके विलासके लिये निरन्तर चुन-चुन साज सजाता है॥
जिसको सुन्दर दिखलानेको है साबुन-तेल लगाता तू।
जिसकी रक्षाके लिये सदा है देवी-देव मनाता तू॥
वह धूलि-धूसरित हो जायेगा सोने-सा शरीर तेरा।
प्राणों के तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥

जिस नश्वर तनके लिये किसीसे लड़नेमें नहिं सकुचाता।
जिस तनके लिये हाथ फैलाते जरा नहीं तू शरमाता॥
जो चोर-डाकुओंके डरसे नित पहरोंके अंदर सोता।
जो छायाको भी भूत समझकर डरता है व्याकुल होता॥

वह देह खाक हो पड़ा अकेला सूने मरघटमें तेरा।
प्राणों के तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥
जिन माता-पिता पुत्र, स्वामीको अपना मान रहा है तू।
जिन मित्र-बन्धुओंको, वैभवको अपना जान रहा है तू॥
है जिनसे यह सम्बन्ध टूटना कभी नहीं तैने जाना।
है जिनके कारण अहंकारसे नहीं बड़ा किसको माना॥
यह छूटेगा सम्बन्ध सभीसे, होगा जंगलमें डेरा।
प्राणों के तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥
है जिनके लिये भूल बैठा उस जगदीश्वरका पावन नाम।
तू जिनके लिये छोड़ सब सुकृत पापोंका है बना गुलाम॥
रे भूले हुए जीव! यह सब कुछ पड़े यहीं रह जायेंगे।
जिनको तैने अपना समझा, वे सभी दूर हट जायेंगे॥
हो जा सचेत! अब व्यर्थ गवाँ मत जीवन यह अमूल्य तेरा।
प्राणों के तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०३९)

उपर्युक्त पद भले ही उच्चकोटिका काव्य न हो, चरित्रनायकके तत्कालीन भावके सच्चे चित्र तो अवश्य हैं। पद-रचनाके लिये उन्होंने यह रचना की हो, यह बात बिल्कुल नहीं है। यह तो स्वाभाविक ही उस समय मन जिन भाव तरंगोंमें बह रहा था, उनका बाह्यरूप है। अस्तु, गत वर्षसे ही मन उपरामताकी ओर दौड़ रहा था। इस बारके अग्रवाल महासभाके अधिवेशनमें भी राग-द्वेषका नग्न दृश्य देखनेको मिला। अत: गौहाटी पहुँचते ही व्यवहार संकोचकी प्रवृत्ति अत्यन्त क्षीण हो उठी। उन्होंने बंबईकी दूकानसे अलग होनेका निश्चय कर लिया। वहींसे बंबई दूकानवालोंको तारतक दे दिया कि दूकानके घरुसौरे (माथे पोतेके काम) को बराबर कर दो। इस निश्चयके अनुसार ही वे आगे चलकर सचमुच दूकानसे अलग भी हो ही गये। जो हो गौहाटीसे चलकर नवमी (चैत्र शुक्ला १९८४ वि०) के दिन कलकत्ते पहुँचे तथा वहाँसे चलकर दशमीको बाँकुड़े श्रीगोयन्दकाजीसे मिलने आये।

कल्याणका दूसरा वर्ष आरम्भ होनेका समय निकट आ रहा था। यह विचार होने लगा कि इस बार प्रथम अङ्क एक विशेषाङ्कके रूपमें सज-धजकर बृहत् आकारमें प्रकाशित हो। इन पङ्क्तियोंके लेखकपर चरित्रनायककी बड़ी कृपा रहने लगी थी, अत: उसने यह प्रस्ताव करनेका साहस किया कि इस बार वर्षका आरम्भ भगवन्नामाङ्कसे किया जाय। चरित्रनायककी तो भगवन्नामके प्रति आदर्श रुचि थी ही, साथ ही श्रीगोयन्दकाजीने भी अनुमति दे दी। अत: भगवन्नामाङ्क निकालना निश्चित हो गया। चरित्रनायक बाँकुड़ेसे चलकर नवादा (गया जिला) चले आये। श्रीरामकृष्णजी डालमियाकी बहन गोदावरीबाईसे मिलना था। गोदावरीबाईकी इनपर बड़ी श्रद्धा थी और आजतक ज्यों की त्यों बनी हुई है। गोदावरीबाई जैसी पवित्र-हृदया तथा प्रीतिपूर्वक भगवद्भजन करनेवाली स्त्रियाँ धनिकोंके घरमें थोड़ी ही मिलती हैं। उनका सरल, कपटहीन, भजनमय हृदय ही चरित्रनायकको वहाँतक खींच ले गया। अस्तु, वहाँसे चलकर पूर्णिमाको (चैत्र १९८४ वि०) सतना पहुँचे। स्टेशनपर ही भोजनादिसे निवृत्त होकर बंबई चल पड़े। प्रतिपदाके दिन बंबई पहुँचे। पथमें खण्डवा स्टेशनतक इनके पुनीत संगका परम लाभ

इन पंक्तियोंके लेखकको भी मिला था।

भगवन्नामाङ्ककी तैयारीमें लगने ही जा रहे थे कि बीचमें एक और काम आ पड़ा। राजपूतानेके तत्कालीन प्रसिद्ध संत श्रीउत्तमनाथजी महाराज* बंबई पधारे। नाथजी महाराज एक 'अनुभव प्रकाश' नामक पुस्तक छपानेके लिये बंबई पधारे थे। महाराजकी इच्छा थी कि पुस्तक शुद्ध छपे। हिन्दी भाषाका ज्ञान महाराजको विशेष नहीं था। इसलिये प्रूफ संशोधनकी सेवा चरित्रनायकके ऊपर आयी। इनके पास समयका बड़ा संकोच था, फिर भी इन्होंने नाथजी महाराजकी सेवा स्वीकार की ही। समय निकालकर ये वेङ्कटेश्वर प्रेसमें जाते तथा महाराजके सामने ही प्रूफ संशोधन करते। नाथजी इनके साधु-स्वभावसे अतिशय प्रसन्न हुए। वे कृपा करके सत्संग भवनमें नित्य प्रातःकाल पधारते तथा वहाँ उनका वेदान्तविषयक सुन्दर प्रवचन होता। लगभग एक-डेढ़ महीनेमें 'अनुभव प्रकाश' छपकर तैयार हुआ। महाराजकी सेवा पूर्ण हुई, इसी बीचमें किसी आवश्यक कार्यसे एक बार वैशाखके महीनेमें नासिक भी जाना पड़ा था, पर शीघ्र ही लौट आये थे।

इन दिनों चरित्रनायकके स्थानपर ही श्रीरामकृष्णजी डालमिया एवं बनारसीदासजी झुञ्झुनुवाले सपरिवार एक साथ ही भुलेश्वर दमकलके पास ताराचन्द घनश्यामदासके मकानमें रहते थे। श्रीभगवन्नामाङ्क कल्याणके विशेषाङ्ककी तैयारी करनी थी। उस समय एक श्रीशंकरलालजी गुप्ताके सिवा दूसरा कोई कल्याणके काममें सहायता करनेवाला था नहीं। इसलिये चरित्रनायककी प्रेरणासे इन पंक्तियोंका लेखक उन दिनों अपने कुटुम्बसहित बंबई आकर कल्याणका काम करने लगा। श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठिया देश (रतनगढ़) जानेवाले थे। माँजीका स्वास्थ्य ढीला चल रहा था, इसलिये चरित्रनायकने बजरंगलालजीके साथ अपनी धर्मपत्नीसहित माँजीको वायु परिवर्तनार्थ रतनगढ़ भेज दिया। इसी बीचमें श्रीजयदयालजी डालमियाने चरित्रनायकका एक सुन्दर फोटो ले लिया। कुछ दिन बाद डालमियाजी एवं झुञ्झुनुवाले तो अन्यत्र चले गये और चरित्रनायक अकेले रह गये। तब इन पंक्तियोंके लेखक अपने परम सौभाग्यसे

---

* महात्मा श्रीउत्तमनाथजी महाराजका जन्म जैसलमेर राज्यके होफले ग्राममें श्रीजेठमलसिंहजी भाटी राजपूतके घरमें हुआ था। इनके पिताजीकी महात्माओंके संगमें बड़ी रुचि थी, जिसका प्रभाव पुत्रके चित्तपर भी पड़ा। जब साधु-संत इनके गाँवकी तरफ आते तो ये भी उनके सत्संगमें जाकर पूर्ण लाभ उठाया करते। अन्तमें संसारसे विरक्त हो जानेके कारण आपने २३ वर्षकी अवस्थामें श्रीनवलनाथजी महाराजसे सं० १९५३ में संन्यासाश्रमकी दीक्षा ले ली।

स्वामीजी महाराज अधिकतर भ्रमण ही किया करते थे। सर्दीके दिनोंमें आप प्रायः ऋषिकेशमें रहा करते थे और गर्मी तथा चातुर्मासमें राजपूतानेके भिन्न-भिन्न भागोंमें भ्रमण करते हुए अद्वैत वेदान्तका उपदेश किया करते थे। आषाढ़ शुक्ला एकादशीसे भाद्रपद शुक्ला एकादशीतक दो मास एक ही स्थानमें विराजते थे। जहाँ आप श्रीमद्भगवद्गीता अथवा योगवाशिष्ठ आदि वेदान्त ग्रन्थोंपर प्रवचन किया करते थे। आपकी कथामें जिज्ञासु नर-नारियोंकी बहुसंख्यक उपस्थिति हुआ करती थी। आपके उपदेशोंकी शैली इतनी सरल और प्रभावोत्पादक होती थी कि वेदान्त-जैसे सूक्ष्म और गहन विषयको साधारण बुद्धिके लोग भी सहजहीमें समझ सकते थे। कथाओंके साथ दृष्टान्त, इतिहास, कविता और उसी विषयकी 'वाणियों' के गायन इतने हृदयग्राही हुआ करते थे कि श्रोताओंका मन उनको सुनकर कभी तृप्त हुआ नहीं करता—सुननेकी इच्छा बनी ही रहती थी।

ये जहाँ जाते जिज्ञासुओंकी भीड़ लगी ही रहती और सबको यथायोग्य समझानेमें आप कोई बात उठा न रखते थे। इनके सत्संगसे हजारों व्यक्तियोंने लाभ उठाया। सैकड़ोंके चरित्र सुधरे और सैकड़ों ही मानसिक व्यथासे मुक्त हुए। इनसे बड़े-बड़े राजा-महाराजाओंसे लेकर साधारणसे साधारण व्यक्ति एक समान लाभ उठाया करते थे। अछूत चाण्डालोंको भी आप अपने सदुपदेशोंसे वञ्चित नहीं रखते थे।

श्रीबीकानेर महाराजका आपके प्रति परम पूज्यभाव था। जैसलमेर नरेश तो श्रद्धापूर्वक इनकी कथाओं और उपदेशोंको सुना करते थे। और इन्हींके उपदेशसे जैसलमेरके राजपूतोंमें अनेक कुरीतियोंके सुधार हुए। बहुतसे राजपूत अपनी कन्याओंको जन्मते ही मार डाला करते थे। यह पाप कर्म अब वहाँ बहुत कम हो गया है। पर्वों और त्यौहारोंके अवसरपर पशुबलिका बड़ा जोर रहा करता था, पर आजकल वह निर्दय कर्म भी घटकर बहुत अंशोंमें कम हो गया है। बड़े-बड़े जागीरदारों तथा साधारण

चरित्रनायकके साथ रहने लगे। भोजन आदि सब कार्य साथ ही साथ होते थे। वह मकान बहुत बड़ा था। अब इतने बड़े मकानकी आवश्यकता न रही। इसलिये कांदेवाड़ीमें श्रीलच्छीरामजी चूड़ीवालेके मकानमें आकर रहने लगे। इन दिनोंमें श्रीचिरंजीवीलालजी गोयन्दका सत्संग भवनमें सत्संगके लिये आया करते थे।

मारवाड़ी अग्रवाल जातीय कोषके कैशियर श्रीराजाराम मित्तलने अपने खर्चके लिये २००० रुपये रोकड़मेंसे ले लिया। पता लगनेपर कोषके कमेटीवालोंने उसे पुलिससे गिरफ्तार करा दिया। तब वह किसीको अपना सहायक न देखकर चरित्रनायकके पास आकर रोने लग गया। चरित्रनायकके हाथमें उस समय रकमकी छूट बिलकुल नहीं थी, परन्तु इसकी कुछ भी परवा न करके दो-तीन सज्जनोंसे २००० रुपये अपने नामसे उधार लेकर उसे नकद देकर उसको छुड़ा दिया। जिससे उसका रोम-रोम इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगा। इनके लिये ऐसे-ऐसे मौके अनेकों आया करते थे और ये अपना कर्तव्य समझकर अपने कष्टोंकी कुछ भी परवा न करके दूसरोंको कष्टसे मुक्त करनेमें कुछ भी विचार नहीं करते।

अस्तु, बंबईमें रहकर इन्होंने लाखों रुपयोंका व्यापार किया। नफा नुकसान हुआ पर इनकी पारमार्थिक साधना ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी, त्यों ही त्यों इन्हें बंबईके प्रपञ्चमय जीवनसे उपरामता होने लगी। अब इन्हें बंबईमें एक-एक दिन रहना भारी लगने लगा। पर अभी इन्हें वहाँके अपने चिरंजीलाल हनुमानप्रसादके फर्मसे अपना हिस्सा निकालना था। यद्यपि इनके पास उस समय पूँजी एकत्रित नहीं हुई थी तथापि अपने फर्ममें उस समय कुछ फायदा था। इसलिये अपने साझीदारसे इन्होंने अपना

राजपूतोंसे अपने उपदेशद्वारा मद्य एवं अफीम आदि मादक पदार्थोंका सेवन छुड़वाया। इनके उपदेशोंके प्रभावसे कई स्थानोंमें पाठशालाएँ एवं विद्यार्थी-गृह आदि शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ स्थापित हुईं तथा जहाँ पानीका अभाव था, वहाँ कुएँ और तालाब बनवाये गये।

स्वामीजी महाराजका त्याग बड़ी उच्चकोटिका था। आप अपने पास वेदान्तकी दो-तीन पुस्तकोंके सिवा और कुछ भी नहीं रखते थे। वस्त्र जब बहुत जीर्ण होकर फट जाता था तभी दूसरा लेते थे। लोग भेंटमें ढेर-के-ढेर फल लाया करते थे, पर आप अपने पास कुछ भी नहीं रखकर उपस्थित जनसमूहको बाँट दिया करते थे। शिष्योंका प्राय: आग्रह रहा करता था कि आप सेकण्ड क्लासमें ही बैठें पर आप विशेष अवसरके सिवा सदा थर्ड क्लासमें ही बैठा करते थे।

व्यक्ति विशेष या स्थान विशेषमें आपकी आसक्ति नहीं थी। अपने शिष्योंमेंसे आप कभी किसीको अपने साथ नहीं रखते थे। विशेष आग्रह देखकर कभी किसीको कुछ समयके लिये अपने पास रखकर फिर शीघ्र ही विदा कर दिया करते थे। आपको सादा भोजन (विशेषत: बाजरेकी रोटी छाछ और राबड़ी) ही पसंद था। शहरोंसे सदा बाहर रहना ही इन्हें अच्छा लगता था। पर सत्संगके लिये आने-जानेवालोंसे कोई परहेज न था। शास्त्र-श्रवणमें आप स्त्रियोंका भी अधिकार समझते थे। यद्यपि इस तरह उपदेश करनेपर लोग प्राय: कहा करते थे कि अनधिकारियोंको उपदेश नहीं करना चाहिये। परन्तु इनका यह सिद्धान्त था कि अधिकारी स्वयं उत्पन्न नहीं होते बनानेसे ही बनते हैं। इसलिये इनके उपदेशों और कथाओंका द्वार सबके लिये समानभावसे खुला था। अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार सभी लाभ उठाया करते थे। इनका लक्ष्य अपने कल्याणपर उतना न था जितना सबके हितपर। इसी उद्देश्यसे वे कभी निकम्मे नहीं बैठा करते थे। जब कोई मनुष्य उनके पास आता तो 'वाणी', आत्मज्ञान अथवा सात्त्विक आचरणकी चर्चा चला दिया करते थे। आपके उपदेशोंके अन्तमें पूज्यपाद गोस्वामीजीकी चौपाई—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

और 'हरे राम०' मन्त्रकी सस्वर आवृत्ति हुआ करती थी।

जोधपुरमें एक पागल सूअरने जंगल जाते समय स्वामीजीके एक अंगूठे और एक अँगुलीको काट खाया तथा शरीरपर भी आक्रमण किया। उस समय आप अकेले ही थे, तो भी साहसपूर्वक सूअरको देखकर एवं उसके मुँहको दोनों हाथोंसे पकड़कर बैठ गये। करीब आधे घंटेतक, जबतक दूसरा आदमी न पहुँचा, आप उसे दबाये रहे। अन्यथा वह उन्मत्त सूअर उसी समय आपके शरीरको चीर-फाड़ डालता। क्षत्रिय तेज, ब्रह्मचर्यबल और आत्मशक्तिके प्रभावसे संसारकी कौन-सी शक्ति पराजित नहीं हो सकती? डाक्टरोंका आग्रह कसौली जाकर दवा करानेका रहा, अत: वहाँ पन्द्रह दिन रहकर इलाज करवाया गया, जिससे

हिस्सा निकालनेका दृढ़तापूर्वक पर नम्रताके सहित प्रस्ताव किया। उन्होंने पहले तो स्वीकार नहीं किया पर इनकी उपराम वृत्तिसे वह परिचित थे, इसलिये उसने अपने मनमाना जमा खर्च कराके उन्हें अपने सीरके फर्मसे अलग कर दिया। इन्हें कुछ धनकी तो परवा थी ही नहीं, उन्होंने जैसे कहा वैसे ही इन्होंने लिखा-पढ़ी कर दी और व्यापार क्षेत्रसे अलग होकर अपने भजन-साधनमें मस्त रहने लगे।

यद्यपि आपका इधरमें कई वर्षोंसे निराकारके ध्यानका अभ्यास खूब तेजीसे हो रहा था। पर श्रीभगवान्‌को इनके द्वारा संसारमें सदाचार, धर्म एवं विशुद्ध भक्तिका प्रचार कराना था। इसलिये सं० १९८४ के ज्येष्ठ मासमें बिना किसी प्रकारकी चेष्टाके निराकारके ध्यानकी जगह शिमलापालकी साधनाके सदृश श्रीविष्णु भगवानकी मूर्तिका प्रत्यक्ष ध्यान होने लगा। ये भी ध्यानमें मस्त रहते हुए कल्याणके भगवन्नामाङ्कका सम्पादन बड़ी तत्परताके साथ करने लगे। भगवन्नामाङ्कका कलेवर बहुत बड़ा न होनेपर भी उसमें लेख चुन-चुनकर ऐसे दिये गये कि वह अपने ढंगका एक अद्वितीय संग्रहणीय विशेषाङ्क हुआ। उस समय कल्याणके केवल सोलह सौ ही ग्राहक थे पर श्रीभगवन्नामाङ्कका २-३ महीनेके अंदर ही पाँच हजारका दूसरा संस्करण छापना पड़ा।

कल्याणके एक-दो अंक बंबईमें छपाकर फिर गीताप्रेस गोरखपुरमें छापनेका विचार था, परन्तु गीताप्रेसके तत्कालीन मैनेजरोंकी दृष्टिमें कल्याण थोड़े दिन चलकर अन्य पत्रोंकी भाँति बंद हो सकता है। इसलिये कल्याणको समुद्रके किनारे रखना ही ठीक जँचा। उस समय गीताप्रेसमें कल्याण छापनेके योग्य टाइप तैयार नहीं थे और इसीलिये कल्याणके दूसरे वर्षके विशेषाङ्कको भी बंबईमें ही छापना पड़ा। और, यह बड़े सजधजके साथ बंबईसे वेङ्कटेश्वर प्रेसमें मुद्रित होकर प्रकाशित भी हो गया। पर अब गीताप्रेसमें छपाईके लिये कुछ भी कार्य न रहनेसे उसके बंद होनेकी नौबत आ गयी। पहले पहल गीताप्रेस सं० १९८१ में उर्दू बाजारकी छोटी-सी दूकानमें ट्रेडल मशीनसे काम कर रही थी। सं० १९८२-८३ में थोड़े समय बाद श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने अपने प्रेमीजनोंसे तीस हजार रुपये इकट्ठे करके करीब पन्द्रह हजारमें एक छोटा-सा मकान (वर्तमान गीताप्रेसका एक हिस्सा) खरीद लिया।

अस्तु, अब 'कल्याण'की ऐसी उन्नति देखकर गीताप्रेसवाले उसे दूर रखना सहन नहीं कर सके। अस्तु, उन्होंने श्रीजयदयालजीसे* लिखा पढ़ी करके जसीडीहसे चरित्रनायकको तार दिलाया कि 'कल्याण'का सब स्टाक लेकर गोरखपुर शीघ्र आकर दूसरे वर्षका दूसरा अङ्क वहींसे प्रकाशित करो।

चरित्रनायक तो बंबई छोड़नेके लिये लालायित थे ही, पर एक-दो अड़चनें और उपस्थित हुईं। श्रीरामकृष्णजी डालमियासे चरित्रनायकका घनिष्ठ भ्रातृभाव इन दिनोंमें सुदृढ़ हो चुका था। उनके सुख-दुःख, लाभ-हानिको वे अपना ही सुख-दुःख समझते थे। अतः उन दिनोंमें डालमियाजीके रुईके सौदेमें भारी नुकसान था। समयपर भुगतान होना कठिन हो गया था। उनके मामोंका फर्म चिमनराम मोतीलालके नामसे बड़ा धनाढ्य था। उस समय डालमियाजीके मामा कानपुर रहते थे। अतः उनसे सहायता लेनेकी गरजसे रामकृष्णजीके कहनेसे चरित्रनायकको भगवन्नामाङ्कके अन्तिम प्रूफोंको देखनेका भार इन पंक्तियोंके क्षुद्र लेखकको देकर श्रावण कृष्णा ५ सं० १९८४ वि० को बंबईसे कानपुर जाना पड़ा। पर वहाँसे उनका रूखा उत्तर लेकर तत्काल वापस बम्बई आ गये। बंबई आकर उदास होकर बैठे नहीं। अब अपने प्रिय बन्धुके लिये उस अशरणशरण श्रीभगवान्‌के पुकारनेकी याद आयी और तत्काल ब्राह्मणोंके द्वारा एवं स्वयं चरित्रनायकने भी मंत्र अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया जिससे तत्काल रूईके भावोंमें एक बार सहसा अमेरिकाकी रिपोर्टके अनुमानसे बहुत भिन्न आनेकी अफवाहसे इतना परिवर्तन हुआ कि वैसी किसीको सम्भावना नहीं थी। चरित्रनायकने डालमियाजीको बहुत समझाया कि अब सौदा बराबर कर लो। उन्होंने कहा इतना-सा भाव और

* श्रीगोयन्दकाजी उन दिनों स्वास्थ्य लाभके लिये जसीडीह (झारखंड) में रहते थे।

हो जाय तो कर लें। उतना भाव उसी समय हो गया। तब फिर उनसे कहा गया कि अब यदि तुम सौदा बराबर न करोगे तो भगवान्‌की अनिर्वचनीय दयाको ठुकरा रहे हो, पर उन्होंने एक भी बात न सुनी और रूईका भाव पीछे उसी ठिकाने आ गया, जिससे उनका पूर्ववत् नुकसान लगकर उनके सिरपर कर्ज रह ही गया और ऐसा होना उचित भी था, क्योंकि भगवान्‌की कृपाकी जो अवहेलना करता है, उस व्यक्तिको नाना प्रकारके कष्टोंका सामना करना ही पड़ता है।

चरित्रनायकके एक मित्र थे श्रीहरिरामजी ब्राह्मण। वे सट्टेके सौदेकी दलालीका कार्य करते थे। चरित्रनायकने उनको कह रक्खा था कि डालमिया बन्धुओंका काम माथे पोतेका हो तो तुम अपने नामपर मत रखना, परन्तु लोभवश एक दिन उसने उनका सौदा अपने नामपर रख लिया, जिससे बहुत नुकसान हो गया। जिससे उसकी इज्जत रहनी भी कठिन हो गयी। वह तत्काल चरित्रनायकके पास आकर उदास मुँहसे बैठ गया और कहने लगा, आज तो यह हाल है। चरित्रनायकका श्रीभगवत्प्रार्थनापर अटल विश्वास था, इसलिये उनसे कहा—इस कोठरी (छोटे कमरे) में जाकर आर्त्तभावसे श्रीभगवान्‌से प्रार्थना करो। यदि सच्चे भावसे प्रार्थना हुई तो वे अवश्य सुनेंगे। वह उसमें चला गया और कोठरी बंद करके प्रार्थना करने लगा। इधर तत्काल चरित्रनायकके एक मित्रका टेलीफोन आया कि भाईजी घूमनेके लिये चलेंगे क्या? इन्होंने कहा हाँ। वह मित्र गाड़ी लेकर आ गया और घूमकर वापस आनेपर उसने हरिराम ब्राह्मणका हाल पूछा।

उपर्युक्त घटना सुनकर उसने कहा कोई हर्ज नहीं, मेरेसे चेक मंगा लीजिये और उन्होंने एक ब्लेंक चेक सही करके भेज दिया। जरुरत हो उतने रुपयेका चेक काटकर उन्हें दे दो। चरित्रनायकने हरीरामको कोठरीमेंसे बाहर निकालकर सब हाल कह दिया। चरित्रनायकके जीवनमें भगवत्प्रार्थनाके अनेकों अवसर आये हैं, जिनकी गणना भी नहीं की जा सकती।

बंबईसे अब शीघ्र चलना तो था ही, अत: प्रभुको एक श्रद्धाञ्जलि अर्पण करनेके लिये १०८ विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा माधवबागमें श्रीमद्भागवतके १०८ सप्ताह पाठका वृहत् आयोजन विरला[1] बन्धुओंकी तरफसे किया और पूर्ण श्रद्धा, भक्ति और विधि-विधानके अनुसार भगवत्स्वरूप ब्राह्मण देवताओंको सन्तुष्ट करके उनका अमोघ आशीर्वाद प्राप्त किया।

यह सब कार्य करते हुए मन तो निरन्तर श्रीविष्णु भगवान्‌के साकार विग्रहके अत्यन्त समीप रहकर उनके ध्यान, चिन्तन, स्मरण, भजनमें ही तल्लीन रहता था और उनसे मिलनेके लिये छटपटाता था। इसलिये बंबई जैसे कोलाहल-पूर्ण जनसमुदायसे हटकर किसी एकान्त पवित्र भूमि गंगातटपर जाकर अपने प्रियतम प्रभुको पानेके लिये व्याकुल रहता था। उन दिनों निराकारके ध्यानके अभ्यास रहनेके कारण वेदान्तका अध्ययन था ही, बस उस समयके अपने हृदयगत उद्गारोंको कविता रूपमें व्यक्त करनेके लिये एक छोटी-सी कविता बनाकर कल्याण वर्ष १ अङ्क १२ पृष्ठ ३६२ में प्रकाशित करा दी। वह कविता नहीं थी, अपने हृदयका फोटो था, सो इस प्रकार है—

होगा कब वह सुदिन समय शुभ, मायावी मन बनकर दीन।
मोह मुक्त हो, हो जायेगा, पावन प्रभु-चरणोंमें लीन॥ १ ॥
कब जग की झूठी बातोंसे हो जावेगी घृणा इसे।
कब समझेगा उसे भयानक, मान रहा रमणीय जिसे॥ २ ॥
कब गुरु-चरणोंकी रजको यह निज मस्तकपर धारेगा।
काम-क्रोध-लोभादि वैरियोंको कब हठसे मारेगा॥ ३ ॥

---

१ उन दिनों बिरला परिवारके सज्जनोंसे भाईजीका घनिष्ठ सम्बन्ध था।

पुण्य भूमि ऋषि-सेवितमें कब होगा इसका निर्जन-वास।
गंगा की पुनीत धारासे कब सब अघका होगा नास॥ ४ ॥
कब छोड़ेंगी सबल इन्द्रियाँ अपने विषयोंमें रमना।
कब सीखेंगी उलटी आकर अन्तरमें उसके जमना॥ ५ ॥
कब साधनके प्रखर तेजसे सारा तम मिट जायेगा।
कब मन विषय-विमुख हो हरिकी निर्मल भक्तिको पायेगा॥ ६ ॥
धन-जन-पदकी प्रबल लालसा कष्टमयी कब छूटेगी।
मान बड़ाई 'मैं' 'मेरे' की फाँसी कब यह टूटेगी॥ ७ ॥
कब यह मोह-स्वप्न छूटेगा कब प्रपञ्चका होगा बाध।
पर वैराग्य प्रकट कब होगा, कब सुख होगा इसे अगाध॥ ८ ॥
कब भव भयके कारण मिथ्या अहंकारका होगा नाश।
कब सच्चा स्वरूप दीखेगा छूट जायगा देहाभ्यास॥ ९ ॥
कब सबके आधार एक भूमा सुखका मुख दीखेगा।
कब यह सब भेदोंमें नित्य अभेद देखना सीखेगा॥ १० ॥
कब प्रतिबिम्ब बिम्ब होगा-कब नहीं रहेगा चित, आभास।
निजानन्द, निर्मल अज अव्ययमें कब होगा नित्य निवास॥ ११ ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २४१)
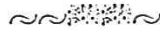
॥ श्रीहरिः ॥

अठारहवाँ पटल

प्रलोभनोंमें न फँसना और दर्शनकी तीव्र उत्कण्ठा

त्याग-वैराग्यकी मुँहसे बातें करनी बहुत सरल हैं, व्याख्यानोंमें लम्बे-लम्बे उदाहरण देकर जनताको फटकारनेमें कुछ भी खर्च नहीं लगता, लेख लिखनेमें शास्त्रोंके प्रमाण देकर ललित भाषामें लोगोंके चित्तको आकर्षित करनेमें भी विशेष कठिनता नहीं पड़ती, परन्तु जब निजमें अपने शारीरिक मान-प्रतिष्ठा, ऐश-आराम, फल-फूल, मेवा-मिष्ठान्नादि, खान-पान, गाड़ी-मोटर आदि वाहन, नौकर-चाकर, मित्र-स्नेही आदिके द्वारा किया हुआ सेवा-सत्कार आदि त्यागकर तथा बात-की-बातमें हजारों-लाखोंका दानादिमें खर्च कर देना सबसे कठिन है। बड़े-बड़े प्रतिष्ठित राजनैतिक नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, व्यापारिक धनाढ्योंके बीच अत्युच्चमान प्रतिष्ठाको प्राप्त करके उसे कच्चे सूतके धागेकी तरह तोड़कर, तिनकेकी तरह मरोड़कर किसी लोभ प्रलोभनमें न फँसकर प्रभु पद प्राप्त करनेके लिये बहुत सादगीसे जीवन बितानेके लिये सहसा चल पड़ना कोई साधारण कोटिके मनुष्यका काम नहीं है। हाँ, अभावमें तो बहुतसे लोग ऐसा त्याग करते देखे गये हैं। परन्तु सब प्रकारकी सुख-सुविधा रहते हुए बात-की-बातमें सब प्रकारके सुखोंको सहसा त्यागकर सच्चे त्यागी वीरकी तरह घरसे निकल पड़ना, मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके उद्देश्यसे नहीं, सबसे छोटा बनकर सब प्रकारकी प्रतिकूलताओंको सहकर, प्रिय-परिवारके कष्टोंकी कुछ भी परवाह न करके, मोटे-सादे वस्त्र और रूखी-रूखी रोटीपर निर्वाह करके एकान्त जंगलमें केवल भगवद्भजनके परम पुनीत उद्देश्यसे सब ऐश्वर्योंको लात मारकर चल पड़ना किसी उच्चकोटिके महापुरुषका ही असाधारण कार्य हो सकता है।

हमारे चरित्रनायककी चिरकालसे अभिवाञ्छित एकान्त त्यागमय सादा जीवन बितानेकी इच्छा थी। उनकी इस अभिलाषाकी पूर्तिके लिये श्रीभगवान् यह अवसर प्रदान करते हुए अन्तरिक्षसे यह भी आदेश कर रहे हैं कि अभी तुम्हें एक प्रपञ्चसे अलग होकर भी दूसरे बड़े कार्यमें ही रहना पड़ेगा, क्योंकि तुम्हारे द्वारा प्रपञ्चमें रहकर ही संसारके जीवोंकी पुनीत सेवा करनेका विधान है।

जो कुछ भी हो एक बार तो बम्बई छोड़नेकी वह शुभ वेला आयी। कल्याणका सब स्टॉक, घरकी अधिकांश चीजें लगेज एवं पारसलके द्वारा गोरखपुरके लिये रवाने कर दी गयीं। श्रावण शुक्ला १३ सं० १९८४ वि० की चन्द्रमाकी वह चाँदनी रात खिलने लगी, पर बम्बईके प्रेमी जनोंके लिये वही रात्रि राहुके द्वारा ग्रहणकी भाँति अन्धकारमयी प्रतीत होने लगी। क्योंकि हमारे चरित्रनायक इसी रात्रिको दिल्ली एक्सप्रेसके द्वारा रवाना हो रहे हैं। स्टेशनपर सैकड़ों प्रेमीजन इकट्ठे होकर परस्पर चर्चा कर रहे हैं कि भाई! क्या सदाके लिये हमारे सुहृद् बम्बईसे प्रस्थान कर रहे हैं—इत्यादि बातें हो ही रही थीं कि इंजनने सीटी दी, गार्डने झंडी दिखलायी और हमारे चरित्रनायक सेकेण्ड क्लासके डब्बेमें चढ़कर सबको हाथ जोड़ बड़ी ही नम्रतापूर्वक करुणामयी दृष्टिसे सबसे दयाकी भिक्षा माँगते हुए खड़े हो गये। प्रेमीजनोंके वियोगजनित क्लेशकी कुछ भी परवाह न करके गाड़ी चल दी, पर गाड़ी चलनेपर भी किसी-किसी प्रेमीके हृदयमें ये भाव आ ही गये कि भैया! हमें छोड़कर अभी जा तो रहे हो, परन्तु एक बार तो तुम्हें शीघ्र ही पुनः बम्बई आना पड़ेगा। अन्तमें धक-धक करता हुआ निष्ठुर इंजन गाड़ीमें बैठे हुए प्रेमास्पदको दूर अति दूर, ले भागा और आँखोंसे ओझल हो गया।

इन पङ्क्तियोंका क्षुद्र लेखक श्रीभगवन्नामाङ्कके

डिस्पेचका काम समाप्त करके ५-६ दिन पहले सनावद चला गया था। उसे इस बातकी सूचना मिलते ही वह सनावदसे खण्डवा आ गया। श्रावण शुक्ला १४ सं० १९८४ को प्रातःकाल खण्डवा स्टेशनपर हमारे चरित्रनायक स्नानादिसे निवृत्त होकर भोजन कर आगे रवाना हुए। श्रावण शुक्ला १५ को श्रावणी कर्म विधिपूर्वक कराना परम आवश्यक समझकर चरित्रनायक उस दिन कानपुरमें ही ठहर गये और जगज्जननी भागीरथीके तटपर परम श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक श्रावणी कर्म कराकर रात्रिमें गाड़ीपर सवार होकर प्रातःकाल गोरखपुर पहुँचे। कुछ दिन श्रीघनश्यामदासजीकी कपड़ेकी दूकानमें रहे।

इधर बम्बईके प्रेमीगण अपने सुहृद्के वियोगसे व्यथित हो रहे थे। इन्हें बुलानेका कोई हेतु ढूँढ़ रहे थे। अस्तु, श्रीरामकृष्णजी डालमियाके व्यापारकी स्थिति उस समय डाँवाडोल हो रही थी, इसलिये उन्होंने तार देकर गोरखपुरसे चरित्रनायकको बुलाया। वे पूरे १५ दिन भी गोरखपुरमें रहने न पाये थे।

भाद्र कृष्णा १२ सं० १९८४ वि० को गोरखपुरसे रवाना होकर अपने प्रियबन्धुके आवश्यक कार्यके लिये बम्बई वापस आना पड़ा। बम्बईमें सभी प्रतिष्ठित मारवाड़ी बन्धुओंके ये आदरणीय सुहृद् थे ही। वहाँ हरनन्दराय रामनारायण रुइया एक करोड़पति फर्म था। उसके मालिक रामनारायणजी रुइया हमारे चरित्रनायकसे बड़ा प्रेम रखते थे। वे पूनेमें रहते थे। इन्हें बम्बईमें पुनः आया जान वे उनसे मिलनेके लिये तुरंत बम्बई आये और इन्हें एकान्तमें ले जाकर अपने हृदयकी बात कही कि मेरी अवस्था अब वृद्ध हो गयी है, मेरे बच्चे अभी तक बालक हैं, इसलिये आप मेरे इस फर्मकी तथा मेरे परिवारकी सब प्रकारसे देखभाल बम्बईमें रहकर करें। उसके बदलेमें पचास हजार रुपये सालाना *(उस समय यह बड़ी रकम थी)* आप अपने खर्चके लिये सर्वदा लेते रहें तथा आप चाहें जिस काममें अपना हिस्सा रख लें। मैं आपको अपनी तरफसे पूर्ण अधिकार देकर अभी आपकी इच्छानुसार लिखा-पढ़ी कर देता हूँ। हमारे चरित्रनायकके सामने यह बड़ा लुभावना प्रलोभन आया, परन्तु जो सच्चे त्यागवीर होते हैं, उनके सामने ऐसे-ऐसे नगण्य प्रलोभनोंकी तो बात ही क्या है, त्रैलोक्यके ऐश्वर्यका भी प्रलोभन आवे तो वे त्यागवीर उन्हें ठुकरानेमें जरा-सी आनाकानी नहीं करते, अस्तु। हमारे चरित्रनायकने बड़े नम्र शब्दोंमें सेठ साहबसे कहा कि मैंने तो बम्बईमें रहनेका विचार ही छोड़ दिया है, अतः मैं बम्बईमें रहकर आपके कार्य संचालनमें सर्वथा असमर्थ हूँ। उन्होंने बहुत कुछ अनुनय-विनय की, परन्तु इन्होंने एक न सुनी।

चरित्रनायकको बंबई बुलानेमें डालमियाजी तो केवल निमित्तमात्र बने थे। वास्तवमें प्रभुने परीक्षा लेनी चाही, जिसमें ये सर्वथा उत्तीर्ण हो गये और बम्बईका काम शीघ्र समाप्त करके भाद्र शुक्ला ३ सं० १९८४ वि० को ये पुनः गोरखपुर वापस आ गये और कल्याणके दूसरे वर्षके दूसरे-तीसरे अङ्कको तैयारीमें लग गये। ऊपरसे तो ये साधारण कार्य करते थे, परन्तु इनके अन्तरमें भगवद्दर्शनकी लालसा प्रतिपल तीव्र होती जा रही थी। उन दिनों हृदयके भाव कविताके रूपमें व्यक्त करना इनके लिये एक मामूली बात थी, अतः इसी आशयकी एक सुन्दर कविता मारवाड़ी भाषामें बनाकर कल्याण वर्ष २ अङ्क ३ पृष्ठ १६४ पर **'कातर प्रार्थना'** शीर्षक देकर प्रकाशित करा दी—

अब तो कुछ भी नहीं सुहावै, एक तूँ ही मन भावै है।
तनै मिलणने आज मेरो हिबड़ो उझल्यौ आवै है॥
तड़फ रह्यो ज्यूँ मछली जल बिन अब तूँ क्यूँ तरसावै है।
दरस दिखाणेमें देरी कर क्यूँ अब और सतावै है?॥
पण जो इसी बातमें तेरो चित्त राजी होतो होवै।
तौ कोई भी आँट नहीं, मनै चाहै जितणा दुःख होवै॥
तेरे सुखसे सुखिया हूँ मैं, तेरे लिये प्राण रोवै।
मेरी खातर प्रियतम! अपणे सुखमैं मत काँटा बोवै॥
पण या निश्चै समझ, तनै मिलणेकी खातर मेरा प्राण।
छिण छिण मैं व्याकुल होवै है, दरसन की है भारी टाण॥
बाँध तुड़ाकर भाग्या चावै, मानै नहीं किसी की काण।
आठूँ पहर उड्या-सा डोलै, पलक-पलक की समझे हाण॥
पण प्यारा! तेरी राजीमें है नित राजी मेरो मन।

प्राणाधिक दोनूँ लोकाँको तू ही मेरो जीवन धन॥
नहीं मिलै तो तेरी मरजी पण तन मन तेरे अरपन।
लोक वेद है तूँ ही मेरो, तूं ही मेरो परम रतन॥
चातक की ज्यूँ सदा उडी कूँ कदे नहीं मुँहने मोडूँ।
दुःख देवै, मारै, तड़फावै तो भी नेह नहीं तोडूँ॥
तरसा-तरसाकर जी लेवै, तो भी तनै नहीं छोडूँ।
झाकूं नहीं दूसरी कानी तेरेमें ही जी जोडूँ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४१८)

एक कविता बनाकर ही ये तृप्त नहीं हुए, क्योंकि इनके हृदयमें तो सदा छटपटाहट लग रही थी। इसलिये इन्होंने कई कवितायें इसी आशयकी बना डाली, जैसे—एक बँगला कविताका अनुवाद इस प्रकार है—

मिलनेको प्रियतमसे जिसके प्राण कर रहे हाहाकार।
गिनता नहीं मार्गकी कुछ भी दूरीको वह किसी प्रकार॥
नहीं ताकता किञ्चित् भी शत शत बाधा विघ्नोंकी ओर।
दौड़ छूटता जहाँ बजाते मधुर वंशरी नन्दकिशोर॥
मिली हुई जो कभी भाग्यवश उसको है आँखें होती।
वही जानता कीमत जो उस रूप माधुरीकी होती॥
कुछ भी कीमत हो, परन्तु हे रूप रसिक जन जो होता।
दौड़ पहुँचता लेनेको तत्काल, नहीं पलभर खोता॥

यद्यपि इनके हृदयमें दिन प्रतिदिन भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा बढ़ती जा रही थी तथापि शास्त्रकी मर्यादा है कि बिना सद्गुरु कृपाके कोई भी पारमार्थिक सिद्धि प्राप्त हो ही नहीं सकती। ऐसे सद्गुरुकी प्राप्ति वर्तमान कालमें बिना भगवत्कृपाके होनी बड़ी ही कठिन है। जैसे सद्गुरुकी प्राप्ति बहुत कठिनतासे होती है, वैसे ही सद्गुरुओंको सच्छिष्य मिलने उससे भी ज्यादा कठिन हैं, किन्तु श्रीभगवान्ने हमारे चरित्रनायकको यह संयोग पहलेसे ही लगा रक्खा था। सद्गुरुने इनके हृदयरूपी निर्मल भूमिमें बहुत वर्षों पहले ही भगवत्प्रेम रूपी बीज यथास्थान बो दिया था और उसको अपनी सत्संग सुधासे समय-समयपर सिंचन भी करते आ रहे थे। अब उस बीजसे अङ्कुर निकलकर फलने-फूलनेका समय भी आ गया था।

पाठकवृन्द पढ़ ही चुके हैं कि इस अध्यात्मके सुन्दर उद्यानका निर्माण करनेके लिये उसका माली समयकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह समय ज्यों-ज्यों निकट आता जा रहा था, त्यों-ही-त्यों चतुर मालीके आनन्दका भी पारावार नहीं था। अस्तु

हमारे चरित्रनायकके गुरुतुल्य हैं श्रीजयदयालजी गोयन्दका।[१] सं० १९७९ वि० में इन्होंने अपने प्रेमीजनोंके सहित बम्बई जाकर अपने सुयोग्य शिष्यको पुनः साधनाके उच्च स्तरमें संलग्न किया। तभीसे चरित्रनायक बहुत तेजीसे अपना अध्यात्म मार्गका पथ समाप्त करके श्रीभगवान्के अत्यन्त निकट आ पहुँचे थे, परन्तु बिना सद्गुरु-कृपासे श्रीभगवान्के दिव्य चिन्मय विग्रहके दर्शन होना दुर्लभ है। अस्तु, सद्गुरुके चरण प्रान्तमें शीघ्रातिशीघ्र पहुँचनेके लिये बम्बई नगरसे सम्बन्ध रखनेवाले सम्पूर्ण व्यापारिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक बन्धनोंको तोड़कर यद्यपि वे सद्गुरुकी आज्ञासे गोरखपुर आ गये थे तथापि उन दिनों श्रीजयदयालजी स्वास्थ्य-लाभके लिये अपने प्रेमीजनोंके सहित जसीडीहमें विराजते थे। जैसे-जैसे चरित्रनायकके हृदयमें भगवद्दर्शनोंकी उत्कण्ठा प्रबल होती जा रही थी, वैसे-वैसे ही श्रीगोयन्दकाजी भी उन्हें श्रीभगवान्की ओर आकर्षित करनेमें कुछ कसर नहीं रखते थे। जब इनकी चित्तवृत्ति सब तरफसे हटकर एक श्रीभगवान्की तरफ ही लग गयी तब श्रीगोयन्दकाजीने जसीडीहसे तार देकर इन्हें गोरखपुरसे शीघ्र अपने समीप आनेके लिये आदेश दिया। बस, तार मिलते ही उसी दिन सायंकालको इन्होंने जसीडीह जानेका विचार कर लिया और श्रीघनश्यामदासजी जालानके साथ ये रवाना हो गये। गोरखपुरके स्टेशनपर आश्विन कृष्णा १ की सायंकालके समय कल्याण कार्यालयके मैनेजरीका कार्य करनेके लिये बीकानेरसे पं० बद्रीप्रसादजी आचार्य आ रहे थे सो इन्हें मिल गये। ये बड़े प्रेमसे उन्हें कल्याणका सब कार्य करनेके लिये आदेश देकर बनारस जानेवाली गाड़ीमें अपने प्रेमीजनोंके साथ सवार हो गये, क्योंकि इन्हें तो एक ही लालसा

१. श्रीगोयन्दकाजीका अति सूक्ष्म परिचय इसी पुस्तकके आठवें पटलमें दिया गया है।

लग रही थी।

एक लालसा मन महँ धारौं।
बंसी-वट कालिंदी-तट, नट-नागर नित्य निहारौं॥
मुरली-तान मनोहर सुनि-सुनि तन-सुधि सकल बिसारौं।
पल-पल निरखि झलक अँग-अंगनि पुलकित तन-मन वारौं॥
रिझउँ स्याम मनाइ गाइ गुन गुंजमाल गर डारौं।
परमानन्द भूलि जग सगरौ स्यामहिं स्याम पुकारौं॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०५२)

उत्कण्ठाके साथ-साथ भगवान्के प्रति दैन्यभाव भी होना अत्यावश्यक है। चरित्रनायकमें कैसा दैन्यभाव है, वह उनकी बनायी हुई कविताओंसे पता चलता है—

कातर प्रार्थना

नाथ! अब लीजै मोहि उबार॥
कामी, कुटिल, कठिन-कलि-कवलित, कुत्सित, कपटागार।
क्रोधी, मुखर, महामद गर्वित, मन्द-मलिन आचार॥
अध्रुव विषय-विमोहित, विचलित, दुष्कृत, दंभ अपार।
दीन, दुखी दुर्दृष्ट-दुरत्यय, दुर्गत, दुर्गुण-भार॥
भ्रमित, श्रमित, पतित, परिपन्थी, निरपत्रप, निःसार।
विश्व, निखिल-निगमागम वर्जित, निगड़ित, नित गृहदार॥
विरद, पतित, पावन, दीनाश्रय, तव शुचि-श्रुति, विस्तार।
सुनत सुयश, पावन अब आगत मैं अघहारी द्वार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४४)

प्रभु ! तुम अपनो बिरद सँभारौ।
अधम-उधारन नाम धरायौ अब मत ताहि बिसारौ॥
मोसों अधिक अधम को जग महँ पापिन महँ सरदारौ।
ढूँढ़-ढूँढ़ जग अघ अति कीन्हें गनत न आवै पारौ॥
मोरे अघ कौं लिखत-लिखावत चित्रगुप्त पचि हारौ।
तऊ न आयौ अंत अघन कौ, छाड़ी कलम बिचारौ॥
अब लौं अधम अनेक उधारे, मो सों पल्लौ डारौ।
राखो लाज नाम अपने की, मत खोऔ पतियारौ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२९)

यह तो हुई भगवान्के प्रति कातर प्रार्थना। किन्तु बिना गुरुदेवकी कृपाके भगवद्दर्शन होना अति कठिन ही नहीं, एक प्रकारसे असम्भव है—ऐसा कह दिया जाय तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। हमारे चरित्रनायककी अपने गुरुतुल्य श्रीगोयन्दकाजीके प्रति कैसी श्रद्धा थी और उनपर कैसा विश्वास था, वह उन्हींके द्वारा रचित दो कविताओंमें उन्हींके शब्दोंमें सुनिये—

परम गुरु राम मिलावनहार।
अति उदार, मञ्जुल, मङ्गलमय, अभिमत-फलदातार॥
टूटी-फूटी नाव पड़ी मम भीषण भव-नद-धार।
जयति-जयति जय देव दयानिधि ! बेग उतारो पार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५५)

× × ×

जयति देव, जयति देव, जय दयालु देवा।
परम गुरु, परम पूज्य, परम देव, देवा॥
सब बिधि तव चरन-सरन आइ पर्‌यौ दासा।
दीन-हीन-मति-मलीन, तदपि सरन-आसा॥
पातक अपार किंतु दया को भिखारी।
दुखित जानि राखु सरन पाप-पुंजहारी॥
अबलौंके सकल दोष छमा करहु स्वामी !
ऐसो करु, जातें पुनि हौं न कुपथगामी॥
पात्र हौं, कुपात्र हौं, भले अनधिकारी।
तदपि हौं तुम्हारो अब लेहु मोहि उबारी॥
लोग कहत तुम्हरो सब, मनहु कहत सोई।
करिय सत्य सोइ, नाथ ! भव-भ्रम सब खोई॥
मोरि ओर जनि निहारि, देखिय निज तनही।
हठ करि मोहि राखिय हरि ! संतत तल पनही
कहौं कहा बार-बार जानहु सब भेवा।
जयति, जयति, जय दयालु, जय दयालु देवा॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५६)
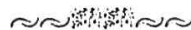
॥ श्रीहरिः ॥

उन्नीसवाँ पटल

जसीडीहमें श्रीविष्णु भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन

प्रिय प्रेमी पाठकवृन्द! यहाँतक आपने हमारे चरित्रनायकके मधुर चरित्रोंको प्रेमपूर्वक पढ़ा किन्तु अब जिन सत्य घटनाओंको आप पढ़ेंगे, उन्हें आपको पूर्ण श्रद्धा-विश्वासरूपी अंजनको नेत्रोंमें आँजकर पढ़ना होगा। क्योंकि अब ऐसी अलौकिक प्रामाणिक घटनाओंका वर्णन किया जा रहा है कि जिसे आज बीसवीं शताब्दीके नास्तिक शिक्षित समुदायके अधिकांश लोग उसे नाना प्रकारकी दृष्टिसे भ्रम फैलानेवाली बातें कह सकते हैं। किन्तु हमें उनकी कुछ भी परवाह न करके जो-जो घटनाएँ सत्य प्रामाणिक रूप से घटी हैं, उन्हें ज्यों-की-त्यों आपके सामने रखनी है। न तो हम अपनी तरफसे एक शब्द भी बढ़ाकर लिख रहे हैं और न ही बीसवीं शताब्दीके नास्तिक लोगोंके डरसे सत्य घटनाओंको छिपानेकी ही चेष्टा करेंगे। क्योंकि हम तो अपने परम प्रेमी विश्वासी श्रद्धालु-पाठकोंकी दृष्टिको ही सामने रखकर अपने चरित्रनायकके अलौकिक जीवनकी रहस्यमयी दिव्य घटनाओंमेंसे बहुत ही स्थूल वाह्यजीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओंमेंसे ही कुछ लिख रहे हैं, नहीं तो उनके अन्तर्जगत्के दिव्य अनुभवोंको न तो कोई जान ही सकता है और भगवत्कृपासे यत्किञ्चित् किसीको कुछ मालूम भी हो जाय तो बिना निर्मल अन्त:करण हुए उन बातोंपर विश्वास भी नहीं हो सकता है। अस्तु

चरित्रनायक अपने परम उल्लास-उमंगोंसे भरे हुए निर्मल हृदयमें नाना प्रकारकी भावनाओंको लेकर शुभ मुहूर्त्तमें गोरखपुरसे रवाना होकर बाबा विश्वनाथकी परम पावनी नगरी काशीपुरीमें होते हुए अपने परमपूज्य गुरुतुल्य श्रीगोयन्दकाजीके समीप जसीडीह पहुँचनेके लिये हृदयमें छटपटा रहे हैं। एक-एक दिन एक-एक पल युगोंके समान बीतनेका अनुभव करते हुए ये बिहारके वैद्यनाथ धामके निकट जसीडीह स्टेशनपर उतरकर वहाँके मारवाड़ी आरोग्य भवनमें पहुँचे, क्योंकि उन दिनोंमें श्रीगोयन्दकाजी अपने स्वास्थ्य लाभके उद्देश्यसे वहाँपर खास-खास अपने प्रेमीजनोंके सहित विराज रहे थे। अत: श्रीगोयन्दकाजीके समीप पहुँचकर उनके परम पावन चरण कमलोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके परम प्रेमसे उनसे बातें की। उसके पश्चात् वहाँपर अपने परम प्रेमी मित्र श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियासे खूब प्रेमसे मिले। अहा! उन दिनोंके श्रीकानोड़ियाजीके श्रद्धामय हृदयके भावोंको कौन जान सकता है! उन दिनोंमें श्रीकानोड़ियाजी किन्हीं दिव्य नेत्रोंके द्वारा श्रीगोयन्दकाजीको देखा करते थे और हमारे चरित्रनायकके तो वे प्रारम्भसे ही सामाजिक-राजनैतिक जीवनके पथ-प्रदर्शक रह चुके हैं। अब आध्यात्मिक जीवनमें प्रवेश करते हुए अपने प्रेमी मित्रका मौन भाषामें ही पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं कि अब जो कुछ लेना हो, अपने मनुष्य जीवनकी परम प्रिय वस्तु प्राप्त करनी हो तो इन तेजपुंज अलौकिक व्यक्तिसे प्राप्त करो, किसी प्रकारसे संकोच मत करो।

चरित्रनायकका हृदय उस समय चातकका-सा बन चुका था। वह अपने आराध्यदेव श्रीविष्णु भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन करनेके लिये अत्यन्त व्याकुल हो ही रहा था। अपने प्रेमी मित्र श्रीकानोड़ियाजीका इशारा पाकर वह और भी अधिक व्याकुल हो गया। अब इससे आगेकी घटनाको आप हमारे चरित्रनायकके हस्ताक्षरोंद्वारा संशोधन किये हुए, श्रीगोयन्दकाजीके परम कृपापात्र श्रीघनश्यामदासजी जालानके लिखे हुए लेखको उन्हींकी भाषामें सुनिये।* हम उन्ही लेखोंमेंसे किसी-किसी

* यह घटना श्रीधनश्यामदासजी जालान द्वारा मारवाड़ी भाषामें लिखी हुई परिशिष्टमें पृष्ठ सं० २३८ पर दी गयी है

भगवान् श्रीविष्णु

जसीडीहमें इस रूपमें प्रकट होकर पूज्य श्रीभाईजीको दर्शन दिये

अंशकी अक्षरशः नकल करके आपके सामने रख रहे हैं। यह लेख चरित्रनायकने श्रीघनश्यामदासजी जालानसे इन पंक्तियोंके क्षुद्र लेखकके सामने लिखवाया था (जिसका हिन्दी रुपान्तर करके दिया जा रहा है।)

पहली घटना

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

तिथि—आश्विन कृष्ण ६, शुक्रवार, वि०सं० १९८४ (१६ सितम्बर, १९२७)

स्थान—जसीडीह, मारवाड़ी आरोग्य भवन

समय—दिनके ग्यारह बजे

श्री सेठजी आरोग्य भवनके अपने कमरेमें पलंगपर लेटे हुए थे। भाईजी और घनश्यामजी नीचे बैठे थे। श्रीसेठजीकी भाईजीके साथ ध्यान विषयकी बात हुई।

भाईजीको पहले जिस प्रकार भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए थे, वह बात कही तथा शिमलापालमें आँख खुले हुए भगवान् विष्णुका ध्यान होने लग गया था, बीचमें बन्द हो गया तथा फिर होता है, वह बात कही। श्रीसेठजीने कहा—भगवान्का दर्शन होनेके बाद तत्त्वज्ञान उसी समय होना चाहिये। यदि कोई प्रतिबन्ध रह जाय तो उसी समय नहीं होता। फिर भी उसका भार भगवान्पर आ जाता है। फिर एक या दो-बार दर्शन देकर उसको तत्त्वज्ञान करा देते हैं। मुक्तिमें कोई संशय रहता ही नहीं। फिर आपने (श्रीसेठजीने) पूछा—तुम्हें जो विष्णु भगवान्का ध्यान होता है, उसके विषयमें तुम्हारी क्या धारणा है? वह ध्यान है या साक्षात्कार मानते हो? तब भाईजीने कहा—बातचीत व स्पर्श होनेके सिवाय साक्षात् होनेके जैसा ही लगता है। आप (श्रीसेठजी) बोले—तुम साक्षात् समझते हो, तो चरण-स्पर्श करनेकी कोशिश नहीं करते? यह तो तुम्हारी दृढ़ भावना ही हो सकती है। तब भाईजी बोले—मुझे भी दृढ़ भावन ही लगती है। जबतक मैं ध्यान करता हूँ तबतक मूर्ति दिखती तथा चलते हुए भी दिखती है, बैठे हुए भी दिखती है तथा आसपासकी वस्तुएँ भी दीखती हैं। तब श्रीसेठजी बोले—इसे तो ध्यानकी प्रगाढ़ स्थिति समझनी चाहिये। इसके बाद श्रीसेठजीके विश्रामका समय होनेसे भाईजी, घनश्यामजी दोनों चले आये। फिर भाईजीकी ऐसी प्रबल इच्छा हुई कि भगवान्का सगुण साक्षात्कार हो, उसके लिये श्रीसेठजीसे प्रार्थना करनी चाहिये। थोड़ी देर बाद, दो बजे भाईजी तथा घनश्यामजी श्रीसेठजीके पास गये। जाते ही श्रीसेठजी बोले—आज तो ध्यानके लिये पहाड़ीपर चलनेका विचार है। इतनेमें और भी लोग आ गये।

सबलोग पहाड़ी पर आ गये। आगे-आगे श्रीसेठजी थे। रास्तेमें कई जगह देखी गयीं। लोगोंने कहा जगह अच्छी लगती है, परंतु श्रीसेठजीको पसन्द नहीं आयी। फिर उन्होंने एक जगह चुनकर बतायी, वह स्थान महेन्द्र सरकारके कोठीके पूर्व-दक्षिण भागमें सीताफलके वृक्षके समीप है। जसीडीहमें भी उस स्थानपर* श्रीज्वालाप्रसादजीके हाथसे लिखे हुए पन्नेके अनुसार, निम्नलिखित लोगोंकी उपस्थिति थी—(१) श्रीजयदयालजी गोयन्दका (२) श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (३) श्री घनश्यामदासजी नुवेवाला (जालान) (४) रामेश्वरलालजी नुवेवाला (जालान) (५) द्वारकादासजी नुवेवाला (जालान) (६) सुखदेवजी, गीताप्रेस (७) प्रह्लादरायजी जालुका (८) शुभकरणजी चूड़ीवाला (९) रामलालजी चूड़ीवाला (१०) डूँगरमलजी बागला (११) ज्वालाप्रसाद कानोडिया (१२) केदारनाथजी कानोडिया (१३) शिवदयालजी गोयन्दका (१४) दौलतरामजी (१५) बैजनाथजी शेखपुरवाला।

सभी लोग एक तरफ बैठ गये। भाईजी श्रीसेठजीके सामने बैठे थे। उनके एक तरफ ज्वालाप्रसादजी और दूसरी तरफ घनश्यामजी थे। श्रीसेठजी बोले—हनुमान आँख खोले हुए भगवान्का ध्यान करता है, उसे उसी तरह करना और कहना चाहिये। भाईजीने पूरी तरह स्वीकार किया। तब वैद्यनाथजी शेखपुरवाला बोले—आप (श्रीसेठजी) ही कहें। तब श्रीसेठजी बोले—मैं तो यही विचार करके आया था कि हनुमानके द्वारा ही लोगोंको बात सुनानी है। इसलिये तुम्हें (हनुमानको) ही उसी तरहसे ध्यान करना चाहिये और लोगोंको बताना

* सीताफलके वृक्षके समीप।

चाहिये। मेरा भी पीछे कहनेका विचार है। इतना कहते ही भाईजी बोले—आपकी आज्ञासे कहनेको तैयार हूँ। तब श्रीसेठजी बोले—गीता ४। ७ 'यदा-यदा' तथा भगवान्‌की स्तुतिके श्लोक बोलकर भगवान्‌का ध्यान करो। तब भाईजीने पहले 'शान्ताकारं', 'सशंखचक्रं', 'यदा-यदा' तथा 'परित्राणाय' ये चार श्लोक बोलकर, शिमलापालमें उन्हें भगवान्‌का जैसा ध्यान हुआ था, वह बात बतलाई और फिर थोड़ी देरके लिये चुप हो गये। फिर अकस्मात् बोले—मुझे जिस प्रकार भगवान्‌के स्वरूपका दर्शन होता है, वह बोलता हूँ। आप लोग भी उसी प्रकार ध्यान करें। भाईजी भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन करने लग गये। तब वैद्यनाथजी शेखपुरवालाने पूछा—भगवान् बैठे हैं या खड़े हैं? भाईजी बोले—कमलपर बैठे हैं। फिर थोड़ी देर तक स्वरूपका वर्णन करके चुप हो गये। फिर थोड़ी देर बार भाईजी बोले—मैं चरण-स्पर्शके लिये हाथ आगे बढ़ाता हूँ, लेकिन हाथ रुक गये, अभी वे हाथ बढ़े नहीं। फिर थोड़ी देर बाद बोले—हाथ तो बढ़े हैं, किन्तु भगवान्‌का आसन पीछे खिसक गया। फिर थोड़ी देर बाद बोले—यह देखो, भगवान्‌के चरण मेरे समीप आ गये हैं। मैं स्पर्श करता हूँ, आप भी स्पर्श करें। इतनेमें वे जोरसे बोले—भगवान् तो अन्तर्धान हो गये। ये सारी बातें भाईजीने आँख खोले हुए कही। इसपर श्रीसेठजी बोले—अन्तर्धान होनेका तो क्या मालूम, पर मुझे यह स्फुरणा हुई कि हनुमानसे यह बात पूछूँ कि ध्यानकी बात तुम कहते हो या मैं कहूँ? इसपर भाईजी बोले—ध्यानकी बात मैं ही कहूँगा, पर मुझे चरणोंका स्पर्श जरूर होना चाहिये। तब श्रीसेठजी बोले—ध्यान तो जिस प्रकार हुआ था, वैसा होना सहज ही है, बाकी चरणोंका स्पर्श होना तो अगलेकी मर्जीपर है।

इतनेमें भाईजी उसी तरह हो गये और उन्हें फिर भगवान्‌के दर्शन होने लग गये। आँखें उनकी खुली रहीं और बोले—किसीको दर्शन करना हो तो आप मेरे पास आकर दर्शन करें। इतना कहकर वे जोरसे हाथ बढ़ाकर और श्रीसेठजीके दाहिने चरणको पकड़कर बाह्यज्ञान शून्य होकर गिर पड़े। तब श्रीसेठजीबोले—घनश्याम, इसे उठाओ। लेकिन घनश्यामजीसे उठे नहीं। तब श्रीसेठजी बोले—ज्वालाप्रसादजी, आप हनुमानको उठायें। तब ज्वालाप्रसादजीने सावधानीसे उठाकर भाईजीको अपनी गोदमें सुला लिया। इस प्रकार भाईजी निष्पंद और निश्चल अवस्थामें प्राय: डेढ़ घंटा पड़े रहे।

इसी बीच श्रीसेठजीने विष्णु भगवान्‌के ध्यानका वर्णन करना आरम्भ किया। श्रीसेठजी द्वारा ध्यानके वर्णनकालके समय निम्नलिखित लोग और आ गये थे—(१) बद्रीदासजी गोयन्दका (२) कुंजलालजी सुलतानिया (३) सीतारामजी पोद्दार। आरम्भमें 'त्वमेव माता', 'सशंखचक्रम्' श्लोकका बहुत प्रेमसे उच्चारण करके भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन करने लग गये। फिर वर्णन करनेके बाद भगवान्‌को हृदयमें शेषशय्यापर सुलाकर मैं सूक्ष्म शरीर धारणकर पूजा कर रहा हूँ, इस प्रकार कहा—'प्रेम-भक्ति-प्रकाश' पुस्तकमें बतायी गयी विधिके अनुसार उन्होंने पूजा की।

इसके बाद भगवान्‌की बहुत मार्मिक शब्दोंमें स्तुति की। स्तुति समाप्त होनेके थोड़ी देर बाद भाईजीने आँख खोलकर फिर उसी समय बन्द कर ली। फिर थोड़ी देर बाद आँख खोलकर बोले—भगवान् तो चले गये। तब श्रीसेठजी बोले—हमलोग भी चलें। इसके बाद सब लोग चलने लगे। आगे-आगे श्रीसेठजी बहुत उन्मत्ततासे चल रहे थे। शरीर डगमगा रहा था, पैर इधर-उधर पड़ रहे थे। रामेश्वरजी तथा शुभकरणजी श्रीसेठजीके आस-पास चल रहे थे। भाईजी पीछे-पीछे आ रहे थे और घनश्यामजी तथा ज्वालाप्रसादजीने उन्हें पकड़ रखा था। उन्हें शरीरका बिल्कुल होश-हवाश नहीं था और पैर डगमगा रहे थे। भवनमें आनेके बाद श्रीसेठजी तो अपने कमरेमें चले गये। भाईजी ज्वालाप्रसादजीके कमरेके बाहर तख्तपर लेट गये, उनके पास घनश्यामजी थे। वे लेटे-लेटे बेहोशीकी हालतमें बोलने लगे (उनका मुख्य अंश नीचे दिया जा रहा है)—

शेष शय्यापर वे लेटे हैं।

प्रसाद रखा है, आपको याद है ना? कितने पेड़े थे? कितने लड्डू थे?

कमरेके बाहरकी तरफ 'ॐ' लिखा हुआ था, उसे

देखकर भाईजी बोले—देखो 'ॐ' के अन्दर भगवान् बैठे हैं। यहाँसे कहाँ जायेंगे? सुन्दर बहुत हैं, 'ॐ' के अन्दर बैठे हैं।

देखिये तो सही, कैसा सुन्दर स्वरूप है, प्रकाश-ही-प्रकाश चारों तरफ़ हो रहा है।

आपकी जगह भी वही हैं, मेरी जगह भी वही हैं। जायेंगे कहाँ वे?

आकर हाथ पकड़कर यहाँ तक पहुँचा गये। फिर तो चले गये। गये, जायेंगे कहाँ? सब जगह वही हैं।

फिर घनश्यामजी ज्वालाप्रसादजीको भाईजीके पास बैठाकर भोजन करने चले गये। घनश्यामजीसे श्रीसेठजीने पूछा—हनुमानका क्या हाल है, भोजन करेगा क्या? तब घनश्यामजी बोले—वो तो कह रहा है, बहुत लड्डू-पेड़ा खाया है। तब आपने (श्रीसेठजीने) घनश्यामजीसे कहा—तुम उसे दूध भी पिला दो। उससे कहा कि लड्डू-पेड़ेपर दूध भी पी लो। घनश्यामजी एक गिलास दूध ले आये और भाईजीसे बोले—दूध आप (श्रीसेठजी) ने भेजा है। भाईजी बोले—प्रसाद सब लोगोंमें बाँट दो। तब घनश्यामजीने दूध द्वारका, शुभकरण, रामेश्वर, केदारनाथजीको दिया तथा खुद भी लिया। बाकी बचा दूध भाईजीने पी लिया। दूध पीनेके उपरान्त बोले—आप (श्रीसेठजी) के पास चलें क्या? फिर श्रीसेठजीके यहाँ गये और तख्तपर बैठ गये। इतनेमें ही सेठजी आ रहे थे। उन्हें देखकर भाईजी बोले—भगवान् आ रहे हैं! उठो! और बेहोशीकी हालतमें श्रीसेठजीके चरणोंमें गिर गये। फिर श्रीसेठजीके पास कुछ देर रहकर सोनेके लिये आ गये। रात्रिमें आनन्द बहुत अधिक रहा। निद्रा बिल्कुल नहीं आयी।

उपर्युक्त घटनाका विवरण भाईजीने बादमें बोलकर निम्नलिखित शब्दोंमें लिखवाया—

मेरी बड़ी उत्कंठा थी कि कोई रहस्यकी बात प्रत्यक्ष देखूँ। भगवान्‌के साक्षात् दर्शनोंकी उत्कंठा मेरे जीवनमें कभी भी हुई नहीं। मेरी सेठजीसे भगवान् रामके दर्शनोंकी बात और ज्वालाप्रसादजीसे श्रीसेठजीके प्रेम-भावकी बात होनेसे उत्कंठा बहुत ज्यादा बढ़ गयी थी। इस निमित्त उनसे प्रार्थना करनेकी। घनश्याम मेरे साथ था। जाते ही बिना कहे ही सेठजी बोले कि चलो, आज ध्यान करने पहाड़ीपर चलें। पहाड़ी पर जानेकी बात अलग लिखी हुई है। जब मैंने ध्यानकी भावना की, तब सब दृश्य एकदम जाते रहे। चारों तरफ अकस्मात् बड़ा भारी प्रकाश हो गया।

जिस जगह श्रीसेठजी विराजमान थे, उस जगह भगवान्‌की चतुर्भुज मूर्तिका मुझे प्रत्यक्ष आँखें खोले हुए दो व्यक्ति आमने-सामने बैठे हों उस प्रकार दर्शन होने लग गये। मेरे आनन्दका पार नहीं रहा। मैंने थोड़ी देर भगवान्‌के रूपका वर्णन किया। वृत्तियाँ बाहरसे बिलकुल हट गयीं। मैंने भगवान्‌के चरणोंको स्पर्श करनेके लिये हाथ आगे बढ़ानेके लिये कई दफे चेष्टा की, पर हाथ आगे नहीं बढ़े। किन्तु भगवान्‌का आसन पीछे हट गया। फिर मैंने कहा, तब भगवान्‌का आसन मेरे हाथके समीप आ गया। मैं चरण-स्पर्श करना चाहता था कि इतनेमें भगवान् अन्तर्धान हो गये और उस जगह श्रीसेठजी दीखने लग गये। मैं बोला—ये क्या बात हुई? तब श्रीसेठजी बोले—मुझे ये स्फुरणा हुई कि मैं वर्णन करूँ। तब मैं बोला—मैं करता हूँ, पर मुझे भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श होना चाहिये। तब सेठजी बोले—पहले हुआ, वैसा ध्यान होना तो बहुत सहज है, पर चरणोंका स्पर्श होना तो अगलेकी मर्जीपर है।

इतना कहनेके साथ अकस्मात् अनन्त प्रकाश हो गया। मुझे फिर उसी तरह दर्शन होने लग गये। मैं आनन्दमें विह्वल होकर भगवान्‌के दाहिने चरणको पकड़ लिया और चरणोंमें बलात्कारसे जा पड़ा। भगवान्‌ने मेरे मस्तकपर हाथ रख दिया। तब पीछेसे लोगोंने कहा कि तुम तो श्रीजयदयालजीके चरणोंपर पड़े थे। बाकी मेरी दृष्टिमें उस जगह भगवान् नारायणके सिवाय और कोई नहीं था। श्रीजयदयालजी भी नहीं थे। केवल श्रीनारायणदेव ही थे। इस स्थितिमें मैं बहुत देरतक पड़ा रहा और भगवान् मेरे मस्तकपर हाथ रखे हुए हँसते रहे। कुछ समयके बाद मुझे यह दिखा, कोई विलक्षण पुरुष भगवान्‌की षोडशोपचारसे पूजा कर रहा है। मैं पूजाको

देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। कुछ समयके बाद मैं देखता हूँ तो बहुत-से ऋषि पधारे हैं। ऋषियोंमें भगवान् नारद, व्यास, सनत्कुमार, हनुमान इत्यादि थे। वे आते ही अपना-अपना नाम बताकर मेरी ही तरह भगवान्के चरणोंमें प्रणाम करने लग गये और मुझे भगवान्के चरणोंमें पड़ा हुआ देखकर बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद विलक्षण पुरुष द्वारा पूजा करते समय जो प्रसाद लगाया गया था, वह प्रसाद सबको बाँटनेके लिये भगवान्ने एक ऋषिबालकको आज्ञा दी और उसने भगवान्की आज्ञा पाकर सबको प्रसाद बाँट दिया। तब भगवान्ने कहा— इसे भी दे दो। तब मुझे भी उठाकर प्रसाद दिया और मैंने बड़े आनन्दके साथ उस प्रसादको खाया। इतने विलक्षण स्वादका अनुभव जीवनमें कभी भी हुआ नहीं। इसके थोड़ी देर बार श्रीभगवान्के अन्तर्धान होते ही मेरे चित्तमें व्याकुलता-सी होकर आँख खुल गई और मैंने कहा—भगवान् तो चले गये। तब श्रीसेठजीने कहा— हमलोग भी चलें। मैंने देखा मेरा सिर श्रीज्वालाप्रसादजीकी गोदमें था। उन लोगोंने मुझे उठाया, पर मेरे अन्दर आनन्दकी इतनी बाढ़ थी कि मेरा बाह्यज्ञान फिर जाता रहा। मुझे प्रत्यक्ष दिखा कि भगवान् मेरे साथ चल रहे हैं। मैं बड़े आनन्दके साथ चलता रहा। मुझे लाकर भवनमें बिठा दिया। वहाँ भी मुझे उन्हीं भगवान्के दर्शन होते रहे। फिर मुझे श्रीजयदयालजीके पास ले गये, वहाँ फिर श्रीभगवान्के दर्शन हुए तथा मैंने दण्डवत की। उसके पश्चात् मुझे बाहरी ज्ञान हो गया।

दूसरी घटना

तिथि—आश्विन कृष्ण ९ वि०सं० १९८४ सोमवार (१९, सितम्बर, १९२७)

स्थान—जसीडीह, महेन्द्र सरकारकी कोठीके पूर्व-दक्षिण भागमें

(मारवाड़ी) आरोग्य भवनके पुस्तकालयमें दिनके दो बजे लोग एकत्रित हुए। श्रीसेठजीने हरदत्तरायजी गोयन्दकाके कहनेपर भाईजीसे कहा कि हरदत्त कहता है, इसलिये उस दिनकी तरह आँखें खोले हुए प्रत्यक्ष भगवान्के दर्शन हों, इस बातके लिये चेष्टा करनी चाहिये। उसके बाद थोड़ी देर तो भाईजी चुप रहे। पीछे श्रीसेठजीने कहा—कुछ स्तुतिके श्लोक और 'अजोऽपि' इत्यादि श्लोक बोलकर आरम्भ करना चाहिये। इसके बाद स्वयं ही 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' उच्चारण करके चुप हो गये। इसके कुछ मिनट बाद भाईजीने 'शान्ताकारम्' बोलकर 'अजोऽपि', 'यदा-यदा', 'परित्राणाय'—ये तीन श्लोक बोलकर उपस्थित लोगोंसे एक साथ मिलकर एक ध्वनिसे भगवान्के आह्वानके लिये व्याकुल होकर मनसे प्रार्थना करनेके लिये कहा और यह भी कहा कि किसीको, किसी प्रकारका शब्द नहीं करना चाहिये। यदि कोई शब्द हो तो उसकी तरफ ध्यान नहीं देना चाहिये। यहाँतक मनको भगवान्में लगाना चाहिये कि यदि वज्रपात हो तो भी उसकी तरफ ध्यान न जाय। उसके बाद भाईजी भगवान्से प्रार्थना करने लगे।

उन्होंने कहा—हे प्रभो! हे दीनानाथ!! मेरे तो कोई प्रेम नहीं, मेरा तो कोई बल नहीं, मेरी तो कोई योग्यता नहीं, कोई शक्ति नहीं, जिसके प्रेम और बलके वशीभूत होकर उस दिन आप साक्षात् प्रकट हुए थे, उसीके प्रेम और बलसे आज भी हमलोगोंमें आविर्भूत होनेकी दया करिये। हे नाथ! मैं तो कोई प्रार्थनाकी योग्यता नहीं रखता, उसीकी प्रेरणासे आपसे प्रार्थना की जा रही है। प्रार्थना करनेमें भाईजी बीच-बीचमें रुक रहे थे। कुछ समयतक चुप रहनेके बाद उन्होंने कहा—हे प्रभो! आज आप प्रकट क्यों नहीं होते? आज क्या बात है? थोड़ी देर बाद भाईजीने श्रीसेठजीसे कहा—आज चेष्टा करनेपर भी कोई फल नहीं होता। साधारण आँख खोले हुए ध्यान किया करता हूँ वो भी नहीं हो रहा है। आज क्या बात है? आप अब मुझको फिर एक बार आज्ञा करें, जिससे मुझको वैसा दर्शन हो सके। इसके बाद भाईजी बोले—अब थोड़ा ध्यान होने लग गया। इसपर श्रीसेठजीने कहा—मेरे यह स्फुरणा हो रही है कि इसके लिये पहाड़ी ठीक है। यह जगह राजसी है, वह जगह सात्विकी है और वह प्राकृत है। इसपर भाईजीने कहा—

अच्छा, वहाँ चलना चाहिये। सब लोग तैयार हो गये। श्रीसेठजी भी उठ खड़े हुए और आगे-आगे चलने लगे। पहाड़ीके रास्तेमें एक स्थानको देखकर यह बात कही—यह स्थान भी अच्छा है, परन्तु आज तो उसी जगह चलना चाहिये। आखिर सब लोग पहाड़ीके उस स्थानपर पहुँच गये, जिस स्थानपर पहले भगवान्‌के दर्शन हुए थे। वहाँ पहुँचनेपर श्रीसेठजीने भाईजीसे कहा—हाथ-पैर धो लिया कि नहीं? भाईजी बोले—हाथ-पैर धो लिया। मोहनलालजी जल ले गये थे, उन्होंने हाथ-पैर धुलाया था। श्रीसेठजी और भाईजी पहले जिस जगह बैठे थे, उसी जगह बैठ गये। और सब लोग पहले शुक्रवारके दिन जिस जगह बैठे थे, उसी तरह बैठ गये। बैठनेके बाद भाईजी 'त्वमेव माता', 'यदा-यदा हि' 'परित्राणाय' ये तीन श्लोक बोलते-बोलते बीचमें अटके। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद बोले—देखिये, सब भाई सावधान हो जायें। मन एकाग्र करके भगवान्‌का दर्शन करना चाहिये। आँख खोले जिसका मन दूसरी तरफ जाये, उसको आँख बंद कर लेनी चाहिये। इसपर श्रीसेठजी बोले—दोनों ही बात ठीक है। या तो आँख बंद कर ली जाय या नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखी जाय।

भाईजी बोले—पूर्वकालमें मैं हनुमान गोयन्दकाको ध्यानकी बातका वर्णन किया करता था, उसी प्रकार भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। हनुमान भी ध्यान लगानेकी चेष्टा किया करता था, उस प्रकार भगवान्‌के स्वरूपकी भावना सभीको करनी चाहिये। फिर थोड़ी देर चुप रहनेके बाद भाईजी बोले—उस दिनकी तरह श्रीभगवान् उस स्थानपर प्रकट हो गये हैं। आज आनन्दकी अधिक विलक्षणता है। वही कमलका विशाल आसन है। कमलका रंग नीचेमें सफेद, बीचमें लालिमा, ऊपर नीलिमा। उसपर उसी प्रकारसे भगवान् दाहिने चरणारविन्दको नीचेकी तरफ करके विराजमान हैं। मेरी वृत्तियाँ रुक रही हैं। जितना भगवान्‌के रूपका वर्णन कर सकता हूँ, उतना करता हूँ। आपलोगोंको उसी प्रकार भगवान्‌के रूपका ध्यान करना चाहिये। इसके बाद भाईजी बोले—भगवान्‌के चरण-कमलके नखकी ज्योतिमें कितना प्रकाश हो रहा है। उनके गहनोंके नाम मैं नहीं जानता हूँ। इसके बाद भाईजीका बोलना रुक गया। इसके बाद सेठजी बोले—तुमने बोलना बन्द क्यों कर दिया? भगवान्‌के स्वरूपका स्पष्ट वर्णन करो। श्रीसेठजीने दो बार कहा, पर भाईजी बोले नहीं। थोड़ी देर बाद भाईजी बेहोश होकर गिर पड़े। रामजीदासजी बाजोरिया (भागलपुर) की गोदमें भाईजीका सिर गिर गया। रामजीदासजीने श्रीसेठजीसे कहा—इसे बैठाओ। उन्होंने चेष्टा की और बोले मेरी उठानेकी सामर्थ्य नहीं है। श्रीसेठजी बोले—हनुमान, सावधान होकर ध्यान करो। फिर श्रीसेठजीने कीर्तन शुरू किया—

'श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।'

कुछ देर बाद रामजीदासजीने सहारा देकर भाईजीको बैठाया, तब श्रीसेठजीने बोले—तुम बोलते क्यों नहीं? तब भाईजीने कहा—मैंने बोलनेकी चेष्टा की, पर मेरेसे नहीं बोला गया। तब श्रीसेठजी बोले—तुम्हारे द्वारा स्वरूपका वर्णन किये बिना दूसरेको क्या लाभ होगा। इतने व्यक्तियोंको संग क्यों लाये थे? नहीं बोलना था तो अकेले क्यों नहीं आये? इतना कहनेके साथ भाईजी बोलने लगे—मैंने पहले बहुत चेष्टा की थी, पर मेरेसे बोला नहीं गया।

इसके बाद भाईजी भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन करने लगे। स्वरूपका वर्णन करनेके बाद श्रीसेठजीने पूछा—तुम पड़े थे, तब क्या व्यवस्था हुई? तब भाईजी बोले—मैं क्या बताऊँ, आपको क्या मालूम नहीं? आप क्या सुन नहीं रहे थे? अब सुनिये, अब क्या कह रहे हैं। इतना कहकर फिर बेहोश हो गये। फिर श्रीसेठजीने कीर्तन शुरू किया—

'जै रघुनन्दन जै सियाराम, जानकीबल्लभ सीताराम।'

फिर थोड़ी देरके पश्चात् आँख खुलनेके बाद भाईजी बोले—मेरी इतनी सुनवाई नहीं हो सकती है। आपके कहनेसे सबको दर्शन हो सकता है। तब सेठजीने कहा—मैं क्यों कहूँ? भगवान् जैसा उचित समझें, वैसे ही करें। तब भाईजी बोले—दर्शनकी सबको इच्छा नहीं

है। तब श्रीसेठजी बोले—जिन-जिनकी इच्छा हो, उन-उनको होना चाहिये। तब भाईजी बोले—आप कहें, उन-उनको दर्शन हो सकता है। तब श्रीसेठजी बोले—यदि वे पूछे तो मैं नाम बता सकता हूँ। तब भाईजी बोले—आप कहें, वैसे करनेके लिये वे राजी हैं। तब श्रीसेठजी बोले—सामने आकर क्यों नहीं कहते? सब लोग सुनें। यदि सामने आकर प्रकट नहीं होते तो जैसे पहले आकाशवाणी होती थी, उसी प्रकार कहनेसे सभी सुन सकते हैं। तब भाईजी बोले—यह कानून नहीं है, आपको क्या मालूम नहीं है? इसके बाद फिर भाईजीकी आँखें बन्द हो गयीं और बेहोश हो गये। थोड़ी देर बाद भाईजी फिर आँखें खोलकर बोले—आप कहें तो दर्शन हो सकता है। तब श्रीसेठजी बोले—मैं क्यों कहूँ? फिर आँखें बन्द हो गयीं। फिर थोड़े देर बाद आँखें खुलनेसे भाईजी बोले—भगवान् कहते हैं कि तुम (श्रीसेठजी) बोलो तो तुम्हारे (श्रीसेठजीके) कहनेसे दर्शन हो सकते हैं। तब आप (श्रीसेठजी) बोले—तुम्हें तो दर्शन हो रहे हैं। तब भाईजी बोले—मेरी बात नहीं। आपके कहनेसे सबको दर्शन हो सकते हैं। इसपर आप (श्रीसेठजी) बोले—अगलेको गरज हो तो दर्शन दो, मुझे गरज नहीं है। हम तो खुशामदिया नहीं। अगलेको गरज होवे तो दर्शन दो, नहीं तो अगलेकी मरजी। हम तो अगलेकी राजीमें राजी हैं। फिर आँखें बंद हो गयीं। फिर आँखें खुलनेके बाद भाईजी बोले—श्रीभगवान्‌को गरज है, तब ही तो आपकी बात मानते हैं। तब आप (श्रीसेठजी) बोले—हम तो हमारा काम नुकसान करकर आये हैं। इसपर भी खुशामद चाहते हैं तो अगलेके नामका कीर्तन कर सकते हैं और खड़े होकर नाच सकते हैं। इसके बाद भाईजी बोले—आप सिर्फ कह दें। इसपर श्रीसेठजी बोले—हम तो इस प्रकार कहते नहीं। इसके बाद बहुत गम्भीरताके साथ भाईजीने सबसे यह बात कही—इनके (श्रीसेठजी) कहे अनुसार चलनेसे दर्शन हो सकते हैं। इसके थोड़ी देर बाद फिर भाईजी जोरसे बोले—सुनो, भगवान् क्या कह रहे हैं—

१-इनकी आज्ञा पालनसे ही मेरी आज्ञा पालन है।

२-इनकी प्रसन्नतासे ही मेरी प्रसन्नता है।

३-इनकी इच्छामें ही मेरी इच्छा है।

४-इनके रूपमें ही मेरा रूप है।

इसके बाद भाईजी बोले—भगवान् अन्तर्धान हो गये।

भाईजी आश्विन कृष्ण ९ सं० १९८४ (१९ सितम्बर, १९२७) को ही गोरखपुर रवाना होनेवाले थे, पर उस दिन प्रत्यक्ष दर्शनोंकी जो विलक्षण घटना हुई, उसीमें रात्रि हो गयी। अतः दूसरे दिन श्रीसेठजी और भाईजी अन्य प्रेमीजनोंके साथ बनारस रवाना हुए। रास्तेमें भाईजीने श्रीसेठजीसे प्रश्न किया—इस बार जसीडीहमें सबके सामने इस प्रकारका अपूर्व प्रभाव दिखाया गया। जो कार्य एकान्तमें होता है, वह इतने लोगोंके समक्ष क्यों हुआ? इसका क्या हेतु है? श्रीसेठजी बोले—इससे जगत्‌को लाभ ही होगा। यह काम समझकर ही हुआ है, परन्तु ऐसी घटना जीवनकालमें प्रकाशमें न आवे तो अच्छा है।

भाईजी बोले—इससे मेरे प्रश्नका पूरा उत्तर नहीं हुआ। मैं तो पूछता हूँ कि इतना प्रत्यक्ष प्रभाव सब लोगोंके सामने होनेमें क्या हेतु है?

श्रीसेठजी बोले—जिसके द्वारा भगवद्भक्तिके प्रचारकी अधिक सम्भावना होती है, उसीको भगवान् इस प्रकार दर्शन देते हैं। दर्शन तो औरोंको भी देते हैं, परन्तु यों सबके सामने नहीं देते। इसलिये अब हम अपने चरित्रनायककी स्वरचित दो कविताओंको आपके अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत करते हैं, जिसमें पहली कवितामें चरित्रनायकने अपने गुरुतुल्य श्रीगोयन्दकाजीके चरणोंमें श्रद्धाञ्जलिरूपमें उनकी सत्य महिमाका दिग्दर्शन कराया है। वह कविता कल्याण वर्ष २ अंक ४ पृष्ठ २०४-२०५ में प्रकाशित हो चुकी है।

महापुरुष-चरण-वन्दन

सर्व-शिरोमणि विश्व-सभाके, आत्मोपम विश्वम्भरके।
विजयी नायक जग-नायकके, सच्चे सुहृद चराचरके॥
सुखद सुधा-निधि साधु कुमुदके, भास्कर भक्त-कमल-वनके।
आश्रय दीनोंके, प्रकाश पथिकोंके, अवलम्बन जनके॥

लोभी जग-हितके, त्यागी सब जगके, भोगी भूमाके।
मोही निर्मोहीके, प्यारे जीवन बोधमयी माँके॥
तत्पर परम हरण पर-दुखके, तत्परता-विहीन तनके।
चतुर खिलाड़ी जग-नाटकके, चिन्तामणि साधक-जनके॥
सफल मार्ग-दर्शक पथ-भ्रष्टोंके, आधार अभागोंके।
विमल विधायक प्रेम-भक्तिके, उच्च भावके, त्यागोंके॥
परम प्रचारक प्रभु-वाणीके, ज्ञाता गहरे भावोंके।
वक्ता, व्याख्याता, विशुद्ध, उच्छेदक सर्व कुभावोंके॥
पथ दर्शक निष्काम-कर्मके, चालक अचल सांख्य पथके।
पालक सत्य-अहिंसा व्रतके, घालक नित अपूत पथके॥
नाशक त्रिविध तापके, पोषक तपके, तारक भक्तोंके।
हारक पापोंके संजीवन-भेषज विषयासक्तोंके॥
पावनकर्ता पतितोंके, पृथ्वीके, प्रेत-पितृ-गणके।
भूषण भूमण्डलके, दूषण राग-द्वेष रणाङ्गणके॥
रक्षक अतिदृढ़ सत्य-धर्मके, भक्षक भव-जंजालोंके।
तक्षक भोग-रोग, धन-मदके, व्यापारी सत-लालोंके॥
दक्ष-दुभाषी 'जन, जन-धन'के, मुखिया राम-दलालोंके।
छिपे हुए अज्ञात लोक-निधि, मालिक असली मालोंके॥
चूड़ामणि दैवी गुण-गणके, परमादर्श महानोंके।
महिमा-वर्णनमें अशक्त त्व विद्या-बल विद्वानोंके।

दोहा

गुणातीत गंभीर गुण, गरिमा अमल अपार।
परम सत्य आनन्दघन, अजग जगत् आधार॥
अतुल शक्ति सामर्थ्ययुत, हरिसम प्रेमागार।
प्रकटत हरि जिन प्रेम बल शुभ वपु धरि साकार॥
'महापुरुष' महिमा परम, माया-गुण-गोतीत।
बोध रूप चैतन्य हरि, वन्दौं चरण विनीत॥
बार-बार मस्तक धरौं, सुचि पद-पद्म-पराग।
मिटत सकल भव भय भुवन, जेहि सेवित अनुराग॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३३१)

शास्त्रोंका अटल सिद्धान्त है कि सद्गुरु कृपाके बिना श्रीभगवान्‌के दर्शन नहीं होते। गुरु और श्रीभगवान् अभिन्न हैं। इस बातको समझानेसे समझमें आना कठिन है, परन्तु हमारे चरित्रनायकको अपने श्रीगुरुतुल्यसे चिन्मय विग्रहके ही अन्दर भगवान् श्रीविष्णुके प्रत्यक्ष दर्शन कैसे हुए? यह सब सत्य घटना आप उन्हींकी भाषामें पढ ही चुके हैं और उनकी अपने गुरुतुल्य श्रीगोयन्दकाजीके प्रति कैसी निष्ठा थी उसीका दिग्दर्शन उपर्युक्त कवितासे जान ही गये होंगे। अब हम आपकी सेवामें अपने चरित्रनायकको भगवान् श्रीविष्णुके दर्शन कैसे हुए? इस बातको बतलानेके लिये उन्हींके हस्ताक्षरोंमें अपने भगवद्दर्शन होनेके तत्काल बाद कवितारूपमें बनायी हुई लावनीकी अक्षरश: नकल कर रहे हैं। कविताकी मूल प्रति इन पङ्क्तियोंके क्षुद्र लेखकके स्टाकमें सुरक्षित है।

"श्रीविष्णु भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शनोंकी कविता"

है जो त्रिगुणातीत, नित्य, अज, अव्यय, नाम-रूप गति हीन।
हिममें नीर-सदृश जो व्यापक सबमें, सबसे परे, अलीन॥
अद्वय कारण, अद्वय, जिसमें है सबका अत्यन्ताभाव।
शुद्ध बोधघन, सत्य स्वस्थ, सनातन, रहित भावमय भाव॥
रवि-शशि-अनल प्रकाशित होते जिसका तेज-अंश पाकर।
व्योम, वायु, रस भूमि, अग्निका एकमात्र जो है आकर॥
अधिष्ठान सब जगका, निज मायामें रचता नाना वेश।
परद्रष्टा, अनुमन्ता, जो भर्ता, भोक्ता, ईश्वर, परमेश॥
सुधा-सने सौन्दर्य-राशिका है जो अति अनुपम सागर।
त्रिभुवनकी सब रूपछटा है जिसकी नन्हीं-सी गागर॥
कर अधीन निज-प्रकृति, योगमायासे अघटन घटना कर।
है नित नूतन वेष धारता विश्वविमोहन बाजीगर॥
सबका जो सर्वस्व, आत्मवित्, भक्तोंका जो जीवन-धन।
जिसके परमानन्द रूपसे नित्यानन्दित हैं निज-जन॥
प्राणाधिक आराध्यदेव जो, नित नव-नव आनँद-निर्झर।
भक्तवश्य साकार, सगुण, जन-मन-पङ्कजका जो दिनकर॥
जीवन-मन-तन-सुधि-हर होती जिसकी मधुर मन्द मुसकान।
जिसकी सुन्दर छटा निरखकर छुटती लोक-वेद-कुल-कान॥
देव, दनुज, मुनि, ऋषि जिसके दर्शनको संतत ललचाते।
विविध भाँति तप-साधन करते, नहीं सहजमें हैं पाते॥
जन्म जन्मसे लगी हुई थी जिनके दर्शनकी आशा।
रूप-सुधा वारिधि-अवगाहनकी जिसके थी अभिलाषा॥
जिसने अपने मिलनेकी व्याकुलता भर दी थी मनमें।
विरहानल था धधक उठा जिससे उसके सारे तनमें॥

वही ब्रह्म साकार प्रकट हो, अद्भुत दर्शन है देता॥
सत्वर अगणित जन्मोंकी अघराशि पूर्ण है हर लेता॥
यह साधन-विहीन था, कारण किंतु एक बलवान अपार।
निश्चित ब्रह्मरूप गुरुवरकी थी अनुकम्पा-पारावार॥
उनकी प्रेम-रज्जुसे हरिको बँधना पड़ा स्वयं तत्काल।
रखनी पड़ी अभय करनेको नत मस्तकपर भुजा विशाल॥
कोमल कर-स्पर्शसे जनको निर्भय नित्य पड़ा करना।
चरण-स्पर्श अभयवाणी, मधुर प्रसादसे दुख हरना॥
उस छवि-राशि अमितका वर्णन करनेमें वाणी लाचार।
मापा कभी न जा सकता है हाथोंसे आकाश अपार॥
भाग्यवती जिन आँखोंने वह देखी रूप-छटा अनुपम।
तृप्त हो गयीं, नहीं बता सकती हैं, वर्णनमें अक्षम॥
वाणी कुछ प्रयास करती है, नेत्रोंका सहाय लेकर।
मनमोहनके अतल रूपकी मधुर स्मृतिमें मन देकर॥
उस स्मृतिमें जाते ही तत्क्षण रूपमग्न मन हो जाता।
मनके रुकते ही वाणीका काम नहीं कुछ हो पाता॥
रुकी लेखनी बंद हो गयी, चलता नहीं हाथ आगे।
क्षमा कीजिये प्रेमी पाठक, सरल पाठिका सद्भागे॥
पूर्ण प्रेमसे मिल करके सब, करिये उनका प्रेमाह्वान।
जिससे सत्वर पुनः प्रकट हों सबके सम्मुख श्रीभगवान्॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८५९)
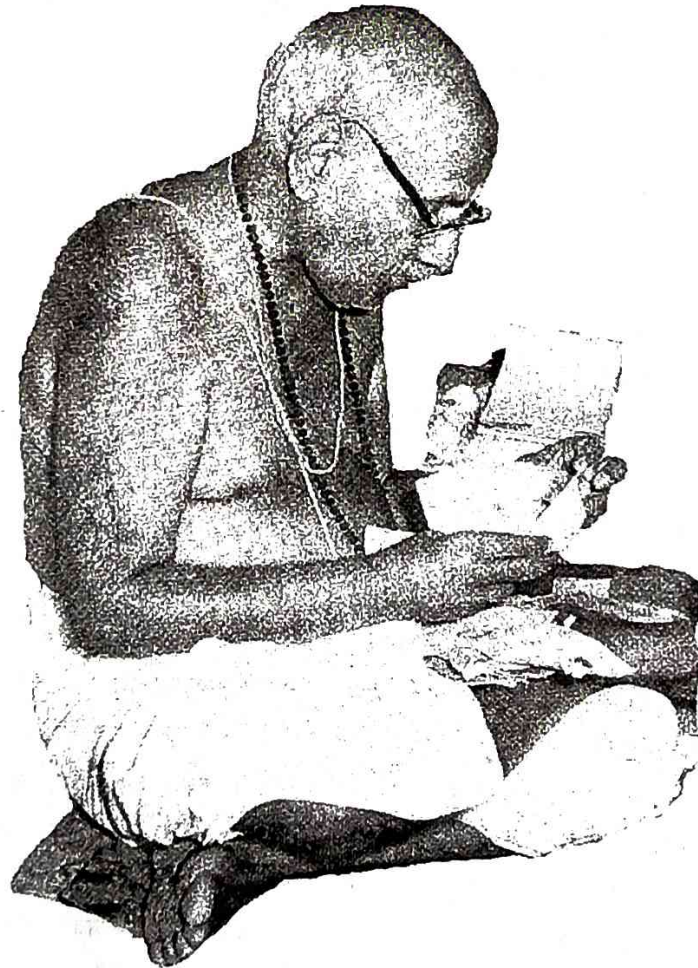
श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया, पूज्य श्रीसेठजी, पूज्य श्रीभाईजी
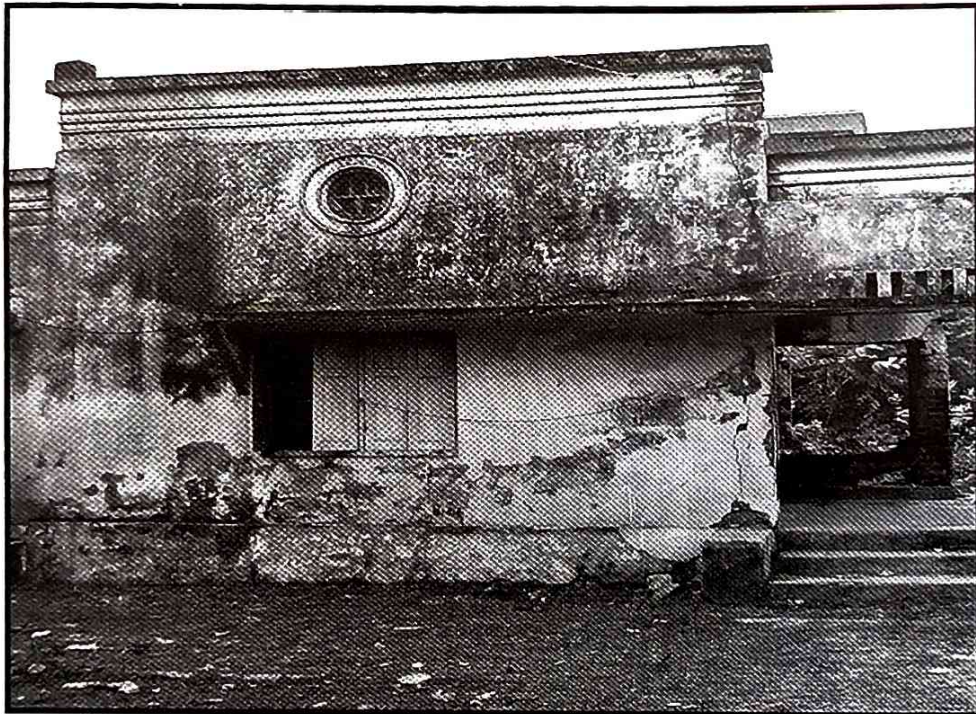
करीब ९० वर्षों पूर्व इसी पावन कक्षमें ठाकुरजी ने प्रकट होकर
पूज्य श्रीभाईजीको दिव्य संदेश दिया
पूरी कोठीके टूटनेपर भी यह कक्ष अभी तक वैसे ही खड़ा है।

॥ श्रीहरि: ॥

बीसवाँ पटल

गोरखपुरमें श्रीभगवान्‌के पुनः प्रत्यक्ष दर्शन एवं दिव्य सन्देश

जन्म जन्मान्तरोंकी तीव्र साधना एवं श्रीहरिकी पूर्ण कृपा होनेसे ही अनेकों साधकोंमेंसे किसी विरले ही व्यक्तिको श्रीभगवान् अपने अलौकिक चिन्मय विग्रहका प्रत्यक्ष दर्शन एकान्तमें एक बार दे देते हैं तो जीव अपने मनुष्य जीवनको सार्थक—धन्य समझता है। किन्तु हमारे चरित्रनायकके सामने तो श्रीभगवान् एकान्तमें प्रकट ही नहीं हुए और एक बार दर्शन देकर ही तृप्त न हुए। यद्यपि ऐसी घटनाएँ प्राचीनकालमें तो होना कोई बहुत विलक्षण बात नहीं थी, क्योंकि उस समय जन समुदायका श्रीभगवान्‌के प्रति बड़ा आस्तिक भाव था। उनकी दृष्टिमें श्रीभगवत्कृपासे कोई असम्भव बात नहीं थी। किन्तु वर्तमान कालमें बीसवीं शताब्दीके लोगोंके हृदयमें वह आस्तिक भाव कहाँ? भगवान्‌के प्रति वह विश्वास कहाँ? इसलिये हम अपनी तरफसे एक शब्द भी बढ़ाकर न लिखकर हमारे चरित्रनायकके शब्दोंमें ही आपको इन अलौकिक घटनाओंका रसास्वादन करायेंगे, क्योंकि मेरा लक्ष्य केवल इतना ही है कि चरित्रनायककी श्रीभगवान्‌से सम्बन्ध रखनेवाली (जनताके सामने वाह्यरूपसे आयी हुई) सत्य घटनाओंमेंसे यत्किञ्चित् मुख्य-मुख्य घटनाओंको अपने श्रद्धालु पाठकोंके समक्ष रखनेका प्रयास करें, अन्यथा चरित्रनायकके अन्तर्जगत्‌के इतने गुह्यातिगुह्य विलक्षण अनुभव हैं कि वे आजके जैसे नास्तिक युगमें बाहर आनेकी वस्तु ही नहीं है। क्योंकि जब सर्व साधारणके समक्ष डंकेकी चोट ऐसी घटनाओंको भी लिखते हुए हमें इतना संकोच हो रहा है तब जो आगे जाकर हमारे चरित्रनायकका भगवान् श्रीराधाकृष्णकी चिन्मय व्रजलीलाओंमें प्रवेश हुआ है, उन घटनाओंको तो आजकलके पण्डिताभिमानी लोग क्यों सुनने लगेंगे। पर जो कुछ भी हो हमें तो श्रीभगवान्‌की प्रेरणासे जो कुछ सत्य घटनाओंका वर्णन करना है वह उसीकी इच्छानुसार करते रहेंगे।

हाँ, तो जसीडीहमें चरित्रनायकको श्रीविष्णु भगवान्‌के पुनः प्रत्यक्ष दर्शन आश्विन कृष्णा ९ सं० १९८४ वि० को हुए। उसी दिन चरित्रनायकका विचार गोरखपुर आनेका था, किन्तु उसी दिन ऐसी विलक्षण घटना हुई कि उसीमें रात्रि हो गयी तब उस दिन रवाना न होकर दूसरे दिन रवाना हुए। उस दिन श्रीगोयन्दकाजीसे चरित्रनायककी जो बातें हुई वह चरित्रनायकने नोट कर ली थी। उसीकी अक्षरश: नकल इस प्रकार है।

मिति आश्विन कृष्णा १०, सं० १९८४ वि० को जसीडीहसे बनारस जाते समय रास्तेमें बातें हुईं। आपके (श्रीगोयन्दकाजीके) सिवाय निम्नलिखित पुरुष थे।

(१) श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया (२) श्रीहनुमानदासजी गोयन्दका (३) श्रीघनश्यामदासजी नुवेवाला (४) श्रीरामकृष्णजी काबरा (५) श्रीशुकदेवजी (६) श्रीगंगाप्रसादजी (७) श्रीरामेश्वरजी नुवेवाला (८) श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार।

हनुमानप्रसादजी पोद्दारने प्रश्न किया—

अबकी बार जसीडीहमें सबके सामने इस प्रकारका अपूर्व प्रभाव दिखाया गया। जो कार्य बहुत एकान्तमें होता है, वह इतने लोगोंके समक्ष क्यों हुआ और केवल मुझे ही दर्शन क्यों हुए इसका क्या हेतु है?

(श्रीगोयन्दकाजीका) उत्तर—इससे जगत्‌को लाभ ही होगा। यह काम समझकर ही हुआ है। ऐसी बातें सबमें प्रकाशित न होनेसे ज्यादा लाभ होता है। वहाँ उस समय सब लोगोंसे कह दिया जाता कि इस घटनाको

बिना किसीकी अत्यन्त उत्कण्ठाके किसीके सामने न कहना तो और भी अच्छा होता, परन्तु उस समय ऐसी स्फुरणा नहीं हुई। अब तो कलकत्तेमें बात फैल गयी, इससे भी लाभ ही है परन्तु ऐसी घटना जीवनकालमें प्रकाश न होनी अच्छी है।

प्रश्न—इससे मेरे प्रश्नका पूरा उत्तर नहीं हुआ। मैं तो पूछता हूँ कि इतना प्रत्यक्ष प्रभाव सब लोगोंके सामने होनेमें हेतु क्या है?

उत्तर—हेतु ये हैं—

१-मेरा शरीर शान्त हो जाय तो उसके बाद भी सत्संगका प्रभाव खूब फैले।

२-जिसके द्वारा भगवद्भक्तिके प्रचारकी अधिक सम्भावना होती है, उसीको इस प्रकारसे भगवान् दर्शन देते हैं। दर्शन तो औरोंको भी देते हैं, परन्तु यों सबके सामने नहीं देते। जैसे श्रीरामचन्द्रजी महाराजने सीताकी खोजमें भेजते समय केवल श्रीहनुमान्‌जीको ही अंगूठी दी। वे जानते थे कि इसीके द्वारा काम होनेवाला है। साधारण लोगोंने समझा कि हनुमानमें बल योग्यता आदि गुण अधिक हैं इसलिये भगवान्‌ने उनको अंगूठी दी है, परन्तु भगवान्‌ने यह समझकर नहीं दी। भगवान् तो यह जानते थे कि इसके द्वारा ही काम होगा नहीं तो सुग्रीव, अंगद, जाम्बवन्त आदिको पाँच-सात अंगूठियाँ दे देते। इसी प्रकार परमात्मा जिसके द्वारा विशेष काम होनेवाला समझते हैं उसीको अपने हावभाव दिखाकर प्रभावान्वित करते हैं।

श्रीगोयन्दकाजीको भगवान्‌के द्वारा भगवद्भक्तिका प्रचार करनेका आदेश बहुत वर्ष पहले मिला हुआ था किन्तु अभीतक उनको कोई ऐसा पात्र न मिला था जिसके द्वारा वे संसारमें भगवद्भक्तिका विशेष रूपसे प्रचार कर सकते। अब चरित्रनायकको योग्य पात्र समझकर उन्हें भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन कराये। हमारे चरित्रनायकने भी उनके आदेशको काममें लाकर भारतवर्षमें अब कल्याण मासिक पत्रके द्वारा तथा सत्संग और भगवद्भक्तिके प्रचारके लिये जगह-जगह भ्रमण करके दिल खोलकर प्रचार किया। जसीडीहसे गोरखपुर आते ही कल्याण वर्ष २ अंक ४ पृष्ठ २११ में अपने गुरुतुल्य श्रीगोयन्दकाजीके प्रति लोगोंको आकर्षित करनेके लिये तुले हुए शब्दोंमें चरित्रनायकने एक छोटी-सी चेतावनी दी।

शीघ्र चेतो

जल्दी दौड़ो! इस मायाके धधकते हुए दावानलसे फौरन बाहर निकलो। देखो, अग्निकी प्रलयकारी लाल लपटें लपक-लपककर जगत्‌को धड़ाधड़ ग्रस रही हैं। प्रचण्ड धूएँसे सभी दिशाएँ छा गयी हैं, वह गया, दूसरा भी चला, अरे! तीसरेको भी ले लिया, परन्तु हाय! तुम मूर्खकी तरह किंकर्तव्यविमूढ़ होकर पड़े हो। तुम्हारा भी नम्बर शीघ्र आता है। यदि बचना चाहते हो तो तुरन्त सबका मोह छोड़कर बाहर निकल पड़ो। देखो, वह देखो, उस छलकते हुए अमृत समुद्रके किनारे विशाल जहाज ठहराये उसका कृपालु कप्तान बार-बार सीटी बजा-बजाकर सबको बुला रहा है, पुकार रहा है। जिसने उसकी पुकार सुनकर उसकी ओर ध्यान दिया वह विश्वव्यापी अग्निसे बचकर दुःख सागरसे तुरन्त तर गया। इसी तरह तुम भी तर जाओगे, अमर हो जाओगे। जाओ! जाओ!! शीघ्रता करो!!! अन्यथा जलते हो, बार-बार जलोगे। अतएव चेतो! शीघ्र चेतो!!

कल्याणके द्वारा उपर्युक्त चेतावनी देकर लोगोंको सावधान कर दिया। गोरखपुरमें भी उसी समयसे कान्ती बाबूके बगीचेमें जहाँ चरित्रनायक निवास करते थे उसी जगह नित्यप्रति सत्संग प्रारम्भ हो गया। प्रेमीजनोंने चरित्रनायकसे जसीडीहकी घटना जाननेके लिये प्रश्न किये जिसका उत्तर कैसे दिया उसको आप चरित्रनायकके ही शब्दोंमें पढ़िये।

॥ श्रीहरिः ॥*

परम पूज्यवर!

गोरखपुर आश्विन शुक्ला १। १९८४

हृदयसे प्रणाम।

जसीडीहकी अभूतपूर्व घटनाके सम्बन्धमें हमलोगोंके

* ये पत्र चरित्रनायकने गोरखपुरसे श्रीगोयन्दकाजीको जसीडीह दिये थे।

पहुँचनेसे पहले ही कलकत्तेसे समाचार आ गये थे। यहाँके लोगोंने उक्त घटना जाननेके लिये बड़ी उत्सुकता दिखलायी। कल प्रात:काल तो विशेष कुछ न कहकर केवल साधनपर जोर दिया गया। रातको संकोच रहनेपर भी विवश होकर कितनी ही बातें कहनी पड़ीं। कलकत्तेमें बड़ा आन्दोलन हो गया दीखता है। सुननेमें आया है कि वहाँ श्रीहीरालालजीने भवनमें व्याख्यान देते हुए इस बातको कह दिया है।

भगवान् जैसा कुछ करना करवाना चाहते हैं वही सर्वथा न्यायसंगत है।

यहाँ लोगोंने कहा कि हमें भी दर्शन होने चाहिये। इसपर उनसे कहा गया कि जिनके बल और प्रतापसे दर्शन हुए हैं उनसे ही आप लोग भी दर्शनके लिये प्रार्थना कर सकते हैं।

शेषमें उनसे कहा गया कि आप लोग जसीडीहकी आज्ञानुसार साधन करनेके लिये तैयार हों तो वहाँ लिखकर साधनका क्रम पूछा जा सकता है। परन्तु आप लोगोंको कड़े-से-कड़े साधनके लिये तैयार रहना चाहिये। जो साधन वे बतायें वही करना पड़ेगा, ऐसी धारणा कर लेनी चाहिये। इस बातको लोगोंने प्राय: स्वीकार किया, स्त्रियोंकी ओरसे भी कहा गया कि हम भी तैयार हैं। हमारी बात पीछे न रह जाय। इसीके अनुसार उन सबकी ओरसे यह पत्र आपकी सेवामें लिखा जाता है। अब आपके जँचे जैसी बात लिखनी चाहिये। जिससे उन सबको बहुत शीघ्र परमात्माके दर्शन हों ऐसा तीव्र साधन बतलाना चाहिये।

अनुगत—**हनुमान**

गोरखपुर आश्विन शुक्ला २। सं० १९८४

परम पूज्यवर! हृदयसे प्रणाम!

पत्र दिया था सो पहुँचा होगा। लोगोंको सन्तोष हो तथा उनका शीघ्र भला भी हो ऐसा उपाय मैं तो उन्हें केवल यही बतला सका हूँ कि वे आपकी बात मानकर साधन करें। इसीके अनुसार उन लोगोंके कहनेसे कल एक पत्र आपकी सेवामें भेजा गया है। उसपर जैसा उचित समझा जाय वैसा ही लिखना चाहिये। सर्व साधारणके सामने ऐसी अलौकिक घटना हो जानेसे बड़ा हल्ला-सा मच गया है। सम्भव है कि कुछ लोग इसमें मेरा कुछ प्रभाव समझें या बड़ाई करें, जैसे कि लक्षण दीख रहे हैं। वास्तवमें मुझे इसमें कोई भी अपनी बड़ाईकी बात नहीं दीखती, इससे मैं तो जो कुछ उचित समझता हूँ सो लोगोंसे कहता ही हूँ, पर यदि लोग किसी तरहसे इस बातका यथार्थ तत्त्व जान जायँ कि इस घटनामें मेरा कोई बल, सामर्थ्य या प्रेम कारण नहीं है। इसमें केवल भगवत्कृपा ही प्रधान कारण है तो सम्भवत: बड़ाईका कलङ्क दूर हो सकता है। यदि लोगोंके पूछनेपर मैं कोई बात नहीं कहता तो ये दुखित होते हैं और समझते हैं कि यह बात छिपाता है। इधर कहनेमें अन्त:करण और वाणीमें संकोच होता है तथा उन लोगोंको या मुझको कोई लाभ नहीं दीखता। इस स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये? यदि इतने जोरका आन्दोलन न होता तो इतनी बात नहीं होती, परन्तु प्रभुकी सदच्छिानुसार जो हुआ सो बड़े ही मंगलके लिये हुआ है। इसमें कोई भी शंका नहीं है। इस सम्बन्धमें अन्त:करणमें जो भाव उठते हैं सिर्फ वही आपकी सेवामें लिखे गये हैं।

दोनों समय सन्ध्या करने और गायत्रीकी एक-एक माला जप करनेके लिये यहाँ लोगोंसे कहा गया है। बहुतसे लोग करने लगे हैं। कल्याणमें भी स्लिप लगा दी गयी है।

आनन्दमय! आनन्दमय!! आनन्दमय!!!

अनुगत—**हनुमान**

जसीडीहकी घटना एक साधारण घटना नहीं थी जो किसी एक-दो या चार स्थानोंतक ही सीमित रह सकती। उस समय तो मानो प्रेममय मन्दाकिनीका ऐसा प्रवाह चारों तरफ फैला कि कलकत्ते, बंबई, दिल्ली, बीकानेर, रतनगढ़, भिवानी, भागलपुर, तिनसुकिया आदि अनेक स्थानोंसे लोग श्रीगोयन्दकाजी एवं चरित्रनायकके पास आने लगे। जो न आ सके वे वहींपर रहकर इस विलक्षण घटनाके संवाद सुन-सुनकर इस प्रेममयी

मन्दाकिनीमें दूरसे ही निमज्जन करने लगे।

चरित्रनायकने अपनी स्थिति परिवर्तन होनेका संवाद सबसे पहले रतनगढ़ (बीकानेर) अपनी मातुश्रीको दिया और उसमें लिखा कि मेरी आध्यात्मिक स्थितिमें परिवर्तन हो गया है। अत: आप लोगोंको मेरे समीप रहनेसे अधिक लाभ हो सकता है। इधर वे भी इनके पास रहना चाहते ही थे, तब चरित्रनायकने इन पङ्क्तियोंके क्षुद्र लेखकको बीकानेर आश्विन शुक्ला ४। ८४ को तार देकर लिखा कि रतनगढ़से पूजनीया माताजी आदिको साथ लेकर गोरखपुर आओ। अस्तु, माताजी आदि चरित्रनायकके समीप गोरखपुर आनेके लिये रवाना हो गयीं।

उधर हमारे चरित्रनायकको पुन: श्रीविष्णु भगवान्‌के गोरखपुरमें दर्शन हुए। उस घटनाको उन्होंने अपनी डायरीमें पीछे नोट कर लिया। उसी डायरीकी अक्षरश: नकल करके हम आपको चरित्रनायकके शब्दोंमें ही उस घटनाको सुना रहे हैं।

तीसरी घटना

श्रीहरि:

सं० १९८४ वि० आश्विन शुक्ला ६ रविवार ता० २। १०। १९२७ ई०

स्थान : कान्ति बाबूके बगीचेका (गोरखपुर शहरसे बाहर) दक्षिण तरफके कमरेके पासवाला बीचका (बड़ा) कमरा।

समय : प्रात:काल करीब ७.३० बजे सत्संगके समय कई लोग थे। (उनमेंसे कुछके नाम ये हैं।)

उपस्थिति—श्रीचेतरामजी, बद्रीप्रसादजी, रामेश्वरजी, घनश्यामदासजी, शंकरलालजी।

ध्यानकी बात हो रही थी, ध्यान भी हो रहा था। अकस्मात् परम प्रकाश हो गया, भगवान् श्रीविष्णु प्रकट हुए। आकाशमें खड़े हुए थे, करीब ५-६ मिनटोंतक दर्शन होते रहे। मुझसे कुछ भी बोला न गया। उनके मुखारविन्द और नेत्रोंसे कृपा झलक रही थी। जैसे पिता अपने पुत्रको और मित्र अपने मित्रको स्नेह और प्रेमकी दृष्टिसे देखता है। ऐसा भान प्रत्यक्ष प्रतीत होता था। यह भी अनुभव हो रहा था कि भगवान कुछ कहना चाहते हैं और फिर भी जब कभी उनकी या मेरी इच्छा हो तो पधारकर दर्शन देनेके लिये प्रस्तुत हैं। कुछ समय बाद अकस्मात् अन्तर्धान हो गये। दिनभर उपरामता रही।

इधर गोरखपुरमें तो ऐसी घटनाएँ हो रही थीं और उधर जसीडीहमें श्रीगोयन्दकाजीके पास क्या हो रहा था? वह श्रीगोयन्दकाजीको चरित्रनायकने पत्र दिया, जिसमें कुछ सूत्ररूपमें संकेत कर रहे हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये उस पत्रकी आंशिक नकल हम नीचे दे रहे हैं।

श्रीहरि:

गोरखपुर आश्विन सुदी ७

सोमवार सं० १९८४ वि०

हार्दिक प्रणाम!

जसीडीहमें होनेवाली अनोखी और अलौकिक प्रेम लीलाओंका कुछ-कुछ दिग्दर्शन वहाँके पत्रोंसे हुआ, श्रीरामनरसिंहजीकी श्रद्धा और उनका तप एक तरहसे सराहनीय है**। इस समय जिस प्रत्यक्षताके साथ काम कराया जा रहा है, उसमें ऐसा होना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। सर्वसमर्थ सब कुछ कर सकते हैं।

(इसके बाद चरित्रनायकने अपनेको गोरखपुरमें श्रीविष्णु भगवान्‌के दर्शन हुए थे उसका श्रीगोयन्दकाजीको पत्रमें संकेत किया।)

यहाँ प्रतिदिन प्रात:काल ध्यानकी बातें होती हैं।

** बात यह हुई कि जसीडीहकी अलौकिक लीलाओंकी बातें सुन-सुनकर लोग वहाँ आने लगे। उनमेंसे एक सज्जन यह भी थे। इन्होंने जसीडीह आकर श्रीगोयन्दकाजीसे ऐसा साधन पूछा कि जिससे तीन दिनोंमें इन्हें भगवान् मिल जायँ। इसके उत्तर देनेमें कुछ विलम्ब करनेके बाद श्रीगोयन्दकाजीने कहा कि "यदि मनुष्य आलस्य और विक्षेपसे रहित होकर तैलधारावत निरन्तर एक तार भगवान्‌का ध्यान करे तो चौबीस घंटेके साधनमें ही उसे भगवान् मिल सकते हैं।"

कल प्रात:काल ध्यानके समय करीब ६.७ मिनट आँखें खुले हुए जसीडीहकी तरहसे ही श्रीभगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन होते रहे। कोई बुलाने या दर्शन करनेकी भावना भी जागृत नहीं हुई थी, परन्तु बड़ा ही विलक्षण आनन्द रहा। बुलानेकी इच्छा तो नहीं होती, परन्तु अब ऐसा विश्वास होता है कि गुरुचरण कृपासे जब इच्छा हो तभी भगवान्के दर्शन और उनसे वार्तालाप हो सकते हैं। कल दिनमें एक बार आपके चरणोंमें आनेकी स्फुरणा हुई थी, कारण कुछ पता नहीं। मुझे कभी कोई स्वप्न नहीं आते। सालभरमें शायद १-२ स्वप्न आते हों। परन्तु परसों रातको स्वप्नमें आपके दर्शन हुए मानों मैं तथा अन्य बहुत-से लोग आपके साथ कहींपर गये हुए हैं। पूरी बातें स्मरण नहीं हैं।

इन पत्रोंका उत्तर श्रीगोयन्दकाजीने जसीडीहसे चरित्रनायकको दिया जिसकी आंशिक नकल उन्हींकी भाषामें नीचे दी जाती है।

श्रीरामजी

भाई हनुमान प्रसाद सेती जयदेवका फेरूं प्रेमसहित राम-राम वंचना।

जसीडीहकी भाँति ५ या ७ मिनटतक श्रीगोरखपुर माँय श्रीभगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन हुए या भोत आनन्दकी बात छे, फिर भी चावे जने होनेकी उमेद लिखी तो भगवान्की दया छै—

गोरखपुरके प्रेमीजनोंकी ओरसे श्रीभगवान्के दर्शन होनेके लिये श्रीगोयन्दकाजीसे साधन पूछा गया था, उसका उत्तर इसी पत्रमें उन्होंने दिया है, उसकी नकल यहाँ की जाती है। पाठकवृन्द श्रीगोयन्दकाजीकी मारवाड़ी भाषाका भी कुछ रसास्वादन करें।

(१) हृदयमें मन बुद्धि इन्द्रियाँ हैं, वे तुम्हारी साथ जावेंगी। उनको सुधार करनो चाये याही तुम्हारी दुकान छे। इसके सुधारयों तुम्हारों सुधार छे इसको उपाय भी बतायो गये छे। ३ घंटा ध्यानसहित एक तार जप १ घंटा सत्संग १ घंटा सत्शास्त्रोंका अभ्यास प्राप्त होनेपर लोक-सेवा।

(२) बाहर सब जगत् या व्यौपार भगवान्की दूकान समझकर अपनेको नोकर समझकर बहुत कमती खरच माँय आपणो काम चलाणे मात्र प्रसाद ग्रहण कर कर काम करना चाहिये। व्यौपारमें झूठ कपटको एक दम त्याग करना चाये। फेरु सब आपेई ठीक होने सके छे। लोभ त्यागसे सब काम होने सके छे। जितने लोभ नहीं छूटे ऊपरवाली बात छोड़नी चाये। सभी कुछ भगवानको समजनो चाये।

यदि आलस्यका सर्वथा त्याग न हो सके तो केवल सांसारिक फुरनाओंको छोड़कर ही तीन दिनोंतक लगातार भगवान्का ध्यान करें। श्रीरामनरसिंहजी वहीं उसी कमरेमें श्रीगोयन्दकाजीके पलंगके पास बैठकर ध्यान करने लगे और नेत्र बंद किये हुए श्रीविष्णु भगवान्का गाढ़ ध्यान भी हुआ। ××× और वे लगातार एक आसनपर ही बैठे रहे। श्रीगोयन्दकाजीके बहुत कुछ समझानेपर ३३ घंटेके बाद मूत्र त्याग (लघुशंका) करने गये और फिर आकर उसी जगह बैठ गये। ४३ घंटेके बाद सोये। ४ घंटे नींद लेकर फिर उसी जगह बैठकर ध्यान करने लगे। तीसरे दिन दोपहरमें उनके पास सबने मिलकर संकीर्तन किया तब उन्हें नेत्र बंद किये हुए ध्यानमें भगवान् राधाकृष्णकी युगलछविके दर्शन हुए मानों भगवान् वंशी बजा रहे हैं। वंशीकी धुन कीर्तनके धुनमें मिल रही है। आँख खोलनेपर प्राय: दो मिनटतक इसी प्रकारकी स्थिति रही। वे ध्यानमें इतने मस्त हो गये कि उन्हें भूख प्यासकी कुछ भी स्मृति नहीं थी, करीब ६० घंटे बाद उन्होंने जल पिया। इसके बाद उनके पिताजी कलकत्तेसे आ गये। तब उनके बहुत आग्रह करनेपर ७४ घंटेके बाद शौच गये फिर बहुत बहुत आग्रह करनेपर ८५ घंटेके बाद उन्होंने दूध पिया। फिर पिताजीके विशेष दबावसे ९५ घंटेके बाद भोजन किया। इसके बाद भी वे तीन-चार दिनोंतक ध्यानावस्थामें ही वहीं बैठे रहे। यह है एक ध्यानजनित आनन्दका एक छोटा-सा नमूना, इसमें कोई हठयोगकी क्रिया प्राणनिरोध या प्राणायामकी आवश्यकता न थी और न हठसे मल-मूत्र, भूख-प्यासके निरोधकी ही चेष्टा थी। यह तो है भगवत्प्रेमजनित ध्यानकी किञ्चित् मस्तीका प्रभाव। इस घटनाका सम्पूर्ण विवरण विस्तारसे कल्याण वर्ष २ अंक ४ पृष्ठ २३६ से २३९ तक है जो परिशिष्टमें पृष्ठ सं० २४४ पर दिया गया है।

पाठकवृन्द! जसीडीहकी रसीली गाथाओंको आप पढ़ चुके हैं। अब हमारे चरित्रनायकको गोरखपुरमें चौथी बार भगवान्‌के दर्शन हुए, उसका हाल सुनिये। उस घटनाको चरित्रनायकने अपनी डायरीमें तत्काल नोट कर लिया था। जिसकी अक्षरशः नकल यहाँ की जाती है। जरा श्रद्धा-विश्वासरूपी कवच पहनकर इन घटनाओंको पूर्ण सत्य समझकर पढ़ें।

चौथी घटना

श्रीहरिः

सं० १९८४ वि० मिति आश्विन शुक्ला १२ शनिवार तारीख ८। १०। १९२७ ई०

स्थान—कान्ती बाबूका बगीचा, दरवाजेके सामनेवाली दक्षिणाभिमुखी कोठरी जिसमें आफिस था।

दिनके करीब १२ बजे उपरामताने जोर पकड़ा, मैं बाहर बैठा हुआ था। घरमें चूना पोतनेवाले मजदूरोंका काम देखनेकी चेष्टा कर रहा था कि अचानक किसीके द्वारा खींचा-सा जाकर कोठरीके अन्दर चला गया और अन्दरसे किवाड़ बंद कर लिया, उत्तरकी खिड़कीके पास कुर्सीपर बैठ गया और मनकी भावनाके अनुसार किसीके बैठनेके लिये सामने एक कुर्सी और रख ली।

अकस्मात् प्रकाश हो गया, महान् शान्ति-सी प्रतीत होने लगी। मेरी उस समयकी अवस्थाका मैं वर्णन नहीं कर सकता हूँ। तत्काल ही भगवान्‌का आविर्भाव हो गया। मेरे सामनेकी कुर्सीपर एक बार उनका चरण-स्पर्श हुआ फिर आकाशमें ही उनकी स्थिति रही। मैं मन्त्रमुग्ध-सा हो रहा था। मेरे आनन्दका पार नहीं था। प्रभु मेरे सामने स्थित हुए करुणा और प्रेमके साथ महान् आनन्दकी वर्षा कर रहे थे। मैं कुछ बोल नहीं सका, न स्तुति कर सका। चरण-स्पर्श मैंने उसी समय कर लिये। मन-ही-मन भगवान्‌की इस अयाचित कृपाको देखकर परम आह्लादित हो रहा था। बहुत देरतक यह स्थिति रही। फिर भगवान् बोले मानो आनन्दका समुद्र उमड़ा—तेरी कुछ इच्छा बाकी है? बड़ी हिम्मतसे एक दो वाक्य मेरे मुँहसे निकले कुछ नहीं, केवल आप........

इस समय भगवान्‌की मधुर मुसकान कुछ अनोखी ही थी। भगवान्‌ने हँसकर मानो मेरा समर्थन किया फिर धीरे-धीरे बीच-बीचमें रुककर इतनी बातें कहीं—

१-जयदेवका शरीर पहले-जैसा नीरोग हो जाय, ऐसी आशा न रखकर लोगोंको उससे लाभ उठानेके लिये कहो।

२-तेरा शरीर भी अधिक समयतक रहना कठिन है।

३-दर्शनोंकी बातें गुप्त रखनेमें ही अधिक लाभ है।

४-धर्मके नामपर परस्पर लड़नेवाले मेरा प्रभाव नहीं जानते।

५-पूरी गोरक्षामें अभी विलम्ब है।

६-मेरे अवतारका समय अभी बहुत दूर है।

७-जगत्‌का कुछ भला करना हो तो भेद छोड़कर नामका प्रचार कर। लोगोंसे कह दे कि इस कालमें नामसे ही सब कुछ हो जायगा। मेरे अवतारमें भी नाम ही हेतु होगा।

८-जो लोग नामका सहारा लेकर पापको आश्रय देते हैं, उनको सावधान कर कि उनकी शुद्धि यमराज भी नहीं कर सकता।

९-पापोंका नाश तथा भोगोंकी प्राप्तिके लिये भी नामका प्रयोग करना मूर्खता है। पापका नाश तो फल भोग और प्रायश्चित्तसे भी हो जाता है। क्षणिक भोगोंकी तो परवा ही नहीं करनी चाहिये। भोगोंके जाने-आनेमें तो हानि ही क्या है?

१०-नाम तो प्रियसे भी प्रियतम वस्तु है। इसका प्रयोग तो इसके लिये करना चाहिये।

११-दम्भ बहुत बढ़ गया है। दम्भ मेरी प्राप्तिमें सबसे बड़ा बाधक है। दम्भियोंसे सावधान रह और उनको भी सावधान कर दे कि उनकी बुरी गति होगी। काम-क्रोधसे भी दम्भ बुरा है।

१२-किसीको भी मेरे दर्शनोंका पक्का आश्वासन मत दे।

१३-जसीडीहके सिवाय इन बातोंका मेरे नामसे प्रचार न कर।

१४-अब इस तरह नहीं आऊँगा। तेरे बिना बुलाये दो बार आ गया, मुझे ये बातें कहनी थीं, इसलिये। तू जब चाहे स्मरण कर बुला सकता है, परन्तु भूल मत करना।

इसके बाद भगवान् चुप हो गये। मैं बड़े हर्षके साथ उनकी ओर ताकता रहा। उस समय जगत्में मानो मुझे उनके सिवाय और कुछ नहीं भासता था। किसीकी स्फुरणातक भी नहीं थी। अकस्मात् भगवान् अन्तर्धान हो गये। मेरी स्थिर दृष्टि विचलित हो गयी। मैं देखता हूँ कि पूर्व ओरकी खिड़कीसे रामेश्वरजी देख रहे हैं। मैंने सामनेकी कुर्सी अलग हटाकर किवाड़ खोल दिया। उस समय घड़ीमें करीब २। बजे थे। इसके बाद करीब ४० घंटेतक उपरामता बनी रही।

अस्तु—पाठकवृन्द पूर्वमें पढ़ चुके हैं कि चरित्रनायकने बम्बईसे अपनी माताजी एवं धर्मपत्नीको अपने देश रतनगढ़ भेज दिया था। बम्बईका चरित्रनायकका जीवन कुछ अधिक खर्चीला था। किन्तु जबसे बम्बई छोड़नेका चरित्रनायकने विचार किया था तभीसे उनके हृदयमें त्यागकी उमंगें उठ रही थीं। यद्यपि उन उमंगोंके अनुरूप क्षेत्र न मिलनेसे वे त्यागकी भावनाएँ विशेषरूपसे कार्यरूपमें परिणत न हो सकीं, फिर भी साधारणतया इन दिनोंका रहन-सहन, खान-पान, चलना-फिरना आदि सभी कार्य अपेक्षाकृत त्यागमय ही होते थे, जिसका संक्षिप्त विवरण आपकी जानकारीके लिये यहाँ लिख रहे हैं।

वैसे तो गोरखपुर शहर ही जलवायु, मकान, रास्ते आदि सभी दृष्टियोंसे गया गुजरा है, इसलिये चरित्रनायकके मनोनुकूल यह स्थान कदापि नहीं था, किन्तु यहाँपर सबसे प्रधान वस्तु यदि कोई थी तो वह थी 'गीताप्रेस'। जिसकी वजहसे चरित्रनायकको अपनी अनिच्छा रहनेपर भी अपने गुरुतुल्य श्रीगोयन्दकाजीकी आज्ञा—प्रेरणासे गोरखपुरमें रहना पड़ा। गीताप्रेसका परिचय हम अन्यत्र देंगे। यहाँ तो केवल इतना ही कहना है कि गीताप्रेस शहरमें एक ऐसे स्थानपर बना हुआ है, जहाँ स्वास्थ्यादिकी दृष्टियोंसे कोई भी सज्जन वहाँ रहना नहीं चाहते थे। अतः चरित्रनायकने भी अपने रहनेके लिये शहरसे करीब २-२॥ मील दूर असुरनके पोखरे एवं उस्का लाइनके समीपमें कान्तीबाबूके बगीचेको चुना। उस समय वह बगीचा किरायेसे ले लिया था। प्रेससे बगीचे जानेका रास्ता कच्चा होनेसे खासकर बरसातमें तो बड़ा ही भयंकर हो जाता था। क्योंकि न तो वहाँपर कोई सवारी जा सकती थी और न रोशनीका ही प्रबन्ध था। बरसातके दिनोंमें चिकनी मिट्टीके कीचड़का कहना ही क्या। उसपर भी वर्षा बरसते हुए बिना छातेके अन्धेरी रात्रियोंमें चरित्रनायकको अपनी मौजसे पैदल बगीचे जानेमें जो आनन्द आता था, उसे कौन व्यक्त कर सकता है। इतने दिन तो चरित्रनायक अकेले ही उस बगीचेकी सैर करते और अपने प्रियतम प्राणाधार प्रभुके दर्शनोंकी मौजमें मस्त रहते थे, परन्तु अब तो उन्हें अपने परिवारके सहित उसी बगीचेमें रहना है इसलिये और भी अपने त्यागमय जीवनको कुछ विकसित करनेका अवसर देना है।

आश्विन शुक्ला १३। ८४ की रात्रिके समय चरित्रनायककी माताजी एवं धर्मपत्नी इन पंक्तियोंके क्षुद्र लेखकके साथ गोरखपुर स्टेशनपर पहुँचीं। चरित्रनायकने श्रद्धापूर्वक अपनी माताजीको प्रणाम किया, उन लोगोंने भी अपने पुत्र और पतिको कुछ और ही दृष्टिसे देखा क्योंकि जसीडीहवाली घटना सुननेसे वे लोग भी इन्हें कुछ आदरकी दृष्टिसे देखने लगे।

स्टेशनसे बगीचे जानेका रास्ता वैसा ही था, जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं। अस्तु, उसपर भी कमजोर घोड़ोंकी रद्दी गाड़ीमें सामान लादकर ले जाना था। परन्तु भगवद्दर्शनके प्रेमकी मस्तीमें मस्त हुए चरित्रनायकको ये सब कठिनाइयाँ कुछ भी प्रतीत नहीं होती थीं। गाड़ी चली और रास्तेमें कई जगह रुकती हुई बगीचे पहुँची। उस दिन चरित्रनायकको परिवारके सहित भोजन करानेके लिये बड़ी उमंगसे पं० बद्रीप्रसादजी आचार्यने अपने हाथोंसे बड़े प्रेमसे रसोई बनायी थी। उसी रसोईका सब लोगोंने बड़े प्रेमसे भोजन किया फिर चरित्रनायकने अपनी इच्छासे एकान्तमें एक कोठरीमें ले जाकर जसीडीहकी घटनाको बड़े ही प्रेमभरे शब्दोंमें संक्षेपसे वर्णन किया। जिसे सुनकर वह मन्त्र मुग्ध-सा होकर अपने मनमें विचारने लगा कि इन शब्दोंका क्या मूल्य हो सकता है? बहुत कुछ विचारनेके बाद उसने निर्णय किया कि इनका मूल्य तो यही हो सकता है कि अपनेको इनके श्रीचरणोंपर न्यौछावर कर देना और

चरित्रनायकने भी अन्ततक उन्हें अपनाये रक्खा।

कार्तिक कृष्णा ६ को प्रिय जयदयालजी डालमियाँ अपनी बहिन गोदावरी बाईके साथ गोरखपुर आये। ये चरित्रनायकके अन्तरंग प्रेमियोंमें भी प्रधान आत्मीय प्रेमी थे। दूसरे ही दिन कार्तिक कृ० ७। ८४ को अपने कई प्रेमी मित्रोंके सहित चरित्रनायक श्रीगोयन्दकाजीसे भेंट करनेके लिये गोरखपुरसे चलकर आविमुक्त क्षेत्र काशीपुरी होते हुए जसीडीहके लिये रवाना हो गये।

चरित्रनायककी इन दिनोंकी मस्तीका क्या कहना था? उनके निजमें मस्त रहना तो स्वाभाविक था ही, क्योंकि परम प्रिय प्राणाधार प्रभुके बार-बार दर्शन, चरण स्पर्श, वार्तालाप आदिसे उनकी मस्तीकी तो कोई कल्पना ही कैसे कर सकता है? किन्तु उन दिनों उनके समीप रहनेवाले प्रेमीजनोंको यह प्रत्यक्ष अनुभव होता था कि उनके प्रत्येक रोम-रोमसे प्रेमके परमाणु प्रसारित होकर पासमें रहनेवालोंके पापपुंजोंको भस्म करके उन्हें अनुपम भगवत्प्रेम प्रदान कर रहे हैं। उनके नेत्रोंके कोयोंमें ऐसी विलक्षणता—भगवद्दर्शन होनेके बादसे—आ गयी है कि जिसका वर्णन करके समझाना कठिन है।

चरित्रनायक अपने परमपूज्य गुरुतुल्य श्रीगोयन्दकाजीके दर्शनार्थ ट्रेनमें बैठे हुए जा रहे हैं और अपने परम प्रिय प्रभुके ध्यानमें निमग्न हुए डिब्बेकी खिड़कीसे बाहरकी तरफ देख रहे थे।

जसीडीह अब अधिक दूर नहीं है, सायंकालका समय है। ट्रेनकी पटरीके पासके एक बगीचेमें एक माली बड़े ही सुन्दर गुलाबके पुष्पोंको तोड़ रहा था जिसे देखकर चरित्रनायकके हृदयमें एक नवीन भाव उत्पन्न हुआ जिसे तत्काल उसी समय कागजपर कविता रूपमें नोट कर लिया और उसीका चित्र बनवाकर कल्याण वर्ष २ अंक ५ पृष्ठ २६१ में छपाकर प्रकाशित करा दिया। उस कविताको अविकल रूपसे यहाँ दिया जाता है—

विश्व-वाटिकाकी प्रति क्यारीमें क्यों नित फिरता माली !
किसके लिये सुमन चुन-चुनकर सजा रहा सुन्दर डाली॥
क्या तू नहीं देखता इन सुमनोंमें उसका प्यारा रूप।
जिसके लिये विविध विधिसे है हार गूँथता तू अपरूप॥
बीजाङ्कुर शाखा-उपशाखा, क्यारी-कुञ्ज, लता-पत्ता।
कण-कणमें है भरी हुई उस मोहनकी मधुरी सत्ता॥
कमलोंका कोमल पराग विकसित गुलाबकी यह लाली।
सनी हुई है उससे सारे विश्व-बागकी हरियाली॥
मधुर हास्य उसका ही पाकर खिलतीं नित नव-नव कलियाँ।
उसकी मञ्जु मत्तता पाकर भ्रमर कर रहे रँगरलियाँ॥
पाकर सुस्वर कण्ठ उसीका विहग कूजते चारों ओर।
देख उसीको मेघरूपमें हर्षित होते चातक-मोर॥
हार गूँथकर कहाँ जायगा उसे ढूँढ़ने तू माली ?
देख, इन्हीं सुमनोंके अंदर उसकी मूरति मतवाली॥
रूप-रङ्ग, सौरभ-परागमें भरा उसीका प्यारा रूप।
जिसके लिये इन्हें चुन-चुनकर हार गूँथता तू अपरूप॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२५९)

कार्तिक कृष्णा ८ को सायंकालके समय चरित्रनायक श्रीगोयन्दकाजीके समीप उपस्थित होकर उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके थोड़ी देर बाद उनसे एकान्तमें वार्तालाप हुआ जिसमें प्रधान बात ये थी कि आश्विन शुक्ला १२ को गोरखपुरमें श्रीभगवान्‌ने प्रकट हो श्रीभगवन्नाम प्रचारके लिये जो आदेश दिया था वह प्रचार कैसे किया जाय? चरित्रनायकने अपना यह मत प्रकट किया कि एक "दिव्य सन्देश" शीर्षक लेख तैयार करके पुस्तक रूपमें समाचार पत्रोंमें लेख रूपमें प्रकाशित कराया जाय। इसके सिवाय और भी बहुत सी बातें होकर कार्तिक कृष्णा १०। ८४ को जसीडीहसे चलनेकी तैयारी हो गई। श्रीगोयन्दकाजी स्टेशनतक पहुँचानेके लिये आये। रास्तेमें श्रीरामनरसिंहजी जो कलकत्तेकी गाड़ीसे आ रहे थे वे मिल गये। वे भी स्टेशन तक सबके साथ लौट आये। समयपर ट्रेन आई। चरित्रनायक अपने प्रेमी जनोंके साथ गाड़ीमें बैठकर श्रीगोयन्दकाजीको मन-ही-मन अभिवादन करते हुए उनकी ओर निहारते रहे और गाड़ी स्टेशनके प्लेटफ़ार्मसे चल पड़ी। दूसरे दिन काशीपुरी होते हुये कार्तिक कृष्णा १२ को सायंकालके समय सकुशल गोरखपुर पहुँच गये।

गोरखपुर आनेके बाद—दूसरे ही दिन पुनः श्रीभगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन चरित्रनायकको हुये। उस घटनाका चरित्रनायकने श्रीगोयन्दकाजीको पत्र देकर वर्णन किया—उस पत्रकी अक्षरशः नकल यहाँ दी जाती है।

पाँचवीं घटना

॥ श्रीहरिः ॥

गोरखपुर कार्तिक कृष्णा १४। १९८४ वि०

श्रीपूज्यचरण

हृदयसे प्रणाम!

गत शुक्रवार (कार्तिक कृष्णा ११। ८४) को मैं यहाँ पहुँच गया था। आपकी आज्ञानुसार प्रश्नोंका उत्तर जाननेकी भावना मनमें थी। कार्तिक कृष्णा १२। ८४, शनिवारको प्रातःकाल करीब ५॥ बजे स्नान, सन्ध्याके उपरान्त मैं एकान्तमें बैठा था। बैठे-बैठे ही नींद या बेहोशी-सी हो गई। उसमें श्रीभगवान् दीख पड़े। उन्होंने मानों इस भावके शब्द कहे—

(१) जिन सात विषयोंके प्रचारकी बात तुम लोगोंने तय की हैं उनका प्रचार जितने अधिक देशों और अधिक लोगोंमें हो वैसी चेष्टा करो। लोगोंको समझा दो कि इसके माननेसे ही कल्याण हो सकता हैं।

(२) धर्म ग्रन्थोंमें दूसरा धर्म माननेवालोंके लिये किसी धर्म ग्रन्थका नाम न लेकर गीतोक्त भक्तियुक्त निष्काम कर्मका भाव माननेके लिये कहो।

(३) एक बार जिसने मेरा नाम ले लिया उसका भला होनेमें कोई शंका नहीं करनी चाहिये।

(४) मेरी प्रेरणाके अनुसार कितना प्रचार हुआ और हो रहा है उसका पता पीछे लगेगा।

(५) मेरे मिलनेकी इन बातोंको प्रकाश करनेसे हानि है।

इतनी बातें सुननेके बाद मुझे चेत हो गया। ऊपर जो बातें लिखी हैं उनके शब्द तो कुछ दूसरे भी थे पर भाव यही था।

इसके पश्चात् रविवारको प्रातःकाल श्रीरामनरसिंहजी और श्रीघनश्यामदासजी आ गये। इन लोगोंसे मेरे आनेके बाद जसीडीहमें जो बातें हुईं उनकी चर्चा हुई।

रविवारका दिन था अतः शहरमें जाना हुआ और वहाँपर उन्हीं सात बातोंको उपस्थित स्त्री पुरुषोंको समझाकर कुछ कहा गया। वहींपर श्रीराम नरसिंहजीने भी थोड़े शब्दोंमें बहुत भावकी बातें कहीं। शहरमें ही प्रायः शाम हो गई।

अनुगत—**हनुमान**

* रामनरसिंहजी कलकत्तेसे जसीडीह भगवान्‌के दर्शन करनेकी कामनासे आये थे। श्रीगोयन्दकाजीने घनश्यामदासजीके साथ कुछ उनके लिये सिफारिश कराके उन्हें जसीडीहसे तत्काल चरित्रनायकके पास गोरखपुर भेज दिया था।

[छठी घटना]

आज सोमवार प्रात:काल करीब ६॥ बजे सब लोग ध्यानके लिये (बीचवाले बड़े कमरेमें) बैठे थे। आपकी आज्ञानुसार एक बार भगवान्‌को स्मरण करनेका विचार एकान्तमें था परन्तु न मालूम क्यों पहलेसे ही ऐसी प्रेरणा होने लगी थी कि इसी समय स्मरण किया जाय। तदनुसार प्रश्नोंका उत्तर जानने और आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये भगवान्‌का स्मरण और आह्वान (गीता ४—७, ८) किया गया। थोड़ी ही देरमें भगवान् वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गये। लोगोंको ध्यानमें आज विशेष शान्ति मिली। श्रीहरिकृष्णदासजी और चेतरामजीको अच्छा ध्यान हुआ। श्रीदुजारीजी जो ध्यानके लिये आपसे उस दिन प्रार्थना करते थे आज ध्यानमें उनको बड़ा आनन्द रहा। उन्होंने कहा कि मुझे आज ऐसा ध्यान होनेकी आशा नहीं थी।* श्रीघनश्यामदासजीको आँख खोले हुए और मूँदे हुए प्रकाश अत्यधिक मालूम हुआ। उनकी आँखें डबडबा आईं और उन्हें रोमांच भी हुआ। श्रीरामनरसिंहजीको जसीडीहकी भाँति ही आँख मूँदे और खुले हुए प्रतीत हुआ। उनसे कहा गया कि प्रत्यक्षके से भावको छोड़कर प्रत्यक्ष मानों और चरणस्पर्श करनेकी चेष्टा करो। परन्तु उन्होंने कहा मुझे तो मनकी दृढ़ कल्पना ही मालूम होती है। आँखें अधिक देर खुली नहीं रहती आपसे आप मुँद जाती हैं। पीछे उनसे बात करनेपर मालूम हुआ कि उस समय उनके समझनेमें कुछ भूल रह गयी थी। लोगोंके उठ जानेके बाद श्रीरामनरसिंहजी और श्रीदुजारीजी बहुत देरतक ध्यानमें बैठे रहे।**

भगवान्‌से जिन चार बातोंके पूछनेकी मनमें भावना हुई थी, वे इस प्रकार हैं—

(१) आपका स्वरूप ही श्रीजयदयालजीका स्वरूप है इसमें क्या भाव है?

(२) बीस वर्ष पूर्व प्रेरणा करनेपर भी संतोषजनक कार्य क्यों नही हुआ?

(३) नामका प्रचार किस तरह किया जाय? क्या संन्यास लेनेसे अधिक प्रचार हो सकता है?

(४) किस नामका प्रचार किया जाय?

इन प्रश्नोंका उत्तर निम्नलिखित मिला—

(१) इस सम्बन्धमें जयदयालसे ही पूछो, वही बता सकता है।

(२) कल कहा ही था कार्यका पता पीछे लगेगा। डाले हुए बीजोंका विस्तार फल लगनेपर मालूम होगा। असन्तोष मत करो, कार्य करो।

(३) कलके कहे अनुसार जितने अधिक लोगोंमें प्रचार कर सको उतना करो। स्थान-स्थानपर कीर्तन होना बहुत अच्छा है। संन्यासकी अभी आवश्यकता नहीं आगे चलकर विशेष लाभ हो सकता है।

(४) कोई खास नाम नहीं है मेरे भावसे कोई-सा भी नाम मनुष्य ले सकता है।

इसके बाद घनश्यामदासजीके सम्बन्धमें तो मेरे मनमें कोई भावना नहीं हुई। रामनरसिंहजीके सम्बन्धमें भी मेरे मनमें कोई प्रार्थना करनेकी भावना तो नहीं हुई। केवल आपके प्रेरणानुसार साधारण भावना मनमें हुई, जिसका उत्तर तुरन्त यह मिला कि इसके दृढ़ निश्चय होनेसे हो सकता है।*

इसके बाद इतना और कहा कि कलके संकेतसे प्रश्नका उत्तर दे दिया गया था। आज फिर स्मरण किया इसलिये आना हुआ परन्तु मुझे बुलानेके भावसे ऐसे स्मरण

---

* मुझको गत रात्रिमें जसीडीह एवं गोरखपुरकी घटनाओंके कागज एवं डायरी मिल गये थे। मैंने अपने मित्र पं० बद्रीप्रसादजी आचार्यकी सहायतासे सारी रात जागरण करके अपनी डायरीमें उनकी अक्षरश: नकल कर ली थी। इसी जागरणके कारणसे आलस्य आनेकी सम्भावना थी।

** चरित्रनायकने अपने पास बैठनेवालोंसे उनकी स्थिति पूछी। मुझसे पूछा तो मैंने कहा—मुझे भगवान्‌के निराकार प्रकाशमय सच्चिदानंदघनरूपके प्रत्यक्ष सदृश दर्शन हो रहे हैं और मेरा विश्वास है कि साकार रूपसे भगवान् यहाँ उपस्थित हैं पर मेरे निराकारका ही अभ्यास होनेके कारण मुझे साकार भगवान्‌के दर्शन नहीं होते। तब चरित्रनायकने कहा कि इसी समय भगवान्‌की मानसिक पूजाको सबके सामने बोल बोलकर कराओ। मैंने वैसा ही कराया।

नहीं करना चाहिये। यह नीचा भाव है। उस दिनका संकेत तू समझा नहीं। उचित समझनेपर हम स्वयं आ सकते हैं, इन सब बातोंका प्रकाश करनेमें हानि नहीं है। इतना कहते ही भगवान् अन्तर्धान हो गये। कोई आधे घण्टेतक दर्शन होते रहे। यही आजकी घटना है।

पहले प्रश्नकी प्रेरणा और उसका उत्तर दोनों ही अद्भुत हैं। इस सम्बन्धमें मेरे विश्वासके अनुसार जो बात मेरी समझमें आई उसका खुलासा कभी रूबरू मिलनेपर हो सकता है। इस समय आपसे कुछ पूछनेका मेरा आग्रह नहीं है। एक बार तो इस घटनाको लेकर स्वयं आपकी सेवामें उपस्थित होनेका विचार हुआ था परन्तु पीछेसे यही ठीक समझा कि रजिस्ट्री चिट्ठीके द्वारा ही यह विषय लिखकर भेज दिया जाय। भगवान्‌की प्रेरणा और आपकी इच्छाके अनुसार इस विषयको आप जितना गुप्त रखना अथवा प्रकाशित करना ठीक समझें वैसा कर सकते हैं। मेरी समझसे तो अभी इसका प्रकाश न होना ही भगवान्‌की प्रेरणा है।

सात बातोंके सम्बन्धमें मेरी ऐसी स्फुरणा हुई है कि इनके सम्बन्धमें तीन-चार पृष्ठका एक लेख लिखा जाय जिसमें इन सात बातोंका खुलासा हो और उस लेखका बँगला, मराठी, गुरुमुखी, गुजराती, तमिल, उर्दू और अंग्रेजी आदि भाषाओंमें अनुवाद करवाके लाखोंकी संख्यामें ट्रेक्ट (पैम्पलेट) छपाये जायँ और वे बहुत कम मूल्य या बिना मूल्य भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें और इंगलैण्ड, अमेरिका आदि देशोंमें भी प्रचारित किया जाय।

भारतके और विलायतके प्रायः बहुत-सी भाषाओंके पत्रोंमें भी प्रकाशित करवानेकी चेष्टा की जाय तो बहुत लोगोंके पास इस सन्देशके पहुँचनेमें सुगमता हो सकती है।

सम्भवतः इस काममें आरम्भमें दो हजार रुपये अन्दाजा खर्च हो सकते हैं जो मेरी समझमें खर्च करने उचित हैं। इस सम्बन्धमें आपकी जो आज्ञा हो सो लिखनी चाहिये। आपकी आज्ञानुसार कार्य आरम्भ करनेका विचार है। और कोई बात इस सम्बन्धमें जँचे सो लिखनी चाहिये। स्वास्थ्यके सम्बन्धमें और यहाँ आनेके सम्बन्धमें जँचे सो लिखना चाहिये।

अनुगत—**हनुमान**

×××

गोरखपुर

उपस्थिति—

(१) श्रीहनुमानप्रसादजी (२) श्रीघनश्यामदासजी, (३) श्रीराम नरसिंहजी (४) श्रीरामेश्वरजी (५) श्रीबद्रीप्रसादजी (६) श्रीहरिकृष्णदासजी (७) श्रीचेतरामजी (८) श्रीअर्जुनदासजी (९) पं० श्री बलदेवदासजी (१०) श्रीशंकरलालजी (११) पं० श्रीरामनाथजी (१२) गंभीर चन्दजी (१३) बैजनाथजी (१४) पृथ्वीराजजी (१५) छोटूलालजी।

पासवाले कमरेमें—

(१) श्रीहनुमानप्रसादजीकी माँजी (२) श्रीहनुमानप्रसादजीकी धर्मपत्नी (३) महादेवी बाई (घनश्यामदासजीकी बहिन) और (४) सुखदेव (नौकर)।

चरित्रनायकने भगवद्दर्शन सम्बन्धी इन छः घटनाओंको तो नोट कर लिया था। इसके बाद उन्होंने स्वयं नोट करना तो प्रायः बंद कर दिया था किन्तु इन पंक्तियोंके क्षुद्र लेखककी अत्यन्त अभिलाषा देखकर इच्छा न रहनेपर भी उसकी प्रसन्नताके लिये वे अपने गुह्यातिगुह्य अनुभवोंकी कुछ बातें कह दिया करते थे। अतः आपकी सेवामें चरित्रनायकके जीवनकी कुछ गाथाओंका यत्किञ्चित् वर्णन किया जा रहा है।

(साधारण जीवन रखनेकी आज्ञा)

इन्हीं दिनों चरित्रनायकको श्रीभगवान्‌ने यह प्रेरणा कर दी थी कि अपने जीवनको वाह्यरूपमें बिलकुल साधारण रखना चाहिये। इसीलिये चरित्रनायकको विरले श्रद्धालु प्रेमीजनोंके सिवाय कोई यत्किञ्चित् भी पहचान नहीं सके।

---

* श्रीरामनरसिंहजी श्रीभगवान्‌के दर्शनोंके अत्यन्त ही निकट पहुँच गये थे पर उनकी श्रीभगवान् एवं श्रीगुरुदेवमें पूर्ण श्रद्धा-विश्वास न होनेसे वे गंगाके तटपर पहुँचकर भी प्यासे रह गये।

यह बात होते हुए भी चरित्रनायककी मस्ती ऐसी थी कि वह बाहर आये बिना रह नहीं सकती थी। गोरखपुरके बगीचेमें उन दिनों रात्रिमें नित्यप्रति चरित्रनायक बड़े उल्लासके साथ "जय हरि गोविन्द राधे गोविन्द" की ध्वनिका संकीर्तन करवाते थे। यद्यपि उनके संकीर्तनमें उस समय अधिक लोग इकट्ठे नहीं होते थे किन्तु जितने थे वे श्रद्धालु थे इसलिये संकीर्तनमें चरित्रनायक एवं उनके साथ संकीर्तन करनेवालोंकी मस्तीका वर्णन नहीं हो सकता।

संकीर्तन तो नित्य प्रति ही मस्तीसे होता था किन्तु आज कार्तिक कृष्ण १५। ८४ दीपमालिकाके दिन रात्रिमें दीपक एवं लक्ष्मीनारायण आदिके पूजाके बाद संकीर्तन प्रारम्भ हुआ, नित्य तो ११-१२ बजेतक कीर्तन समाप्त हो जाता था किन्तु आज पौने दो बजेतक चरित्रनायक बड़ी मस्तीसे संकीर्तन कराते रहे। अन्तमें सूत्र रूपमें संकीर्तनकी महिमाके सम्बन्धमें उन्होंने कुछ शब्द कहे। उन अमूल्य वचनोंको उन्हींके शब्दोंमें पढ़िये—

"भगवान्‌के नामका कीर्तन करनेसे अनन्त लाभ है। कीर्तनसे कीर्तन समाधि हो जाती है क्योंकि इसमें सब इन्द्रियाँ एकाग्र हो जाती हैं। कीर्तनकी ध्वनि जितनी दूर जाती है वहाँ तककी वायु, स्थान, पृथ्वी, लकड़ी, पत्थरके सहित सुननेवाले सभी जीव जन्तु पवित्र हो जाते हैं। यह तो स्थूल दृष्टिकी बात हुई। सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर पता चलता है कि जैसे हजारों कोस दूरके शब्द इकट्ठे होकर रेडियोद्वारा सुनायी देते हैं वैसे ही भगवन्नाम रूपी शब्द सर्वत्र फैलकर सारे संसारको पवित्र बना देता है। वास्तवमें कीर्तनकी महिमा अनिर्वचनीय है। पापोंको जलानेके लिये संकीर्तनके समय ताली बजानी चाहिये।

संत तुकारामजीने कहा है—'कर तल सों ताली देत, राम मुख बोली जली पाप पुंजोंकी होली।' स्वामी रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि यदि पापोंका नाश करना चाहते हो तो प्रातः-सायं ताली बजाकर नाम लिया करो। जैसे ताली बजानेसे वृक्षके पक्षी उड़ जाते हैं उसी प्रकार जहाँ हरिनाम लिया जाता है, वहाँ पाप ठहर नहीं सकता। बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि भगवन्नामके रहते हुए भी लोग संसार कूपमें पड़े हुए हैं।"

इसी प्रकार चरित्रनायक सत्संगमें कुछ चुने हुए अमूल्य वचन कह दिया करते थे। उन्हीं शब्दोंको यहाँ उद्धृत किया जाता है।

(१) एकान्तमें भगवान् मिलें जिससे तो कई व्यक्तियोंके सामने किसी एक सज्जनको दर्शन दें वह उत्तम है और उससे उत्तम यह है कि भगवान्‌के शब्द सबको सुनाई दे और सर्वोत्तम है कि सबको प्रत्यक्ष दर्शन होकर वार्तालाप हो।

(२) आप लोगोंको दूसरी जगहकी अपेक्षा इस बगीचेमें कुछ विशेषता मालूम देती है या नहीं मुझे तो बहुत अधिक अन्तर मालूम देता है। यदि इस बगीचेको कोई खरीदकर इसमें सुन्दर आश्रम बनाना चाहे तो बन सकता है। यह बगीचा गीताप्रेस द्वारा खरीद लिया गया था, परंतु सन् १९६८ में इसे बेच दिया गया था। जिस कमरेमें भगवान्‌के दर्शन हुए थे एवं भगवान्‌का दिव्य संदेश प्राप्त हुआ था, वह कमरा करीब ९० वर्षोंके बाद भी अभी तक वैसा ही खड़ा है।

(३) जसीडीहकी उस पहाड़ीकी भी महिमा इसी प्रकार है। उस पहाड़ी एवं बगीचेका चित्र ले लेना चाहिये।

(४) महापुरुषोंका अधिक समयतक यहाँ रहना कठिन है, क्योंकि उनको अन्य स्थानोंके लोग भी हमसे अधिक चाहते हैं, इसलिये उन महापुरुषोंसे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहिये। उनके शब्द सुननेको मिलने अत्यन्त दुर्लभ हैं।

॥ श्रीहरिः ॥

इक्कीसवाँ पटल

श्रीभगवन्नाम प्रचारका श्रीगणेश

उन दिनों प्रेममयी गंगाके प्रवाहकी चारों ओरसे मानों बाढ़-सी आ रही थी। दूर-दूरके स्थानोंकी नदियाँ जैसे गंगा यमुनादिमें आकर मिल जाती हैं उसी प्रकार कलकत्ते, बंबई, दिल्ली, बीकानेर, आसाम, बिहार आदि प्रान्तोंसे प्रेमके प्रवाहमें बहनेके लिये प्रेमीजन जसीडीह एवं गोरखपुर दोनों जगह आने लगे। जैसे गंगा-यमुना भिन्न-भिन्न मार्गोंसे होती हुई तीर्थराज प्रयागमें सम्मिलित हो जाती हैं, वैसे ही अब वह समय आ गया था कि श्रीगोयन्दकाजी एवं चरित्रनायकके एक जगह रहकर भारतवर्षमें इस प्रेम प्रवाहको किस प्रकार प्रवाहित किया जाय? इसका विचार करने, गीताप्रेस, कल्याण आदिके सम्बन्धमें अनेकों आवश्यक कार्य करने तथा श्रीगोयन्दकाजीके स्वास्थ्य लाभके लिये भी इन युगल संतोंको गोरखपुरमें रहनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। चरित्रनायक नम्रतापूर्वक श्रीगोयन्दकाजीसे प्रार्थना कर ही रहे थे। अतः कार्तिक शुक्ल ५। सं० १९८४ को श्रीगोयन्दकाजी अपने प्रेमीजनों तथा परिवारके सहित गोरखपुर पधारकर चरित्रनायकके निवासस्थानके अत्यन्त समीप महावीरप्रसादजी पोद्दारके बगीचेमें आकर रहने लगे। यहाँपर आते ही सर्वप्रथम श्रीगोयन्दकाजीने दुग्ध-कल्प प्रारम्भ कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप उनके स्वास्थ्यमें आशातीत परिवर्तन दिखाई देने लगा। उन दिनों महावीरप्रसादजीका प्रेम बहुत ही प्रशंसनीय था।

अब सत्संग-कीर्तन आदिका सब प्रोग्राम श्रीगोयन्दकाजीके निवास स्थानपर होने लगा। एक दिनकी बात है, उस दिन कार्तिक शुक्ल सप्तमी थी। श्रीगोयन्दकाजीने सबसे प्रश्न किया कि 'भगवान क्या हैं?' इसका उत्तर सबने अपनी-अपनी रुचिके अनुसार दिया। चरित्रनायकने केवल इतना ही कहा—'इस बातको भगवान ही जानते हैं।' बस, इसके बाद चरित्रनायकके कुछ दिन उपरामताभरी मस्तीमें व्यतीत हुए।

इधर बाहरसे आनेवाले सत्संगी प्रेमीजनोंका समागम जुटने लगा। बजरंगलालजी चाँदगोठिया भी आ गये थे। अब गोरखपुरमें मानों प्रेमका प्रवाह बड़े जोरोंसे बहने लगा। प्रेम-प्रभावका रहस्यमयी सत्संग तो नित्यप्रति होता था परन्तु अब एक दिन बृहत् संकीर्तन का आयोजन हुआ।

मार्गशीर्ष कृष्ण १, २।८४ को महावीर प्रसादजीके बगीचेके सामने वृक्षोंकी छायावाले विस्तृत मैदानमें दिनके दो बजे संकीर्तन होना निश्चित हुआ। जंगल पहलेसे साफ करा लिया गया था। समयसे पूर्व ही लोग जुटने लगे। एक वृक्षके नीचे श्रीभगवान्‌की छविको सादे सिंहासनपर विराजित किया गया। करताल, मजीरे, ढोलक आदि सारा सामान इकट्ठा हो गया। श्रीगोयन्दकाजी तथा चरित्रनायक भी समयपर पधारे। प्रारम्भमें भगवान्‌की पूजा, आरती, प्रसाद वितरणके पश्चात् भिन्न-भिन्न लोगोंका कीर्तन होने लगा। करताल आदि वाद्योंकी झनकार आकाशमें गूँजने लगी। करीब ३॥-४ बजेसे हमरे चरित्रनायकके संकीर्तन करनेका समय आया। चरित्रनायक इन दिनों भगवत्-प्रेम एवं भगवद्दर्शनजनित विलक्षण मस्तीमें प्रायः मस्त रहते ही थे। और, अब समय आया विस्तृत मैदानमें सैकड़ों प्रेमीजनोंके साथ मिलकर दिल खोलकर संकीर्तन करनेका। फिर क्या चाहिये था? गंगा-यमुना जैसी नदियाँ, खूब जोरकी बाढ़ और प्रयागके जैसा विस्तृत मैदान संगम करनेके लिये। ऐसे जंगम तीर्थराजकी महिमा भी शायद ही इसके उपयुक्त हो। अस्तु। उस दिन चरित्रनायकने खड़े होकर बड़े ही मधुर नृत्यके साथ कीर्तन करना प्रारम्भ किया। थोड़ी देर

* बंबईसे श्रीबजरंगलालजी चांदगोठिया भी आ गये थे।

बाद संकीर्तनमें उनका बाह्य ज्ञान शून्य होने लगा। इधर प्रेमीजन भी चरित्रनायकके साथ खड़े होकर कीर्तन करनेके लिये उत्सुक हो रहे थे। मौका देखकर एक-एक करके सब लोग खड़े हो गये और खूब उत्साहपूर्वक तुमुल ध्वनिके साथ संकीर्तन करने लगे।

ऐसे प्रेमकी मस्तीमें मस्त हुए भक्तवृंदोंका संकीर्तन जिस जगह हो रहा हो उस जगह भगवान्‌को आये बिना कैसे चैन पड़ती क्योंकि उन्होंने ही शास्त्रोंमें डंकेकी चोटपर घोषणा कर दी है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

घोषणा भी कैसी है जरा ध्यानपूर्वक सुनिये। वे वहां आकर प्रेमी भक्तोंके दर्शनमात्र करके ही नहीं चले जाते वहां तो '**तत्र तिष्ठामि**' डटकर विराजमान ही हो जाते हैं। वहाँसे अलग जानेकी उनकी इच्छा ही नहीं होती। हाँ, उन्हें सब लोग देख नहीं सकते तो इससे क्या हुआ, जो प्रेमी भक्त होते हैं उनकी दृष्टिमें वे ओझल थोड़े ही रह सकते हैं।

"एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुत चित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्माद
वन्नृत्यति लोक बाह्यः॥"

(श्रीमद्भा० ११। २। ४०)

अर्थात् जो इस प्रकार विशुद्ध व्रत-नियम ले लेता है, उसके हृदयमें अपने परम प्रियतम प्रभुके नाम कीर्तनसे अनुरागका, प्रेमका अंकुर उग आता है। उसका चित्त द्रवित हो जाता है। अब वह साधारण लोगोंकी स्थितिसे ऊपर उठ जाता है। लोगोंकी मान्यताओं, धारणाओंसे परे हो जाता है। दम्भसे नहीं, स्वभावसे ही मतवाला-सा होकर कभी खिलखिलाकर हँसने लगता है तो कभी फूट-फूटकर रोने लगता है। कभी ऊँचे स्वरसे भगवान्‌को पुकारने लगता है तो कभी मधुर स्वरसे उनके गुणोंका गान करने लगता है। कभी-कभी जब वह अपने प्रियतमको अपने नेत्रोंके सामने अनुभव करता है, तब उन्हें रिझानेके लिये नृत्य भी करने लगता है।

हमारे चरित्रनायक अपने परम प्रेमास्पद प्रभुके दर्शनोंमें मस्त हुए, सांसारिक बाह्य ज्ञानशून्य होकर श्रीमद्भागवतके इस श्लोकके अनुसार वृक्षोंसे टकराते हुए कीर्तन कर रहे थे। उस समय प्रेमीजन उन्हें अपने मण्डलाकार घेरेके अन्दर लेकर उनके साथ मस्तीसे कीर्तन कर रहे थे। उस समय सायं संध्याके समयका किसी विरले ही सज्जनोंको पता लगा था। सूर्य भगवान् भी इस कीर्तन नृत्यको देखते- देखते अपने निर्धारित समयपर अस्ताचलको चल पड़े। अब चन्द्रदेव भी प्रकट होकर अपनी शीतल रश्मियोंकी वर्षाद्वारा संकीर्तनके अलौकिक रसमें अपना सुधा-रस सिंचन करने लगे। केवल चन्द्रदेव ही नहीं स्वयं भगवान् एक अनन्त प्रकाशके रूपमें प्रकट हुए। लोगोंने यह प्रत्यक्ष देखा। चरित्रनायकने घनश्यामदासजी जालानसे कहा देखिये— 'घनश्यामदासजी क्या दीख रहा है? उन्होंने कहा—'हाँ भाईजी! ....इस प्रकार ३-४ घंटे हो गये पर हमारे चरित्रनायकको समयका ज्ञान ही न रहा, तब संकीर्तन बंद भी कैसे हो? अतः सब लोगोंकी सम्मति अब संकीर्तन समाप्त करनेकी हुई क्योंकि रात्रिको उस जंगलमें जीव जन्तुओंका भय था। लोग बहुत दूर-दूरसे आये हुए थे, उन्हें अपने-अपने स्थानोंको रात्रिमें ही वापस जाना था। अतः जैसे तैसे करके चरित्रनायकको कीर्तन करनेसे रोका गया पर उन्हें फिर भी चेत न हुआ। उसी अवस्थामें कई प्रेमीजन उन्हें अपने निवास स्थानपर ले गये, तब बहुत देरके बाद उन्हें चेतनता प्राप्त हुई। गोरखपुरमें ऐसी मस्तीके साथ वृहत् जंगलमें सामुदायिक संकीर्तन करनेका यह पहला ही अवसर था।

मार्गशीर्ष कृष्ण ४। ८४ प्रातःकालके समय महावीरप्रसादजीके बगीचेमें चरित्रनायकसे ध्यानकी बात कहनेके लिये कहा गया। चरित्रनायकने श्रीविष्णु भगवान्‌की मानसिक पूजाका वर्णन करना प्रारम्भ किया। कुछ देर तो अच्छी प्रकारसे वर्णन करते रहे पर ज्यों ही श्रीभगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होने लगे कि चरित्रनायक बाह्य ज्ञान शून्य होकर बड़े जोर-जोरसे 'जय हो! जय हो!!' की ध्वनि करने लगे। सुननेवालोंके भी बड़ा प्रेम

उत्पन्न हुआ। उनमेंसे कई तो रोने भी लगे। मानसिक पूजाका पूरा वर्णन न हो सका, चरित्रनायक मौन हो गये और थोड़ी देर बाद सचेत हुए।

मार्गशीर्ष कृष्ण ६। १९८४ को कई अन्तरंग प्रेमीजनोंके अनुरोध से भी श्रीगोयन्दकाजीने एकान्तमें अपनी जीवनीके नोट चरित्रनायकको लिखाने प्रारम्भ किये। अपने परदादा सालिगरामजीका संक्षिप्त परिचय लिखाकर अपने जन्म संवत् १९४२ जेठ कृष्णा ६ को एवं अपनी बाल्यावस्था तककी घटनाओंको संक्षेपमें लिखाया और इसके लिये नित्य प्रति अलग समय २-३ घंटे निकालनेका निश्चय हो गया। परन्तु बीचमें ही चरित्रनायकके भगवन्नाम प्रचारके उद्देश्यसे कलकत्ते तथा आसामकी तरफ चले जानेसे यह काम रुक गया, फिर कई कारणोंसे वैसा सुयोग न मिल सका। इन लिखी हुई बातोंकी कापी मेरे स्टॉकमें पड़ी है। उसमेंसे कुछ बातें इसी पुस्तकके 'आठवाँ पटल श्रीजयदयालजीके परिचय में' आ गई हैं, इसलिये यहाँ उनका उल्लेख करना अप्रासंगिक है।

अबतक तो जसीडीह और गोरखपुरमें एक स्थानपर रहकर ही भगवत्प्रेममयी मंदाकिनीकी धारा बह रही थी पर अब श्रीभगवान्के आदेश* के अनुसार भारतवर्षमें भ्रमण करके गाँव-गाँवमें जाकर भगवान्का आदेश सुनाना अर्थात् श्रीभगवन्नामकी महिमाका दिग्दर्शन कराते हुए नाम जप करनेका नियम दिलाना और स्थान-स्थानपर संकीर्तन करना तथा कराना तय हुआ। वैसे तो सब लोग कलकत्ते, बंबई, बीकानेर आदि स्थानों तथा उसके आस पासके ग्रामोंमें ले जाकर श्रीभगवन्नामका प्रचार करनेके लिये लालायित थे। परन्तु सबसे बढ़कर इस कामके लिये योग्यपात्र तथा परम आतुर थे श्रीगोयन्दकाजीके परम कृपापात्र एवं चरित्रनायकके परम मित्र रतनगढ़ निवासी श्रीडूँगरमलजी लोहिया। इनका संक्षिप्त परिचय कराना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि जगह-जगह इनसे सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओंको हमें लिखना पड़ेगा और बिना परिचयके पाठकवृन्दोंको जिज्ञासा होगी कि ऐसे प्रेमी कौन थे अत: टिप्पणीमें हम इनका संक्षिप्त परिचय यहीं दे रहे हैं।**

जबसे जसीडीहकी अलौकिक घटनाका संवाद इन्हें मिला, तभीसे ये हमारे चरित्रनायकको आसामं प्रांतमें बुलानेके लिये लालायित थे। किन्तु जब इन्होंने गोरखपुरमें श्रीभगवान्के द्वारा भगवन्नामका प्रचारके आदेशकी बात सुनी तबसे तो ये बहुत लिखा-पढ़ी कर रहे थे। इधर गोयन्दकाजी एवं हमारे चरित्रनायक भी भगवान्के आदेशका पालन करनेके लिये सुअवसरकी बाट देख रहे थे। जब इन्होंने गोरखपुर आकर अधिक

---

* आश्विन शुक्ला १२। ८४ को गोरखपुरमें चौथी बार श्रीभगवान्ने चरित्रनायकको प्रत्यक्ष दर्शन देकर (७ वीं बात में) यह आदेश दिया था कि 'जगत्का कुछ भला करना हो तो भेद छोड़कर नामका प्रचार कर, लोगोंसे कह दे कि इस कालमें नामसे ही सब कुछ हो जायेगा।' गीताप्रेससे 'दिव्य संदेश' के नामसे यह पुस्तिका प्रकाशित है तथा अभी भी प्राप्य है। यहाँ परिशिष्टमें पृष्ठ सं० २४८ पर यह दिव्य संदेश दिया गया है।

** श्रीडूँगरमल लोहिया रतनगढ़ (बीकानेर) निवासी मारवाड़ी अग्रवाल जातिके सनेहीरामजी लोहियाके सुपुत्र थे। आप बालकपनसे ही सत्संग, भगवान्के भजन, पूजन, स्तोत्रपाठ स्वयं करते तथा वृत्ति देकर ब्राह्मणोंसे जगह-जगह अनुष्ठान कराते तथा सत्संगके लिये जगह-जगह भ्रमण करके अपनी मारवाड़ी भाषामें पद तथा कीर्तन सुनाकर लोगोंको आप्यायित कर देते थे। मारवाड़ी स्त्रियाँ इनके उपदेशों तथा भजनोंको बड़े प्रेमसे सुना करती थीं। इनका व्यापार आसाम प्रान्तके तिनसुकिया नामक ग्राममें प्रधानरूपसे होता था और कलकत्ता आदि कई स्थानोंमें दूकानें भी थीं जिनसे ये लाखों रुपयोंका व्यापार करके हजारों रुपया प्रति वर्ष मुक्त हस्तसे सात्विक दानमें खर्च करते। काशीमें मीरघाटपर 'मारवाड़ी संस्कृत कालेज' के प्रधान संचालक आप ही थे। ये रास्ते चलते-चलते बालकोंसे भगवन्नाम कीर्तन करवाकर उन्हें भगवत्प्रसाद देकर तथा अपने घरपर कई घंटेतक लोगोंसे कीर्तन कराकर उन्हें नित्य प्रति अन्न आदि बाँटकर भगवन्नामके प्रचारका बड़ा स्तुत्य कार्य एवं अनेकों परोपकारके कार्य तन-मन-धनसे करते रहते थे। आसाम प्रांतमें स्थान-स्थानपर ग्रामसभायें स्थापित करके सत्संग और कीर्तनका बड़ा प्रचार इनके द्वारा

जोर दिया और कलकत्तेवालोंने भी अपने यहाँ चरित्रनायकको बुलानेकी प्रबल चेष्टा की तो श्रीगोयन्दकाजीने चरित्रनायकको कलकत्ते होते हुए आसाम प्रान्तमें भगवन्नाम प्रचारके लिये जानेकी अनुमति दे दी। इसी प्रकार एक दिन जगन्नाथपुरीसे श्रीचैतन्य महाप्रभुने भी श्रीनित्यानंदजीको बंगालमें भगवन्नाम वितरणके लिये ४०० वर्ष पूर्व भेजा था।

इतने दिन श्रीगोयन्दकाजी एवं चरित्रनायक गोरखपुरमें रहकर वहाँ रहनेवाले तथा बाहरसे आये हुए प्रेमीजनोंके साथ मिलकर ही श्रीभगवन्नामका प्रचार कर रहे थे। अब जहाँ-जहाँ प्रेमीजन रहते थे उन-उन प्रान्तोंमें भ्रमण करके भगवन्नाम प्रचारका समय आ गया। जैसे श्रीचैतन्य महाप्रभुने नित्यानंदजीके साथ खास-खास प्रेमीजनोंको गौड़ देश भेजा था, वैसे ही गोरखपुरसे कलकत्ते प्रस्थान करते समय भी चरित्रनायकके साथ प्रेमीजनोंकी एक मण्डली बन गई थी। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (२) श्रीडूँगरमलजी लोहिया, तिनसुकिया (३) श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठिया, बंबई (४) श्रीमोहनलालजी झुंझुनूवाला, कलकत्ता (५) श्रीरामजीदासजी बाजोरिया (६) श्रीहरदत्तरामजी बेतिया (७) गम्भीरचंदजी दुजारी, बीकानेर (८) श्रीघनश्यामदासजी जालान पुरुलियावाले (९) श्रीराधाकृष्णजी पारीक, सनावद (१०) श्रीहरिरामजी ब्राह्मण, रतनगढ़ (११) श्रीवंशीधरजी एवं (१२) इनका पुत्र (१३) श्रीअर्जुनदासजी नूंवेवाला, गोरखपुर (१४) श्रीठाकुरजीदासजी नूंवेवाला (१५) श्रीद्वारकादासजी नूंवेवाला एवं (१६) बलदेवजी ब्राह्मण। इस प्रकार सोलह सज्जनोंकी एक खासी मंडली बन गई।

मार्गशीर्ष कृष्ण १०। १९८४ को प्रातःकाल सब लोग श्रीगोयन्दकाजीके श्रीचरणोंमें श्रद्धापूर्वक अभिवादन करके चरित्रनायकके निवास स्थानके आगे मोटर लॉरीमें जानेवाले तथा कुछ पहुँचानेवाले सारे सज्जन सुखपूर्वक बैठ गये, तब यहींसे—झाँझ, मजीरे और काष्ठकी सुन्दर करतालोंकी झनकारके साथ—श्रीभगवन्नाम कीर्तनका श्रीगणेश हुआ। लॉरी स्टेशनकी ओर चल पड़ी। प्लेटफार्मपर ट्रेन लगी हुई खड़ी थी। सब सामान इत्यादि एक डब्बेमें रक्खा गया। जानेवाले सब लोग उसमें सवार हो गये। गाड़ीके चलनेके लिये गार्डने झंडी दिखलायी, इंजनने सीटी बजायी और इधर प्रेमीजनोंने अपनी-अपनी करतालोंकी झनकारके साथ पुनः श्रीभगवन्नामकी—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—की गुंजारसे सारे वायुमण्डलको पवित्र कर दिया। देखते ही देखते इंजन गाड़ीको लेकर धुआँ उगलता हुआ चल पड़ा। स्टेशन पहुँचानेके लिये आये हुए सज्जन 'सियावर रामचन्द्रकी जय!' कहते हुए रह गये। कई सज्जन प्लेटफार्मके अन्ततक गाड़ीके साथ-साथ दौड़ते हुए चरित्रनायककी मधुर मुस्कानभरी दृष्टिसे द्रवित होकर नेत्रोंके जलद्वारा उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पण करके उनके क्लेशजनित वियोगका अनुभव करते हुए प्लेटफार्मको समाप्त हुआ समझकर वहींसे खड़े-खड़े चरित्रनायककी मधुर मूर्तिको निहारते रह गये।

भगवन्नाम प्रचारके लिये चरित्रनायक निकले हैं और उनके साथ प्रेमीजनोंकी मंडली है। इसी मंडलीको साथ लिये चरित्रनायक भगवन्नामका सन्देश सुनाने जा रहे हैं, इसलिये चरित्रनायकने सबसे प्रथम गाड़ीके अन्दर ही भ्रमणमें साथ रहनेवालोंके लिये कुछ नियम बनाये जिन्हें नित्यप्रति पालन करना सबको अनिवार्य था। वे नियम इस प्रकार हैं—

(१) श्रीमद्भगवद्गीताके एक अध्यायका पाठ करना।

(२) ध्यान नित्य नियमपूर्वक करना।

(३) 'हरे राम हरे राम०' वाले षोड़श नामकी नित्य १४ माला जप करना।

(४) संध्या दोनों कालकी करते समय एक-एक माला गायत्री मंत्रका जाप करना।

(५) हाथसे बने हुए कपड़े पहनना।

(६) मिठाई न खाना।

(७) तम्बाकू न पीना।

(८) ब्रह्मचर्यका पालन करना।

(९) असत्य न बोलना।

(१०) वेश भूषामें शौकीनी न करना।
(११) नौकरको साथ न रखना।
(१२) अपना काम जहाँतक बने अपने हाथसे करना।
(१३) खर्च अपना-अपना करना।
(१४) यथासंभव क्रोध न करना।
(१५) नियत समयपर सोना-उठना।
(१६) मान-बड़ाई न चाहना और न स्वीकार ही करना।
(१७) किसीसे शारीरिक और आर्थिक सेवा न कराना।
(१८) विरोध शान्तिपूर्वक सहना।
(१९) अपने मतका अभिमान न करना।
(२०) स्त्रियोंसे बचना।

तत्पश्चात् सबकी रायसे मुझसे कहा कि तुम आगे- आगे बोलकर और सब लोग पीछे-पीछे बोलकर श्रीगीताजीके एक अध्यायका पाठ कराओ। तब मैंने आदेशका पालन करते हुये बड़े प्रेमसे श्रीगीताजीके प्रथम अध्यायका शुद्ध उच्चारण एवं एक स्वरसे पाठ कराया। तत्पश्चात् चरित्रनायकने चलती हुई गाड़ीमें ही कई आवश्यक पत्र लिखकर सबके साथ आजके बनाये हुये नियमके अनुसार महामंत्रकी १४ मालाका जप मालाके द्वारा होठ हिलाते हुए जिह्वाद्वारा प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि चरित्रनायक जिह्वाके द्वारा जप करनेके लिये कहा भी करते थे। राधाकृष्णजी पारीकने प्रश्न किया— 'कीर्तनके समय अनेक नामोंका कीर्तन कराया जाता है, उस समय ध्यान किसका करना चाहिये?'

उत्तर—'अपनी-अपनी इष्ट मूर्तिका।' इसके पश्चात् चरित्रनायक बहुत देरतक सत्संग चर्चा करते रहे, फिर सायं संध्याका समय हो जानेसे सब लोग मानसिक संध्या वंदन जप करने लग गये। फिर सब लोग झाँझ करताल मजीरोंके साथ भगवन्नाम संकीर्तन बड़ी उमंगके साथ उच्च स्वरसे करने लगे। चरित्रनायक अपने प्रियतम प्रभुके नाम-संकीर्तनसे मस्त हुए अपनी मंद-मंद मधुर मुस्कानसे संकीर्तन करने, सुनने और देखनेवालोंको आप्यायित कर रहे थे। उस दिन कीर्तनमें सब लोग इतने मस्त थे कि पलेजाघाट, डेगाघाट, पटना आदिमें जहाज तथा रेलोंमें चढ़ने उतरने आदिके सिवा कीर्तन छोड़ना चाहते ही नहीं थे। पटनासे कलकत्ते जानेवाली गाड़ीमें रात्रिमें थर्ड क्लासके डिब्बेमें भीड़ अधिक थी परन्तु फिर भी कीर्तनकी मस्तीमें मस्त हुए प्रेमीजन वहाँ भी लगभग साढ़े दस बजेतक बड़े ही प्रेमोल्लास एवं झाँझ, करताल आदिके साथ कीर्तन करते रहे। फिर कीर्तन समाप्त करके प्रेमीजन परस्परमें प्रेम प्रभावकी बातें करते रहे। प्रात: ब्राह्ममुहूर्तमें ४॥ बजे सभी बैठ गये और मौन होकर चरित्रनायकके सहित सब लोग प्रात: मानसिक संध्या, जप, ध्यान आदि करके मुझसे कहकर आगे पीछे बोलकर गीताजीके दूसरे अध्यायका सम्पूर्ण पाठ कराया।

इधर कलकत्तेमें हाबड़ा स्टेशनपर सैकड़ों प्रेमीजन चरित्रनायकके दर्शनोंके लिये अत्यन्त लालायित हो रहे थे। जसीडीह और गोरखपुरमें श्रीभगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन, संभाषण, आदेश, सन्देश आदिकी घटनाओंको बहुतसे प्रेमीजन सुन चुके थे और यह भी जानते थे कि चरित्रनायकके आध्यात्मिक जीवनमें सहसा इतना परिवर्तन हो गया है कि श्रीभगवान् उनके द्वारा संसारमें प्रेमका प्रवाह प्रवाहित करना चाहते हैं। इसीलिये कलकत्तेमें रहनेवालोंका यह पहला ही अवसर है कि ऐसे प्रेममें मस्त हुए प्रेमी भक्त भगवान्‌की दी हुई शक्ति और आज्ञासे भ्रमण करनेवाले अपने प्रिय बंधुका दर्शन, स्पर्श, संभाषण आदि करके अपने जीवनको धन्य बनावें। प्रेमीजनोंके आकर्षणसे उस दिन (मार्गशीर्ष कृष्ण ११ प्रथम। ८४ को प्रात:काल ठीक समयपर गाड़ी स्टेशनपर पहुँची और सैकड़ों प्रेमीजन अपने प्रेमकी उमंगमें सराबोर हुए चरित्रनायकके समीप आकर 'सियावर रामचन्द्रकी जय' ध्वनिके बाद लगे उनके चरण स्पर्श करने, किन्तु जैसे तैसे करके चरित्रनायकने बड़ी नम्रताके साथ सब लोगोंको इस कार्यके लिये मना कर दिया। अस्तु, अब प्लेटफार्मसे बाहर आनेपर सब लोग एकत्रित हो गये और हाबड़ा पुलपर चलनेके पहले ही अपनी प्रेममयी उमंगसे दिल खोलकर झाँझ, करताल, मजीरोंके सहित नृत्य करते हुए श्रीडूँगरमलजी लोहियाके नेतृत्वमें, सारे रास्तेभर सैकड़ों प्रेमियोंकी संख्यामें, संकीर्तन करते हुए बाँसतल्ला गलीमें श्रीगोविन्दभवन जा पहुँचे। उन दिनों

श्रीगोविन्दभवन कलकत्तेकी प्रतीष्ठा कुछ विलक्षण ही थी। भवनमें पहुँचते ही चरित्रनायकके 'परम मधुर युगल नाम राधे कृष्ण सीताराम' इस मधुर ध्वनिसे संकीर्तनकी अद्भुत दशा हो गई, मानो श्रीभगवान् अंतरिक्षसे प्रेमीजनोंके हृदयोंमें बरबस प्रेमकी लहर प्रवाहित कर रहे हों। चरित्रनायकने कीर्तन समाप्त होनेके बाद सबके बैठ जानेपर आसाम प्रांतके इस भ्रमणमें अपने साथियोंके लिये जो नियम बनाये थे उनका खुलासा किया। नित्यकर्म आदिसे निवृत्त होनेके लिये बाँसतल्ला स्ट्रीट होते हुए, प्रेमीजनोंके साथ कीर्तन करते हुए श्रीजयदयालजी कसेराके मित्र श्रीज्वालादत्तजी भरतियाके मकानमें जाकर स्नान, संध्यादि नित्य कर्मसे ग्यारह बजेके लगभग निवृत्त हुए और वहाँसे अपने प्रेमीजनोंसे मिलने गये। अनेकों कार्योमें सारा दिन व्यतीत हुआ।

मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीय एकादशीके दिन प्रातःकाल गोविन्दभवन सैकड़ों प्रेमीजनोंसे ठसाठस भरा हुआ था। चरित्रनायक बड़े ही प्रेमसे श्रीभगवान्के प्रेम, प्रभाव, स्वभाव, दयालुता आदि गुणोंका वर्णन ऐसी रसीली एवं चित्ताकर्षक भावपूर्ण भाषामें कर रहे थे कि उस समय लोग एक प्रकारसे उसी श्रवणामृतका पाठ करनेमें तल्लीन हो रहे थे। प्रसंग ऐसा सुन्दर था कि इस समय कई प्रेमीजनोंने चरित्रनायकसे बड़ी नम्रताके साथ भगवद्दर्शन करानेके लिये प्रार्थना की। प्रार्थनामें कुछ वास्तविकता थी इसलिये चरित्रनायकने तत्काल बड़े जोशीले शब्दोंमें कहा कि 'श्रीभगवान्के दर्शन करना जो सच्चे हृदयसे चाहता हो वह खड़ा हो जाय' ये अमोघ वाक्य न जाने किस अव्यक्त भगवत् प्रेरणासे ही मानों निकले थे या न जाने किस हेतुसे कि जिस समय यह बात कही गयी थी उस समय सब लोग तो बैठे थे केवल श्रीडूँगरमलजी लोहिया पहलेसे ही खड़े थे, वे भी तत्काल बैठ गये। लोग सन्न रह गये। खड़े होना तो दूर रहा किसीकी कुछ कहनेकी हिम्मत भी न पड़ी। बादमें इसी प्रसंगकी चर्चा करते हुए चरित्रनायकने अपने प्रेमीजनोंसे कहा कि उस समय भगवान्ने ही मेरी लज्जा रक्खी नहीं तो यदि कोई खड़ा हो जाता तो मैं उसे दर्शन कैसे कराता? इसी प्रकार अनेकों बार चरित्रनायक मानों आवेशमें आकर कुछ न कुछ आदेश दे देते पर उसका पालन करनेवाला कोई बिरला ही शायद निकलता।

गोरखपुरमें श्रीभगवान्ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर चरित्रनायकको श्रीभगवन्नामकी अनिर्वचनीय महिमा बतलाकर उसके प्रचारार्थ जो आदेश दिया था उसे पालन करनेका श्रीगणेश यहींसे हुआ। स्वयं चरित्रनायकको भगवन्नामपर ऐसा अनूठा विश्वास था जिसका वर्णन वे कर नहीं सकते थे। कभी-कभी कुछ उच्छ्वास बाहर निकल पड़ते थे जो कभी-कभी उनके कर कमलोंसे लेखनीद्वारा उतरकर पद्यरूपमें कागजपर नाचने लगते थे। उनके नृत्यका एक नमूना यहाँ दिया जा रहा है। आशा है कि वे कोरे कागजपर नाचते हुए चतुराईसे आँखोंमें प्रवेश करके पाठकोंके हृदयपटलपर नाचने लगेंगे और अपने साथ उन्हें भी नृत्यके लिये बाध्य कर देंगे—

(राग आसावरी ताल रूपक)

साधन नाम-सम नहिं आन।
जपत सिव-सनकादि, सारद-नारदादि सुजान॥
नाम के बल मिटत भीषन असुभ भाग्य-बिधान।
नाम-बल मानव लहत सुख सहज मन-अनुमान॥
नाम टेरत टरत दारुन बिपति, सोक महान।
आर्त करि, नर-नारि, ध्रुव सब रहे सुचि सहिदान॥
नाम के परताप तें जल पर तरे पाषान।
नाम-बल सागर उलाँघ्यो सहज ही हनुमान॥
नाम-बल संभव सकल जे कछु असंभव जान।
धन्य ते नर, रहत जिनके नाम-रट की बान॥
पाप-पुंज प्रजारिबे-हित प्रबल पावक-खान।
होत छिन महँ छार, निकसत नाम जान-अजान॥
नाम-सुरसरि में निरंतर करत जे जन न्हान।
मिटत तीनों ताप मुख नहिं होत कबहुँ मलान॥
नाम-आश्रित जनन के मन बसत नित भगवान।
जरत खरत कु-वासना सब तुरत लज्जा-मान॥
नाम जीवन, नाम अमरित, नाम सुख को थान।
नाम-रत जे नाम-पर ते पुरुष अति मतिमान॥

नाम नित आनंद-निरझर, अति पुनीत पुरान।
मुक्त सत्वर होत जे जन करत सादर पान॥
नाम जपत सुसिद्ध जोगी बनत समरथवान।
नाम तें उपजत सु-भगति, बिराग सुभ बलवान॥
नाम के परताप दीखत प्रकृति-दीप बुझान।
नाम-बल ऊगत प्रभामय भानु तत्त्व-ज्ञान॥
नाम की महिमा अमित, को सकै करि गुन-गान।
राम तें बड़ नाम, जेहि बल बिकत श्रीभगवान॥
(पद-रत्नाकर, पद सं० १००६)

श्रीभगवन्नाम प्रचारका एक स्थाई रूपसे चलनेवाला ठोस तरीका चरित्रनायकने निकाला कि प्रत्येक वर्ष पौष कृष्णा ३ से फाल्गुन शुक्ल १५ तक ढाई महीनेतक नित्यप्रति नियमपूर्वक—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस महामंत्रका मालाके द्वारा संख्यापूर्वक जप किया जाय और उन मालाओंकी संख्या जोड़कर नाम-विभाग 'कल्याण-कार्यालय', गोरखपुरको सूचना दी जाय। इस कार्यके लिये कल्याण मासिक पत्रमें प्रति वर्ष एक अपील निकाली जाती है जिसमें १० करोड़ महामंत्रका जप सबको मिलकर होलीतक कर लेना चाहिये। इस वर्ष लोगोंके हृदयमें भगवन्नाम प्रेम एवं भगवत्प्रेमका प्रवाह बह रहा था अत: मारवाड़ प्रांतके एक छोटेसे बोरावड ग्रामसे ही साढ़े तीन करोड़ इस मंत्रका जप करनेकी सूचना मिल गई। इस प्रकार ३०-४० करोड़ महामंत्रका जप प्रत्येक वर्ष होलीतक हो ही जाता था। नये-नये लोगोंका इन ढाई महीनोंके अभ्याससे नामामृतका स्वाद मिल जानेसे फिर वे सदाके लिये अपना नियम बना लेते थे। नाम जपके अभ्याससे अन्य सब साधन सामग्री उन्हें प्राप्त हो जाती थी। ऐसे तो चरित्रनायक अपनी-अपनी रुचिके अनुरूप सब लोगोंको नाम जप करनेके लिये कहते थे किन्तु प्रारम्भमें वे स्वयं इसी महामंत्रका जप करते थे। इसलिये कलि संतरणोपनिषदके कथनानुसार कलियुगमें इसी मन्त्रका जप करनेके लिये प्रेरणा करते थे।

इस पटलको समाप्त करते हुए चरित्रनायकके बनाये हुए श्रीभगवन्नाम महिमाके उद्गारकी कुछ पदोंकी कुछ पंक्तियाँ प्रेमी पाठकोंकी सेवामें निवेदन की जा रही हैं—

'बन्धुगणो! मिल कहो प्रेमसे यदुपति ब्रजपति श्यामाश्याम।
मुदित चित्तसे घोष करो पुनि 'पतित पावन राधे-श्याम॥'
जिह्वा जीवन सफल करो कह 'जय यदुनन्दन जय घनश्याम।'
हृदय खोल बोलो मत चूको 'रुक्मिणी वल्लभ राधेश्याम॥'

×××

अति उमंगसे बोलो संतत—'रघुपति राघव राजाराम।'
मुक्तकंठ हो सदा पुकारो—'पतित पावन सीताराम॥'

×××

राम राम राम राम राम राम राम।
भज मन प्यारे सीताराम॥

संतोंके जीवन ध्रुव-तारे, भक्तोंके प्राणोंसे प्यारे।
विश्वम्भर, सब जग रखवारे, सब बिधि पूरनकाम॥
अजामील-दुख टारनहारे, गज-गनिका के तारनहारे।
द्रुपद-सुता भय-बारन-हारे, सुखमय मंगलधाम॥
अनिल-अनल-जल-रबि-ससि-तारे, पृथ्वी-गगन, गंध-रस-सारे।
तुझ सरिता के सब. फौवारे, तुम सबके विश्राम॥
तुम पर धन-जन, तन-मन बारे, तुझ प्रेमामृतमद-मतवारे।
धन्य धन्य ! ते जग-उजियारे, जिनके मुख यह नाम॥
(पद-रत्नाकर, पद सं० १००१)

~~~
~~~
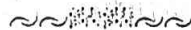
॥ श्रीहरि: ॥

बाईसवाँ पटल

श्रीभगवन्नाम प्रचारके लिये असम प्रान्तमें भ्रमण

आजसे चार सौ वर्ष पूर्व समुद्र किनारे श्रीजगन्नाथ धाममें निवास करते हुए एक संन्यासीने जीवोंके दु:खसे दु:खी होकर उन्हें सांसारिक तापोंसे छूटनेके लिये श्रीभगवन्नामका आश्रय दिलानेके लिये अपने अनन्य प्रेमी अवधूत नित्यानंद महाप्रभुको कुछ भगवन्नाम प्रेमी भक्तोंको साथ देकर पुरीसे गौड़ (बंगाल) भेजकर वह दिव्य श्रीभगवन्नाम वितरण करवाया था। लगभग उसीकी पुनरावृत्ति मानो हो रही है।

चरित्रनायक जिस तीव्र वैराग्यकी भावनासे प्रेरित होकर गंगा तटपर ऋषिसेवित निर्जन भूमिमें एकान्तवास करनेके उद्देश्यसे बंबई छोड़कर कुछ दिनके लिये गोरखपुर आये थे। और, अभीतक उसी एकान्तवासकी लालसा लगी हुई थी किन्तु बीचमें ही अपने जन्म जन्मान्तरोंकी तीव्र साधनासे भगवद्दर्शनकी प्रबल लालसा उत्पन्न हो जानेपर भगवत्कृपासे श्रीभगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन हो जाने एवं उन्हींके आदेशसे श्रीभगवन्नाम प्रचार कार्यमें लग जानेसे वह एकान्तवासकी वासना कुछ दब गई और चरित्रनायक पहले इसी कार्यमें लग गये।

गोरखपुरसे चलकर कलकत्ते आनेतकका विवरण पाठकवृंद पढ़ चुके होंगे। अब मार्गशीर्ष कृष्ण १२। ८४ के दिन कलकत्तेसे चलकर आसाम प्रांतमें भ्रमण किया उसका वर्णन हम संक्षेपमें कर रहे हैं। यदि विस्तारसे वर्णन किया जाय तो एक वर्षका पूरा विवरण भी नहीं लिख सकते।

आसाम प्रांतमें भ्रमण तो प्रारम्भ हो ही चुका था और बंबई सत्संग भवनके प्रधान श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठिया गोरखपुरसे ही इस प्रेममयी गंगाके प्रवाहमें प्रवाहित होकर आसाम जानेकी तैयारी कर ही चुके थे। बीचमें उन्हें एक प्रेमी मित्रने परामर्श दिया कि तुम यदि आसाम चले चलोगे तो बंबईकी तरफ शीघ्र कैसे जाना होगा? अत: तुम यहींसे प्रेममयी गंगाकी नहर बंबईकी तरफ ले जाकर वहाँसे-तुमुल आन्दोलन करो कि जिससे चरित्रनायक आसामसे सीधे बंबईकी ओर पधारकर श्रीभगवन्नामका प्रचार करें। बजरंग बाबू एक बार तो इस मंडलीसे अलग होनेमें हिचकिचाये परन्तु उस कार्यका महत्व समझकर कलकत्तेकी सियालदह स्टेशनका दृश्य देखकर मुग्ध होते हुए बंबई जाते समय सचमुच यहाँसे प्रेम-प्रवाहको ले गये थे। वहाँ जाकर उन्होंने सैकड़ों तार दिलाकर श्रीगोयन्दकाजीसे आज्ञा लेकर चरित्रनायकका बंबई पधारनेका प्रोग्राम बना लिया।

इस बार कलकत्ते जैसे प्रधान प्रचार-केन्द्रमें चरित्रनायक केवल दो दिन ही ठहर सके क्योंकि उन्हें आसाममें भ्रमण करके शीघ्र वापस लौटना था। अत: कलकत्तेके सैकड़ों प्रेमी सज्जन सियालदह स्टेशनपर एकत्रित होकर चरित्रनायककी मधुर मूर्तिको केवल निहारते ही रहे। पं० हरिवक्षजी जोशी वैद्यराज चरित्रनायकके पुराने प्रेमी थे इन्होंने एकान्तमें ले जाकर बातें की। लोगोंका प्रेम उमड़ रहा था। टाइमपर गाड़ी चल पड़ी और प्रेमीजन ताकते ही रह गये। कुछ प्रेमी साथ भी चल पड़े। डिब्बेमें पहलेकी भाँति झाँझ करतालोंके साथ भगवन्नाम संकीर्तन बड़ी मस्तीके साथ प्रेमी मण्डली करने लगी। दो घंटेके बाद चरित्रनायकने अपने भ्रमणके साथियोंके लिये जो विनम्र नियम बनाये थे उनमेंसे कुछ की विशद् व्याख्या भी कर दी। मान बड़ाईके त्याग, दूसरेसे किसी प्रकार भी सेवा स्वीकार न करने एवं स्त्रियोंसे सर्व प्रकारसे बचे रहनेपर खूब जोर दिया।

मार्गशीर्ष कृष्ण १३ मंगलवार १९८४ ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर चरित्रनायक ध्यान करने लगे, फिर सबने समयसे मानसिक संध्या की। उसके बाद झाँझ करतालोंसहित मस्तीभरा संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। प्रात:काल दस बजेके
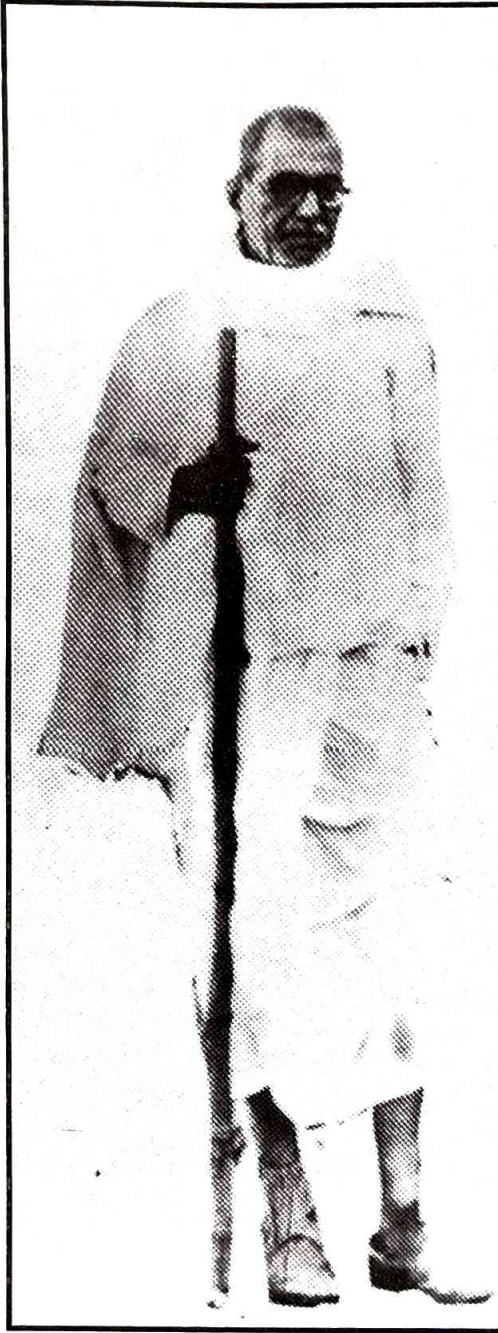
पूज्य श्रीसेठजी
जयदयालजी गोयन्दका

पूज्य श्रीभाईजी
हनुमानप्रसादजी पोद्दार

लगभग गाड़ी नलवाड़ी स्टेशन पहुँची। वहाँ बंगाली कीर्तनकारोंकी टोली ढोल मजीरा आदिके साथ कीर्तन कर रही थी। उनके साथ ही यह मंडली भी सम्मिलित हो गई और वहींसे एक जुलूस बनकर मतवाले भक्तोंका कीर्तन करता हुआ वह वृहत् समूह नरसिंह दास गौरीशंकर मारवाड़ीके गोलेमें पहुँचा। वहाँ कीर्तन समाप्त होनेके पश्चात् एक मारवाड़ी सज्जनने प्रश्न किया—आपको श्रीभगवान्‌के साकार स्वरूपके दर्शन किस प्रकार हुए?

चरित्रनायक—जैसे हम लोग यहाँ बैठे हैं उसी प्रकार दर्शन हुए, किन्तु यह बात कहनेमें संकोच होता है।

प्रश्न—कुछ वार्तालाप भी उनसे हुआ?

उत्तर—हाँ, हुआ।

प्रश्न—क्या कुछ उपदेश भी मिला?

उत्तर—हाँ, श्रीभगवन्नाम प्रचार करनेका।

इत्यादि बातें होनेके पश्चात् वहाँके लोगोंने रसोई बनवानेके लिये पूछा तब सबने अपना नियम बतला दिया कि हम लोग किसीके यहाँ भोजन नहीं करते। दाम लेकर सूखा सामान दे सकते हैं। रसोइया हमारे साथ है वह बना लेगा। इसपर बहुत वाद विवादके पश्चात् उन लोगोंने दाम लेना स्वीकार कर लिया।

चरित्रनायक सं० १९७५ में बम्बई गये थे तब से वहाँके लोग चरित्रनायकको 'भाईजी' कहकर उन्हें सम्बोधन करते थे। यह 'भाईजी' नाम आगे चलकर इतना व्यापक हो गया कि गोरखपुर आनेके बाद छोटे-बड़े घरवाले-बाहरवाले सभी 'भाईजी' के नामसे ही उन्हें सम्बोधन करने लगे। इसलिये अब हम भी अपने चरित्रनायकको भाईजीके नामसे उल्लेख करेंगे तथा प्रेमी पाठकोंकी सुविधाके लिये कभी-कभी चरित्रनायक नामसे भी। 'भाईजी' नाममें जो स्वाभाविक मधुरता हमें प्रतीत होती है वह अन्य किसी नाममें नहीं।

दोपहरमें हरिनाम संकीर्तनके पश्चात् श्रीभाईजीने अपना ओजस्वी भाषण प्रारंभ किया जिसमें रामायणके उत्तरकांडकी निम्नलिखित चौपाईयोंकी विशद व्याख्या करते हुए मनुष्य जन्मकी दुर्लभता पर प्रकाश डाला—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुःख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाइ॥
एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ विषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

× × ×

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सद्‌गुर दृढ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

इसलिये प्रिय सज्जनवृंद! अभीसे सावधान होकर श्रीभगवन्नामके जप कीर्तन आदिका सहारा लेकर हमें अपने मनुष्य जन्मको सार्थक करना चाहिये। वर्तमान कालमें श्रीभगवन्नाम ही सर्वोपरि सरल साधन है जिसे कोई भी

प्रत्येक अवस्थामें कर सकता है। अस्तु।

तत्पश्चात् लगभग ४ बजे दिनमें नगर कीर्तन करते हुए स्टेशन पहुँचे और डिब्बेमें सारी प्रेमी मंडलीके बैठ जानेपर श्रीभाईजीने वहीं डिब्बेमें खड़े होकर नृत्य करते हुए बड़े प्रेमसे भगवन्नाम-संकीर्तन करवाया। उन दिनों श्रीभाईजी इस ध्वनिका कीर्तन अधिक कराते थे—

"परम मधुर जुगल नाम। राधे कृष्ण सीताराम॥"

मानसिक संध्या करनेके पश्चात् पुनः संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। सायंकालको अमीनबाग स्टेशनपर उतरकर सामने तैयार खड़े जहाजमें बैठकर कल्याणका सम्पादन सम्बन्धी कुछ कार्य करके एक बंगाली सज्जनके कहनेसे श्रीभाईजीने बँगलामें एक पद कीर्तन सुनाया। फिर सन् १९२८ में छपी गीता डायरीके कुछ छपे हुए वाक्योंकी व्याख्या की। इतनेमें पाण्डु स्टेशनकी ओर (ब्रह्मपुत्रके किनारे) जहाज लगा। वहाँपर स्वागतार्थ कुछ सज्जन गोहाटीसे लॉरी लेकर पहलेसे उपस्थित थे। जिनमेंसे कुछके नाम इस प्रकार हैं—(१) श्रीरामचन्द्रजी गोयन्दका (२) श्रीशिवदत्तरामजी (३) श्रीसीतारामजी साँगानेरिया (४) श्रीकन्हैयालालजी इत्यादि। लॉरीमें सबके बैठ जानेपर खूब प्रेमसे हरिनाम संकीर्तन करताल-मजीरोंके साथ होने लगा। उन दिनोंके कीर्तनके प्रचारका वर्णन कैसे किया जाय। श्रीभगवान्का आदेश पाकर उन्हींके लाड़ले भक्त अपनी रुचिसे कीर्तन प्रचारके इसी उद्देश्यको लेकर भ्रमण करें फिर कीर्तनके प्रचारका वर्णन किस लेखनीद्वारा कौन पामर प्राणी कर सकता है? सारे बाजारमें कीर्तन करते हुए लॉरी श्रीरामजी गणेशदासके गोलेके पास पहुँची। यहाँ सबने अपना डेरा जमा दिया। फिर सारे रास्तेमें प्रेमी भक्त कीर्तन करते हुए गौहाटीकी ठाकुरवाड़ीमें श्रीभगवान्के दर्शन, साष्टांग दण्डवत प्रणाम, तुलसी चरणामृत पान किये। फिर डूँगरमलजी लोहियाके द्वारा कीर्तन एवं मेरे द्वारा गीताजीके एक अध्यायका पाठ करवाकर चरित्रनायक अपने भाषणमें श्रीभगवन्नाम-महिमाके कुछ मार्मिक शब्द कहकर, श्रीभगवान्के-नाम प्रचारकी मुझे प्रेरणा हुई है—यह बात कही फिर कीर्तन होनेके पश्चात् आजका कार्यक्रम समाप्त हुआ।

दूसरे दिन प्रातःकाल गौशालामें जाकर वहाँ नित्य कर्म किया गया।

इसके बाद महादेवजी पोद्दारके यहाँ गये। उन्होंने प्रश्न किया कि तुमको श्रीभगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन हुए हैं ऐसा गोरखपुरसे आनेवाले कई लोग कहते हैं। तुम ही बताओ क्या बात है?

भाईजीने इसका कुछ भी उत्तर न देकर संकेतसे इस बातको स्वीकार किया और कहा कि भगवान्का नाम लेना चाहिये। 'हरे राम हरे राम०' इस महामंत्रकी १४ मालाका नियम लेना चाहिये। झूठ, कपट, छल, व्यभिचार आदि दुर्गुणोंको मनमें स्थान ही नहीं देना चाहिये। इसपर महादेवजी बोले कि तू ही हमें सुधार सकता है। तू हमारे कुलमें उत्पन्न हुआ है इसलिये हम तो अपना परम सौभाग्य मानते हैं कि तुझ जैसे भगवद्भक्तके उत्पन्न होनेसे ही हमारा कुल पवित्र हो गया। इसके बाद श्रीभाईजी तो अलग बैठकर कुछ पत्र लिखने लगे और 'कल्याण'का काम करने लगे। अन्य सब मित्रोंको ठाकुरबाड़ी सत्संगके लिये भेज दिया।

मारवाड़ी अग्रवाल महासभाका एक प्रचारक आकर श्रीभाईजीसे कहने लगा आपने तो महासभाका बहुत काम किया है अतः आपको उससे पृथक् न होना चाहिये। इसपर श्रीभाईजीने बड़े ही नम्र शब्दोंमें इसे संतोष दिलाकर इस कार्यमें अपनी अरुचि प्रकट की।

एक व्यक्तिने कहा हम लोग गौहाटीवाले अत्यन्त पापी हैं, इसलिये हम लोगोंका भी उद्धार होना चाहिये। इसपर श्रीभाईजीने कहा कि हम लोग पापी हुए तो क्या हुआ भगवान्का नाम तो पतित पावन है अतः उसीका आश्रय लेना चाहिये।

चरित्रनायकके श्वसुर श्रीसीतारामजी साँगानेरिया यहीं गौहाटीमें रहते थे, इसलिये श्रीभाईजी उनके घर गये। साथमें मैं भी था। वहाँ श्रीभाईजीकी सासने बड़े प्रेमसे कहा कि मेरी आपसे एक प्रार्थना है कि जिस समय मेरी मृत्यु हो उस समय आप मेरे समीप रहें। क्योंकि आपके समीप रहनेमात्रसे मेरी सद्गति हो जायगी। मेरे लिये तो आप ही भगवान् हैं। इसे सुनकर भाईजी

केवल हँस दिये। इसके बाद उन्होंने कहा कि आपको श्रीभगवान्‌के दर्शन हुए हैं उन बातोंको आपने लिखा हो तो मुझे वे बातें सुनानी चाहिये। श्रीभाईजीने कहा—'पत्रोंमें लिखी तो हैं किन्तु आपको भगवान्‌का भजन करना चाहिये।' इसके बाद पंचायती ठाकुरवाड़ीमें जाकर मध्याह्नके समय श्रीभाईजीने श्रीभगवन्नाम महिमाके सम्बन्धमें अपना भाषण देकर निम्नलिखित नियम पालन करनेके लिये उपस्थित सज्जनोंसे प्रार्थना की।

(१) हरे राम हरे राम० वाले पूरे महामंत्रकी १६ मालाएँ नित्य जपना।

* (२) यज्ञोपवीतधारीको दोनों समय संध्या करके एक-एक माला गायत्री जपना।

† (३) पूजनीय जनोंको नित्य प्रति प्रणाम करना।

‡ (४) घर घरमें श्रीभगवान्‌की नित्यप्रति पूजा करना।

(५) असत्य, क्रोधको कम-से-कम सप्ताहमें एक दिन तो अवश्य त्याग देना—हमेशाके लिये चेष्टा करना।

अंतमें कीर्तन करते हुए वहाँसे श्रीमोतीलालजीकी माताजीके पास गये।

माताजीने कहा—'कोई उपदेशकी बात कहो।'

श्रीभाईजी—'माताजी! भगवान्‌को याद रखना चाहिये।'

माताजी—'भगवान्‌के दर्शन किस प्रकार हों?'

श्रीभाईजी—'भगवान्‌के नामका जप खूब कीजिये।'

माताजी—'पाप नहीं कटे हैं।'

श्रीभाईजी—'भगवान्‌के नामसे सब पाप कट जायँगे।'

सायंकालको अपनी सासके यहाँसे भोजन करके लौटते समय एकान्तमें श्रीभाईजीने मुझसे कई घटनाओंको नोट करनेके लिये कहा।

श्रीभाईजीने मुझसे कहा—गोरखपुरमें (कार्तिक शुक्ल ७। ८४ को) श्रीभगवान् क्या हैं? (श्रीजयदयालजीके) इस प्रश्नके बाद दो दिनतक विलक्षण स्थिति रही एवं (मार्गशीर्ष कृष्ण १-२ संवत् ८४ के दिन) मैदानमें कीर्तन हुआ उस दिन तो बड़ी ही विचित्र दशा थी। उसके बाद (मार्गशीर्ष कृष्ण ४। ८४ को) प्रात:कालके समय सर्वसाधारणमें मानसिक पूजा कराते समय भी मैं अपनेको सँभाल न सका। बद्रीदासजी, ज्वालाप्रसादजी आदिसे जो एकान्तमें बातें हुई थीं उससे अधिक बातें मैं तुम्हें बता देता हूँ और जो गुप्त रखनी होती हैं वह किसीसे नहीं कही जा सकती। इसपर मैंने कहा कि उन बातोंको नोट कर लेनी चाहिये। श्रीभाईजीने कहा देखा जायगा। मैंने कहा कि अधिक दिन हो जानेके बाद वे बातें आप स्वयं ही भूल जायँगे, तब वे बोले—क्या हर्ज है?

फिर कई जगह मिलनेके लिये गये तब एक जगह कई स्त्रियाँ एकत्रित होकर भगवद्दर्शन सम्बन्धी बातें पूछना चाहती थीं किंतु श्रीभाईजीने स्त्रियोंके पास अपना अकेला बैठना उचित न समझकर अपने एक मित्रको पास बिठलाकर उन्हें (१) षोडश नामवाले मंत्रकी १६ माला नित्य जपना, (२) पूजनीयोंको नित्य प्रणाम, (३) घर घरमें श्रीभगवान्‌की मूर्तिकी पूजा, (४) तथा सब दोषोंको त्यागकर व्यवहार सुधारनेकी बातें धारण करनेके लिये कहा। 'इन बातोंको पालन करनेसे मैं अपनेपर बड़ा उपकार मानूँगा।' ऐसा कहकर वहाँसे दूसरे स्थानपर जाने लगे तब एकान्त देखकर मैंने प्रश्न किया कि उस दिन बद्रीदासजी गोयन्दकाके नेत्रोंमें आँसू क्यों आये थे? श्रीभाईजीने उत्तर दिया कि गोरखपुरकी घटनाओंको सुनकर वे गद्‌गद हो गये थे। फिर मैंने कहा कि गोरखपुरमें श्रीभगवान्‌ने आपसे जो यह कहा था कि तुम्हारा और जयदयालजीका शरीर अधिक दिन रहनेकी आशा नहीं करनी चाहिये सो ऐसी बातें याद आनेसे तो चित्त छटपटाने लगता है। तब श्रीभाईजीने बड़े प्रेमसे कहा कि शरीर वियोगके लिये छटपटाना तो मोह है।

---

* कल्याण वर्ष २ अंक ४ पृष्ठ २१९—'**संध्योपासनकी आवश्यकता**' शीर्षक लेख में इनकी विस्तृत व्याख्या देखिये। यह लेख परिशिष्टमें पृष्ठ २५४ पर दिया जा रहा है

† कल्याण वर्ष २ अंक ६ पृष्ठ ३०८—'**निवेदन**' शीर्षक लेखमें इनकी विस्तृत व्याख्या देखिये। यह लेख परिशिष्ट पृष्ठ सं० २५१ पर दिया जा रहा है।

‡ कल्याण वर्ष २ अंक ५ पृष्ठ २५२—'**घर-घरमें भगवान्‌की पूजा**' लेखमें इनकी विस्तृत व्याख्या देखिये। यह परिशिष्टमें पृष्ठ सं० पर दिया गया है।

इसपर मैंने कहा उन शब्दोंका अर्थ क्या समझना चाहिये ?

श्रीभाईजी—'पूरा तो पता नहीं पर कुछ ही दिन या १०-२०-२५ वर्ष अथवा इससे अधिक भी समझे जा सकते हैं। फिर मैंने पूछा कि 'ऐसा सुना जाता है कि आपके द्वारा भगवद्भक्तिका बहुत अधिक प्रचार होगा सो यदि कुछ दिन महीने या वर्ष ही हों तो यह कैसे संभव है ?'

श्रीभाईजी—'शरीर न रहनेपर भी पीछेसे बहुत प्रचार हो सकता है। जैसे भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण आदिके आविर्भाव कालमें उनका प्रभाव थोड़े ही लोग जानते थे किन्तु उनके तिरोधान होनेके बाद गीता, महाभारत, भागवत, रामायणादि ग्रन्थोंसे करोड़ों व्यक्ति उनका प्रभाव जान-जानकर मुक्त होते जा रहे हैं।' वास्तवमें बात भी यह युक्तियुक्त है कि व्यक्तिके सामने जबतक 'वस्तु' रहती है तबतक उसका पूरा प्रभाव समझमें नहीं आता। उस वस्तुके अदृश्य होनेपर ही उस वस्तुका अनन्त गुणा प्रभाव हो जाता है। इत्यादि बातें होनेके बाद ठाकुरबाड़ीमें एवं शिवनारायण ओंकारमलके गोलेमें सत्संग कराके प्रत्येक रास्तेमें प्रेमीजनोंकी मंडली भगवन्नाम कीर्तन करती हुई अपने निवास स्थानपर आकर रातके बारह बजेके लगभग शयन किया।

प्रातःकाल चार बजे उठकर नित्य कर्म करके मेरे साथ सीतारामजीके यहाँ गये। सीतारामजी और साँवलरामजीके आपसमें कुछ मनमुटाव हो गया था। वहाँ साँवलरामजीसे इन लोगोंका परस्परमें प्रेम कराकर वहाँसे आते समय कई जगह मिलते हुए अपने निवासस्थानमें आकर एक पत्र श्रीजयदयालजीको गोरखपुर दिया। जिसमें उनके भाई मोहनलालजी गोयन्दकाके देशसेवाके उद्देश्यसे महात्मा गाँधीके आन्दोलनमें भाग लेनेके लिये घरसे बिना किसीकी आज्ञा लिये अज्ञातरूपसे चलेजानेके कारण उनकी खोज करानेके लिये कुछ लिखा और एक पद्य बनाकर (उन्हें शीघ्र बुलानेके उद्देश्यसे) कल्याण वर्ष २ अंक ६ पृष्ठ सं० ३१० में प्रकाशित करवाया। वह पद्य इस प्रकार है—

सकुच भरे अधखिले सुमनमें छिपकर रहता प्रेम-पराग।
नव-दर्शनमें मुग्ध, प्राणका होगा मूक मधुर अनुराग॥
भय-लज्जा, संकोच-सहम, सहसा वाणीका निपट निरोध।
वाचा-रहित, नेत्र-मुख अवनत, हास्य-हीन, बालकवत् क्रोध॥
जो उसने था किया, इसी स्वाभाविक रसका ही व्यवहार।
तो देना था तुम्हें चाहिये उसे हर्षसे अपना प्यार॥
हृदयंगम करना आवश्यक था वह सरल प्रणयका भाव।
नहीं तिरस्कृत करना था नवप्रेमिकका वह गूँगा चाव॥
प्रथम मिलनमें ही क्या समुचित है समस्त संकोच-विनाश।
क्या उससे वस्तुतः नहीं होता नवीन मधु-रसका नाश॥
नव कलिकाके लिये चाहना असमयमें ही पूर्ण विकास।
क्या है नहिं अप्राकृत और असंगत उससे ऐसी आस ?
क्या नव-वधू कभी मुखरा बन कर सकती प्रियसे परिहास।
क्या वह मूर्खा या संदिग्धा बन सह सकती मिथ्या त्रास ?
क्या वह प्रौढ़ा-सदृश खोल अवगुण्ठन कर सकती रस-भङ्ग ?
क्या बहने देती, मर्यादा तजकर, सहसा हास्य-तरंग ?

क्या 'मूकास्वादनवत्' होता नहीं प्रेमका असली रूप ?।
क्या उसमें है नहीं झलकता प्रेम-पयोधि गँभीर अनूप ?॥
क्या है नहीं प्रसन्न इष्टको मानस पूजा ही करती ?
क्या वह नहीं बाह्य पूजासे बढ़कर इष्ट हृदय हरती॥
यदि नव प्रेमिकने तुमको पूजा केवल मनसे ही नाथ ?
स्तम्भित, कम्पित, मुग्ध हर्षसे कह-सुन कुछ भी सका न नाथ॥
क्या इससे हे प्रेमिकबर प्रभु ! हुआ तुम्हारा कुछ अपमान !
क्या इसमें अपराध मानते सरल भक्तका हे भगवान !॥
यदि ऐसा है नहीं देव ! तो क्यों फिर होते अन्तर्द्धान ?
क्यों दर्शनसे वञ्चित करते, क्यों दिखलाते इतना मान॥
क्यों आँखोंसे ओझल होते, पता नहीं क्यों बतलाते ?
क्यों भक्तोंको सुख पहुँचाने नहीं शीघ्र सम्मुख आते ?

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११०२)

मार्गशीर्ष कृष्ण ३०। १९८४ को प्रात:काल सात बजे कुछ प्रेमी मित्रोंके साथ चरित्रनायकने मोटरकारमें बैठकर अपनी प्यारी जन्मभूमि शिलाँग जानेके लिये गौहाटीसे प्रस्थान किया। रास्तेमें कहा गरीब, दीन, दुखियोंके प्रति कड़ाईका व्यवहार करना बहुत ही हानिकर है। इसके बाद प्रेमीजनोंने ध्यानकी बात कहनेके लिये कहा। तब श्रीभाईजी व्यष्टि-समष्टिका अभेद वर्णन करते हुए बोले—समष्टिमें स्थित होकर नेत्र खुले हों तो ऐसे ध्यान करे कि ये सब वृक्ष, पहाड़, मोटर, शरीर जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह सब अपने समष्टि शरीरके अन्तर्गत है, यह बात अपने ज्ञाननेत्रोंद्वारा देखें। नेत्र बंद हों तो इन सबका अभाव करके अचिन्त्यका ध्यान करें अर्थात् मन बुद्धि आदि सबका अभाव करके अभाव करनेवाली वृत्तिको भी शान्त कर दे। इसके बाद जो रहे वही परमात्मा है। इतना कहकर मौन होकर सबलोग इसी प्रकार ध्यान करने लगे। श्रीरामजीदासजी बाजोरियाको उस दिन ध्यान बहुत अच्छा हुआ। इसके बाद प्रेमी जनोंके प्रश्न करनेपर जसीडीहमें मानसिक पूजाके बाद प्रसाद वितरणके समय जो ऋषि मुनि आये थे उनमेंसे व्यास, नारद, गरुड़, सनत्कुमार, हनुमान आदिके स्वरूपका वर्णन किया।

दिनमें लगभग एक बजे चरित्रनायक मोटरसे शिलांग पहुँचे। सब प्रेमीजनोंके आ जानेसे नियत स्थानपर सब लोग सत्संगके लिये एकत्रित हो गये तथा श्रीभाईजीने खड़े होकर मंगलाचरण तथा सबको प्रणाम करनेके बाद कहा—शिलांग मेरे लिये बड़ा प्रिय स्थान है, मेरे पूर्वज यहाँ रहे थे। मेरी माताका देहान्त यहीं हुआ था। मैं करीब २५-२६ वर्षके बाद सत्संगके सम्बन्धसे यहाँ आया हूँ। यहाँ आनेपर मेरे हृदयमें नये-नये भाव उत्पन्न हो रहे हैं, क्योंकि मेरी यह जन्मभूमि है। मैं यहाँ केवल एक सन्देश लेकर आया हूँ और वह है—"**श्रीभगवन्नाम।**" यह शास्त्रोंका कथन है, मेरा अनुभव है, महापुरुषोंका उपदेश है, अनेकों बड़े-बड़े महात्माओंके अनुभव हैं, श्रीभगवान्‌की दिव्य वाणी है और मेरा विश्वास है। वर्तमान समयके देशके सबसे बड़े दो नेता महात्मा गाँधी एवं महामना मालवीयजी भगवन्नामके बड़े कायल हैं। रामनामके सम्बन्धमें किसीको प्रमाण देनेकी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि राम नाम स्वत: प्रमाण है। इसलिये सब लोगोंको श्रीभगवन्नामका आश्रय अवश्य लेना चाहिये। इस घोर कलिकालमें नामके सिवाय और किसीका सहारा नहीं है, इत्यादि। नाम

महिमाके सम्बन्धमें बातें कहकर फिर सबके लिये कुछ नियम लेनेकी बात कही। संकीर्तन करते हुए सब लोग अपने डेरे पर आये। नित्य कर्मसे निवृत्त होकर गणेशदास श्रीराम गोयनकाके गोलेमें रसोई बनी थी वहाँ भोजन करके ठाकुरबाड़ीमें भगवान्‌के दर्शन, स्तुति, नमस्कार, भेंट, प्रदक्षिणा आदि करके साथवालोंसे एक-एक पद बुलवाकर श्रीभाईजीने यह पद गाया—

भज मन रामचरन सुखदाई।
जिहि चरननसे निकसी सुरसरि संकर जटा समाई।
जटासंकरी नाम पर्‌यो है, त्रिभुवन तारन आई॥
जिन चरननकी चरनपादुका भरत रह्यो लव लाई।
सोइ चरन केवट धोई लीने तब हरि नाव चलाई॥
सोई चरन संतन जन सेवत सदा रहत सुखदाई।
सोइ चरन गौतमऋषि नारी परसि परमपद पाई॥
दंडकबन प्रभु पावन कीन्हो ऋषियन त्रास मिटाई।
सोई प्रभु त्रिलोकके स्वामी कनक मृगा सँग धाई॥
कपि सुग्रीव बंधु भय-व्याकुल तिन जय छत्र फिराई।
रिपु को अनुज विभीषन निसिचर परसत लंका पाई॥
सिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक सेष सहस मुख गाई।
तुलसिदास मारुत-सुतकी प्रभु निज मुख करत बड़ाई॥

फिर अपना मनोहर भाषण प्रारम्भ किया जिसमें गीता, भागवत आदिके श्लोकोंका उद्धरण देकर भगवद्भक्तिको सर्वोपरि सिद्ध किया। भाषणके अन्तमें शबरी, वाल्मीकि, नारद आदिके उदाहरण भी दिये। तदनन्तर श्रीभगवन्नाम कीर्तन बड़े प्रेमसे किया गया। उन दिनोंके संकीर्तनका वर्णन करना सर्वथा असम्भव-सा है।

श्रीभाईजीने निवास स्थानपर पहुँचकर अपने भ्रमणमें साथ रहनेवाले प्रेमी मित्रोंसे कहा कि हम लोगोंको अपने व्यवहारमें जरा भी त्रुटि न होने देनी चाहिये, क्योंकि हम सभी इस समय श्रीभगवन्नाम प्रचारके उद्देश्यसे आये हुए हैं। अत: हमारे किसी भी बर्तावमें ढूँढ़नेपर भी छिद्र न मिलना चाहिये। छिद्र मिलनेसे लोगोंपर बहुत बुरा असर पड़ता है। मेरे व्यवहारमें भी, आप लोगोंको जो-जो त्रुटियाँ दिखलायी दें, मुझे जरूर बतलानी चाहिये। यह सब बातें श्रीभाईजीने बड़े ही नम्र शब्दोंमें कही जिसका सब लोगोंपर बहुत अच्छा असर हुआ।

मार्गशीर्ष शुक्ल १। ८४ को प्रात:काल गीता पाठ आदिके बाद भगवान्‌के ध्यान एवं मानसिक पूजाका श्रीभाईजीने बड़ा सुन्दर वर्णन किया। अन्तमें ध्यान करनेवाले साथियोंसे उनके ध्यानकी स्थिति पूछी गयी। श्रीरामजीदासजी जोर-जोरसे रोने लगे एवं अपने दोषोंका बखान करके पश्चात्ताप करने लगे। इसपर श्रीभाईजीने भगवान्‌के पतितपावन नामकी महिमा बताकर उन्हें सान्त्वना दी। मुझसे पूछा तो मैं कुछ भी न बोला क्योंकि मैं ध्यानकालमें भी श्रीभाईजीकी मधुर मूर्तिको ही त्राटककी भाँति टकटकी लगाकर देख रहा था फिर श्रीभाईजीने मोहनलालजी झुनझुनवालासे एकान्तमें बातचीत की जिसमें उन्होंने कहा कि आज मानसिक पूजामें श्रीभगवान्‌को पुष्प चढ़ाये गये। तब श्रीभगवान्‌ने वे पुष्प मुझे वापस कर दिये। उस समय मैंने विचार किया कि ये पुष्प किन्हें देने चाहिये, बहुत विचार करनेपर वे पुष्प गम्भीरचन्द दुजारीको ही दे दिये।

आज दोपहरमें 'कल्याण'के छठे अंकके लिये लेख लिखनेके उद्देश्यसे एकान्तमें बैठे। थोड़ी देर बाद दीपचन्दजी सरावगीके साथ हिन्दू अनाथालयके निरीक्षणके लिये गये। रात्रिमें बंगाली सज्जनोंके अपेरा हाउस (नाट्य घर) में भाषण दिया। कुछ बँगला भाषामें कहकर फिर हिन्दीमें पाश्चात्य सभ्यताके दोष बताकर भारतके उच्चादर्श आत्मधर्म गीता धर्मकी महानता बतलाते हुए श्रीभगवन्नामका आश्रय लेनेके लिये बड़े ही विनीत भावसे हाथ जोड़कर भिक्षा माँगी। अन्तमें अनाथाश्रमके बालकोंके कीर्तन प्रारम्भ करनेपर सबने मिलकर नृत्य करते हुए बड़ी मत्तताके साथ कीर्तन किया। हरि बाबूका प्रेम विशेष उल्लेखनीय था। निवास स्थानपर आकर वहाँके कई सज्जनोंको संध्यादि करनेके लिये कहा और अन्तमें मीरा आदिके पद श्रीभाईजी द्वारा कहे गये। इस प्रकार रातके ग्यारह बजे आजका कार्यक्रम समाप्त हुआ।

मार्गशीर्ष शुक्ल २। ८४ के प्रात:काल शिलांगसे मोटरमें बैठकर रवाना हुए। रास्तेमें श्रीभाईजीने मुझसे कहा कि यम-नियमके नाम बतलाकर उनका मतलब

समझाओ। मैंने योगदर्शनके सूत्र बोलकर उनका अक्षरार्थ कर दिया। तब श्रीभाईजीने सत्य, अस्तेय और ब्रह्मचर्यके सूक्ष्म भेद बतलाए। सत्यके सम्बन्धमें कहा जैसा देखा, सुना और निश्चय किया हो ठीक उसी प्रकार दूसरेको समझा देना सत्य है। सत्य बोलनेवाला छिपाव नहीं कर सकता। यदि कोई बात किसीसे न कहनी हो तो स्पष्ट कह देना चाहिये। सच्चा सत्यवक्ता तो ज्ञानकी छठी भूमिकामें ही हो सकता है। अस्तेयके सूक्ष्म भेद बतलाकर कहा कि सबसे बड़े चोर तो व्यापारी लोग हैं। ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें स्त्रीमात्रके दर्शनका निषेध करना चाहिये। यदि नजर चली जाय तो चरणोंसे ऊपर न जाय। एकान्तमें तो किसी भी स्त्रीसे बात ही नहीं करनी चाहिये। ब्रह्मचर्य आठ प्रकारसे खण्डन होता है उसके दो श्लोक बतलाये।

करीब साढ़े बारह बजे गौहाटी पहुँचकर अपनी सासुजीसे मिलकर स्टेशनपर आकर तिनसुकिया जानेवाली गाड़ीमें पन्द्रह प्रेमीजनोंके सहित श्रीभाईजी बैठ गये और रातके ९ बजेतक बातें होती रहीं। श्रीभाईजीने कहा कि एक बात बड़े जोरके साथ कही जा सकती है क्योंकि मुझे श्रीभगवान्‌के ऐसे ही वचन मिले हैं कि दंभ बड़ा भारी दोष है। कामी, क्रोधीसे भी बहुत अधिक दंभीकी दुर्गति होती है। इसपर किसीने प्रश्न किया—

प्रश्न—दंभी पुरुष यदि भगवान्‌का नाम लेता है तो उसकी क्या गति होगी?

उत्तर—दंभीकी तो दुर्गति ही होती है पर नाम लेते रहनेवालेका अंतमें दंभरूपी दोष दूर हो जाता है।

प्रात:काल ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर सबलोग मौन रहकर ध्यानादि नित्य कर्म मानसिक करके गीताजीके १० वें अध्यायका पाठ करानेके बाद श्रीभाईजीने कहा—'साधकको किसी भी बातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये क्योंकि चिन्तासे बड़ी हानि होती है। अत: चिन्ताको हृदयमें स्थान ही न दे। सत्संगकी बातें होकर वही मस्तीपूर्वक झाँझ करतालके साथ सब लोग उमंगसे हरि नाम संकीर्तन करने लगे। इधर तिनसुकिया स्टेशन आ जानेसे प्लेटफार्मपर ढोलक, झाँझ, करताल आदिके सहित प्रेमीलोग कीर्तन कर रहे थे।

मार्गशीर्ष शुक्ल ३। १९८४ को प्रात:काल तिनसुकिया स्टेशनसे सब लोग मिलकर बड़े मतवाले होकर जुलूस-सा बनाकर कीर्तन करते हुए सनेहीराम डूँगरमलजीकी दूकानपर गये। यह हमारे कीर्तनाचार्य श्रीडूँगरमलजी लोहियाके व्यापारका प्रधान केन्द्रस्थान है। अस्तु।

श्रीभाईजी नित्य कृत्योंसे निवृत्त होकर एकान्तमें बैठकर 'कल्याण' के छठें अंकके लिये 'श्रीभगवन्नाम' शीर्षक लेख प्रारम्भ करके एक दूसरा लेख भी लिख दिये। कल्याण सम्बन्धी कई पत्र भी लिखे।

दोपहर और रातके समय वहाँके गोविन्दभवनमें सत्संग सम्बन्धी वार्तालाप हुआ। बीच बीचमें खड़े होकर मधुर नृत्यके साथ संकीर्तन भी हुआ। नाम महिमाके सम्बन्धमें कुछ विलक्षण ढंगसे ऐसे कहा कि मैं तो इस सम्बन्धमें महीनोंतक कहूँ तो तृप्त नहीं हो सकता, किन्तु आप लोग उकता जायँगे। इसलिये यही कहता हूँ कि नामके सामने और सब बातें फीकी हैं। जिसने श्रीभगवान्‌के एक नामका आश्रय ले लिया उसने सब कुछ कर लिया। इसके सिवा नियमोंके पालनपर जोर देते हुए रात्रिको साढ़े ग्यारह बजे अपना भाषण समाप्त किया।

श्रीडूँगरमलजी इतने प्रेमी थे परन्तु नियमानुसार सब स्थानोंकी भाँति (अपने घरपर भोजन कराकर) भोजनके सामानकी कीमत लेनेमें जरा भी संकोच नहीं किया। क्योंकि ये स्वयं भ्रमणमें साथ रहकर सब नियमोंका विशेषरूपसे पालन करनेवाले थे।

मार्गशीर्ष शुक्ल ४। ८४, सोमवारके प्रात:काल तिनसुकियासे रवाना हुए। गाड़ीमें और लोग तो कीर्तन करने लगे परन्तु श्रीभाईजीने अपने किये हुए श्रीमद्भगवद्गीताके गुजराती अनुवादको हिन्दीसे मिलानेके लिये मुझसे कहा तुम हिन्दी बोलते जाओ मैं अनुवाद देखता जाऊँगा। मैंने वैसे ही किया। थोड़ी देरमें पानीतुला स्टेशन आनेपर सैकड़ों प्रेमी गाड़ीके दोनों ओर खड़े हो गये और चरित्रनायकको वहाँ उतरनेके लिये कहा। परन्तु इनका प्रोग्राम गीता-जयन्तीपर कलकत्ते पहुँचनेका बन चुका

था इसलिये नम्रतापूर्वक उनसे क्षमा याचना की। तब स्टेशन मास्टरने गाड़ीको दस मिनट लेट करके श्रीभाईजीके द्वारा नाम महिमाके सम्बन्धमें कुछ अमूल्य शब्द सुनकर, सब लोगोंने खूब प्रेमसे कीर्तन किया। यही हाल चबुआ स्टेशनपर रहा। चलती हुई रेलमें दो अध्याय गुजराती गीता-अनुवादके मिलाये गये।

दोपहरमें डिबरूगढ़ स्टेशन आनेपर सब लोग वहाँ उतर गये। स्टेशनसे बाजारमें होते हुए सब लोग संकीर्तन करते हुए धर्मशाला पहुँचे। वहाँ कुछ सत्संग चर्चा होनेके बाद ठाकुरबाड़ीमें जाकर भगवान्‌के दर्शन, स्तुति, भेंट, दण्डवत्, प्रणाम, प्रदक्षिणा आदि करके गीताजीके ग्यारहवें अध्यायका पाठ एवं संकीर्तन होनेके बाद श्रीभाईजीका भाषण होकर पुनः कीर्तन करके सायंकालके समय ब्रह्मपुत्रके किनारे रेतीमें बैठ गये। वहाँका दृश्य बड़ा ही मनोहर था। इसलिये वहाँ नित्यकर्मके सिवा बहुत देरतक सत्संगकी बातें होती रहीं। रात्रिमें सरावगियोंके मन्दिरमें जाकर फिर ठाकुरबाड़ीमें आकर कीर्तनके बाद नाम महिमाके सम्बन्धमें कुछ रसीली बातें कहकर उपस्थित लोगोंसे विनयपूर्वक प्रार्थना करके कहा कि आप लोग मुझपर तथा श्रीभगवान्‌पर दया करके श्रीभगवान्‌का नाम लीजिये और देखिये उससे कितना लाभ होता है। अंतमें ढोलक, सितार आदि साज सामानके साथ बड़े जोरोंसे संकीर्तन हुआ, नृत्य करते हुए कोई-कोई तो गिर पड़े। लगभग ग्यारह बजे कीर्तन समाप्त हुआ।

श्रीभाईजीने फिर कहा—तुम्हारेसे शिलांगमें ध्यान कराया था उस दिनकी एक गुप्त बात कहनी है तथा वैसी ही आज भी बातें करनी है। चलो, धर्मशाला चलकर करेंगे। तब मैं बोला—रात्रि बहुत अधिक हो गई है। अब सोना चाहिये। इसपर श्रीभाईजी बोले—'आजकी तुम अपनी बात बतलाओ।' तब मैंने कहा—'इन दिनों नाम-स्मरण कुछ कम होने लगा है इसलिये मौन रहकर कुछ समय एकान्तमें बिताकर भजन करनेकी इच्छा हो रही है।' तब भाईजीने कहा—'अच्छा, एकान्तमें तुमसे कुछ बात करनेके पश्चात् देखा जायगा। करीब बारह बजे श्रीभाईजी सो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल नित्य कर्मसे निवृत्त होकर एकान्तमें बैठकर श्रीभाईजीने कई सज्जनोंको पत्र लिखे जिनमें कुछके नाम ये हैं—(१) श्रीबालकृष्णजी पोद्दार (२) श्रीजमनालालजी बजाज (३) श्रीहरिभाउजी उपाध्याय (४) श्रीरामनारायणजी चौधरी इत्यादि।

श्रीबजाजजीके पत्रमें लिखा—××× त्यागभूमि अच्छा निकला है, परन्तु इसमें भगवन्नाम और भगवद्भक्तिको भी पूरा स्थान मिलना चाहिये। गीताधर्म और श्रीभगवन्नामके बिना सच्चा सुधार होना बड़ा कठिन है। परम पूज्य बापूजीसे (महात्मा गाँधीजीसे) मुलाकात होनेपर जिक्र करनेको लिखा सो आपने किया होगा। उनसे और काका कालेलकरजीसे मेरा हार्दिक प्रणाम कहना चाहिये। काका साहब 'कल्याण'के लिये कुछ लिखें तो बड़ी कृपा हो। ×××

श्रीबालकृष्णजी पोद्दारको पत्र दिया जिसमें भगवद्दर्शनके महत्त्वकी बातें लिखी गयीं, इसलिये उस पत्रके अंशकी कुछ नकल यहाँ उद्धृत की जाती है—

भगवत्सम्बन्धमें आपके प्रश्नका मैं इस समय विशेष व्यौरेवार उत्तर देनेमें असमर्थ हूँ। यह विषय वास्तवमें गोपनीयसे भी परम गोपनीय हुआ करता है। ऐसी बातोंके विस्तार पानेसे उल्टी मर्यादा घटनेकी संभावना समझी जाती है। ऐसी किसी बातका प्रकाशन और प्रचार उसके जीवनकालमें न होना ही अच्छा रहता है। मरनेके बाद हो तो कोई आपत्ति नहीं, बल्कि उससे लोगोंको लाभ ही होता है। कई भक्तोंकी ऐसी विलक्षण बातें तो उनके मरनेके बाद भी प्रकाशित नहीं होती। क्योंकि वे अपने जीवनकालमें इसे इतना गुप्त रखते हैं कि सर्वज्ञ परमात्मा और उनके सिवाय तीसरा कोई जानता ही नहीं। प्रेमी और प्रेमास्पदकी गुप्त क्रीड़ाएँ प्रकाश करनेकी चीज नहीं हुआ करतीं। जिनको ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसको प्रकाशित करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती। प्रकाशन केवल दो ही कारणोंसे हो सकता है। (१) जगत्‌के लाभके लिये, और (२) जगत्‌से मान, बड़ाई, पूजा प्राप्त करनेके लिये। इनमेंसे जो

दूसरे उद्देश्यके लिये इस बातका प्रकाश करता है उसे या तो परमात्माके दर्शन कभी हुए ही नहीं, वह मिथ्या भाषण करता है अथवा वह उसका महत्त्व नहीं समझता। जिसको ऐसा महान् सौभाग्य मिल जाता है वह जगत्से मिलनेवाली मान-बड़ाई क्यों चाहेगा? उसे जो ऊँचे-से-ऊँचा मान मिला है क्या उससे भी ऊँचा कोई मान है? जगत्की मान बड़ाई तो तुच्छातितुच्छ है, उसकी तरफ तो वह आँख उठाकर भी नहीं ताकता। जगत्के मानापमानकी उसे परवाह नहीं होती। 'वह तो विभोर रहता है अपने प्रेमीके मिलनकी मस्तीमें।' वास्तवमें उसकी दृष्टिमें केवल उसका एक प्रियतम ही बच रहता है और कोई रह ही नहीं जाता, तब वह मान बड़ाई किससे और कैसी चाहे?

उत्तमके अस बस मन माहीं।
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥

रही 'जगत्के लाभकी बात' सो यह भी उसे गुप्त रहस्य-प्रकाशनसे ही नहीं होता। यह तो संभव नहीं कि वह पापी, पुण्यात्मा, तर्की, कुतर्की, बुरे, भले सबको ईश्वरके प्रत्यक्ष दर्शन करवा दे क्योंकि ईश्वर कोई उसके इशारेपर नाचनेवाली कठपुतली नहीं है। दूसरे ऐसा नियम भी नहीं है कि सबको प्रत्यक्ष हो जाय और यदि ऐसा हो भी जाय तो मानता कौन है। भगवान श्रीकृष्णजीने दुर्योधनकी राजसभामें सबके सामने अपना विराट रूप दिखलाया। जाननेवाले उसे देखकर मुग्ध हो गये। अविश्वासी दुर्योधनने कहा कि 'यह मायावीकी माया है, जादू है' उसने विश्वास नहीं किया।

जब साक्षात् भगवान्को ही लोग भगवान् मानना स्वीकार नहीं करते, तब यदि कोई अपने मुँहसे कहे कि मेरे साथ कोई ऐसी घटना हुई है तो उसकी बात कौन मानेगा? सन्देह, शंका, कुतर्क, व्यंग्य और खण्डन करनेवाले बहुत मिल सकते हैं। यद्यपि उसे सन्देहसे लेकर कुतर्क पर्यन्त किसी भी बातका भय या परवाह नहीं है, तथापि इसमें उसके प्राणाधिक प्रियतमका तिरस्कार होता है। ऐसी भावनासे भी वह ऐसी गुप्त बातें प्रकाशित नहीं करता। कर दे तो वास्तवमें उसका या उसके प्रियतमका वस्तुतः किसी भी कालमें कोई नुकसान नहीं होता परन्तु कई कारणोंसे लोगोंको नुकसान पहुँच जाता है। इससे कहना नहीं बन पड़ता और न इन बातोंके कहनेसे जगत्का लाभ ही सब जगह होता है। अधिकांश सुनने और पूछनेवाले कौतूहलसे ही पूछना चाहते हैं। बात सुननेके बाद कुछ तर्क वितर्कके बाद कौतूहल शान्त हो जाता है। नाटकके ड्राप सीनकी भाँति खेल खत्म हुआ, इससे प्रायः ऐसी महान् घटनाओंकी अवमानना ही होती है। इस कारणसे किसी भी साधारण हेतुसे इस सम्बन्धमें कुछ कहा नहीं जाता। इतनी बातें आपके सन्तोष और इस विषयका नियम बतलानेके उद्देश्यसे लिखी गयी हैं।

××× अभी तो केवल इतना ही आपको लिखा जा सकता है कि यदि आप उचित समझें तो आपको इस बातपर विश्वास करना चाहिये कि तीव्र आकांक्षा और साधना होनेपर भगवत्कृपासे किसीके लिये भी ऐसा होना सम्भव है।

एक अनुरोध और, वह है जोरके साथ। कृपापूर्वक भगवान्के नामका स्मरण आप जितना बढ़ा सकें उतना ही बढ़ाना चाहिये। इससे सब कुछ हो सकता है। नाम स्मरण होना चाहिये विशुद्ध प्रेम भावसे ही। कहीं कामनाका कलंक न रह जाय।

यह पत्र प्राइवेट है इसे पढ़कर या तो लौटा देना चाहिये या अपने पास अलग सुरक्षित रखना चाहिये अथवा फाड़कर फेंक देना चाहिये। दूसरे लोग नहीं पढ़ें तो ठीक है।

पत्र लिखनेके बाद रुक्मानन्दजी नवलगढ़िया आ गये। तब उनसे बहुत देरतक प्रश्नोत्तर होते रहे। फिर भोजनादि करके कल्याणके सम्बन्धमें कई पत्र लिखकर बीचके बाजारमें सत्संगके लिये गये। वहाँ गीतापाठ एवं कीर्तनके बाद व्याख्यानमें कहा कि भवरोगसे छूटनेके लिये हरिनामरूप औषध-पान, दैवी-सम्पत्तिरूपी सुपथ्य-सेवन और पाप कर्मरूपी कुपथ्यका त्याग करना चाहिये। फिर स्त्री-धर्मपर भाषण देकर रास्तेमें कई जगह मिलकर नित्य कर्मके लिये ब्रह्मपुत्रके किनारे गये। आते

समय प्रेत तथा पितर सम्बन्धी बातें हुई।

मार्गशीर्ष शुक्ल ५। ८४ रात्रिके समय विद्यालयमें गीतापाठ, व्याख्यान एवं संकीर्तन होनेके पश्चात् लॉरीमें बैठकर करीब नौ बजे वहाँसे रामसभामें गये। सारे रास्ते लॉरीमें संकीर्तन होता रहा। वहाँ पहुँचनेपर दोनों तरफके प्रेमी सज्जन मिलकर दिल खोलकर भागवतके ११वें स्कन्धके २ अध्यायके ४० वें श्लोकके अनुसार खूब जोर जोरसे संकीर्तन हुआ। तत्पश्चात् नाम महिमाके सम्बन्धमें श्रीभाईजीका कुछ देर प्रवचन होनेके बाद फिर रात्रिके १-१॥ बजेतक तुमुल ध्वनिसे संकीर्तन हुआ। रामसभावालोंके संकीर्तनका उत्साह बड़ा ही प्रशंसनीय था। उन्हें शरीरकी कुछ भी सुध-बुध नहीं थी। नाम-संकीर्तन हो जानेके पश्चात् पद-संकीर्तन होता रहा।

मार्गशीर्ष शुक्ल ६। ८४ प्रात:काल रामसभासे लॉरीमें बैठकर गणेशबाड़ी जाकर हनुमानबक्षजी सूरजमलके गोलेमें ठहरे। वहाँ नित्य कर्म किया। श्रीहनुमानवक्षजीको भजन करनेवालोंका भोजन सम्बन्धी नियम सुनकर बड़ा दु:ख हुआ। और जगह तो समझाने बुझानेसे लोग मान जाते थे किन्तु ये तो अड़ ही गये। तब श्रीभाईजीने बड़े प्रेमसे कहा—हम लोगोंने प्रचारके लिये २० नियम बनाये हैं, यदि उन्हें तोड़ देना आप उचित समझें तो कोई आपत्ति नहीं, किन्तु जगत्के हितकी दृष्टिसे आपको कष्ट भी सहना चाहिये। क्योंकि अभी तो भारतवर्षमें ही श्रीभगवन्नामके प्रचारके लिये भ्रमण किया जा रहा है यदि आवश्यकता हो तो यूरोप, जापान आदि विदेशोंमें भी प्रचारके लिये जाना पड़े तो वहाँके लिये तो और भी कठिन नियम बनाने पड़ेंगे। आपको जो कष्ट हो रहा है उससे हमें भी कष्ट होता है, पर चैतन्य महाप्रभुने तो जगत् हितके लिये अपनी पूजनीया माँ और स्त्रीको उनकी आज्ञा लेकर छोड़ दिया था। श्रीरामचन्द्रजीने सीताको लक्ष्मणके साथ सदाके लिये वनमें भेज दिया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोपाङ्गनाओंके साथ जो लीलाएँ की थीं उनके अनिर्वचनीय आनन्दको अनुभव करके सदाके लिये उनसे दूर रहने लगे। क्या इन्हें कम दु:ख हुआ होगा? परन्तु जगत्के मंगलके लिये यह सब करना पड़ा। इत्यादि बातें बड़े प्रेमसे हुईं, जिसे सुनकर उन्हें सन्तोष हो गया। तत्पश्चात् भोजन करके ११ बजेसे एक बजेतक सत्संगकी चर्चा हुई। अन्तमें संकीर्तन होकर गणेशबाड़ीसे लॉरीमें बैठकर सारे रास्ते संकीर्तन करते हुए पाणीतुला आकर चुन्नीलाल पन्नालालके गोलेमें ठहरे। वहाँ पाँच बजेके लगभग व्याख्यान हुआ फिर नाम जपकी मालाएँ लिखवाकर वहाँसे शामको रवाना होकर तिनसुकिया पहुँचे। कहना नहीं होगा कि तिनसुकियातक रास्ते भर कीर्तन होता रहा। तिनसुकिया पहुँचनेपर एक तार मिला जो गोविन्दभवन वालोंने कलकत्तासे दिया था जिसमें लिखा था कि गीता जयन्तीके पहले कलकत्ता आना चाहिये। विचार करनेपर यही निश्चय हुआ कि शुक्ला दशमीको कलकत्ता पहुँच जाना चाहिये।

फिर नित्य कर्मादि करके रातके ९ बजेसे १० बजेतक व्याख्यान देकर तथा संकीर्तन करके बैठ गये। वहाँके लोगोंने बहुत कहा सुनी करके एक-दो दिन और ठहरनेके लिये आग्रह किया। तब कहा कि इस समय तो गीता जयन्तीके पहले कलकत्ता जाना है फिर कभी आना होगा तो आप लोगोंको सन्तुष्ट करके जायँगें।

मार्गशीर्ष शुक्ल ७। ८४ प्रात:काल खूब जल्दी उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त होकर कुछ खा-पीकर शिवसागर जानेके लिये रवाना होकर रेलके डिब्बेमें बैठकर गाड़ी चलनेपर संकीर्तन गीतापाठ होनेके पश्चात् सत्संगकी बातें हुईं। करीब ग्यारह बजे गाड़ी बदलकर एक बजे शिवसागर पहुँचे। वहाँपर स्टेशनसे ही कीर्तन करते हुए बाजारमें पहुँचे। वहाँ थोड़ी देर संकीर्तन करके श्रीभाईजीने खड़े होकर व्याख्यान प्रारम्भ किया। गीता जयन्तीके महत्त्व एवं भगवन्नाम-महिमापर कुछ देर भाषण देकर साधारण नियम बतलाकर मोटरमें बैठकर नाजरे गये। वहाँ गौशालाके स्थानमें भोजन करके गोलेमें नाम महिमाके सम्बन्धमें सत्संग होकर संकीर्तन हुआ, फिर मोटरसे स्टेशन पहुँचकर कीर्तन प्रारम्भ किया। गाड़ी आनेपर उसमें सब लोग बैठ गये।

मार्गशीर्ष शुक्ल ८। ८४ को प्रात:काल छापर

पहुँचकर वहाँसे गाड़ी बदली करके नौगाँव जानेवाली गाड़ीमें बैठ गये। तब श्रीरामजीदासजीने प्रश्न किया कि श्रीभगवान्‌के चरणोंके नीचे कमल है उसका रंग रूप कैसा है?* श्रीभाईजीने उत्तरमें उसके रंगका संक्षिप्त वर्णन करके कहा कि उस समय जसीडीहमें श्रीभगवान्‌के मुखारविन्द और चरणोंके सिवाय किसी अन्य वस्तुकी तरफ लक्ष्य भी नहीं जाता था। एक-दो बार दूसरे अंगोंकी ओर लक्ष्य गया था। चारों तरफ प्रकाश-ही-प्रकाश रहता है। उसी प्रकाशको चीरकर उसमें एक मूर्ति दिखलाई देती है। तदुपरान्त मैंने प्रश्न किया—'मूर्तिकी जगह प्रकाश कुछ अधिक प्रतीत होता है या सामान्य ही?'

श्रीभाईजीने उत्तर दिया—उस जगह प्रकाशके भीतर ही एक (प्रकाश पुंज) मूर्ति अलग प्रतीत होती है।

फिर मैंने प्रश्न किया—उस मूर्तिसे सर्वत्र प्रकाश निकलकर फैल रहा है या कैसे?

श्रीभाईजीने उत्तर दिया—प्रकाश तो सामान्य रूपसे सर्वत्र ही व्यापक है।

इसके बाद करीब दससे ग्यारह बजेतक गाड़ीके डिब्बेमें सब लोगोंने झाँझ करतालके साथ खूब जोर-जोरके साथ संकीर्तन किया। इधर डब्बेमें कीर्तन हो रहा था और उधर नौगावाँ स्टेशनके प्लेटफार्मपर बंगाली मंडली बड़े जोरोंके साथ कीर्तन करती हुई आई। दोनों दल मिलकर सैकड़ोंकी संख्यामें गगनभेदी तुमुल ध्वनिसे नगर कीर्तन करते हुए आकाशको वहाँकी धूलिसे व्याप्त करके दो मील चलनेके बाद १२॥ बजेके लगभग मेघराजजी रामचन्द्रके गोलामें पहुँचे। वहाँ नृत्यके साथ आधे घण्टेतक कीर्तन होता रहा। फिर पसीना सूख जानेपर १॥ बजे भोजनादि करके गोविन्दभवन कलकत्ताको इस आशयका तार दिया कि गीता जयन्तीके जुलूसके लिये एक बंगाली कीर्तनकारोंकी मंडलीका प्रबन्ध करो। इसके बाद कल्याणके प्रथम वर्षके प्रथमांकमें आये हुए 'भगवत्कृपा और भक्त' शीर्षक लेखको पढ़नेके लिये मुझे कहा। मैंने वह लेख पढ़ना प्रारम्भ किया। बीच बीचमें श्रीभाईजी उसकी व्याख्या करते रहे। फिर श्रीभाईजी एकान्तमें जाकर एक कविता गीताजीपर लिखने लगे। इतनेमें बंगाली कीर्तनकारोंकी मंडलीने आकर बड़े जोरोंसे कीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया जिससे उस कविताको बीचमें ही छोड़कर उन्हें कीर्तनमें आना पड़ा। फिर ३॥ बजेसे ४॥ बजेतक बँगलामें श्रीभाईजीने व्याख्यान दिया। तत्पश्चात् मैदानकी तरफ घूमने जाते समय रास्तेमें बातें हुईं। साथवाले लोगोंने पूछा आप श्रीजयदयालजीको क्या मानते हैं? तब श्रीभाईजी बोले मैं उन्हें न तो अवतार ही मानता हूँ और न कारकपुरुष ही। मैं उन्हें बहुत अच्छा पुरुष मानता हूँ। इसपर लोगोंने बहुत आग्रहपूर्वक पूछा कि कुछ खुलासा कहिये। तब श्रीभाईजीने कहा और कोई बात पूछनी चाहिये। लोगोंने कहा कि आप ही कहिये। श्रीभाईजी बोले—'जसीडीहमें एक दिन श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीका चेहरा उदास था तब मैंने श्रीगोयन्दकाजीसे कहा कि आज तो दुजारीजीका चेहरा उदास है। तब उन्होंने दुजारीजीको एकान्तमें ले जाकर पूछा तब उसने कहा महापुरुषोंकी इतनी अधिक दया है कि जिसकी तुलना भी नहीं हो सकती। इतनी दया होते हुए भी न तो मेरा साधन ही बढ़ता है और न उनमें प्रेम ही होता है। तब वे बोले कि इसके लिये उदास नहीं होना चाहिये क्योंकि कोई व्यक्ति समुद्रमें डूब रहा उसको कोई नाविक हाथ पकड़कर जहाजमें बिठा ले तो फिर उसे चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है?'

कोई व्यक्ति श्रीगंगाजीके दर्शन करनेके लिये खूब तेजीसे दौड़ रहा है और श्रीगंगाजी वहाँसे १०-२० कोस ही दूर रह गई हैं। तब वह बीचमें लोगोंसे पूछे कि अब श्रीगंगाजी कितनी दूर हैं तो उसे बात करनेमें जो समय लगा वह पहुँचनेमें विलम्ब हुआ। उसे तो तेजीके साथ दौड़ते ही रहना चाहिये जिससे गंगाजीके समीप शीघ्र से शीघ्र पहुँच सके। इसी प्रकार साधकको भगवत्प्राप्तिके लिये साधन करते ही रहना चाहिये। इस दृष्टान्त और

* जसीडीहमें श्रीभाईजीको विष्णु भगवान्‌के दर्शन हुए थे उस समयके कमलके रंगको जाननेके लिये प्रश्न किया गया है।

उस दृष्टान्तमें इतना अन्तर है कि गंगाजीके पासतक जानेवालेको गंगाजी मिलेंगी किन्तु भगवान्की प्राप्तिके लिये साधक जितना उनके समीप जाता है श्रीभगवान् भी उसके समीप उतने ही पास आते हैं। इसलिये उसे परिश्रम न होकर बीचमें ही श्रीभगवान् उसे मिल जाते हैं। ऐसी बातें कहकर उन्होंने मुझको चिन्ता न करनेके लिये कहा तब मेरे चेहरेपर खूब आनन्द प्रतीत होने लगा। अत: साधकको भगवत्प्राप्तिके लिये खूब तेजीसे साधन करना चाहिये; चिन्ता तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। इसके बाद भाईजीने कहा—छोटा बालक जैसे मातापर निर्भर रहता है वैसे ही साधकको श्रीभगवान्पर निर्भर रहना चाहिये।

जसीडीहकी घटनाका सबको विश्वास नहीं होता। कई लोग कहते हैं कि हमें तो दिखाओ तब विश्वास हो। लेकिन ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि जो साधन करते हैं और श्रीभगवान्के दर्शनोंकी बातमें विश्वास रखते हैं उन्हें दर्शन न देकर अविश्वासियोंको यदि श्रीभगवान् दर्शन दे दें तो यह न्याय नहीं कहा जा सकता। वास्तवमें सबको दर्शन देनेका भगवान्के यहाँ नियम ही नहीं है। जिसको दर्शन देनेकी योग्यता होती है उसे वे स्वत: ही दर्शन दे देते हैं। उनकी इतनी विलक्षण दया है कि लोग उसका अनुमान ही नहीं कर सकते। इत्यादि बहुत रहस्यपूर्ण बातें हुईं। इसके बाद सूरजमलजी नामक एक सज्जनसे कहा कि आपके पुत्रका देहान्त होनेपर भी आप चिन्ता नहीं करते हैं यह आपपर भगवान्की बड़ी कृपा है। भगवान्की कृपासे ही दु:ख प्राप्त होते हैं। उस समय जो पुरुष उन्हें सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं उसको किंचित् भी कष्ट प्रतीत नहीं होगा।

रात्रिमें आठ बजे नौगाँव की ठाकुरबाड़ीमें जाकर श्रीभगवान्के दर्शन, स्तुति, भेंट, प्रणाम और परिक्रमा करनेके बाद सत्संग होनेके पहले, मारवाड़ी एवं बंगाली सज्जनोंका संकीर्तन हुआ। बादमें श्रीझूँगरमलजी लोहियाका एक भजन—'दलाल खड़ा है सौदा तो कर लो हरि के नामका' हुआ।

इसके पश्चात् श्रीभाईजीने अपने भाषणमें वैराग्यके सम्बन्धमें बड़ा ही मार्मिक विवेचन करके बीचमें '**भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम् मूढ़मते**' का कीर्तन कराके नाम महिमापर कुछ जोशीले शब्द कहकर श्रोताओंको हरिनाम लेनेके लिये उत्साहित किया। अन्तमें सबसे नित्य नियमपूर्वक प्रणाम, पूजा, संध्या, सत्संग और मालाके द्वारा भगवन्नाम जपके लिये प्रार्थना करके लोगोंने नियम लिये। उसके लिये उनका आभार मानते हुए अन्तमें कीर्तन कराके सूरजमलजीके घरपर जाकर कुछ देर सत्संग चर्चा करके आजका कार्यक्रम समाप्त किया। डेरेपर जाकर करीब १॥ बजे सोनेके लिये मैंने श्रीभाईजीसे पूछकर कम्बल आदि बिछा दिये तब सो गये।

मार्गशीर्ष शुक्ल ८-९। ८४ को नौगाँवमें प्रात: ३॥ बजे ही श्रीभाईजी उठ गये। तब मैंने कहा अभी बहुत जल्दी है, थोड़ी देर बाद उठा जाय तब भी कोई हर्ज नहीं है। इसपर १५ मिनट बाद उठ गये और सब लोग अपना-अपना सामान बाँधकर साढ़े चार बजे बैलगाड़ीमें सामान रखकर उसी समय कीर्तन करते हुए स्टेशन पहुँचे। वहाँ शौच स्नानादि करके संध्यादि नित्य कर्म करते हुए श्रीभाईजीने मुझसे गोपी चन्दन लेकर अपने ललाटमें गोपीचन्दनकी गोल टीका दे ली। श्रीभाईजी नित्य प्रति गोपी चन्दनकी टीका ही दिया करते थे।

इसके बाद श्रीभाईजीने मुझसे कहा साथ चलनेवालोंके नाम लिखकर टिकट मँगा लो। तब मैंने तत्काल नाम लिखकर टिकट मँगा लिये। इतनेमें गाड़ी प्लेटफार्मपर आ गई और डिब्बोंमें सामान रख दिया गया। प्लेटफार्मपर वहाँके आये प्रेमीजनोंने बड़ी नम्रतापूर्वक श्रीभाईजीसे कहा कि जैसे पिता अपने पुत्रोंको व्यापार करनेके उद्देश्यसे दूकान खुलाकर दूकानका काम उसके जिम्मे करके चला जाता है। बीचमें बालकोंके द्वारा दूकानके काममें शिथिलता आनेपर वह पुन: वहाँ जाकर दूकानका काम सँभालने आकर उन्हें उत्साह दिलाता है वैसे ही आप लोगोंने हम लोगोंपर पूर्ण कृपा करके यहाँ पधारकर हमें सँभाला है। यद्यपि हमारी इच्छा आपको तीन-चार दिन ठहरानेकी थी परन्तु अवकाश न होनेसे आप विशेष ठहर न सके इसलिये हमलोगोंकी आपसे हार्दिक प्रार्थना है कि कृपापूर्वक यहाँ पुन: शीघ्र पधारकर हमारी सुधि लेते रहिये। इसके उत्तरमें श्रीभाईजीने बड़े प्रेमसे उन

लोगोंकी प्रशंसा करते हुए कुछ सत्संगकी बातें कहकर **'परम मधुर युगल नाम, राधे कृष्ण सीताराम॥'** का सामूहिक संकीर्तन प्लेटफार्मपर सैकड़ों आदमियोंके साथ उस शीतकालके समय प्रारम्भ किया। थोड़ी देरमें गाड़ी चलने लगी। तब—**'रघुपति राघव राजा राम। पतित पावन सीताराम।'** का संकीर्तन प्रारम्भ हो गया और श्रीभाईजी डिब्बेमें श्रीसूरजमलजीके समीप आकर बैठ गये। फिर बोले कि संसारकी तरफ वृत्तियाँ जायँ तो उन्हें उधरसे हटाकर श्रीभगवान्‌की तरफ इस प्रकार लगाना चाहिये जैसे श्रीगंगाजीके प्रवाहमेंसे किसी दूसरी तरफ जल ले जाना हो तो दो बातें साथ करनी पड़ेंगी। एक तो जिस तरफ गंगाजीका प्रवाह जा रहा है उस तरफ खूब मजबूत बाँध बाँधना होगा और दूसरी बात यह करनी होगी कि जिस तरफ पानी ले जाना है उस ओर बहुत लम्बी दूरतक नहर खोदनी पड़ेगी। इसी प्रकार वृत्तियोंको संसारसे हटानेके लिये एक तो दृढ़ वैराग्य रूपी बाँध बाँधना होगा जिससे संसारकी तरफ वृत्तियाँ जायँ ही नहीं और दूसरी बात श्रीभगवान्‌की ओर ले जानेके लिये सत्संग, भजन, स्वाध्याय, पूजा, पाठ आदि अभ्यास खूब तेजीसे करना होगा क्योंकि जिसके चित्तकी वृत्तियाँ भगवदभिमुखी नहीं हैं उन्हें भगवत्प्राप्ति होना दुष्प्राप्य है।

इसपर शरीररूपी रथका दृष्टान्त देकर खुलासा समझाया कि शरीर रथ है, विषयरूपी सड़कें हैं, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धिरूपी सारथी है और जीव रथी है अर्थात् रथमें बैठकर विचरण करनेवाला है। जब जीव संसारमें विचरण करनेके लिये ही आया है तब बुद्धिरूपी सारथीका यह परम कर्तव्य है कि इन्द्रियाँरूपी घोड़ोंको मनरूपी लगामके द्वारा वशमें रखकर भगवद्धाममें जानेके लिये उत्तम से उत्तम जो मार्ग है (जैसे नाम, रूप, लीला, भजन, ध्यान, स्वाध्याय, सत्संग, पूजा, पाठ आदि सुन्दर मार्ग हैं) उन्हीं मार्गके द्वारा जीवात्माको भगवद्धाम रूपी निज निकेतनमें ले जाना चाहिये। क्योंकि रथी—जीवात्मा तो अपने असली स्थानपर जाना चाहता ही है। इत्यादि बातें होते होते छापर स्टेशनपर गाड़ी बदली करके दोपहरमें करीब साढ़े ग्यारह बजे गौहाटी स्टेशनपर उतरकर श्रीभाईजी तो अपने श्वसुर श्रीसीतारामजीके घरपर चले गये और सब लोग गणेशदास श्रीराम गोयन्दकाके गोलेमें भोजन करके तैयार हो गये। तब श्रीभाईजीने मुझसे कहा कि देखो मोटर इधर लाते हैं या अपनेको वहाँ चलना है। तब मैं तत्काल निगाह करके आया और बोला कि लोग वहीं आनेके लिये कहते हैं।

तब श्रीभाईजी भी डेरेपर जाकर करीब दिनके एक बजे सबके सहित लॉरीमें बैठकर कीर्तन करते हुए जहाजके स्टेशन पांडुघाटपर पहुँचे। वहाँसे जहाजमें बैठकर कुछ गीता-सम्बन्धी वार्तालाप करते हुए लगभग सवा दो बजे एमीनघाट इसपार जहाज लगा और सामान रेलके डिब्बोंमें रखकर मोहनलालजी झुंझुनूवालासे बात करनेके लिये अलग डिब्बेमें बैठ गये। साथमें मुझे भी ले लिया। मोहनजीसे जल्दी ही बात समाप्त करके मुझसे बहुत देरतक एकान्तमें बातें की।

रातके चार बजे उठ गये। प्रात:काल ६ बजे गाड़ी बदलनी पड़ी। फिर सब मिलकर कीर्तन करने लगे। बादमें श्रीगीताजीके १८ वें अध्यायका आगे पीछे पूरा पाठ किया गया। तत्पश्चात् सत्संगकी बातें कहते हुए श्रीभाईजीने कहा—'सबको दूसरोंके दोष न देखकर अपने दोषोंको विशेष रूपसे देखना चाहिये।' इसके बाद कलकत्ता समीप आ जानेके कारण सब लोग सामान सँभालने लग गये।

यह सब घटनाएँ जो लिखी जा रही हैं—इन पंक्तियोंके क्षुद्र लेखकने हर समय चरित्रनायकके साथ रहकर अपनी आँखोंसे देखकर तथा सुनकर लिखी हैं। यथासाध्य भाव ज्यों-का-त्यों रखनेकी चेष्टा की गई है, भाषाकी शैली दूसरी वस्तु है।

॥ श्रीहरिः ॥

तेईसवाँ पटल

कलकत्तामें श्रीगीता-जयन्तीका अपूर्व समारोह

आसाम प्रान्तमें श्रीभगवन्नामका दिव्य सन्देश सुनाकर अब कलकत्ताके प्रेमीजनोंके हृदयोंमें हिलोरे लेनेवाले प्रेमाकर्षणके द्वारा खींचे जाकर हमारे चरित्रनायक मार्गशीर्ष शुक्ल १०। ८४ को दोपहरके सवा बारह बजे सियालदह स्टेशनपर सैकड़ों प्रेमीजनोंकी टकटकी लगी हुई दृष्टिको दर्शन सुधाद्वारा तृप्त करनेके लिये आसामकी तरफसे आनेवाली गाड़ीसे पहुँचे। प्रेमीजन श्रीभाईजीके समीप आकर खड़े हो गये तथा उनके चरण स्पर्श करने लगे। बहुतसे प्रेमीजनोंके साथ स्टेशनसे ढाका पट्टीमें श्रीज्वालादत्तजी भरतियाके मकानपर आकर स्नान, संध्या, भोजनादि करके गोविन्दभवनमें दो बजे पहुँचे। वहाँके छोटे हालमें गीता प्रदर्शनीका निरीक्षण किया। तदुपरान्त श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाके घरपर मोटरकारसे हाबड़ा शिवपुर गये, क्योंकि उनकी माताजीका आज देहावसान हो गया था। इसलिये उनसे मिलकर गीता जयन्तीके उत्सवका कार्यक्रम बनानेके सम्बन्धमें उनसे परामर्श करके वहाँसे वापस आकर श्रीअम्बिकाप्रसादजी वाजपेई, सम्पादक 'स्वतन्त्र' एवं श्रीलक्ष्मण नारायणजी गर्दे, सम्पादक 'भारतमित्र' से मिलने गये। वहाँसे आकर सुधारक पार्टीवालोंकी एक मीटिंगमें गये। वहाँपर सुधारक पार्टीके नेता अपने पुराने मित्र श्रीपद्मराजजी जैनसे लिपटकर मिले और खूब प्रेमसे मिले। वहीं किसीने श्रीभाईजीसे पूछा कि बहुतसे लोग कहते हैं कि आपको श्रीभगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन हुए हैं, सो आप ही बतलाइये कि क्या बात है? इसके उत्तरमें श्रीभाईजीने बड़े प्रेमसे कहा कि यदि कोई बात न बतानेकी हो तो कैसे बतलाई जाय?

इसके बाद पाँच बजेके लगभग श्रीबालकृष्णजी मोहताके साथ हिन्दू अबला आश्रममें गये। वहाँका निरीक्षण करनेके बाद पं० श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्देने कहा कि आपकी वह (दिव्य सन्देश वाली) सात बातें हमें बहुत अच्छी लगीं। इसपर श्रीभाईजीने कहा कि कई लोग तो उसे सुनकर दिल्लगी करेंगे। इसके बाद मोटरमें बैठकर श्रीमदनगोपालजी गाड़ोदियाके यहाँ गये। पहले मेरेद्वारा पता लगाकर उनके कमरेमें गये और बड़े प्रेमसे उनसे आलिंगन करके मिले। श्रीगाड़ोदियाजीने कहा कि भाई तुम्हें श्रीभगवान्‌ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये यह बात सुनकर हमें तो बड़ा हर्ष होता है कि हम लोगोंके मित्रोंमें एक व्यक्ति तो ऐसा निकला कि जिसे श्रीभगवान्‌ने कृपा करके अपने देवदुर्लभ दर्शन दिये।

आज रात्रिमें गोविन्द भवनमें सबकी सम्मतिसे कलके लिये गीता जयन्तीका कार्यक्रम बनाया गया तथा प्रवचन भी हुआ।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११। १९८४ आज प्रातःकाल श्रीगोविन्दभवनमें—

प्रातः ५ बजेसे ७ बजेतक श्रीभगवान्‌के ध्यानकी बातें तथा अभ्यास हुआ फिर ७ से ९ बजेतक श्रीमद्भगवद्गीताके प्रथम अध्यायका सामूहिक आगे-पीछे पाठ होकर वैदिक विधिके अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीवेदव्यास एवं भगवद्गीताका पूजन हुआ।

९ से ११ बजेतक श्रीगीता प्रदर्शनीका उद्‌घाटन समारोह एवं श्रीभाईजीके द्वारा भवनमें प्रवचन हुआ जिसमें गीताजीकी महिमा तथा आजके कार्यक्रमको अच्छी तरह उत्साहपूर्वक करनेके लिये उत्साह दिलाया।

११ से १२॥ श्रीगीताजीके सामूहिक पाठ एवं प्रवचन

१२॥ से १। बजेतक श्रीगौड़ीय सम्प्रदायकी बंगाली सज्जनोंकी मंडलीद्वारा झाँझ खोल आदिके साथ संकीर्तन।

१। से २ बजेतक श्रीभगवान्‌की सवारीका बहुत बड़ा जुलूस सजानेकी तैयारी।

२ से ६ बजेतक श्रीभगवान्की पालकीके आगे-आगे श्रीगीताजीका आगे-पीछे बोलकर कण्ठस्थ सामूहिक पाठ करनेवाली एक मण्डली थी। जिसमें पहले बोलनेवाले थे शंकरलालजी रूँगटा तथा मैं और बादमें सब दोहराते थे। परन्तु श्रीभाईजी अपनी कीर्तन मण्डलीमें किसीको मृदंग बजानेवाला न देखकर गीता पाठ करनेवालोंसे कहकर मुझे अपने साथ कीर्तन करनेके लिये ले गये और मेरे गलेमें बजानेके लिये खोल डाल दिया। मैं एकदम आश्चर्यचकित-सा होकर खोलपर अपनी अँगुलियाँ रखने लगा, क्योंकि उसे बजानेका अभ्यास बिल्कुल नहीं था पर श्रीभाईजीकी अपने ऊपर अपार कृपा देखकर उन्हींकी शक्तिसे बड़ी उमंगके साथ खोल बजाने लगा और सारे रास्ते शक्तिभर बजाता रहा। श्रीभाईजीके साथ उमंग और मस्तीभरा मधुर नृत्यके साथ कीर्तन और उमंगके सहित कीर्तन करते हुए कलकत्तेके रास्तोंमें घूमनेका वह पहला और अन्तिम अवसर ही था। उस दिन जुलूसमें कीर्तन करनेवालोंकी अलग-अलग कई मण्डलियाँ थीं और सब ही बड़े मस्त होकर कीर्तन करते हुए चितपुर रोड, हरिसन रोड, सूता पट्टी, स्ट्राडं रोड, हनुमानजीके मन्दिरके सामनेसे बाँसतल्ला स्ट्रीट होते हुए जुलूस गोविन्दभवनमें वापस आ पहुँचा।

रातमें फिर श्रीगोविन्दभवन दर्शकों तथा श्रोताओंसे ऊपर नीचे, आस पास चारों तरफ खचाखच भर गया था। बहुत लोगोंको स्थान रिक्त न मिलनेके कारण वापस जाना पड़ा। अन्य वक्ताओंके भाषण होनेके बाद श्रीभाईजी खड़े होकर कहने लगे कि आज इन वक्ताओंके उपस्थित रहते मेरी इच्छा कुछ भी कहनेकी नहीं थी परन्तु बहुतसे प्रेमीजनोंके विशेष अनुरोधसे कुछ कह रहा हूँ। पहले श्रीगीताजीकी कुछ महिमा कहकर फिर बोले—श्रीहरिनाम संकीर्तन करते हुए आज जो यह जुलूस निकला था इसे देखकर बहुत लोग तो सन्तुष्ट हुए परन्तु कोई-कोई ऐसे भी कहते थे कि इस प्रकार नाच कूदकर तो भारत बरबाद हो गया। हरिनाम-संकीर्तनसे देशकी बरबादी नहीं हुई। समर्थ रामदासजी एक लँगोटी पहननेवाले हरिनामके बड़े प्रेमी संत थे। उन्होंने ही छत्रपति शिवाजी जैसे वीर योद्धा देशकी रक्षाके लिये तैयार किये थे। श्रीभगवन्नामपर मुझे तो इतना अधिक विश्वास है और मेरा अनुभव है कि मैं उन्हें प्रकट करूँ तो लोगोंको विश्वास नहीं होगा। फिर भी मुझे इतना कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं होता कि 'रामनामको कोई व्यक्ति प्रत्येक कार्यमें साथ रक्खे तो उनके कार्य सफल होकर, उनके अन्त:करण भी पवित्र हो जाते हैं।' देशके बड़े भारी दो नेता वर्तमानमें हैं—महामना मालवीयजी एवं महात्मा गाँधीजी। ये श्रीभगवन्नामके इतने बड़े भारी भक्त हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। उनके हाथके लिखे पत्र मेरे पास आये हुए सुरक्षित हैं। जिन लोगोंसे अपने घनिष्ट प्रेमी मित्र बात करना छोड़ देते हैं किन्तु इसी भगवन्नामके प्रतापसे वे ही उन्हें अपने हृदयसे लगानेमें गौरव समझते हैं। मेरे लिये तो आज बड़े सौभाग्यका दिन है कि कलकत्ता जैसे नगरके रास्तोंमें श्रीभगवन्नाम लेकर नाचनेमें मेरी लज्जा दूर हो गई।

नाममें मेरा विश्वास कबसे हुआ इसकी एक प्रारम्भिक घटना आपसे कहता हूँ—सं० १९७३-सन् १९१६ की ता० १६ जुलाई—आजसे ग्यारह वर्ष पहलेकी बात है, जब कि मैं कई राजनैतिक कारणोंसे सर्वप्रथम अलीपुर जेलमें ब्रिटिश गवर्नमेन्टकी कृपासे नजरबन्द करके रखा गया था। उस समय मुझे अपनी दादी आदि घरवालोंकी चिन्ताओंका दृश्य सामने आया तो मुझे बड़ा दु:ख हुआ। मेरा हृदय तड़पने लगा। मेरे मनमें कायारता हो गई। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखायी पड़ रहा था। जब कोई सहारा न मिला तो अन्तमें मुझे परम पिता परमेश्वरका परम पावन नाम याद आ गया। अशरण-शरणको याद करना ही मुझे एक अवलंब मालूम हुआ। मैंने नामकी रट लगा दी। बस, नाम लेनेकी देर थी। अहा! उस समयका आर्त्तभावसे लिया हुआ नाम प्रभुने तत्काल सुना और उसी क्षण मेरे हृदयकी संवेदना दूर करके नाममें क्रमश: ऐसा विश्वास उत्पन्न किया कि इसी नामके प्रभावसे ऐसे ऐसे लौकिक एवं परलौकिक चमत्कार और अनुभव मुझे हुए कि मैं उनका वर्णन कर ही नहीं सकता।

इसलिये प्यारे मित्रों! यदि आपको सच्चे सुख और शान्तिकी अभिलाषा है तो सब तर्कवादको दूर फेंककर जैसे बने श्रीभगवन्नामका आश्रय ग्रहण करो। कलियुगमें इसके सिवाय और कोई सहारा है ही नहीं। इसलिये जैसे बने वैसे ही चलते-फिरते, सोते-जागते श्रीहरिनामका जप करते रहिये फिर यह नाम ही आपकी अन्य सारी आवश्यकताओंकी पूर्ति कर देगा। जो काम आप हजार पुरुषार्थोंसे नहीं कर सकते वह काम यह नाम बिना परिश्रम ही कर देगा। तुलसीदासजीने बड़े ही विश्वासके साथ अपनी विनय पत्रिकामें कहा है—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।

मोको तो रामको नाम कलपतरु कलि कल्याण फरो॥
करम उपासन, ग्यान, बेदमत, सो सब भाँति खरो।
मोहि तो 'सावन के अंधहि' ज्यों सूझत रंग हरो॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम-सुधारस पेखत परुसि धरो॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहि कुंजरो-नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक-तरो॥
प्रीति-प्रतीति जहां जाकी, तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम-नामहि ते तुलसिहि समुझि परो॥

कितने विश्वासके अनुभूत वाक्य तुलसीदासजीने कहे हैं। केवल तुलसीदासजीने ही नहीं, सारे शास्त्र और सम्पूर्ण संत समुदाय इस नामके लिये डंकेकी चोटपर विश्वास दिलाते हैं। इसलिये आजसे ही आपको नामजपका आश्रय ले लेना चाहिये फिर देखिये आपको कैसी शान्ति मिलती है। इत्यादि नाम महिमाके सम्बन्धमें ऐसे-ऐसे अमूल्य वचन कहे कि सुननेवाले मुग्ध हो गये।

पू० श्री गर्देजीसे भाषण देनेके लिये प्रार्थना की गई।

पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्देने खड़े होकर अपना भाषण प्रारम्भ करनेसे पहले कहा कि मैं तो आज व्याख्यान देने नहीं आया हूँ। मैं तो परम भक्त हनुमानप्रसादजी पोद्दारका अनुभूत भाषण सुनने आया था और उसे सुनकर कृतार्थ हो गया। आज गीता जयन्तीका उत्सव गोविन्दभवनमें मनाया जा रहा है इसमें कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि गोविन्दभवनमें तो श्रीगीताजीका नित्य प्रति प्रवचन होता है, नित्य ही उत्सव मनाया जाता है जिससे सैकड़ों मनुष्य तृप्त होते हैं। इसलिये मैं अधिक क्या कहूँ क्योंकि समय भी साढ़े ग्यारहसे अधिक हो गया है।

इसके बाद पुनः हमारे हृदय-सम्राट श्रीभाईजी खड़े होकर बड़े ही हर्षके साथ बोले कि आज मुझे इस बातका बड़ा हर्ष है कि मेरे मित्र नागरमलजी मोदीके मुखसे जुलूसके समय सड़कोंपर नाचते हुए हरिका नाम लिया गया। अन्तमें बड़े ही मधुर स्वरसे—'**परम मधुर जुगल नाम, राधेकृष्ण सीताराम।**' के मधुर नामोंके भावपूर्ण नृत्यके सहित संकीर्तन करते हुए आजके उत्सवका कार्य समाप्त किया।

फिर अपने निवास स्थानपर जाते समय मोटरके पास खड़े होकर अपनी सुधारक पार्टीके पुराने मित्रोंको भगवन्नामका जप एवं गीताजीके पाठका नियम दिलवाकर करीब साढ़े बारह बजे शयन किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल गोविन्दभवनमें श्रीभगवन्नाम महिमाके सम्बन्धमें बड़े जोरके वाक्य कहे कि—नाम महिमाका मेरे पास इतना बड़ा सर्टिफिकेट है कि यदि सब शास्त्र भी इसके विरुद्ध कहें तो मैं स्वीकार नहीं कर सकता। आप यदि पूछें कि ऐसी कौन-सी बात है तो इसके उत्तरमें मैं बहुत बड़े प्रमाणके साथ आपसे यह कहूँगा कि 'नाम लेनेवालेका भला ही होगा' अर्थात् जिसने किसी भी प्रकारसे एक बार भी भगवन्नाम ले लिया उसका कल्याण रिजर्व हो गया। नाम लेनेवालेके पाप नहीं रह सकते, इत्यादि। बहुत ही हृदय-स्पर्शी बातें कहीं कि लोगोंके हृदयमें जँच गई।

॥ श्रीहरि: ॥

चौबीसवाँ पटल

कलकत्तासे भागलपुरकी यात्रा

श्रीभाईजी कलकत्तामें सात दिन रहे। सातों दिन गोविन्द भवनमें बराबर प्रवचन हुए। दूसरे दिन भी गोविन्द भवनमें श्रीभगवन्नाम महिमाके सम्बन्धमें बड़े जोरके शब्द कहे कि नाम महिमाका मेरे पास इतना बड़ा प्रमाण है कि यदि सब शास्त्र भी इसके विरुद्ध कुछ कहें तो भी मैं स्वीकार नहीं कर सकता। आप यदि पूछें ऐसी कौन-सी बात है तो इसके उत्तरमें बड़े प्रमाणके साथ आपसे यह कहूँगा कि नाम लेनेवालेका भला ही होगा। यदि किसीने किसी भी प्रकारसे एक बार भी भगवन्नाम ले लिया तो उसका कल्याण रिजर्व हो गया। नाम लेनेवालेके पाप रह नहीं सकते। बहुतसे हृदयस्पर्शी बातें कही कि लोगोंके हृदयको जँच गयी।

कलकत्तामें श्रीभाईजीके अनेकों मित्र थे—सुधारक पार्टी, समाजिक सेवावाले, देशप्रेमी, राष्ट्रप्रेमी। जिस-जिसने श्रीभाईजीके कलकत्ता आगमनकी बात सुनी, सभी मिलने आये। वयोवृद्धोंसे मिलने स्वयं भाईजी गये। श्रीमोतीलालजी झँवर, श्रीदीपचन्दजी मोहता आदि सभीसे मिले।

एक दिन शामको गोविन्द भवनके ठसाठस भरे हालमें कलकत्तावासियोंको श्रीभाईजीने भगवत्प्रेमका अमृतमय रस पिलाया। मनुष्य जन्म लिया है तो इस प्रेम पंथकी धधकती हुई भयंकर अग्नि परन्तु आनन्दसे अत्यन्त शीतल एवं आनन्दप्रद अग्निके समीप जाकर जरा देखिये। प्रेमका मार्ग कितना कठिन है इसे हमारे चरित्रनायकके हृदयसे निकले हुए सुमनोंको कवितारूपमें सजाकर प्रेमरूपी प्रेमशतकके धागेमें पिरोये हुए कुछ दोहे पढ़कर विचार करिये—

प्रेम पंथ अति ही बिकट, देखत भागैं लोग।
कोउक बिरले चलि सकैं जिन त्यागे सब भोग॥ १॥
भोग-वासना सब तजै, तजै मान-सनमान।
प्रेम-पंथ पर जो चले, सहै हृदयपर बान॥ २॥
प्रेम-पंथ सोइ चलि सकैं, जिन छाड़ी सब चाह।
जर्‌यो करैं विरहाग्निमें, मुख नहिं निकसै आह॥ ३॥
प्रेम डगर सोई चलै, अगर मगर दै छोरि।
विषय-राग राखै नहीं, सब सौं नातौ तोरि॥ ४॥
संत-वैद्य सेवन करै, करुई औषध खाय।
भोग-रोग राखै नहीं, तबै प्रेम प्रगटाय॥ ५॥
जो तू चाहै प्रेमधन, विषयन सौं मुख मोरि।
श्रद्धा-तत्परता सहित, चित्त भजनमें जोरि॥ ६॥
जो प्यासे हरि-प्रेम के, तिनके निरमल भाव।
तन मन धन अरपन करै, धरै मुक्ति को दाव॥ ७॥
स्वर्ग मोक्ष चाहैं नहीं, चाहै नन्द किशोर।
सुघड़ सलोनौ साँवरौ, मुरलीधर मन-चोर॥ ८॥
जो चाहै हरि, प्रेम को, राग भोग दै त्याग।
निसिदिन प्रेमी संग करै, तब बाढ़ै अनुराग॥ ९॥
प्रेम-पंथ कंटक भर्‌यो, चालै बिरलो कोय।
बिंधत-छिंदत हुलसै हियो, यहि मग आवत सोय॥ १०॥
कूदि परै जो सूरमा, प्रेम सिंधु के माँहिं।
परम अमोलक रतन हरि, पावै संशय नाहिं॥ ११॥

शामके पाँच बज चुके हैं, गोविन्दभवन स्त्री-पुरुषोंसे ठसाठस भरा है। श्रीभाईजी मुझे-अपने प्रिय सखाको आज प्रेमके अमृतमय रस-वियोग दशाका पाठ पढ़ा रहे हैं। मैं भी बैठा-बैठा ये सब हृदयवेधी बाण सुन-सह रहा था। अहा! प्रेमी पाठकवृन्द! यदि मनुष्य जन्म लिया है तो इस प्रेमपंथकी धधकती हुई भयंकर परन्तु अत्यन्त शीतल एवं आनन्दप्रद अग्निके समीप जाकर जरा देखिये और चरित्रनायकके भाषणमें कहे हुए गुजराती पदका आनन्द लीजिये—

हरि नो मारग छे शूरानो नहिं कायर नो काम जोने।
परथम पहलुं मस्तक मूकी वलती लेवुं नाम जोने॥
सुत वित दारा शीश समरपे, ते पाये रस पाया जोने।
सिन्धु मध्ये मोती लेवा माँय पड्या मर जीवा जोने॥
मरण आगले ते भरे मूठी दिलनी दुगधा वाने जोने।
तीरे ऊभा जुवे तमासा ते कोड़ी नव पाये जोने॥
प्रेम पंथ पावकनी ज्वाला, भाली पाछे पाये जोने।
माहिं पड्या ते महासुख माणे, देख नारा दाझे जोने॥
माथे साटे मोंथी वस्तु, सापड़वी नहिं स्हेल जोने।
महापद पाम्या ते मरजीवा मूकी मन नो मेल जोने॥
राम अमल माँ राता माता, पूरा प्रेमी परखे जोने।
प्रीतम ना स्वामी नी लीला, ते रजनी दिन निरखे जोने॥

इस पदकी व्याख्या एवं अनेक प्रकारसे प्रेमकी अनिर्वचनीय अवस्थाओंका कुछ वर्णन करके समाप्त किया।

श्रीभाईजी कलकत्तेके प्रेमके लोलुप भ्रमर भक्तोंको अपनी उस समयकी विलक्षण मस्तीकी अवस्थामें मस्त रखते हुए कुछ दिन अपने मधुमय सत्संगका मधुपान कराते रहे। किन्तु उनके लिये तो बम्बईके प्रेमीजन चातककी भाँति टकटकी लगाये बम्बई शीघ्र बुलानेके लिये प्रबल चेष्टा कर रहे थे और एक दिन उनके लिये युगोंका काम कर रहा था। श्रीसेठजीके द्वारा गोरखपुरसे उन्होंने श्रीभाईजीके बम्बई पधारनेकी स्वीकृति तो ले ही ली थी कि भाईजीके गोरखपुर आनेसे यहाँ 'कल्याण' मासिकके लेखों तथा अन्य आवश्यक कार्य करके बम्बई जाना हो सकेगा। इसलिये श्रीभाईजी कलकत्तेमें सात दिनसे अधिक न ठहर सके।

पौष कृष्ण २। १९८४ को रातकी गाड़ीसे कलकत्तेसे रवाना होकर भागलपुर गये। वहाँ श्रीरामजीदासजी बाजोरिया, पूर्णमलजी लोकनाथजी दांदनियाके यहाँ रहते थे। ये लोग सं० १९७९ के सेठजीके सत्संग-भ्रमणके समय बम्बई जा भी चुके थे अतः श्रीभाईजी भी इन्हींके यहाँ पौष कृष्ण ३। १९८४ को दिनभर रहकर वहाँके प्रेमीजनोंको श्रीभगवन्नाम लेनेका सन्देश सुनाकर पौष कृष्ण ४। ८४ को सायंकाल गोरखपुर लौटकर वहाँके 'कल्याण' के लेख सम्पादनका कार्य करनेमें तल्लीन हो गये। इन्हीं दिनों श्रीमहावीरप्रसादजी पोद्दारकी प्रेरणासे श्रीरामदासजी गौड़को गोरखपुर बुलाकर 'कल्याण' के सम्पादन कार्यमें सहयोग देनेके लिये कुछ दिन रक्खा गया था किन्तु किसी कारणवश वे गोरखपुर अधिक दिन ठहर न सके।

~~~

पीयूषकी वर्षा

''भाई हनुमानप्रसाद,

सांसारिक यातनाओंकी ज्वालासे मुझ झुलसे हुए पर आपने घड़ोंका जल क्या, पीयूषकी वर्षा कर दी। कलके 'कल्याण' के ईश्वरांक पाठमें आनन्द प्राप्त कर रहा हूँ। आज ६१२ पृष्ठपर आपका लेख पढ़ा। ६१४ के पहले कॉलमकी पहली ५ सतरें पढ़कर यह कार्ड लिख रहा हूँ। मेरी आँखोंसे जो आँसू निकले हैं और अब तक निकल रहे हैं, उनका कुछ अंश ऊपर कार्डपर भी लग गया है। आप धन्य हैं, आपकी योजना धन्य है—भगवद्भक्ताय ते नमः। कृतार्थ''

— महावीर प्रसाद द्विवेदी (रायबरेली), दिनांक ७/९/३२
~~~

॥ श्रीहरिः ॥

पचीसवाँ पटल

गोरखपुरकी दिनचर्या एवं भ्रमणकी तैयारी

पौष कृष्ण ३०। ८४ प्रात:काल श्रीभाईजी आजकल अकेले दक्षिण तरफवाली कोठरीमें सोते थे और ब्राह्म मुहूर्तमें ही उठकर लेटे-लेटे ही अपना ध्यानादि कार्य कर लेते थे। क्योंकि इन्हें इसी समय एकान्तकी सुविधा थी। फिर साढ़े पाँच बजे कोठरीसे निकलकर नित्यकर्मसे निवृत्त होकर श्रीसेठजीके बगीचेमें करीब आठ बजे गये। वहाँपर श्रीमहावीरप्रसादजी पोद्दार (जो इन दिनोंमें गीताप्रेसके मैनेजरका कार्य देखते थे) से अलग बैठकर 'कल्याण' के अंकोंकी छपाई आदिका रेट निश्चित करके गंगा बाबूसे बिल तैयार करनेको कहा। बीचमें श्रीसेठजी भी करीब ९॥ बजे वहाँ आ गये थे।

पौष शुक्ल १। ८४ आज दिनमें श्रीविष्णुमंदिरमें श्रीसेठजीके साथ वहाँपर मारबलमें गीताजीके कई अध्यायोंके श्लोक खुदवाकर दीवालमें लगाये थे उनका निरीक्षण करनेके लिये गये।

पौष शुक्ल २। ८४ प्रात:काल नित्य कर्मसे निवृत्त होकर बाहर निकले तो चेहरेपर बहुत उपरामता थी (उन दिनोंमें जिस दिन श्रीभगवान्‌के दर्शन होते तब श्रीभाईजीके चेहरेपर उपरामता रहती थी।) लगभग साढ़े नौ बजेतक उपरामता रही। फिर श्रीसेठजीके बगीचेसे आकर होलीतक होनेवाले नाम जप यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये खास-खास प्रेमीजनों एवं 'कल्याण' के ग्राहकोंको पत्र लिखने बैठ गये तो सवा चार बजेतक लिखते ही रहे। बीचमें करीब बारह बजे भोजनके लिये उठे सो भोजन करके तत्काल आकर बरामदेमें बिना कुछ बिछाए ही बैठ गये। नाम जप यज्ञके लिये सैकड़ों पत्र लिखे जिसमेंसे चुने हुए कुछ पत्रोंकी नकल वहींपर मैंने कर ली और मैंने भी अपने मित्रोंको नाम जप यज्ञमें अधिक से अधिक संख्यामें माताओंके द्वारा जप यज्ञ करनेके लिये लोगोंको खूब उत्साह दिलाया। जिससे बोरावड़के (जोधपुर) एक ही ग्रामसे महंत मुकुंददासजीने साढ़े तीन करोड़ मंत्र जप करानेके वचन दे दिये। क्योंकि वे भी श्रीभाईजीको अपने यहाँ श्रीभगवन्नाम प्रचारके लिये बुलाना चाहते थे। और, मैंने यह शर्त कर ली कि यदि आप साढ़े तीन करोड़ मंत्रजप करा देंगे तो श्रीभाईजीको भ्रमणके समय बोरावड़ मैं ले आऊँगा। अस्तु, उन्होंने तत्काल स्वीकृति दे दी और श्रीभाईजीने भी वहां जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया।

मैं भी श्रीभाईजीके पास ही हर समय रहता था। आज दिनमें चेहरा कुछ उदास था। श्रीभाईजी अपने पास रहनेवालोंके प्रत्येक सुख-दुखका ध्यान रखते थे इसलिए श्रीभाईजीने पूछा कि आज तुम्हारा चेहरा उदास क्यों है? मैंने कहा—ऐसे ही होगा। तब श्रीभाईजीने कहा कि कुछ थोड़ा बहुत जो कुछ भी कारण हो सो बताओ। तब मैंने कहा कि परमात्माकी अनंत दया और अपनी अयोग्यताकी तरफ ख्याल करके चित्त उदास हो जाता है। इसपर श्रीभाईजी बोले कि परमात्माकी दयाका तो पद-पदपर स्मरण करना चाहिये पर अपनी त्रुटियोंके लिये उदास नहीं होना चाहिये क्योंकि उन्हींकी दयासे सब त्रुटियां दूर हो जायँगी। अबकी बार बीकानेरसे आना हुआ सो केवल आपकी कृपासे ही हुआ है। पर गोस्वामी तुलसीदासजीने तो कहा है—

जरउ सुसंपति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद, करै न सहज सहाइ॥

इसपर श्रीभाईजीने कहा कि उदासी नहीं रखनी चाहिये। उदासीसे साधनमें शिथिलता आती है। अपनेको तो श्रीभगवान्‌की कृपापर खूब प्रसन्न ही रहना चाहिए। और, श्रीभाईजी खूब मुस्कुराकर बोले कि आजकल बीकानेरमें श्रीरघुनाथजीके मंदिरमें जो सत्संग हुआ करता है उसका कार्य कैसे चलता है? मैंने कहा आजकल तो शिथिल ही है। श्रीभाईजीने

कहा—मेरेसे प्रेम करनेका यह फल होना चाहिए कि वहां जाकर सत्संगका कार्य भी भलीभाँति नहीं कर सके? मैं बोला—मेरा तो बीकानेरमें अधिक रहना होता नहीं और बिना किसी जिम्मेदार आदमीके चलाए सत्संगका कार्य सुचारु रूपसे चल नहीं सकता।

श्रीभाईजीने कहा—बीकानेरमें रहनेवाले किसी योग्य व्यक्तिके जिम्मे वह कार्य कर देना था।

मैं आश्वासन-सा देते हुये कहा—वैसे आदमी तैयार तो हो रहे हैं। आपके बीकानेर पधारनेसे उन लोगोंमें से कोई व्यक्ति निकल जायेगा।

ये बातें हो ही रही थी कि सवा चार बजे श्रीगोयन्दकाजी वहाँपर पधारे। तब मैंने उनके लिए आसन बिछा दिया। वे उसपर बैठ गए और सब लोग धरतीपर ही बैठे थे। इसपर श्रीगोयन्दकाजीने कहा कि यहां ऐसे ही बिना कुछ बिछाये कितनी देरसे काम कर रहे हो? श्रीभाईजीने कहा—भोजनके बाद करीब १२ बजेसे। श्रीगोयन्दकाजीने कहा—जमीनपर कुछ बिछाकर बैठना चाहिए नहीं तो सरदीमें ऐसे बैठनेसे सरदी लगनेका भय है।

फिर मोहनलालजी गोयन्दका एवं घनश्यामदासजी बिड़लाका पत्र आया था। जिसमें बिड़लाजी, गांधीजी एवं जमनालालजी बजाजकी परस्परमें जो बातें हुई थी उसके संबंधमें चर्चा चल पड़ी। बात यह थी कि श्रीमोहनलालजी उन दिनों गांधीजीके प्रचार कार्यमें सम्मिलित होनेके लिये एक बार घरवालोंको बिना कहे ही चले गये थे। इस संबंधकी तथा घनश्यामदासजी बिड़ला हमारे चरित्रनायकको जसीडीहमें श्रीभगवान्‌के जो दर्शन हुए उन बातोंको गुप्त रखना अच्छा समझते थे। क्योंकि श्रीभाईजीके तथा उनके बीच घनिष्ठ प्रेम था। इसलिये वे शुद्ध नीयतसे श्रीभाईजीकी ऐसी घटनाओंका लोग दुरुपयोग न करें इसलिए गुप्त रखना अच्छा समझते थे। इसी संबंधमें श्रीगोयन्दकाजीने उन्हें श्रीभाईजीसे लिखाकर एक पत्र दिया था उसकी नकल यहाँ नीचे दी जाती है।

॥ श्रीहरि: ॥

प्रिय श्रीमान घनश्यामदासजी बिड़ला,

सप्रेम राम राम।

भाई हनुमानप्रसादके भगवद्दर्शन विषयक समाचार ज्ञात हुए। उसको साकार चतुर्भुज श्रीविष्णु भगवानके स्वरूपका दर्शन हुआ है। यह बात विश्वास करने योग्य ही है क्योंकि मुझे भाई हनुमानप्रसाद झूठ बोलनेवाला ज्ञात नहीं होता। आपने भाई हनुमानप्रसादकी स्थितिके विषयमें लिखा सो सबकी स्थिति सब समय समान नहीं रहती। और न किसीकी स्थितिका दूसरेको अच्छी तरहसे ज्ञान ही हो सकता है। इस विषयमें आपका मानना न मानना आपके विश्वासपर निर्भर है। आपने लिखा कि ऐसी बातोंके कहने तथा फैलानेमें प्रोत्साहन देना मुझे तो अयोग्य मालूम देता है, सो ठीक है पर इसमें भाई हनुमानप्रसादका दोष नहीं है। मैंने ही उसकी इच्छा न रहनेपर भी सब बातें पूछी थीं और लोगोंमें प्रकट की थी। अत: यह वास्तवमें मेरी भूल हुई।

गीताप्रेस, गोरखपुर विनीत :

पौष शुक्ल १९८४ **जयदयाल गोयन्दका**

सायं संध्याका समय हो जानेसे करीब ५॥ बजे श्रीगोयन्दकाजी तो अपने बगीचे में चले गए और मदनलालजी चूड़ीवाला, रंगलालजी सर्राफ़ तथा कालूरामजी लोहिया आकर बोले कि कलकत्तेमें आजकल भगवन्नाम कीर्तनका खूब प्रचार हो रहा है। श्रीगोपीरामजी मेंहणसरियाकी आई हुई चिट्ठी श्रीभाईज़ीको दिखाई। जिसे पढ़कर चरित्रनायक बोले कि मुझे कभी-कभी ऐसी स्फुरणा होती है कि दस हजार आदमी समा सकें इतना बड़ा तो मैदान हो और पचीस-तीस खोल बजानेवाले तथा २००-४०० झांझ (मजीरा) बजानेवाले तथा ४००-५०० करताल बजानेवाले एवं २००-२५० आदमी प्रबंध करनेवाले हों तो एक बहुत बड़ा कीर्तन हो सकता है। चैतन्य महाप्रभुके समयमें लाखों आदमी कीर्तनमें इकट्ठे हो जाते थे तो अब भी कोई बड़ी बात नहीं है। उससे भी बढ़कर समय आ सकता है। कब आवेगा यह नहीं

कहा जा सकता किन्तु मेरे 'हरि नाम वितरण शीर्षक' लेख (कल्याण वर्ष २ अंक १ पृष्ठ २१ से २९) लिखाते समय यह स्फुरणा हुई थी। इस प्रकार कीर्तन प्रचारकी बहुत देरतक बातें होती रहीं।

फिर सायंकालके ६। बज गये। तब चरित्रनायकने भोजनके लिये तकाजा किया। वहाँसे उठकर मित्रमंडलीके साथ शौचादिके लिये मैदान में गये फिर संध्या-वन्दनादि नित्य कर्म करके ७ बजे भोजन करके श्रीभाईजी तो कल्याणकी छपाईका हिसाब करनेके लिये अपनी आफिसवाली कोठरीमें चले गए और सबको श्रीगोयन्दकाजीके बगीचेमें सत्संगके लिये जानेके लिये कहा। तब सब लोग वहाँ चले गये। वहाँपर निष्काम भावसे व्यापार एवं लोकसेवा संबंधी चर्चा चली। किसीने प्रश्न किया कि लोभ क्यों नहीं कम होता? इसपर श्रीगोयन्दकाजी बोले कि आप लोगोंने समझ रखा है कि लोभ रहते हुए भी श्रीभगवान्‌के दर्शन हो जायेंगे। सो यह बड़ी भूल की बात है—काम, क्रोध, लोभ इन तीनोंके रहते हुए भगवत्प्राप्ति होना तो दूर की बात है यह तीनों तो साक्षात् नरकके द्वार हैं—इसके बाद महावीरप्रसादजी पोद्दार (जो कि इन दिनोंमें श्रीगोयन्दकाजीके प्रति अध्यात्म मार्गमें बड़ी श्रद्धा रखते थे) ने प्रश्न किया कि जैसे मेरा पुत्र बीमार है उसे मैं दवा दिलाता हुआ भी उसके अच्छे होनेकी कामना न करूँ यह कैसे हो सकता है? हाँ, मनके नाश होनेसे ऐसा भले ही हो। इसपर श्रीगोयन्दकाजी बोले कि साधन होनेसे मनके नाशके पूर्व भी ऐसे हो सकता है।

करीब ९॥ बजे श्रीगोयन्दकाजीके निवास स्थानसे वापस आकर लोग श्रीभाईजीके पास बैठ गये। श्रीघनश्यामदासजी जालानसे ११-११॥ बजेतक एकांतमें बातें होती रहीं। तब चरित्रनायककी माँजी बोलीं कि मेरेसे बात करनेके लिये तो तुम्हें अवकाश नहीं मिलता अब १२ बजेतक अवकाश कैसे मिल गया? तब भाईजीने कहा माँजी! ये बहुत दिनोंसे मिले हैं इसलिए इनसे बात करनेमें अधिक समय लग गया। इसके बाद पूज्य माँजीसे कुछ देर बात करके रात्रिके १२ बजे कोठरी नं० १ में जाकर श्रीभाईजी सो गए। इन दिनों चरित्रनायककी धर्मपत्नी रामदेई बाई अपने पीहर गोहाटी गई हुई थीं।

पौष शुक्ला ३। ८४ को प्रातःकाल कोठरी नं० १ में ध्यानादि करके करीब ६॥ बजे श्रीभाईजी बाहर निकलकर शौचाचार स्नानादि नित्य कर्म करके कोठरी नं० २ में जाकर संध्या वंदनादि एकांतमें करके श्रीगोयन्दकाजीके यहाँ सत्संगमें गए। आज भी हमारे चरित्रनायकके (नित्य कर्म करके) बाहर निकलते समयसे चेहरेपर बड़ी ही विलक्षण उपरामता थी। क्योंकि इन दिनोंमें जब-जब इन्हें श्रीविष्णु भगवान्‌के दर्शन होते तभी इनके बाह्य चेहरेपर झलक दीखने लग जाती कि इनकी स्थिति कुछ विलक्षण हो गई है। आगे चलकर तो ये श्रीराधाकृष्णकी अंतरंग लीलामें ऐसे घुल मिल गए थे कि भीतरसे नित्य निरन्तर उन लीलाओंमें विहार करते रहनेपर भी बाहरके सब कार्य यथोचित करते रहते थे। पूछनेपर यही कहते थे कि बाह्य कार्य करते हुए उस स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं होता। कैसे आश्चर्यकी बात है कि लोगोंकी दृष्टिमें तो ये इस भौतिक संसारके कार्योंमें बहुत ही व्यस्त रहते हैं, किन्तु वास्तवमें इनका इस भौतिक संसारसे मानों कुछ सम्बन्ध है ही नहीं। पाठकवृन्द इनके अद्‌भुत अनुभवोंकी कोई कल्पना ही नहीं कर सकते।

श्रीगोयन्दकाजीके यहाँ सत्संगमें पहुँचनेपर श्रीगोयन्दकाजीने कहा कि परसों किसीने प्रश्न किया था, वे यदि प्रश्नोत्तर लिख लिए जाते तो बड़े कामकी वस्तु हो जाती। इसपर हमारे चरित्रनायकने मुझसे डायरी नं० ४५ लेकर उसमें श्रीगोयन्दकाजीके भाषणको नोट करना प्रारम्भ किया। श्रीगोयन्दकाजीके यहाँसे करीब ९॥ बजे चरित्रनायक चले अपने बगीचे। करीब ९। बजे वापस आकर कल्याणके बिल एवं आए हुए पत्रादि देखने लग गए। करीब ११ बजे भोजन करके शहरमें कल्याणका कार्य देखनेके लिये जानेका विचार किया। तब मैंने कहा—मुझे भी जूते लाने हैं। तब श्रीभाईजीने कहा कि तुम्हारे हृदयकी बात तो मैं जानता हूँ कि किसी भी

बहानेसे मेरे साथ चलना। फिर १२ बजे शहरमें जाने लगे तो साथमें मैं और मोहनलालजी झुनझुनवाला भी गये। थोड़ी दूर जानेके बाद पुरलियेवाले एवं नूएंवाले दोनों श्रीघनश्यामदासजीके साथ हो लिए। पहले तो बम्बई जानेवालोंके नाम गिनकर टिकट आदि लेने तथा थर्ड क्लासका डिब्बा रिजर्व करानेकी बातें हुईं। क्योंकि इन दिनों हमारे चरित्रनायक बंबईसे आनेके बाद बहुत ही अधिक त्यागमय जीवन बिताते थे। खान, पान तथा पहननेके वस्त्र आदिमें बहुत कम खर्च लगाते थे। इसलिए इन दिनोंमें हमारे चरित्रनायक यात्रा भी थर्ड क्लासमें ही किया करते थे। क्योंकि बाहरसे त्यागमय जीवन बितानेका यह अवसर चरित्रनायकके लिये थोड़े ही वर्षोंतक रहा। ऐसा आदेश प्राप्त हुआ था कि बाह्य जीवनको बिल्कुल साधारण ही रक्खो। इसलिए जैसे-जैसे चरित्रनायक श्रीयुगल सरकारकी अन्तरंग लीलाओंमें प्रवेश करने लगे वैसे-वैसे ही वे इतने छिपने लगे कि लोग इन्हें बिल्कुल ही न पहचान सकते थे।

हाँ, तो बगीचेसे शहरमें जाते समय आज चरित्रनायकने अपने साथ चलनेवाले प्रेमीजनोंसे कहा कि यहाँ गोरखपुरमें तथा आसपासमें श्रीभगवन्नामके जपका खूब प्रचार करना चाहिये। इस कामके लिये आप सबको खूब चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि इस कलियुगमें नामकी बड़ी भारी महिमा है। इसलिए आप लोगोंको साहबगंजमें जाकर सब लोगों—स्त्री बालकोंसे नाम जपकी संख्यासे माला फेरनेके वचन लेकर उनको रजिस्टरमें लिखकर सबकी संख्या जोड़ लेनी चाहिये।

इन दिनोंमें चरित्रनायकको श्रीभगवान्‌के नाम प्रचारके लिये आदेश मिला हुआ था। इसलिये खूब चेष्टा करके, लोगोंको उत्साहित करके नाम जपका खूब प्रचार करनेमें बिल्कुल संकोच नहीं करते थे।

फिर श्रीभाईजीने मुझसे कहा कि आज तुम मोहनजी एवं पुरुलियेवाले घनश्यामदासजीके साथ जाकर मालाएँ लिखाओ, क्योंकि बीकानेर जाकर तो तुमने एक दिन भी सत्संग नहीं करायी इसलिये तुमपर मुझे रोष आता है।

इतनेमें अलीनगरका चौरस्ता आनेसे नुंवेवाले घनश्यामदासजीको साथ लेकर श्रीभाईजी तो 'कल्याण' कार्यालयमें छपाईके बिलोंका जमा खर्च करने चले गये। शेष तीनों व्यक्ति मालाएँ लिखानेके लिये साहबगंज गये। वहाँपर मालाएँ लिखानेका कार्य खूब उत्साहपूर्वक करते रहे। मैं नोट करता गया। करीब पाँच बजेतक श्रीभाईजी 'कल्याण' कार्यालयमें काम करते रहे। फिर अँधेरा हो जानेके बाद बगीचे पहुँचकर वहाँपर नित्य कर्म तथा भोजनादि किया।

पौष शुक्ल ८ को बम्बईकी तरफ जानेका श्रीभाईजीका निश्चित प्रोग्राम बन चुका था। मैं श्रीभाईजीसे नम्रतापूर्वक बम्बईसे देश जानेकी प्रार्थना कर रहा था पर श्रीभाईजी भीतरसे मेरी बातका अनुमोदन करते हुए ऊपरसे कह देते 'अभी काम ज्यादा है, फिर बात करेंगे।' ऐसा करते-करते पौष शुक्ल ७। ८४ की रात्रि आ गयी। इतने दिन तो मैं अपने वेगको रोकता रहा पर अब मैंने देखा कि यदि आज प्रोग्राम नहीं बनता है तो फिर सीधा जाना असंभव है इसलिए श्रीसेठजीका सत्संग समाप्त होनेके बाद श्रीभाईजीके उपस्थित रहते हुए मैंने श्रीसेठजीसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हुए कहा कि श्रीभाईजीको बंबईसे सीधे-देशकी तरफ श्रीभगवन्नाम प्रचारके लिये जानेकी आज्ञा आपको देनेकी कृपा करनी चाहिये। इसपर श्रीसेठजीने कहा कि वैसे तो पुरुलिया चक्रधरपुरवाले भी इन्हें ले जाना चाहते हैं तथा बुलानेके लिये जोर दे रहे हैं इत्यादि बातें बहुत देरतक तो होती रहीं। मैंने दृढ़तापूर्वक कहा—माना कि सब जगहसे लोग बुला रहे हैं फिर राजपुतानेमें बीकानेर, जोधपुर, जयपुर राज्य आदि तो अपने सत्संगके प्रधान केन्द्र स्थान हैं, इसलिये वहाँ जानेसे खूब प्रचार होनेकी सम्भावना है और खासकर न जानेका ऐसा हेतु भी कोई समझमें नहीं आता इसलिये निश्चितरूपसे देशका प्रोग्राम बनानेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। इसपर श्रीसेठजीने कहा कि उधर जानेसे बहुत स्थानोंमें भ्रमण करना पड़ेगा और अधिक समय भ्रमणमें रहनेसे 'कल्याण'का कार्य सुचारुरूपसे न होगा। अस्तु। बहुत कुछ बात होनेपर भी मैं अपनी

शुद्ध माँगपर डटा रहा और बोला कि अधिक अवकाश न हो तो जहाँ- जहाँ जा सकें वहाँ एक-एक दिन ही ठहरें पर देशवाले प्रेमीजनोंको इस भगवन्नाम प्रचाररूपी सुरसरि धारासे वंचित नहीं रखना चाहिये। अंतमें शुद्ध नीयतसे जनताके हितकी दृष्टिसे की हुई सच्चे मनकी सकाम प्रार्थना भी कभी निष्फल नहीं जाती। इसलिये श्रीसेठजीने देश जानेकी स्वीकृति देकर उधरका प्रोग्राम बम्बईमें ही बनानेकी अनुमति दे दी। परन्तु श्रीभाईजीकी पूजनीया माताजी श्रीगौराबाईसे भी अभी आज्ञा लेनी बाकी है। इसलिये मैंने श्रीभाईजीके साथ कान्तिबाबूवाले बगीचेमें आकर माँजीसे भी वही प्रार्थना की। माँजीने पहले तो कुछ आपत्ति की—'सरदीकी ऋतुमें इतना अधिक भ्रमण करनेसे स्वास्थ्य बिगड़नेका भय तथा अन्यान्य कारण भी बतलाये। परन्तु जब श्रीभाईजीने ही चैतन्य महाप्रभुका उदाहरण देकर देशकी तरफ जानेकी अपनी इच्छा प्रकट की तब भला ऐसे मंगलमय कार्यको कौन रोके। अस्तु।'

श्रीभगवान्की अनिर्वचनीय कृपासे मेरी उस जसीडीहकी घटनाके समय बीकानेरसे पत्रद्वारा की हुई प्रार्थना आज सफल हुई।

चरित्रनायक श्रीभाईजीको जसीडीहमें श्रीविष्णु भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे उस समय खबर मिलते ही सबसे प्रथम मैंने श्रीभाईजीको पत्र लिखकर यह प्रार्थना की थी कि अब आपको महाप्रभुजीकी भाँति भगवान्का आदेश तो मिल ही गया है, इसलिये आप संसारमें खूब भ्रमण करके श्रीभगवन्नामका खूब जोरसे प्रचार करिये और उस भ्रमणमें अपनी प्रियभूमि राजपूतानान्तर्गत बीकानेर राज्यके गाँवोंमें भ्रमण करनेका नम्बर सबसे प्रथम रक्खें।

अब तो श्रीभगवान्के आदेशसे श्रीभगवन्नाम वितरणार्थ कई प्रान्तोंमें भ्रमण करना है। इसलिये 'कल्याण'में छापनेके लिये अगले अंकोंका मैटर तैयार करना था। अतः २-४ दिन इस काममें लगाकर चरित्रनायकने गीताप्रेसवालोंको कई अंकोंका मैटर अर्थात् लेखादि दे दिये।

'कल्याण' जैसे देशव्यापी बृहत्मासिक पत्रका सम्पादन करना कितना कठिन होता है इसका अनुभव कोई भुक्तभोगी संपादक ही कर सकता है। परन्तु हमारे चरित्रनायकके लिये यह कार्य इतना सरल था कि वे बहुत बड़े-बड़े विशेषांकोंका संपादन ऐसे सुन्दर ढंगसे सहजहीमें कर लेते थे कि जिसका अनुभव उनके सम्पर्कमें समीप रहनेवाले प्रेमीजन ही कर सकते थे।

भवरोग

"भवरोगसे छूटनेके लिये हरिनामरूपी औषध-पान, दैवी-सम्पत्तिरूपी सुपथ्य सेवन और पापकर्मरूपी कुपथ्यका त्याग करना चाहिये।"

— श्रीभाईजी

॥ श्रीहरि: ॥

छब्बीसवाँ पटल

बम्बईकी श्रीभगवन्नाम-संदेश-यात्रा

पौष शुक्ला ८। १९८४ वि० प्रात:काल शीघ्र उठकर सारे नित्य कर्मोंसे निवृत्त होकर श्रीडूँगरमलजी लोहिया एवं मुझको साथ लेकर श्रीभाईजी अपने बगीचेसे श्रीगोयन्दकाजीके वहाँ गये। वहाँपर उन्होंने कहा कि भ्रमणमें निद्रा, भोजन तथा भाषण नियमित समय पर ही करने चाहिये, नहीं तो अधिक दिनों तक भ्रमण करनेवाले व्यक्तिके नियमित कार्य न करनेसे स्वास्थ्यमें शिथिलता आ जाती है। अत: आप सब लोगोंको इस बातका ध्यान रखना चाहिये।

श्रीडूँगरमलजी लोहिया एवं मैंने श्रीगोयन्दकाजीसे प्रार्थना करते हुए कहा कि अब तो शीघ्र ही प्रेमका प्रवाह खूब जोरसे बहानेकी जरूरत है। जिस प्रेमके प्रवाहमें बिना प्रयत्न ही कलिकलुषित जीव आ-आकर बह जाय। वैसे तो आपने प्रचारके लिये शक्ति दे ही रक्खी है, पर जिस कलकत्तेमें आजकल श्रीभगवन्नाम कीर्तनका प्रचार गीता जयन्ती समारोहके बाद से खूब हो रहा है, उससे भी बढ़कर बम्बई एवं बीकानेरके ग्रामोंमें होना चाहिये।

श्रीगोयन्दकाजीने कहा कि इस प्रकारकी प्रार्थना तो हम सबको मिलकर भी भगवानसे करनी चाहिये। मैंने तो कह ही रक्खा है कि हनुमानके द्वारा सबसे ज्यादा श्रीभगवद्भक्ति एवं भगवन्नामका प्रचार होने वाला है। इसी बातको पुन:पुन: कहलाना एक प्रकारसे पिष्ट पेषण ही होगा।

अब ट्रेन छूटनेमें अधिक विलम्ब नहीं रहा। करीब ८ बजनेवाले थे, इसलिये श्रीभाईजीने तथा अन्य साथ जानेवाले सभी सज्जनोंने श्रीगोयन्दकाजीके परम पुनीत चरण कमलोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके वहाँसे शुभ मुहूर्तमें प्रस्थान किया।

कांति बाबू (अब मोती बाबू) के बगीचेके आगे लॉरी खड़ी हुई थी। साथ जानेवाले एवं पहुँचानेके लिये जाने वालोंसे लॉरी खचाखच भर गयी थी। उसी लॉरीमें श्रीभाईजी भी चढ़ गये। कई प्रेमी रह भी गये पर जगह बैठनेकी बिलकुल न रही तब क्या किया जाय। लॉरीके रवाना होते ही झाँझ करताल मजीरोंके साथ श्रीभगवन्नाम संकीर्तनकी झनकार होने लगी। उन दिनों भ्रमणमें श्रीडूँगरमलजी लोहिया कीर्तन करानेवालोंके प्रधान थे। इसलिये संकीर्तन बड़ी ही उमंगसे सारे सज्जन करने लग जाते। हाँ, संकीर्तन अनेकों ध्वनियोंसे कराया जाता था। किन्तु—

परम मधुर युगल नाम। राधे कृष्ण सीताराम॥

इस ध्वनि संकीर्तनको अधिक कराया जाता था। उन दिनोंके संकीर्तनके दृश्य तो अब मानो स्वप्नकी भाँति विलीन हो गये क्योंकि क्रमश: समयकी गति तेजीके साथ इतनी गिरती जा रही है कि उन दिनोंमें साथ रहनेवाले प्रेमीजनोंमें ही वह श्रद्धा-प्रेम-तत्परता-त्याग-उत्कण्ठाके भाव नहीं रहे तब इस गये गुजरे समयके नव शिक्षित लोगोंके लिये तो यह एक उपन्यासके ढंगका ही कथन प्रतीत हो सकता है। पर इसका लेखक तो कोई विद्वान लेखक, साधक या प्रेमी नहीं है उसे तो उस समयके दृश्य स्मरण होकर जैसे-जैसे भगवत्प्रेरणा होती है वैसे-वैसे ही वह लिख रहा है।

पं० बद्रीप्रसादजी आचार्यने कहा कि बड़ी कठिनताके साथ बीकानेरकी तरफ श्रीभाईजीके भ्रमण करनेका प्रोग्राम तो बन गया है। अब वहाँवालोंको उत्साहित करके श्रीभाईजीसे लाभ लेनेके लिये आपको जगह-जगह पत्र देकर अधिक से अधिक प्रेमीजनोंको इस अपूर्व अवसरसे लाभ उठानेकी चेष्टा करनी चाहिये। पं० श्रीबद्रीप्रसादजीने कहा कि देशकी तरफ अभी जानेकी तो आशा ही नहीं थी, फिर प्रोग्राम कैसे बन गया?

इसपर पं० श्रीलाधुरामजीने कहा कि कल रात्रिको तो गम्भीरचन्द दुजारीजीने देशकी तरफ जानेका प्रोग्राम बनानेके लिये इतना जोर लगाया कि हद ही कर दी। ये यदि इतना जोर न लगाते तो संभवत: देशकी तरफ जानेका प्रोग्राम अभी नहीं बनता।

अस्तु, प्रात:कालके ८। बजे लॉरी स्टेशन पहुँची। गाड़ी आई हुई तैयार खड़ी थी। सबने मिलकर हाथों हाथ सामान डिब्बेमें रख दिया। सब लोग एक ही डिब्बेमें बैठ गये केवल श्रीभाईजी बैजनाथजी नुंवेवालोंसे एकान्तमें बात करनेके उद्देश्यसे सहजनवाँ तक अलग डब्बेमें बैठे। समय होनेपर गार्डने झंडी दिखलाई, इंजनने सीटी दी और सियावर रामचन्द्रकी जय घोषके साथ गाड़ी चल पड़ी। स्टेशनतक पहुँचानेके लिये आनेवाले प्रेमीजनोंमें से कई लोग गाड़ीके साथ-साथ प्लेटफार्मकी समाप्ति तक दौड़ते हुए चरित्रनायकको मधुर मुस्कान भरी मूर्तिको निहारते रहे पर निष्ठुर ड्राइवरने इन प्रेमीजनोंके प्रेमकी कुछ भी परवाह न करके इंजनकी चालको तेज कर दिया जिससे अब ये लोग गाड़ीके साथ-साथ दौड़नेमें असमर्थ हो गये।

इधर गाड़ीके डिब्बेमें संकीर्तनकी झनकार वाद्योंके साथ प्रारम्भ हो ही गयी थी। प्रेमी पाठकोंकी जानकारीके लिये इस भ्रमणमें साथ जानेवालोंके नाम उनके संक्षिप्त परिचयके साथ आवश्यक होगा, अत: उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दार सम्पादक 'कल्याण', इस ग्रन्थके चरित्रनायक (२) श्रीडूँगरमलजी लोहिया, रतनगढ़ निवासी, तिनसुखिया (आसाम) के सबसे बड़े व्यापारी एवं भगवन्नामके प्रचारक (३) श्रीघनश्यामदासजी जालान पुरुलियावाले, सत्संग भजनका प्रचार करनेवाले (४) श्रीमोहनलालजी झुनझुनवाले तथा (५) गम्भीरचन्द दुजारी (६) श्रीचेतरामजी (७) श्रीद्वारकादासजी (८) मोतीलालजी ये तीनों गोरखपुरके जालान बन्धु व्यापारियोंमें प्रधान व्यापारी थे। (९) पं० गंगानाथजी बंबई सत्संग भवनवाले आगे चलकर ये एक बड़े विद्वान संन्यासी गोविन्दानन्दाश्रमजीके नामसे प्रसिद्ध हो गये। (१०) मदनलालजी चूड़ीवाला (११) श्रीबलदेवजी आचार्य बीकानेरवाले ऐसे कुल ११ व्यक्ति इस भ्रमणमें गोरखपुरसे साथ थे।

९॥ बजे गाड़ी सहजनवां स्टेशनपर पहुँची। वहाँपर कुएँके पानीका प्रबन्ध पहिलेसे कर रक्खा था। भ्रमणमें जानेवालोंने शुद्ध जल पीकर वहाँके उपस्थित लोगोंसे श्रीभगवन्नाम जपकी मालाओंकी संख्या लोगोंसे पूछकर लिख ली क्योंकि श्रीभाईजीका इसी कामको करनेके लिये विशेष रूपसे आदेश था। चलती हुई रेलमें प्राय: संकीर्तन झाँझ करतालोंके साथ हर समय होता रहता था।

अब श्रीभाईजी अपने प्रेमीजन जिस डिब्बेमें बैठे थे उसी डिब्बेमें आ गये। और, करीब १ बजेतक श्रीभाईजीके द्वारा प्रेम-प्रभावकी रहस्यमयी बातें होती रहीं जिससे प्रेमीजन मुग्ध हो गये। प्रेमके दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि भावोंकी तारतम्यता तथा क्रमश: एकसे दूसरेकी श्रेष्ठताके विषयमें वार्तालाप तथा प्रश्नोत्तर होते रहे। सबसे बढ़कर प्रौढ़ा स्त्रीके प्रेमकी उत्कृष्टताका श्रीभाईजीने वर्णन किया और कहा कि हमलोग वात्सल्य और माधुर्य प्रेमके अधिकारी नहीं हैं। अत: सबके लिये दास्य तथा सख्य भावसे प्रेम करना ही सर्वोत्तम है। वैष्णव ग्रन्थोंमें इसका विस्तारसे वर्णन है—वात्सल्य प्रेम करनेवालोंमें नंद-यशोदा एवं दशरथ-कौशल्या प्रधान गिने जाते हैं। इसी प्रकार माधुर्यमें श्रीगोपाङ्गनाओंका नाम सर्वोपरि है।

दोपहर १ बजे गोण्डा स्टेशनपर गाड़ी पहुँची। वहाँपर कुछ संतरे लेकर जलपान करके श्रीभाईजीने मुझसे कहा कि कागज छाँटने हैं इसलिये पेटीमें से लेख तथा पत्रोंको निकाल कर मुझे दो। मैंने तत्काल लेखोंके फाइल तथा पत्रोंके लिफाफे निकालकर दे दिये। तब श्रीभाईजीने लेखोंमेंसे छपे हुये, छापने योग्य, लौटाने योग्य लेखोंको अलग-अलग फाइलोंमें रखनेके लिये मुझको दे दिये तथा पत्रोंमेंसे उत्तर देनेयोग्य, फाइल करनेयोग्य तथा बुलानेके लिये आये हुए पत्रोंको अलग-अलग करके अलग-अलग लिफाफोंमें रख लिया। इस काममें करीब दिनके ४ बज गये थे।

तत्पश्चात् एक वकीलसे देश, धर्म एवं सत्संग सम्बन्धी बातें हुई। करीब ४॥ बजे मानसिक संध्या वन्दनादि करके ६॥ बजे लखनऊमें गाड़ी बदली करके खाने-पीनेसे निवृत्त होकर करीब १०॥ बजे शयन किया। रात्रिके करीब १२ बजे कानपुर स्टेशनपर बिना चर्मके जूते बनानेका काम करनेवालें श्रीरामजीदासजी मोदी गंगाजलका टीन लेकर आ गये थे। ये श्रीभाईजीके बड़े प्रेमी हैं। वे श्रीभाईजीको कानपुरमें उतारना चाहते थे और इनसे कुछ सत्संगकी बातें सुनना भी चाहते थे, परन्तु ये थे बड़े श्रद्धालु इसलिये इन्होंने सोते हुए श्रीभाईजीको जगाना उचित न समझकर साथवाले प्रेमीजनोंसे इन्होंने बड़ी नम्रताके साथ कहा कि वापस गोरखपुर आते समय आपलोग श्रीभाईजीको कानपुरमें ठहरनेके लिये मेरी ओरसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करनेकी कृपा करियेगा। वे इस प्रकार बारंबार कहते रहे।

पौष शुक्ला ९। ८४ प्रात:काल ४ बजे, गाड़ी झांसी स्टेशनपर पहुँचनेके १ घंटा पूर्व ही सब लोग ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर भजन ध्यान करके अपने बिस्तर आदि बांधकर तैयार हो गये। स्टेशनपर गाड़ी पहुँचते ही सब लोगोंने अपना-अपना सामान उतारकर संभाल लिया, पर श्रीमदनलालजी चूड़ीवालाका बिस्तर गाड़ीमें ही रह गया जो चेष्टा करनेपर भी न मिला।

श्रीभाईजी अपने हाथसे ही क्षौरकर्म करके नित्यकर्मसे निवृत्त हो गये। इधर साथवाले प्रेमीजनोंने आज ऋषिकेशवाले एक नम्बरका भोजन केवल खिचड़ीको मिट्टीकी हंडियामें वहींपर स्टेशनके समीप ही पकाकर तैयार कर लिया। तब वहींपर पवित्र भूमिको साफ करके जल छिड़ककर पत्तलोंको उसी जमीनपर रखकर हमारे चरित्रनायकके आसपास प्रेमीजन बैठकर बड़ी ही स्वादिष्ट उसी खिचड़ीको भगवानको समर्पण करके प्रसाद रूपमें खाने लगे। यह दृश्य देखकर भगवान श्रीकृष्णके साथ सखाओंके सह भोजनकी स्मृति हो आती है। आजकी खिचड़ी बड़ी स्वादिष्ट होनेमें एक हेतु यह भी था कि उसे हमारे श्रीभाईजीने अपने हाथोंसे पकाया था। कई लोगोंको एक बार लेकर ही भोजन करनेका नियम था। परन्तु आज तो खिचड़ी खाते-खाते तृप्ति ही नहीं होती थी। इसलिये बार-बार लेते रहे। बात यहाँ तक हुई कि खिचड़ी दुबारा बनानी पड़ी।

भोजनके पश्चात् कुछ संतरे खाकर श्रीभाईजी मुझसे पीपल तथा बादाम लेकर खण्डवाकी तरफ जानेवाली गाड़ीमें बैठ गये। करीब १२ बजे गाड़ी रवाना हो गयी। आज भी श्रीभाईजीके चहेरेपर उपरामता थी और नेत्र मूँदे हुये थे। थोड़ी देर मौन रहनेके बाद श्रीभाईजीने मुझसे कागज पेन्सिल लेकर सबसे कहा कि आप लोग मालाके द्वारा जप करिये। मैं एक घंटे कुछ लिखनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। इधर साथवालोंको कुछ तन्द्रा-सी आने लगी तब श्रीभाईजीने मुझसे कहा लोग ऊँघ रहे हैं इसलिये गीता पाठ या संकीर्तन करना चाहिये।

लोग तो संकीर्तन करना चाहते ही थे। श्रीडूँगरमलजीने अपनी करताल दोनों हाथोंमें लेकर बड़े प्रेमसे—जय रघुनन्दन जय सियाराम। जानकि वल्लभ सीताराम॥ का संकीर्तन प्रारम्भ किया। सब प्रेमी जनोंने दिल खोलकर संकीर्तनमें साथ दिया। करीब २ बजेतक संकीर्तन हुआ फिर लोगोंके कहनेसे श्रीगीताजीके दूसरे अध्यायका पाठ मैंने आगे बोलकर कराया पीछे-पीछे साथ वाले सबलोग पाठ करने लगे। दूसरा अध्याय समाप्त होनेपर पाठ बंद हो गया।

मदनलालजीने श्रीभाईजीसे कहा सत्संगका प्रसंग चलाना चाहिये तब उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या प्रसंग चलाना चाहिये? मैंने कहा कि श्रीभगवान या उनके प्रेमी भक्तोंके प्रेम प्रभावका ही प्रसंग चलना चाहिये। इसपर श्रीभगवानके प्रेमी भक्तोंकी बात चल पड़ी। प्रसंग आनेपर श्रीघनश्यामदासजी जालान (श्रीगोयन्दकाजीके अनन्य प्रेमी) तथा मेरे सम्बन्धकी बातें चल पड़ीं। बात यह हुई कि संयोग-वियोगमें घरवालोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये? बातें बड़े ढंगसे अतिशय प्रेम प्रदर्शित करते हुए श्रीभाईजी कह रहे थे। फिर सायं सन्ध्याका समय हो जानेसे सब लोग डिब्बेमें ही अच्छी प्रकारसे बैठकर मानसिक सायं सन्ध्या करने लग गये।

श्रीभाईजीकी प्रेरणासे मैं तथा श्रीभाईजी दोनों आगे-आगे बोलकर बड़ी उमंग एवं प्रेमके सहित—

राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्॥

की ध्वनिका संकीर्तन करने लगे। पीछे-पीछे सब लोग बड़ी उमंग और प्रेमके साथ झाँझ करताल मजीरोंकी झनकारके साथ संकीर्तन करने लगे। उस समयके संकीर्तनकी महिमा लेखनी या वाणी द्वारा वर्णन हो ही नहीं सकती। उपमा देनेके लिये हमें कोई वस्तु स्मरण ही नहीं आती है। 'गिरा अनयन, नयन बिनु बानी' इसके बाद भोपाल स्टेशन आनेपर डिब्बेसे उतरकर कई लोगोंने कुछ मूँगफली और सुवाल आदि खाया। रात्रि हो जानेसे डिब्बेमें बिस्तर लगाकर श्रीभाईजी सो गये। कई प्रेमीजन प्रेम-चर्चा करते रहे।

रात्रिके २॥ बजे ही सब लोग उठ गये और थोड़ी देर भजन ध्यान करके बिस्तर आदि बांधकर तैयार हो गये। करीब ३॥ बजे खण्डवा स्टेशनपर गाड़ी पहुँची। प्लेटफार्मपर स्वागतके लिये आये हुए श्रीराधाकृष्णजी पारीक सनावदवाले, पं० सीतारामजी पुजारी नर्मदा मंदिरवाले तथा कन्हैयालालजी मंत्री सनावद वाले और जमादार वगैरह श्रीभाईजी आदि प्रेमी जनोंकी बाट देख रहे थे। गाड़ी पहुँचते ही बहुत जल्दीमें सामान उतारा गया और सबसे अधिक समझदार मदनलालजी चूड़ीवालाको जानकर सामानकी जांच करनेका काम उनके जिम्मे किया गया पर वे भी उन दिनों प्रेममयी गंगाके प्रवाहके साथ बह रहे थे। इसलिये श्रीभाईजीके एवं श्रीघनश्यामदासजीके हाथसे लिखी हुई भगवद्दर्शनोंकी जसीडीह एवं गोरखपुरवाली घटनाओंके सादे कागज एवं भाईजीके हाथसे अपने दर्शनकी घटनायें लिखी हुई गीता डायरी तथा श्रीगोयन्दकाजीको भगवद्दर्शनवाली घटनाओंकी दी हुई चिट्ठियोंकी नकलें जो कि मेरे द्वारा नकल कराई गयी थीं एवं श्रीभाईजीके हाथोंसे लिखी हुई नारद भक्ति सूत्रोंपर विशद व्याख्या की हुई पुस्तक आदि अत्यन्त उपयोगी अमूल्य कागजोंसे भरी हुई छोटी-सी काठकी बक्स तथा श्रीभाईजीके मस्तकपर बाँधनेकी पगड़ी (उन दिनों हमारे चरित्रनायक अपने मस्तकपर कभी-कभी मारवाड़ी ढंगकी पगड़ी बाँध लिया करते थे। इसके थोड़े दिन बाद तो सिर उगाड़ा-खुला ही रखते थे। सर्दीकी ऋतुमें कभी-कभी कानोंकी टोपी पहन लेते थे) कई वस्तुयें उसी गाड़ीके डिब्बेमें जहाँ रक्खी थी वहीं रह गयीं। दूसरे किसी व्यक्तिने सँभाला नहीं और वह गाड़ी भुसावलकी तरफ चली गयी। खण्डवेमें केवल एक घंटा ठहरकर शौच स्नानादि करनेका ही प्रोग्राम था इसलिये शीघ्रतामें सामान वहीं प्लेटफार्म पर छोड़कर मोटर आदि सवारी में बैठकर सेठ राधाकृष्णजी जयकृष्णजी, सुन्दरलालजी देवकृष्णजी बाहेती बीकानेरवालोंके जीणमें जाकर सारे नित्य कर्म स्नान संध्यादिसे निवृत्त होकर धारोष्ण दुग्धपान करके शीघ्र ही खण्डवा स्टेशनपर आ गये। उपर्युक्त फर्मके मालिक श्रीयुत सेठ सुन्दरलालजी बाहेतीने खण्डवामें ठहरनेके लिये नम्रतापूर्वक बहुत ही आग्रह किया पर बम्बई पहुँचनेके निश्चित समयके तार दिये हुए थे तथा समयका भी अभाव था, इसलिये उनसे क्षमा प्रार्थना करके कलकत्ता मेलके आनेपर उसमें सबलोग सवार हो गये। खण्डवासे श्रीराधाकृष्णजी पारीक, कन्हैयालालजी मंत्री तथा सीतारामजी पुजारी भी भुसावलतक साथ चलनेके लिये गाड़ीमें बैठ गये। कलकत्ता मेल बम्बईकी तरफ चल पड़ा।

इधर जो काठकी पेटी उस पारसल एक्सप्रेसके डिब्बेमें रह गयी थी उसकी खोज होने लगी। पर वह अब कहाँसे मिलती? सब लोगोंने कहा उसी डिब्बेमें रह गयी। इसपर मैंने कहा कि मैंने उसे नहीं सँभाला यह मेरी ही भूल हुई इसलिये मैं उसे खोजनेके लिये भुसावल स्टेशनपर उतर जाऊँगा। जब वह गाड़ी आवेगी तब उसमें खोजकर पीछसे पंजाब मेल आयेगा तब उसमें सवार होकर आ जाऊँगा।

इतनेमें भुसावल स्टेशन आनेपर हम तीनों यहीं ठहर गये और सब लोग उसी गाड़ीसे बम्बई चले गये।

पौष शुक्ला १०। ८४ दिनके ३॥ बजे श्रीभाईजी बम्बईके प्रधान स्टेशन पर पहुँचे। प्लेटफार्मपर सैकड़ों

प्रेमीजन पहलेसे चातककी भाँति श्रीभाईजीके दर्शनके लिये लालायित हो रहे थे। उन्हें देखते ही प्रेमीजन ऐसे प्रफुल्लित हुए कि मानों उन्हें अपनी खोई हुई अमूल्य निधि मिल गयी। श्रीभाईजीके डिब्बेसे उतरते ही जो उन्हें पूज्य भावसे मानते थे वे लोग उनका चरण स्पर्श करने लगे। बड़ी कठिनतासे उन्हें समझा बुझाकर इस कार्यको समाप्त करके दो होशियार आदमियोंके जिम्मे सारा सामान करके सब प्रतिष्ठित लोगोंके सहित श्रीभाईजी स्टेशनसे पैदल ही संकीर्तन करते हुए दादी सेठ अग्यारी लेनवाले श्री शिवनारायणजी नेमाणीके मकानमें पहुँचे जहाँ पर हमारे चरित्रनायकके अथक परिश्रमके द्वारा स्थापित सत्संग भवन था। वहाँ पहुँचकर करीब ४॥ बजेसे श्रीभगवन्नाम महिमापर बड़ा ही जोशीला भाषण दिया और अंतमें श्रीभगवन्नाम कीर्तन कराया।

६ बजे श्रीभाईजीने संकीर्तन समाप्त करके अपने अनन्य प्रेमी मित्र श्रीरामकृष्णजी डालमिया, गुलाबरायजी नेमाणी आदि सज्जनोंसे बातचीत करते हुए श्रीडालमियाजीसे उनकी पुत्री रामाबाईको अंग्रेजी पढ़ानेसे निषेध किया। फिर नित्यकर्मसे निवृत्त होकर भोजनादि करके करीब ८ बजे श्रीसत्संगभवनमें आकर पहले श्रीडूँगरमलजी लोहियासे भजन कीर्तन कराकर एक भजन पुरुलियावाले श्रीघनश्यामदासजीसे सुनकर रात्रिके ९ बजेसे ११ बतेतक श्रीभाईजीने अपने प्राणाधार प्रभुका शुभ सन्देश श्रीभगवन्नामकी अद्भुत महिमा सुनाकर श्रोता लोगोंको मुग्ध कर दिया। इधर मैंने बंजरंगलालजी चांदगोठिया और चिरंजीलालजी गोयन्दकाने चेष्टा करके लोगोंसे नित्य नियमपूर्वक 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।' महामंत्र जप करनेके लिय मालायें लिखना प्रारम्भ कर दिया। करीब ४०० माला नित्यप्रति फेरनेके वचन मिले। ११ बजेसे १२ बजेतक श्रीडूँगरमलका पुनः भजन कीर्तन होकर १२। बजे शयन किया।

बंबई, पौष शुक्ला ११। ८४ ता० ३। १। १९२८ प्रात:काल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर कई प्रेमी जनोंके साथ श्रीभाईजी श्रीनरनारायणजीके मंदिरमें पूज्य यादवजी महाराज (जो कि एक बड़े ही भगवन्नाम प्रचार करनेवाले व्यक्ति हैं) के पास जाकर बजरंगजी एवं मोहनजीसे कहकर पचास रुपये उनको भेंट कराये। उन्होंने श्रीभाईजीसे पूछा कि ये भक्त हैं या सेठिया तब उत्तरमें निवेदन किया कि सेठिया हैं। इसपर भी उन्होंने स्वीकार करनेमें संकोच किया पर श्रीभाईजीकी नम्रतापूर्वक प्रार्थना करनेसे स्वीकार कर लिया। इन दिनों श्रीरामानुज संप्रदायके सबसे बड़े आचार्य थे प्रतिवादी भयंदर मठके पीठाधीश्वर श्रीश्री अनन्ताचार्यजी महाराज। इनसे चरित्रनायकका घनिष्ठ प्रेम था। बंबईमें इनका एक बड़ा मंदिर है। वहाँपर आजकल कई दिनोंसे वृहत् उत्सव हो रहा था। श्रीयादवजी महाराज इस समय वहींपर जा रहे थे, इसलिये श्रीभाईजीसे कहा कि अभी तुम भी हमारे साथ वहाँ चलकर संकीर्तन करो। सायंकालके समय यहाँपर नित्य प्रति सैकड़ों स्त्रियाँ इकट्ठी होकर भजन सत्संग कीर्तन किया करती हैं। उस समय तुम यहाँ आकर अपना शुभ सन्देश तथा संकीर्तन सुनाना।

८॥ बजे श्रीयादवजी महाराजके साथ श्रीभाईजी अपने प्रेमीजनोंके सहित श्रीअनन्ताचार्यजी महाराजके मंदिरमें जाकर श्रीभगवानके दर्शन भेंट करके श्रीआचार्य चरणोंके समीप उपर जाकर नम्रतापूर्वक प्रणाम करके मोहनजीके द्वारा उनको भेंट कराये। वहाँपर प्रवचन हो रहा था। थोड़ी देर वहाँ बैठकर प्रवचन सुना।

नीचे श्रीयादवजी महाराजकी सुयोग्य पुत्री बहुत-सी स्त्रियोंको पौष माहात्म्यके संस्कृत श्लोकोंपर विद्वत्तापूर्ण व्याख्या करके कथा कह रही थी। उन्हें श्रीयादवजी महाराजने कथा शीघ्र समाप्त करनेको कहा और श्रीभाईजीसे कहा कि आप अपने प्रेमी मित्रोंसहित श्रीभगवानकी परिक्रमा करते हुए संकीर्तन करो। तब श्रीभाईजीकी आज्ञासे साथ वाले प्रेमी जनोंने पहले परिक्रमा करते हुए फिर श्रीभगवानके सामने नृत्य करते हुए संकीर्तन किया और उसी प्रकार संकीर्तन करते हुए ही अपने सत्संग भवनमें करीब ९। बजे पहुँचकर वहाँपर भी पहले प्रेमीजनोंने खूब नृत्य करते हुए संकीर्तन किया।

इसके बाद श्रीभाईजीने खड़े होकर पहले आत्म

तत्वपर वेदान्त विषयक विद्वत्तापूर्ण भाषण देकर उसकी प्राप्तिका सबसे सुगम और सर्वोच्च सरल साधन श्रीभगवन्नामको बतलाया। अन्तमें पुनः सामूहिक संकीर्तन करनेके पश्चात् पं० श्री अखण्डानन्दजी महाराज (गुजरातवाले) आ गये। तब उनका भी भक्ति और श्रीभगवन्नामपर बड़ा ही रोचक भाषण थोड़ी देर तक हुआ। तदुपरान्त श्रीभाईजी तो अपने प्रेमी मित्र श्रीवृद्धिचन्दजी पोद्दार एवं पं० श्रीलालजी याज्ञिकसे बड़े प्रेमसे मिले। श्रीडूँगरमलजीने खड़े होकर भजन संकीर्तन कराया और मैंने तथा बजरंगजी आदिने लोगोंसे भगवन्नाम जपकी माला नियमपूर्वक फेरनेके लिये लिखनी प्रारम्भ कर दी। करीब ११॥ बजे सत्संग समाप्त होकर भोजनादि करके श्रीभाईजी तो अपने पुराने प्रेमी मित्र श्रीगिरधरलालजी बांगड़ आदिसे मिलकर श्रीलक्ष्मणदासजी (बंशीलाल अबीरचन्द नामक फर्मके मुनीम) की मोटर लेकर लक्ष्मी आर्ट प्रिन्टिंग प्रेसमें गये। वहाँसे ३। बजे लौटकर पं० बद्रीप्रसादजी आचार्यको गोरखपुर पत्र देकर सत्संग भवनमें स्त्रियोंके धर्म सम्बन्धी व्याख्यान दिया। कई व्यक्तियोंने माताओंसे मालायें लिखाई।

४॥ बजे भाषण समाप्त करके श्रीभाईजी अपने प्रेमीजनोंके सहित श्रीनरनारायणजीके मंदिरमें गये। रास्तेमें साथवाले प्रेमीजन नाम कीर्तन करते हुए पूज्य श्रीयादवजी महाराजके यहाँ पहुँचे। वहाँपर हजारोंकी संख्यामें मातायें एकत्रित होकर बड़े मधुर स्वरसे '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' का चित्ताकर्षक संकीर्तन कर रही थीं। थोड़ी देर संकीर्तन होनेके बाद महाराजजीकी आज्ञासे श्रीभाईजीने भक्ति विषयपर बड़ा ही सुन्दर भाषण दिया। तत्पश्चात् श्रीयादवजी महाराजके बारम्बार अनुरोध करनेपर अपने प्रेमीजनोंके सहित श्रीभाईजीने आगे-आगे बोलकर— 'परम मधुर युगल नाम राधे कृष्ण सीताराम' की ध्वनिका बड़े ही मधुर स्वरमें खड़े होकर नृत्य करते हुए संकीर्तन कराया। अंतमें श्रीयादवजी महाराजजीकी विशेष आज्ञासे श्रीभाईजीने सूरदासजीका एक पद—

सुने री मैंने निरबलके बल राम।
पिछली साख भरूँ संतनकी, अड़े सँवारे काम॥
जब लगि गज बल अपनो बरत्यो, नेक सर्‌यो नहिं काम।
निर्बल ह्वै बल राम पुकार्‌यो, आये आधे नाम॥
द्रुपद सुता निर्बल भई ता दिन, तजि आये निज धाम।
दुःशासन की भुजा थकित भई, बसन रूप भये स्याम॥
अप-बल, तप-बल और बाहु-बल, चौथो है बल दाम।
सूर किसोर-कृपातें सब बल हारे को हरि नाम॥

मधुर स्वरसे बड़ी ही मस्तीसे बारंबार इसी पदको दुहराते हुए नृत्य करते हुए बेसुधसे खड़े होकर इसीका कीर्तन कराते रहे। अँधेरा हो गया तब जैसे-तैसे यह पद समाप्त किया। उन दिनोंमें हमारे चरित्रनायक श्रीभाईजी बड़ी ही उमंग एवं मस्तीके साथ वाह्य जगतको भूलकर अपने प्रेमास्पद भगवान्‌के सामने हृदय खोलकर जिस प्रकार संकीर्तन कराते थे उसे तो कोई बड़भागी प्रेमी ही उस समय अपने श्रद्धालु नेत्रोंसे देखनेवाला ही अनुभव कर सकता है। वर्णन तो वह भी नहीं कर सकता है क्योंकि ये सब वस्तुएँ अन्तर्जगतके प्रेमराज्यकी हुआ करती है। इन्हें यदि कोई वर्णन करनेका प्रयास भी करे तो वह पागलके प्रलापके सिवाय क्या कहा जायेगा? वास्तवमें वर्तमान् समयमें ऐसी प्रेममयी लीलाओंके देखने सुननेवाले प्रायः बिरले भी शायद ही हों। इसलिए ऐसी बातें लिखनेमें लेखनी सहसा रुक जाती है। परन्तु, प्रिय पाठकवृन्द! जितना आप पढ़ रहे हैं उसे भी श्रद्धासे आप हृदयंगम करेंगे तो सचमुचमें कृतार्थ हो जायेंगे।

श्रीनरनारायण देवके दर्शन, भेंट, परिक्रमा, प्रणामादि करके अपने निवास स्थान सत्संग भवनमें आकर भोजनादि करके वहींपर रात्रिके ८॥ बजेसे श्रीडूँगरमलजीका भजन संकीर्तन होकर श्रीभाईजीका भाषण प्रारम्भ हुआ। बीचमें वहाँके प्रसिद्ध वैद्य श्रीयादवजी महाराज तथा प्रधान पण्डित श्रीरमापतिजी एवं पं० श्री संतोजी महाराज पधारे तब श्रीभाईजी कुछ देर श्रीडूँगरमलजीको संकीर्तन करानेकी कहकर अलग कमरेमें उन लोगोंसे धर्म सम्बन्धी वार्तालाप करके उनको साथ लेकर सत्संग भवनमें आये और ११ बजेतक पं० रमापतिजीका भाषण हुआ। अंतमें आधे घंटे श्रीभाईजीका पुनः श्रीभगवन्नाम महिमापर बड़ा ही प्रभावशाली भाषण होकर सामूहिक

संकीर्तन बड़े ही मधुर स्वरोंमें होकर करीब १२ बजे आजका कार्यक्रम समाप्त हुआ।

बम्बई, पौष शुक्ला १२। ८४ बुधवार ता० ४। १। २८ से माघ कृष्णा १ तक बम्बईमें रहकर श्रीभाईजीने जगह जगह बुलियन एक्सचेंज, खण्डी बाजार आदि कई स्थानोंपर व्याख्यान देकर तथा संकीर्तन आदिके द्वारा श्रीभगवन्नामकी महिमा वहाँके रहनेवाले प्रेमीजनोंको हृदयङ्गम कराई। पौष शुक्ला १५ को नगर संकीर्तन निकला। जिसमें सैकड़ों आदमी दिल खोलकर कीर्तन करने लगे। श्रीनरनारायणजीके मंदिरसे पालकीपर श्रीभगवानकी मूर्ति सजाकर वहाँसे जुलूस निकाला जो विट्ठलवाडी, चांदीबाजार, खंडीबाजार, रुईके पाटियेसे सवद बजार एवं भुलेश्वरके रास्तेसे होता हुआ सत्संग भवनमें समाप्त हुआ। चारों तरफ सड़कोंपर हजारों आदमियोंके कानोंमें वह हरिनामकी मधुर ध्वनि गई जिससे अनन्त पाप पुंजोंका नाश हुआ।

श्रीभाईजी बम्बईमें बहुत वर्षोंतक रहकर सामाजकी अनेकों सेवा कार्य कर चुके थे। उन दिनों अग्रवाल महासभा तथा अग्रवाल पंचायत सभा नामसे दो संस्थाओंमें खूब जोरोंका वैमनस्य हो रहा था। उसे मिटानेके लिये दोनों पार्टीवालोंने इनसे चेष्टा करनेकी प्रार्थना की परन्तु ये तो इस बार आये थे श्रीभगवानके आदेशसे श्रीभगवन्नाम प्रचारके उद्देश्यसे। इसलिये उन्होंने दोनों पार्टीवाले प्रेमीजनोंसे नम्रतापूर्वक उस समय तो अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। आगे चलकर तो २॥ महीने बाद श्रीगोयन्दकाजीकी आज्ञासे इन्हें अखिल भारतीय अग्रवाल महासभाके दशम वार्षिक अधिवेशनमें सभापतिके रूपमें आना पड़ा था।

इनके कई प्रेमी मित्र इनके जसीडीह एवं गोरखपुरमें श्रीभगवानके दर्शन एवं उनसे हुए वार्तालाप सम्बन्धी बातें पूछते तब ये उनके सामने एकान्तमें वे सब घटनायें उन्हें विस्तारसे सुनाते।

विस्तारके भयसे अलग-अलग सब कार्योंका विवेचन न करके श्रीभाईजीके बम्बईके कुछ प्रेमी मित्रोंके नाम दे देते हैं जिनसे उन्होंने वार्तालाप किया। कई प्रेमीजनोंके नाम तो ऊपर लिखे गये हैं कुछ अब लिख रहे हैं— बीकानेर निवासी श्रीलक्ष्मणदासजी डागा, श्रीमोहनलालजी, ईश्वरदासजी डागा, श्रीचिरंजीलालजी गोयन्दका, श्रीचिरंजीलालजी लोयलका, श्रीगोपालजी नेवटिया, श्रीवेणीप्रसादजी डालमिया, श्रीरामदेवजी पोद्दार, श्रीरामचन्द्रजी लोयलका, श्रीनिवासजी पोद्दार, श्रीबालकृष्णलालजी पोद्दार, श्रीवृद्धिचन्दजी पोद्दार, पं० श्रीलालजी याज्ञिक इत्यादि।

आज बम्बईमें आये ७ दिन हो गया है। दूसरी जगहसे लोगोंके बुलानेके लिये तार आदि आ रहे हैं इसलिये आज ही यहाँका कार्य समाप्त करके यहाँसे रवाना होना है। अतः प्रातःकाल सत्संग भवनमें श्रीभाईजीने ध्यान करनेकी विधि बतलाकर साकार भगवानकी मानसिक पूजा, स्तुति, आरती करके अन्तमें जोर-जोरसे जय-जयकार किया। भवन ठसासस आदमियोंसे भर गया था इसलिये खड़े होकर अपना ओजस्वी भाषण देकर अंतमें बड़ी ही नम्रतासे श्रोताओंके हम आनेवाले लोग ऋणी हैं ऐसा कहकर अब हमलोग आज जा रहे हैं। इसलिये दो वस्तुयें हमें भीखमें देनी चाहिये। एक आपलोग प्रेमपूर्वक श्रीभगवन्नामके जप करनेका नियम लें और दूसरी बात सत्संग भवनमें आकर नित्य प्रति सत्संग किया करें।

दिनमें प्रेमीजनोंसे मिलने तथा एकान्तमें बातें करते रहे। आज रात्रिकी गाड़ीसे रवाना होना है इसलिये स्टेशनपर पहुँचानेके लिये बहुतसे प्रेमीजन पुष्प मालायें पहनानेके लिये लाये थे। तब श्रीभाईजीने मुझसे कहा कि अपने साथ यहाँसे जो भी भगवानका चित्र लिया है उसे बाहर ले जाओ। तब मैं उन्हें ले आया फिर सबसे कह दिया कि जिन्हें मालायें पहनाना हो वे श्रीभगवानको पहना दें। क्योंकि चरित्रनायक अपनी स्वाभाविक नम्रताके कारण मान प्रतिष्ठासे बहुत बचा करते थे। कोलाबा स्टेशनसे अहमदाबाद जानेवाली गाड़ीके डिब्बेमें खड़े होकर गाड़ीके चलते समय सब लोगोंसे आज सबेरे सत्संग भवनमें दो बातोंकी जो भीख मांगी थी उसी भीखको मांगने लगे। इधर नियत समयपर गाड़ी चल पड़ी। कई प्रेमीजन ग्रांट रोडतक पहुंचानेके लिये चले

आये। वह करुणामयी प्रेमीजनोंका दृश्य देखने ही योग्य था। श्रीभगवानकी अनिर्वचनीय कृपासे इस बीसवीं शताब्दीमें सं० १९८४ का साल ऐसा आया कि उस सालकी अलौकिक अद्भुत, अनिर्वचनीय प्रत्यक्ष देखी हुई घटनायें सुनकर उसमें विश्वास करनेवाले व्यक्ति ही विरले मिलेंगे। इसीलिये चेष्टा करनेपर भी उन घटनाओंका किसी अंशमें भी यथार्थ चित्रण ही नहीं हो सकता और वास्तवमें वह वस्तु है भी ऐसी ही अमूल्य। प्रेमी पाठकोंसे तो नम्रतापूर्वक हम इतना ही निवेदन करेंगे कि ऐसी विभूतियाँ कभी-कभी विरले ही समयमें श्रीभगवानकी कृपासे इस धराधाममें जगतके जीवोंके उद्धारके लिये प्रादुर्भूत होती हैं। उस समय उनके साथ रहनेवाले तो उन्हें यथार्थ रूपसे पहचानते नहीं पर उनके अदृश्य हो जानेपर उनके उपदेशपूर्ण लेख एवं उनके मधुर चरित्रोंको हृदयंगम करनेवाले बड़भागी लोगोंमेंसे भी किन्हीं किन्हीं प्रेमीजनोंको उनकी परम पावन मधुर लीलाओं तथा उनकी सुन्दर सलोनी मूर्तिके भी दर्शन हो सकते हैं, हुए हैं, और होते रहेंगे। इसलिये जिन्हें इस संसारके प्रपंचमें दुःख प्रतीत हों वे अपने हृदयमें शान्ति प्राप्त करने तथा भगवानके प्रेमी भक्तोंके चरित्रमें निमज्जन करनेके लिये भगवानसे एकान्तमें प्रार्थना करते रहें। सच्चे हृदयकी प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती।
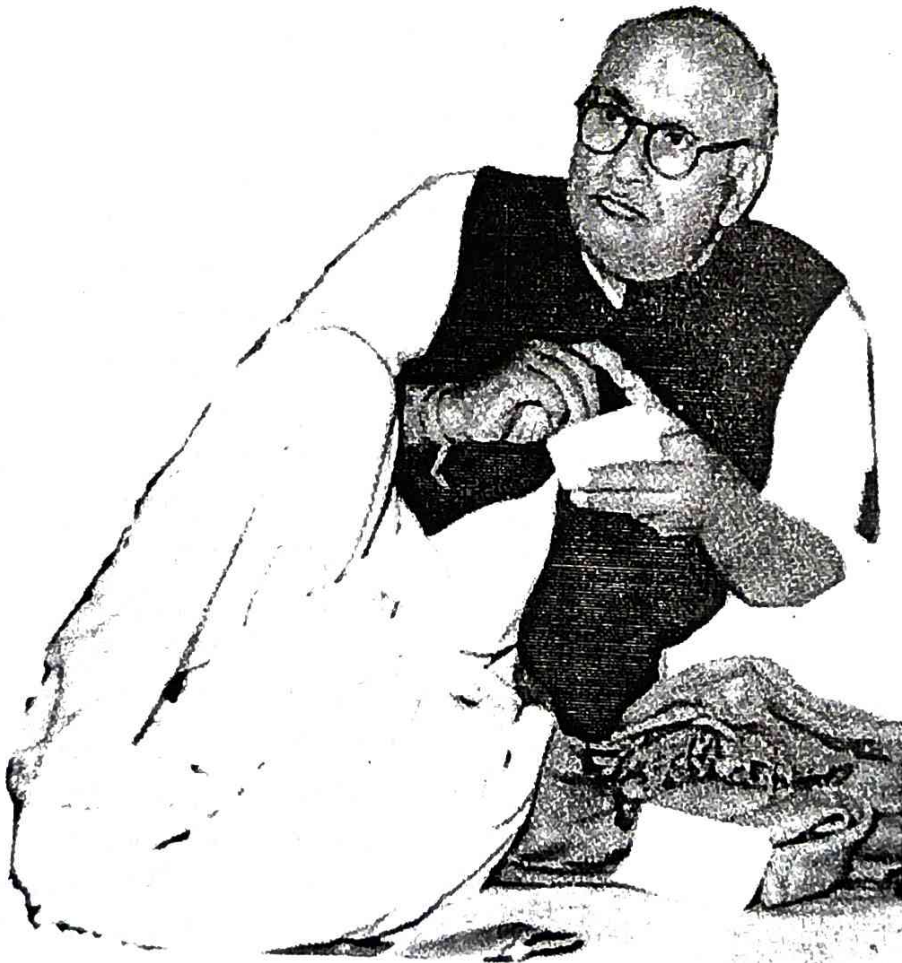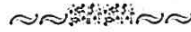
॥ श्रीहरि: ॥

सत्ताईसवाँ पटल

अहमदाबादके साबरमती आश्रममें महात्मा गाँधीजीसे भेंट

करतल सों ताली देत, राम मुख बोली।
बस जली तुरत पातक पुंजों की होली॥

माघ कृष्णा २। १९८४ प्रात:काल अहमदाबाद स्टेशनपर सब लोग उतरकर चेनीराम जेशराज (श्रीवृद्धिचन्दजी पोद्दार) के बंगलेमें मोटरोंमें बैठकर गये।

अहमदाबादमें श्रीभाईजीने स्नान संध्यादि नित्यकर्म करनेके पश्चात् 'कल्याण'के लिये 'श्रीभगवन्नाम' शीर्षक लेख लिखनेका विचार किया। परन्तु वहाँके कई सज्जन आकर पासमें बैठ गये तब उनसे बात करने लग गये फिर भोजन आदि कार्योंसे निवृत्त होकर करीब १ बजे महात्मा गाँधीजीके साबरमती आश्रममें मोटरोंमें बैठकर गये। उस समय महात्माजी कमरेके अन्दर सो रहे थे तब साथवालोंके सहित श्रीभाईजी उनके बरामदेमें शान्तिपूर्वक बैठ गये। आज उनके मौनका दिन था। इसलिये उनके जागृत होनेपर गाँधीजीको नम्रतापूर्वक प्रणाम करके सब लोग वहाँसे चले आये।

वहाँपर उन दिनों एक अमेरिकन महिला (मिस स्लेड) मीरां बहिनके नामसे आश्रमकी परिचर्या बड़ी श्रद्धा भक्तिपूर्वक किया करती थी। उनसे बड़े प्रेमसे श्रीभाईजी बातें करके आश्रमके सामने श्रीजमनालालजी बजाजके परिवारवालोंसे मिले। इन लोगोंके साथ श्रीभाईजीका बम्बईमें व्यापार कार्य पहले होता था। इसलिये इन लोगोंसे सगे परिवारका ही सम्बन्ध था। अस्तु,

'कल्याण'के तृतीय वर्षका प्रथम विशेषांक भक्तांक नामसे निकलनेवाला था। उसमें लेख लिखनेके लिये काका साहेब कालेलकर एवं उन दिनोंके गांधीजीके प्राइवेट सेक्रेटरी महादेवभाई देसाईसे प्रार्थना करके उनसे स्वीकृति लेकर आश्रमके प्रधान गायनाचार्य खरे साहबके कई मधुर भजन सुनकर वापस अपने निवास स्थानपर आ गये।

सायं संध्या भोजनादि शीघ्रतासे करके करीब ६ बजे पैदल ही तेजीसे चलकर नदी पार करके म० गाँधीजीके आश्रममें पहुँचकर उनकी सैकड़ों जन समुदायकी सामूहिक प्रार्थनामें सम्मिलित हो गये। अहा! वहाँके शान्तिमय वातावरण तथा एक स्वरसे प्रार्थनाके श्लोक, कीर्तन तथा भजनोंको श्रवण करके बरबस मन मुग्ध हो जाता था। किसी भाग्यशालीको ऐसी प्रार्थनामें सम्मिलित होनेका शुभ अवसर प्राप्त होता होगा। वही गूंगेके गुड़के स्वादकी भाँति अनुभव कर सकता है, क्योंकि वहाँका दृश्य तो 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' के सदृश था। भजन समाप्त होनेके बाद सूत कातनेकी हाजरी लेकर गायनाचार्य खरे साहबने आगे-आगे बोलकर अपने कोकिल कूजत कमनीय कंठसे उच्चारण करते हुए **'रघुपति राघव राजा राम पतित पावन सीताराम।'** इस परम मधुर भगवन्नामकी ध्वनिका कीर्तन कराया। पीछे-पीछे बोलनेवालोंने भी एक स्वरसे बड़े ही प्रेमसे इस कीर्तनमें अपनेको परमानन्दका अनुभव किया। जिसे कभी सौभाग्यसे भगवन्नामामृतका किंचित् रसास्वादन करनेको मिला होगा वही इन घटनाओंका यथार्थ अनुभव कर सकता है।

इसके बाद म० गाँधीजीने क्रोधके त्यागपर बहुत मधुर भाषामें धीरे-धीरे बोलकर एक छोटा-सा पर बहुत ही चित्ताकर्षक भाषण दिया। फिर सब लोग उठकर अपने-अपने कामोंमें लग गये। श्रीभाईजी गाँधीजीके साथ-साथ उनके कमरेके पास जाकर बोले आपसे कुछ बात करनी थी। तब गाँधीजीने बड़े प्रेमसे कहा—आइये कमरेमें बैठकर बात करें। श्रीभाईजीके साथवाले भी कई प्रेमी उन दोनों महत् पुरुषोंकी बातें सुनने लगे।

गाँधीजी—मैंने सुना है आपने आजकल अपने

भ्रमणका प्रधान उद्देश्य भक्ति एवं भगवन्नाम प्रचार बना रखा है और साथमें रहनेवालोंके लिये कुछ नियम भी बनाये हैं वे कौन से हैं?

श्रीभाईजीने कहा—जब आसाम प्रांतमें जा रहा था तब कई नियम बनाये थे और संक्षेपमें (डायरी लेकर) कुछ बतलाये।

गाँधीजीने इन नियमोंकी तथा भगवन्नाम प्रचारकी बड़ी आवश्यकता बतलाते हुए इस भ्रमण कार्यकी सराहना की।

श्रीभाईजीने 'कल्याण'के भक्तांकके लिये उनसे लेख लिखनेकी प्रार्थना की तब उन्होंने इसे स्वीकार करते हुए कहा समयपर याद दिलाते रहना। इसके बाद वहाँके किसी खास व्यक्तिने कहा कि महात्माजीने गीताजीकाजो अनुवाद किया है उस 'अनासक्ति योग' नामक पुस्तकको आप अपने गीताप्रेससे छापकर प्रकाशित करा दें तो अच्छा है।

इसपर श्रीभाईजीने बड़ी नम्रतासे कहा कि यद्यपि यह कार्य गीताप्रेसद्वारा हो सकता तो बहुत अच्छी बात होती। किन्तु इसमें और गीताप्रेसके सिद्धान्तमें दिन-रातका मतभेद है इसलिये यह कार्य वहाँसे होना कठिन है।

तब उन्होंने बड़े आश्चर्यके साथ कहा—ऐसी कौन-सी बात है जिससे गीताप्रेस इसको छाप ही नहीं सकता?

श्रीभाईजीने बड़ी नम्रतासे संक्षेपमें जिन-जिन स्थलोंमें सिद्धान्तका मतभेद है वे बतलाये।

पाठकोंकी जानकारीके लिये इस बातका कुछ खुलासा करना आवश्यक समझकर हम हिन्दी अनासक्ति योगकी प्रस्तावनाका कुछ वह अंश यहाँ गाँधीजीके शब्दोंमें लिखते हैं। अब (मैं) गीताके अर्थपर आता हूँ। सन् १८८८-८९ में जब गीताका प्रथम दर्शन हुआ तब मुझे ऐसा लगा कि यह ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है।

श्रीभाईजीने बड़े ही नम्र शब्दोंमें पर निर्भीकतापूर्वक कहा कि महाभारत और गीताको यदि हम ऐतिहासिक ग्रन्थ न मानें और श्रीकृष्ण एवं उनमें वर्णन किये हुए व्यक्तियोंको यदि हम ऐतिहासिक पुरुष ही न मानें तथा इनमें वर्णित युद्ध आदि बातोंको हम यदि कल्पनामात्र ही मान लें तो फिर हिन्दू धर्मके इतिहासमें रह ही क्या जाता है? अत: गीताप्रेस इन ग्रन्थोंको यथार्थ इतिहास एवं भगवान श्रीकृष्णको परब्रह्म परमात्माका पूर्ण अवतार मानती है। इसलिये अनासक्ति योग गीताप्रेसके द्वारा प्रकाशित होना कठिन है।

इस प्रकार करीब ९ बजेतक म० गाँधीजीके यहाँ बातें होती रहीं फिर वहाँसे आप पैदल ही अपने निवास स्थानपर आते समय उस आश्रमके प्रधान कार्यकर्ता गाँधीजीके भतीजे मगनलाल भाईने एक लालटेन दे दिया जिससे सुखपूर्वक नदीमेंसे होते हुए डेरेपर आये। सुखपूर्वक माघ कृष्णा ३। ८४ को प्रात:काल अहमदाबादसे रवाना होकर मारवाड़ प्रांतकी तरफ प्रस्थान किया। स्टेशनपर श्रीभाईजीसे 'रंगीला भक्त' नामक पुस्तकके सम्बन्धी बातें होती रहीं। वे इस प्रकार थीं।

श्रीभाईजीने मुझसे कहा कि तुमने 'रंगीला भक्तराज' नामक पुस्तक पढ़ी या नहीं? उसमें बहुत आक्षेप किया गया है। लोग जसीडीहकी बातें सुनकर सहन नहीं कर सकते क्योंकि वह घटना भी ऐसी ही विचित्र हुई थी। अत: गोविन्द भवन वालोंको भी लिख देना चाहिये कि इसे पढ़कर किसीके मनमें कुछ भी विकार न होना चाहिये।

इसी पुस्तकके सम्बन्धमें श्रीभाईजीने एक पत्र अपने मित्रको दिया था उसकी नकल इस प्रकार है—

श्रीहरि:

अहमदाबाद माघ कृष्ण ३। ८४

श्रीयुत पं० हरिवक्षजी जोशी (कलकत्ता)

प्रणाम एवं सप्रेम हरिस्मरण।

आपका पत्र एवं 'रंगीला भक्त' नामक पुस्तक मिली। पुस्तक मैंने अभी पूरी पढ़ी नहीं है। कुछ-कुछ देखी है। इसमें क्षोभ होनेका तो कोई कारण नहीं दीखता।

आपके कथनानुसार पुस्तकमें यदि मुझपर कटाक्ष किये गये हैं तो इसमें आपत्ति की कौन-सी बात है? यदि कोई सच्चा दोष लेखकने दिखलाया होगा तो मुझे उसका उपकार मानना चाहिये।

दोष बतलाकर सावधान करनेवाले सज्जनोंको

प्रशंसाके पात्र ही मानना चाहिये। यदि लेखकने ही अनुचित और मिथ्या आक्षेप किया हो तो वह बेचारा भ्रममें है। परमात्मा उसकी भ्रमसे भरी हुई बुद्धिकी शुद्धि करें।

इस पुस्तकको देखकर मुझे तो रत्तीभर भी क्षोभ नहीं हुआ और न मेरे मित्रोंको होना चाहिये। आप कृपा कर सब मित्रोंको मेरी ओरसे सावधान कर दें कि वे किसी प्रकार भी क्षुब्ध न हों, और यदि लेखकसे परिचित हों तो उनको इसके सम्बन्धमें कुछ भी न कहें। उनसे द्वेष तो किसी भी हालतमें नहीं करना चाहिये। मान लीजिये उन्होंने भूलसे मुझपर या किसीपर मिथ्या दोषारोपण किया है; वह उन्होंने एक दोष किया। इसके बदलेमें यदि हमारे हृदयमें घृणा, द्वेष, क्रोधादि उत्पन्न हो जाय तो इससे यह होगा कि उनके मनमें तो एक ही दोष था हमारे मनमें कई पाप आ गये।

अपना गुणगान करनेवाले, हाँ में हाँ मिलानेवाले तो बहुत मिलते हैं, सच्चे मनसे दोष बतलानेवाले दुर्लभ हैं। यदि लेखकने ऐसा किया है तो हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिये। इसका प्रतिकार यही है कि भक्तिके मार्गमें चलनेवाले लोग कहीं भी अपने चरित्रमें दोष न आने दें। पद-पदपर अपने मन और क्रियाओंको देखते रहें कि कहीं भी उनमें कलुषित भाव न आ जाय। इतनेपर भी यदि किसीको अभ्यासवश निन्दा करनेके लिये स्वाभाविक ही बाध्य होना पड़े तो उसका उपाय ही क्या है? सच्ची बात तो यह हैं कि उसे जगत् कुछ भी क्यों न बतलावे, उसका वास्तवमें कुछ भी बिगड़ नहीं सकता और जो उस सर्वान्तर्यामीके सामने झूठा है, उसको सारा संसार महात्मा या भक्त मान ले, तो भी उसका कोई मूल्य नहीं है। रही मानापमानकी बात सो मेरी समझसे विशेष मानकी ख्याति होनेकी अपेक्षा निन्दात्मक ख्याति होना कोई बुरी बात नहीं है। अपनी समझसे जान बूझकर कोई निन्दित कार्य न करे फिर कोई भय नहीं।

निन्दासे यदि लोगोंका सम्बन्ध आना जाना, मिलना भेंटना कम हो जायगा तो एकान्तवासकी स्फुरणा शीघ्र और बिना ही विशेष प्रयाससे सिद्ध हो सकती है। किसी प्रकारसे हो मानका भार उतारना तो शुभ ही है।

अतएव कोई भी चिन्ता या क्षोभकी जरा-सी बात भी नहीं है। परमात्मा सब कुछ मंगलके लिये ही करते हैं। प्रथम तो लेखककी प्रस्तावनापर विश्वास करके हमें यही मानना चाहिये कि उन्होंने मुझपर कोई कटाक्ष नहीं किया है। यदि किया भी है और शुद्ध भावनासे अपनी समझके अनुसार ठीक किया है तो उसकी ईमानदारीपर कोई भी सन्देह न करके यदि मुझमें कोई दोष हो तो मुझे उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। और, यदि उनके बतलाये हुए कोई दोष मुझमें न हो तो उनका भ्रम निवारण कर देनेके लिये हम लोगोंको और कोई प्रयत्न नहीं करके 'परमात्मासे केवल प्रार्थना करनी चाहिये' कि उनका मंगल हो।

बम्बईमें उत्साह बहुत अच्छा रहा। कई लोगोंकी धारणाके अनुसार तो कलकत्तेसे भी बम्बईमें प्रेम अधिक देखा गया। हमलोग आज बीकानेरके लिये रवाना हो रहे हैं। कल सत्याग्रह आश्रममें पूज्य महात्मा (गांधी) जीके दर्शन किये थे। 'कल्याण'के भक्तांकके लिये महात्माजी, कालेलकरजी, महादेवभाई आदिने लिखना स्वीकार किया है। सभी मित्रोंको भवनमें यथायोग कहना चाहिये। अपने चरित्रको निर्मल बनानेकी वास्तविक चेष्टा करनी चाहिये। फिर चिन्ताकी कोई बात नहीं।

आपका

हनुमानप्रसाद

प्रिय पाठकवृन्द! आप समझ गये होंगे कि जसीडीहमें पच्चीसों व्यक्तियोंके सामने श्रीभाईजीको श्रीविष्णु भगवानके जो प्रत्यक्ष दर्शन हुये थे उसी घटनाको अश्रद्धालु लोग ढोंग समझकर तत्काल पुस्तक रूपमें छपाकर उसके विरोधमें प्रचार करने लगे थे। यद्यपि हमारे चरित्रनायकके पत्रसे आप भली प्रकार समझ गये होंगे कि उन्हें जिस स्वरूपमें श्रीभगवानने प्रत्यक्ष दर्शन दिये थे उसमें रंचकमात्र भी ढोंग या मिथ्या प्रचारकी गुंजाइश नहीं थी।

॥ श्रीहरि: ॥

अट्ठाइसवाँ पटल

राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तोंमें नाम-वितरणार्थ भ्रमण

माघ कृष्णा ४। ८४ को ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर मारवाड़ जोधपुर राज्यके एक छोटेसे बोरावड़ नामक ग्राममें महन्त श्रीमुकुन्ददासजीके निमन्त्रणको स्वीकार करके श्रीभाईजीने मारवाड़ प्रांतमें श्रीभगवन्नाम प्रचारका बीजारोपण प्रारम्भ किया।

प्रिय पाठकवृन्द! बोरावड़ (जोधपुर) ग्रामके महन्त श्री मुकुन्ददासजीका नाम आप पढ़ ही चुके हैं। मारवाड़ प्रांतमें श्रीभाईजीको बुलानेका श्रीगणेश यहींसे होता है। अत: इन छिपे हुये संतका हम संक्षेपमें परिचय करा देना चाहते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके परम कृपापात्र यवन हरिदास एवं नित्यानंद महाप्रभुने जगाई मधाई जैसे गुंडोंकी नृशंसता सहकर भी श्रीभगवन्नाम प्रचारके परमोज्ज्वल चरित्रको संसारके सामने रखा। ठीक उसी प्रकार महन्त मुकुन्ददासजीने भी वर्तमान नास्तिक युगमें ऐसा ही परम पवित्र उदाहरण जनताके सामने रखा जिसका संक्षिप्त वर्णन इसी पटलमें पाठकवृन्द आगे पढ़ेंगे।

हमारे चरित्रनायक श्रीभाईजीके परम मधुर चरित्रका परिचय ये उनके किसी अंतरंग प्रेमीसे सुन चुके थे। इसलिये श्रीभाईजीके प्रति इनकी अगाध श्रद्धा-भक्ति हो गयी थी। इन्होंने अपने ग्रामके सारे समुदायको इस परम दुर्लभ संतके दर्शन तथा उनके द्वारा परम मधुर श्रीभगवन्नामको ग्रहण करनेके लिये पूर्ण श्रद्धाके साथ तैयार कर रखा था। इसलिये श्रीभाईजीने भगवन्नामका प्रचार तो पूर्वमें आसामके शिलांगसे लेकर कलकत्ता, बंबई आदि बड़े-बड़े नगरोंमें किया परन्तु वास्तविक रूपसे श्रीभगवन्नामको प्रदान किया तो इसी ग्रामके महन्त मुकुन्ददासजीको।

हाँ, तो स्टेशनसे उतरते ही भगवन्नाम संकीर्तनकी ध्वनिके साथ इन ग्रामवासियोंने श्रीभाईजीका स्वागत करना प्रारम्भ किया। इधर श्रीभाईजीके साथवाले भ्रमर भक्तोंकी मंडली तो इस कार्यके लिये भ्रमण कर ही रही थी। फिर गंगा-यमुनाके संगमकी भाँति इन दोनोंका संगम हुआ और नगर संकीर्तन करते हुए ही सारे ग्रामके कण-कणको परम पावन करते हुए यह संकीर्तन जुलूस श्रीरघुनाथजीके प्रधान मंदिरके आगे पहुँचा। यहींपर श्रीभाईजीके लिये ठहरनेका प्रबन्ध किया गया था। वहाँकी कौन-कौनसी बात वर्णन किया जाय?

वहाँ करीब १७-१८ घंटा ठहरना हुआ था। इतनी देरमें श्रीभाईजीने श्रीभगवन्नाम महिमाके बीजारोपण करनेमें अपनेसे जहाँतक बना अपने मधुर भाषणके द्वारा चैतन्य महाप्रभुके समकालीन भक्तोंका उदाहरण देकर वहाँका वायुमण्डल ऐसा बना दिया कि क्या कहा जाय। श्रीभाईजी तो उसी दिनकी रात्रिकी गाड़ीसे रवाना होकर बीकानेरके रास्तेमें आनेवाले मारवाड़ मूड़वा नामक ग्रामके लिये रवाना हो गये। वहाँपर श्रीभाईजीके बम्बईके प्रेमी नाम प्रचारक सच्चे संत सेठ श्रीरामनाथजी जाजूके सहित वहाँके ग्रामवासियोंको श्रीभगवन्नामका दिव्य सन्देश सुनाकर माघ कृष्णा ५। ८४ की रात्रिको वहाँसे रवाना होकर चरित्रनायक अपने पूर्वजोंके निवास स्थानकी प्यारी भूमि बीकानेर राज्यकी सीमामें प्रवेश कर गये। मूड़वाके प्रसिद्ध भक्त पं० फूसारामजी महाराज उस समय शायद वहाँ नहीं थे।

इधर हमारे बोरावड़ ग्रामके महन्त मुकुन्ददासजीने श्रीभाईजीके वहाँसे चले जानेके बाद अपने ग्राममें नाम-संकीर्तनका ऐसा अद्भुत प्रचार किया कि नित्यप्रति रात्रिमें भगवन्नामकी स्तुतिसे सारे ग्रामको पवित्र करना प्रारम्भ किया। यह कार्य बहुत दिनोंतक चलता

रहा। श्रीभगवानके नामके विरोधी राक्षस प्रकृतिवाले दुष्टोंने इस ग्रामके ठाकुर साहबको नाना प्रकारकी उलटी सीधी बातें कहकर इन्हें दंड दिलानेका प्रबन्ध किया।

एक रात्रिमें बोरावड़ ग्राममें नगर कीर्तनका आयोजन हुआ। इधर ठाकुर साहबकी तरफसे कीर्तन करनेवालोंको दंड देनेका प्रबन्ध हुआ और संकीर्तनके दलपर लाठियोंकी वर्षा होनी प्रारम्भ हुई। सब लोग तो तुरन्त भाग गये, कुछ प्रेमीजन महन्तजीके साथ कुछ समयतक संकीर्तन करते रहे। जैसे कहा है— 'मार के सामने भूत भी भाग जाते हैं।' सो चोटें लगनेपर वे प्रेमीजन भी गिरते पड़ते हुए भागने लगे। पर वाह रे वीर महन्त मुकुन्ददासजी जबतक उनके शरीरमें शक्ति रही, लाठियोंकी बौछार सहते हुए यवन हरिदासकी भाँति श्रीभगवन्नाम लेते रहे और उन दुष्टोंके अपराध क्षमा करनेके लिये भी भगवान्‌से प्रार्थना करते रहे। आखिर बिल्कुल बेसुध होकर इस नश्वर शरीरको तो धरतीपर रखे रहे पर मनसे न जाने श्रीभगवन्नामके मतवाले भक्त कहाँ पहुँच गये। इसके बाद होश आनेके बाद न जाने क्या-क्या किया। उन दुष्टोंके बहकाये हुए ठाकुर साहबपर जोधपुर राज्यका हुक्म हुआ कि या तो महंतजीसे माफी मांगकर उन्हें प्रसन्न करो अन्यथा अपनी बपौती ठाकुर साहबीपनेको तिलांजलि देकर कारावासकी कोठरियोंकी हवा खाओ। परन्तु हमारे परम संत महन्त मुकुन्ददासजीकी साधुताने ही उन्हें नाना प्रकारके मुकदमों तथा कष्टोंके भोगनेसे बचाया। आज भी ऐसे-ऐसे श्रीभगवन्नामके मधुपानसे मस्त हुए मतवाले भक्त इस पवित्र भारत भूमिके भूषण बने हुए हैं। इसीलिये भारतवर्षकी तुलना सारे संसारमें कोई भी स्थान नहीं कर सकता। कहा गया है— **'गायन्ति देवा किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे॥'**

चरित्रनायकके बनाये हुए पद ऐसे ही मतवालोंको पागल बनाया करते हैं—

(१)

राम राम राम राम राम राम राम।
भज मन प्यारे सीताराम॥

संतोंके जीवन ध्रुव-तारे, भक्तोंके प्राणोंसे प्यारे।
विश्वम्भर, सब जग रखवारे, सब बिधि पूरनकाम॥
अजामील-दुख टारनहारे, गज-गनिका के तारनहारे।
द्रुपद-सुता भय-बारन-हारे, सुखमय मंगलधाम॥
अनिल-अनल-जल-रबि-ससि-तारे पृथ्वी-गगन, गंध-रस-सारा।
तुझ सरिता के सब फौवारे, तुम सबके विश्राम॥
तुम पर धन-जन, तन-मन बारे, तुझ प्रेमामृतमद-मतवारे।
धन्य धन्य ! ते जग-उजियारे, जिनके मुख यह नाम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १००१)

(२)

चाहता जो परम सुख तू, जाप कर हरिनामका।
परम पावन, परम सुन्दर, परम मङ्गलधामका॥
लिया जिसने है कभी हरि-नाम भय-भ्रम-भूलसे।
तर गया वह भी तुरत, बन्धन कटे जड़-मूलसे॥
हैं सभी पातक पुराने घास सूखेके समान।
भस्म करनेको उन्हें हरिनाम है पावक महान॥
सूर्य उगते ही अँधेरा नाश होता है यथा।
सभी अघ हैं नष्ट होते नामकी स्मृतिसे तथा॥
जाप करते जो चतुर नर सावधानीसे सदा।
वे न बँधते भूलकर यम-पाश दारुणमें कदा॥
बात करते, काम करते, बैठते-उठते समय।
राह चलते नाम लेते बिचरते हैं वे अभय॥
साथ मिलकर प्रेमसे हरिनाम करते गान जो।
मुक्त होते मोहसे कर प्रेम-अमृत पान सो॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०१७)

श्रीभाईजीके साथ रहनेवालोंमें मैं भी था। इन सब भ्रमणमें नाम-वितरण-लीलाको देखता हुआ श्रीभाईजीके साथ बोरावड़तक रहकर अपने प्यारे बीकानेर नगरमें एक दिन पहले आकर अपनी संगृहीत शक्तिभर प्रयत्न करने लगा। सबसे पहले नीचे लिखे अनुसार विज्ञापन

छपाकर तथा मुनादी फिराकर नगर निवासियोंको सूचना दी।

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

आनन्द समाचार

प्रिय सज्जन वृन्द!,

बड़े सौभाग्यका विषय है कि इस घोर कलिकालमें भगवत् भावोंका प्रचार करनेवाले सज्जन संसारासक्त जीवोंको भगवत्प्रेममें प्लावन करनेके लिये हम लोगोंको घर बैठे ही दिव्य वाणी सुनानेके लिये आ रहे हैं।

परम सम्माननीय 'कल्याण' मासिक पत्रके यशस्वी सम्पादक भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार अपने सत्संगी इष्ट मित्रोंसहित आसाम प्रांतके गोहाटी, शिलांग, तिनसुकिया आदि अनेक शहरोंमें तथा कलकत्ता, बिहार प्रांत, भागलपुर, यू०पी० प्रांतके गोरखपुर एवं बंबई, अहमदाबाद आदि बड़े बड़े शहर तथा जोधपुरके कई ग्रामोंमें श्रीभगवत प्रदत्त दिव्य सन्देश सुनाकर लोगोंको भगवन्नाम-कीर्तनमें मस्त करते हुए हमारे प्यारे बीकानेर निवासी प्रेमीजनोंमें अलौकिक भगवत्प्रेम पदार्थ वितरण करनेके लिये कल माघ कृष्णा ६। १९८४ को प्रातःकालके ९ बजेकी (देशनोककी तरफसे आनेवाली) गाड़ीसे आ रहे हैं।

प्रिय बन्धुजनों, यदि आप अपने देव दुर्लभ मनुष्य जीवनको सार्थक करना चाहते हों तो प्रेमकी मस्तीमें मस्त हुए प्रेममयी मूर्ति श्रीभाईजीके 'परम मधुर युगल नाम-राधे कृष्ण सीताराम' वाले भगवन्नाम कीर्तन तथा भगवन्नामकी अलौकिक महिमा आदि विषयोंपर अनुभवपूर्ण भाषण श्रवण करनेकी कृपा करें तथा ऐसे प्रेमी व्यक्तिसे परिचय प्राप्त करनेके लिये जबतक वे यहाँ २-३ दिन रहें तबतक उनके अधिक से अधिक साथ रहकर उनके प्रत्येक कार्यक्रममें सम्मिलित होकर अपने अमूल्य समयका सदुपयोग करते हुए अपने दर्शन देकर हमें अनुगृहीत करें।

बीकानेर

माघ कृष्ण ६। १९८४

विनीत

सत्संगी

जहाँ तक बन सका मानुषी शक्तिभर मैंने उस एक दिन और रातको कैसे व्यतीत किया यह वर्णन करनेकी वस्तु नहीं है। उत्तम तो यही है कि हमारे पाठक वृन्द भी उस मस्तीका क्वचित् कण हिस्सा बँटाकर प्रेमसे यह पद बोलें—

'शबरी सगुन मनावे मोरे घर राम आवेंगे।'
राम आवेंगे मोरे घर राम आवेंगे।
शबरी सगुन मनावे मोरे घर राम आवेंगे॥

माघ कृष्ण ६। १९८४ बीकानेर। मैं आज प्रातःकालसे ही पागल सा हुआ अपने जीवन सर्वस्व प्राणाधार श्रीभाईजीके स्वागतके लिये, बीकानेरीय जनताकी तरफसे नेतृत्व करता हुआ, श्रीभाईजीके पहुँचते ही उन्हें नगर कीर्तन करते हुए जुलूसके द्वारा पैदल ही बीकानेरकी सड़कोंमें घुमाते हुए श्रीभगवन्नामका दिव्य सन्देश सुनानेवाले विलक्षण संत श्रीभाईजीका हजारों नर नारियोंको दर्शन करानेकी धुनमें न जाने क्या-क्या बाह्याडंबर सजानेकी तैयारीमें लगा हुआ था कि इस भयंकर मारवाड़ देशकी शीतकालके मौसममें प्रातःकाल ही गाड़ीके पहुँचनेसे पूर्व सारी यथोचित व्यवस्था हो जानी चाहिये।

माघ कृष्णा ६ सं० १९८४ वि० को प्रातः स्टेशनपर चारों तरफसे सैकड़ों प्रेमीजन एकत्रित होने लगे तथा (१) सनातन धर्म विद्यालय (२) मोहता मूलचन्द विद्यालय, बोर्डिंगहाउस (३) भजनाश्रम विद्यालयके छात्र अलग—अलग अपनी-अपनी मंडली पलटनके रूपमें सजाये हुए सड़कोंपर खड़े हैं। बीकानेरके कथा-कीर्तन प्रचारक भक्त राम-लक्ष्मणकी जुगल जोड़ी स्टेशनके प्लेटफार्मपर अलग ही अपने मधुर कंठोंसे श्रीभगवन्नामके साथ-साथ तुलसीकृत रामचरितमानसके चौपाइयोंका गान कर रही है और न जाने क्या-क्या तैयारियां हो रही हैं। पर ये सब होनी चाहिये बहुत ही व्यवस्थाके साथ। किसी बातमें बीकानेरके प्रेमीजनोंद्वारा श्रीभाईजीका स्वागत करनेमें कोई न्यूनता न रह जाय।

उधर श्रीभाईजी अपने प्रेमीजनोंके सहित बीकानेर स्टेशनपर गाड़ी पहुंचनेके पहले ही बिस्तर आदि

बांधनेकी अपनी सारी तैयारी कर चुके हैं। श्रीडूंगरमलजी लोहिया अपने दोनों हाथोंमें करताल लेकर अपनी साथवाली मण्डलीसहित कीर्तनमें लग रहे हैं। आज ठीक समयपर गाड़ी प्लेटफार्मपर आ पहुँची। अब फिर गंगा-यमुनाके संगमकी भाँति प्रेमीजनोंका संगम हुआ। श्रीभाईजीके चरण छूनेके लिये जो लालायित हो रहे थे वे अपने परम पदार्थके प्राप्त करनेकी भाँति—'लगे रंक जन लूटन सोना।' उन्हींकी खोजमें मस्त हो रहे हैं। श्रीभाईजी बीकानेरवालोंकी तरफसे एक विचित्र ढंगसे स्वागतकी तैयारी देखकर बहुत संकोचमें पड़ गये। पर साथही उन्हें तो अपने आराध्यदेवका जो (विश्व विमोहन श्रीकृष्णका) चित्र साथ में था, उसीका स्मरण हुआ और उसी चित्रको सवारीमें सजाकर आप उसके आसपास बिल्कुल अलगसे बनकर जुलूसके साथ- साथ चलने लगे। सब प्रकारसे सजा हुआ श्रीभगवन्नाम कीर्तन करता हुआ यह जुलूस स्टेशनसे कोट दरवाजे— श्रीदाऊजीके मंदिर, तेलीवाडे, मोहतोंके चौक आदि मार्गोंसे होता हुआ मकानके समीप श्रीदीपचन्दजी मोहताकी कोटरीमें पहुँचकर समाप्त हुआ। यहींपर चरित्रनायकके विश्राम करनेका प्रबन्ध हुआ था। करीब ४०-५० आदमी तो श्रीभाईजीके साथ बीकानेर आते ही बाहरके ग्रामवालोंके साथ हो गये। उनमें से ११ सज्जनोंके नाम तो बंबई भ्रमणके साथ पढ़ ही चुके हैं उनके सिवाय कुछ खास-खास प्रेमीजनोंके नाम यहीं लिख देते हैं—

(१२) बोरावड (जोधपुर) के वीर भक्त महन्त श्रीमुकुन्ददासजी (१३) शंकरलालजी कासर (१४) गोबरधनदासजी कासर, बोरावड (१५) छापरके सेठ चतुर्भुजजी पेड़ीवाल (१६) सांडवाके सेठ जगन्नाथजी तापड़िया (१७) गंगारामजी (१८) मदनलालजी (१९) जगन्नाथजी लखोटिया (२०) रुद्रनाथजी (२१) बीदासरके पंडित श्रीलाधुरामजी दाधीच (२२) रतनगढ़के सेठ सूरजमलजी जालान (२३) चुरूसे सेठ सोनीरामजी गोयन्दका (२४) सेठ हीरालालजी पोद्दार (२५) बद्रीदासजी लोहिया (२६) रामनिवासजी क्आल (२७) श्रीरामजीदासजी बाजोरिया (२८) वासुदेवजी लोहिया लक्ष्मणगढ़से तथा नापासर देशनोक आदि ग्रामोंसे अनेकों प्रेमी सज्जन उस प्रेममयी मन्दाकिनीमें निमज्जन करनेके लिये सम्मिलित होकर उस सुरसरि धाराको अपने-अपने नगरोंमें ले जाना चाह रहे थे। इसलिये बीकानेरमें ४ दिन ही चरित्रनायक ठहर सके। ४ दिनोंमें चरित्रनायकने श्रीभगवन्नामकी शहरके कोने-कोनेमें गूंज मचा दी। अपने भाषणों, नगर कीर्तनोंमें बीकानेरीय जनताको प्रभावित कर दिया और सबसे बढ़कर कार्य किया श्रीमान पंडितवर्य गोस्वामीपादजी श्रीचिम्मनलालजी शास्त्री एम०ए०, बीकानेर राज्यके प्राइम मिनिस्टर सर मन्नुभाईके प्राइवेट सेक्रेटरीको सदाके लिये श्रीभगवत्प्रेमका अनुरागी बनानेका बीजारोण करनेकी। वे चरित्रनायकके प्रथम दर्शन करने इसी अवसरपर आये और अपने अत्यावश्यक समयके अतिरिक्त रात्रिके १२-१ बजेतक श्रीभाईजीके पास रहते। श्रीभाईजीने अपने भ्रमणका सर्वोत्तम पात्र इन्हें ही चुनकर इनके कोकिल कुंजित कमनीय कंठसे कृष्ण प्रेम परक पद सुनकर स्वयं मुग्ध हो जाते और जाते-जाते मूक इशारा कर गये कि लो तुम्हारे लिये एक व्यक्ति तैयार हो गये हैं। बस, फिर क्या था? श्रीभाईजी तो माघ कृष्णा ९। ८४ को बीकानेरसे रतनगढ़ पधार गये और इन पंक्तियोंका क्षुद्र लेखक उन्हें रतनगढ पहुँचाकर वापस बीकानेर आ गया।

अब मैं गोस्वामीपादके पीछे पड़ा सो उन्हें हमारे चरित्रनायकका चारु चरित्र सुनाकर एवं जसीडीहवाली घटनाके प्रबल परमाणु उनपर डालकर उन्हें भी एक प्रकारसे पागल बना दिया। उन्हीं गोस्वामीपादके चरित्रनायकको दिये हुए पत्रोंका कुछ अंश यहाँ देकर पाठकोंको पं० चिम्मनलालजी गोस्वामीका परिचय करा देना आवश्यक समझते हैं। इनका जन्म सं० १९५७ वि० के आषाढ़ कृष्णा ९ को हुआ था। क्योंकि हमारे चरित्रनायकके चरित्ररूपी सुन्दर वाटिकामें भ्रमण करनेवाले भ्रमर भक्तोंको जगह- जगह 'गोस्वामीजी' नाम पढ़नेको मिलेगा।

गोस्वामीजी महाराजने हमारे चरित्रनायकको सबसे पहले एक बड़ा लम्बा चौड़ा पत्र देकर एक श्लोक

अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटकसे लिखा कि—

आपके दर्शन करके भी उस समय आपको मैं पहचान न सका जिसका मुझे पश्चात्ताप है। परन्तु भगवानकी महती कृपासे आपका यत्किञ्चित् परिचय प्राप्त करनेका साधन मुझे मिल गया है। एक बार तो आपसे रास्ते (दिल्ली) में ही पुनः शीघ्र मिलनेका विचार हो गया था परन्तु अब आपके गोरखपुर पहुँचनेसे दुजारीजीके साथ श्रीवृन्दावन होते हुए आपके दर्शन करनेका विचार है। मैं इतने दिन इस बातसे अपरिचित था कि मीराबाई, तुलसीदासजी, सूरदासजी, नरसी भगतकी भाँति श्रीभगवानके प्रत्यक्ष दर्शन तथा उनसे वार्तालाप किये हुए उनके प्यारे भक्त श्रीभगवानकी कृपासे इस समय भी वर्तमान कालमें इस धराधामपर विचर रहे हैं, परन्तु आपको जसीडीहमें श्रीविष्णु भगवानके प्रत्यक्ष दर्शन होनेवाली घटनाको आद्योपान्त पढ़-सुनकर मुझे यह विश्वास हो गया है कि भगवान भक्तकी तीव्र उत्कण्ठा होनेपर अपने देवदुर्लभ दर्शन देनेको हर समय तैयार रहते हैं। इसलिये कृपापूर्वक आप मुझे पत्रोत्तर देकर ऐसा साधन बतलानेकी कृपा करिये कि जिससे भगवान श्रीकृष्णमें मेरा प्रेम होकर उनके ध्यानमें एकाग्र हो जाय और उनके सुर-मुनि-वन्दित कमलावन्दित चरणारविन्दके दर्शन पानेके लिये मनमें तीव्र उत्कण्ठा हो।

प्रिय प्रेमी पाठकवृन्द! अब तक जिस शैलीसे हम चरित्र चित्रण कर रहे हैं वैसा क्रम जारी रखनेसे न तो हम इस चरित्रको समाप्त ही कर सकेंगे और न आप पढ़ ही सकेंगे। इसलिये अब हम अति संक्षेपमें इस श्रीभगवन्नाम प्रचारके लिये चरित्रनायकके भ्रमणके तूफानी दौरेकी भाँति वर्णन कर रहे हैं यानि भ्रमणके ग्राम एवं तिथियोंकी सूची मात्र दे रहे हैं। वहाँ क्या-क्या घटनायें हुईं उसे आप उपर्युक्त वर्णनोंसे अन्दाजा लगा सकते हैं। क्योंकि विस्तारसे सब स्थानोंका वर्णन करनेसे एक प्रकारसे पिष्टपिष्टताकी भाँति ही होगा।

माघ कृष्ण ९। ८४ बीकानेरसे रवाना होना।

माघ कृष्ण ९। ८४ रात्रिको रतनगढ़ (चरित्रनायकके निजके ग्राममें)।

माघ कृष्ण १०। ८४ रात्रिको सरदारशहर (बीकानेर) जाकर।

माघ कृष्ण ११। ८४ रात्रिको पुनः रतनगढ़ आकर।

माघ कृष्ण १२। ८४ रात्रिको छापर (बीकानेर) जाकर वहाँसे रवाना होकर।

माघ कृष्ण १३। ८४ रात्रिको साडवा (बीकानेर)

माघ कृष्ण १४। ८४ रात्रिको बीदासर (बीकानेर)

माघ कृष्ण ३०। ८४ सुजानगढ़ (बीकानेर)

माघ शुक्ल १। ८४ लोसल (जोधपुर)

माघ शुक्ल २। ८४ डीडवाना (जोधपुर) से पुनः वापस।

माघ शुक्ल ३-४। ८४ चूरू (बीकानेर) होते हुए।

माघ शुक्ल ५। ८४ भिवानी (पंजाब)

माघ शुक्ल ६। ८४ रोहतक (पंजाब)

माघ शुक्ल ७। ८४ दिल्ली (यू०पी०)

माघ शुक्ल ९। ८४ खुर्जा

(यहाँपर पूज्यपाद हरि बाबाजी महाराज चरित्रनायकसे मिलनेके लिये बहुत दूरसे पैदल चलकर पधारे थे क्योंकि इन युगल संतोंको प्रेम सम्मेलनका यह प्रथम अवसर अर्थात् श्रीगणेश ही था। आगे चलकर तो ये बड़े ही घनिष्ठ आत्मीय प्रेमी हो गये थे। अस्तु)

माघ शुक्ला १० से १५ तक फिरोजाबाद, कानपुर, लखनऊ होते हुए गोरखपुर वापस आये।

इन्हीं दिनों बीकानेर निवासी पं० नंदलालजी जोशी श्रीभाईजीकी प्रेरणासे उनके मधुर चरित्रोंको देख सुनकर 'कल्याण' कार्यालयमें (कैशियरकी हैसियतसे) सेवा करनेके उद्देश्यसे आये थे। करीब ८-९ वर्षतक इन्होंने बड़ी ही योग्यतापूर्वक 'कल्याण' के (एसिस्टेंट) मैनेजरके कार्यका संचालन किया। इनकी सेवायें अत्यन्त प्रसंशनीय थी। इनका अत्यन्त मधुर स्वभाव था। श्रीभाईजीके भ्रमणसे ऐसे अनेकों जीव श्रीभाईजीपर अपने जीवनको उत्सर्ग करनेकी अभिलाषा करने लगे पर भागवत माहात्म्यके दूसरे अध्यायमें कहा है—

भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन,
सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै।

अज्ञानहेतु कृत मोह मदान्धकार,
नाशं विधाय हित दोदयते विवेकः॥

जिस समय अनेकों जन्मोंके संचित पुण्यपुञ्ज उदित होते हैं उसी समय मनुष्यको सत्संग प्राप्त होता है। वह सत्संग उसके अज्ञानजन्य मोह और मदरूप अन्धकारका नाश करके उसके हृदयमें विवेकका उदय करा देती है।

नाम प्रचारके लिये भ्रमण करते हुए हमारे चरित्रनायकके चरित्रका चितवन पाठकवृन्द कर ही रहे हैं। अब चरित्रनायकके द्वारा समय-समयपर बनाये हुये स्वरचित पदोंमेंसे नाम महिमाके कुछ पद यहाँ उद्धृत करते हैं जिससे पाठकवृन्द चरित्रनायकके निजके अनुभूत वाक्योंसे लाभ उठा सकेंगे।

(होरी काफी ताल दीपचन्दी)

भूल जग के विषयन कों, जप मन हरि को नाम॥
दीनबंधु हरि करुना-सागर, पतितन के विश्राम।
आपद-अंधकार महँ श्रीहरि पूरन-चंद्र ललाम॥
पाप-ताप सब मिटैं नाम तें, नास होहिं सब काम।
जम के दूत भयातुर भागैं, सुनत नाम सुख-धाम॥
भाग्यवान जे जपत निरंतर नाम सदा निष्काम।
निरख सुखी सत्वर हों मूरति हरि की जग-अभिराम॥
भाग्यहीन जिन्ह के मन-मुख महँ बसत न हरिको नाम।
नरक-रूप जग जीवन तिन्ह को भूमि-भार अघ-धाम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १००८)

राम राम राम भजो, राम भजो, भाई।
राम-भजन-हीन जनम सदा दुःखदाई॥
अति दुर्लभ मनुज देह सहजहीमें पाई।
मूरख रह्यो राम भूल, विषयन मन लाई॥

श्रीभगवानके आदेशके अनुसार चरित्रनायकने श्रीभगवन्नामको वितरण करनेके लिये यथासम्भव खूब प्रयत्न किया। कल्याण वर्ष २ अंक ५ के पृष्ठ २३२ से २३५ में 'दिव्य सन्देश' शीर्षक लेख देकर तथा उसी लेखकी गैली सैकड़ों पत्रोंमें भेजकर प्रकाशित कराई। अनेक भाषाओंमें इसकी पुस्तिका रूपसे लाखों प्रतियां छपाकर भारतके कोने-कोनेमें वितरण कराई तथा जहाँतक सम्भव हुआ आसाम, बंगाल, बिहार, बंबई, गुजरात, मारवाड़, राजपूताना, पंजाब, युक्त प्रांत आदि प्रान्तोंमें अपनी मित्र मंडलीके सहित भ्रमण करके श्रीभगवन्नाम प्रेमरूपी अमृतका पान कराके चरित्रनायकने मतवाले-से बनकर संकीर्तन नृत्य करके लोगोंसे श्रीभगवन्नामको ग्रहण करनेकी भिक्षा मांगनेमें कुछ भी कमी न रखी। जिन लोगोंने उस समय श्रीभाईजीका मधुर नृत्य देखा होगा उन्हें हमारे चरित्रनायकके बनाये हुए निम्नांकित पदके अनुसार चैतन्य महाप्रभुके एक नृत्य करती हुई झांकीका स्मरण होना स्वाभाविक है—

नाचत गौर प्रेम अधीर।
भूलि सुधि हरिनाम टेरत, बहति नैननि नीर॥
पान करि सुचि प्रेम-अमृत, मत्त पुलकित अंग।
भगत गन नाचत सकल मिलि, बजत ताल मृदंग॥
परम पावन नामकी धुनि, गूँजती आकास।
विपुल अघ संसारके, पल मांहि होत विनास॥

(पत्र पुष्प पृष्ठ ८९)

चैतन्य महाप्रभुने १६ वीं शताब्दीमें श्रीभगवन्नामकी पावन धुनिसे भारतभूमिको गुंजायमान कर दिया था। उसके बाद उनके प्रेमी नित्यानंदादि तथा कबीर, नानक, तुकाराम, रामदास, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मीरा, तुलसीदास, सूरदास, नंददास, चरणदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, सहजोबाई, दयाबाई, सखूबाई, परमहंस रामकृष्ण, विवेकानन्द, रामतीर्थ आदि अर्वाचीन संतोंने श्रीभगवन्नाम संकीर्तनका प्रचार किया। पर ज्यों-ज्यों कलियुग अपना प्रभाव जमाता गया त्यों-त्यों उस नामकी ध्वनि कम सुनाई पड़ने लगी। इसी समय २०वीं शताब्दीमें अनेक सन्तों तथा प्रेमीजनोंने उस पावन भगवन्नामका खूब जोरदार बाढ़की भाँति प्रसार किया। उन संतोंमेंसे कुछ परिचित संतोंके नाम यहाँ दिये जाते हैं—

पूज्यपाद श्रीहरि बाबाजी, पं० विष्णु दिगम्बरजी, बंगालके नवद्वीपके रामदास बाबाजी, राजपूतानेके बीकानेर राज्यके चुरूसे सेठजी जयदयालजी गोयन्दका, भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (रतनगढ़), विरक्त संत साध्वी

श्रीलाली माईजी, रामस्नेही साधु श्रीरामसुखदासजी महाराज तथा मौनी प्रेमी संत स्वामीजी श्रीचक्रधरजी महाराज(गया जिला, फखरपुर), गुजरातके महात्मा (मोहनदास करमचन्द) गाँधीजी, विरक्त संत श्रीकरपात्रीजी महाराज, पूज्यपाद श्रीउड़िया स्वामीजी महाराज, नवद्वीप भजनाश्रमके भक्त श्रीरामकरणदासजी, प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी झूसी प्रयाग, संत श्रीरामवल्लभाशरणजी एवं रूपकलाजी अयोध्या, स्वामी श्री एकरसानंदजी महाराज, लक्ष्मणगढ़वाले श्रीरामनामके आढ़तियाजी, बालजी महाराज, बंबईके यादवजी महाराज, पं० दीनदयालजी शर्मा, अच्युतमुनिजी महाराज युक्त प्रान्त, बिहार, पंजाब, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि सभी प्रांतोंके संकीर्तन मण्डल।

इसी प्रकार हमारे चरित्रनायकने भी फाल्गुन कृष्णा १९८४ तक भारतवर्षके अनेकों प्रान्तोंमें घूमकर श्रीभगवन्नाम एवं संकीर्तनका खूब प्रचार किया। जिसके फलस्वरूप कुछ ही वर्षोंमें नाम-संकीर्तनका ऐसा अद्भुत प्रचार हुआ कि अनेकों संत-भक्त-साधु-संन्यासी-गृहस्थ-ब्रह्मचारी अपने-अपने नगरों, ग्रामोंमें कथाओंमें नियमित रूपसे संकीर्तन करते। बहुत-से घरोंमें नित्यप्रति अखण्ड संकीर्तनोंके उत्सवों द्वारा भगवन्नामका खूब प्रचार हुआ।
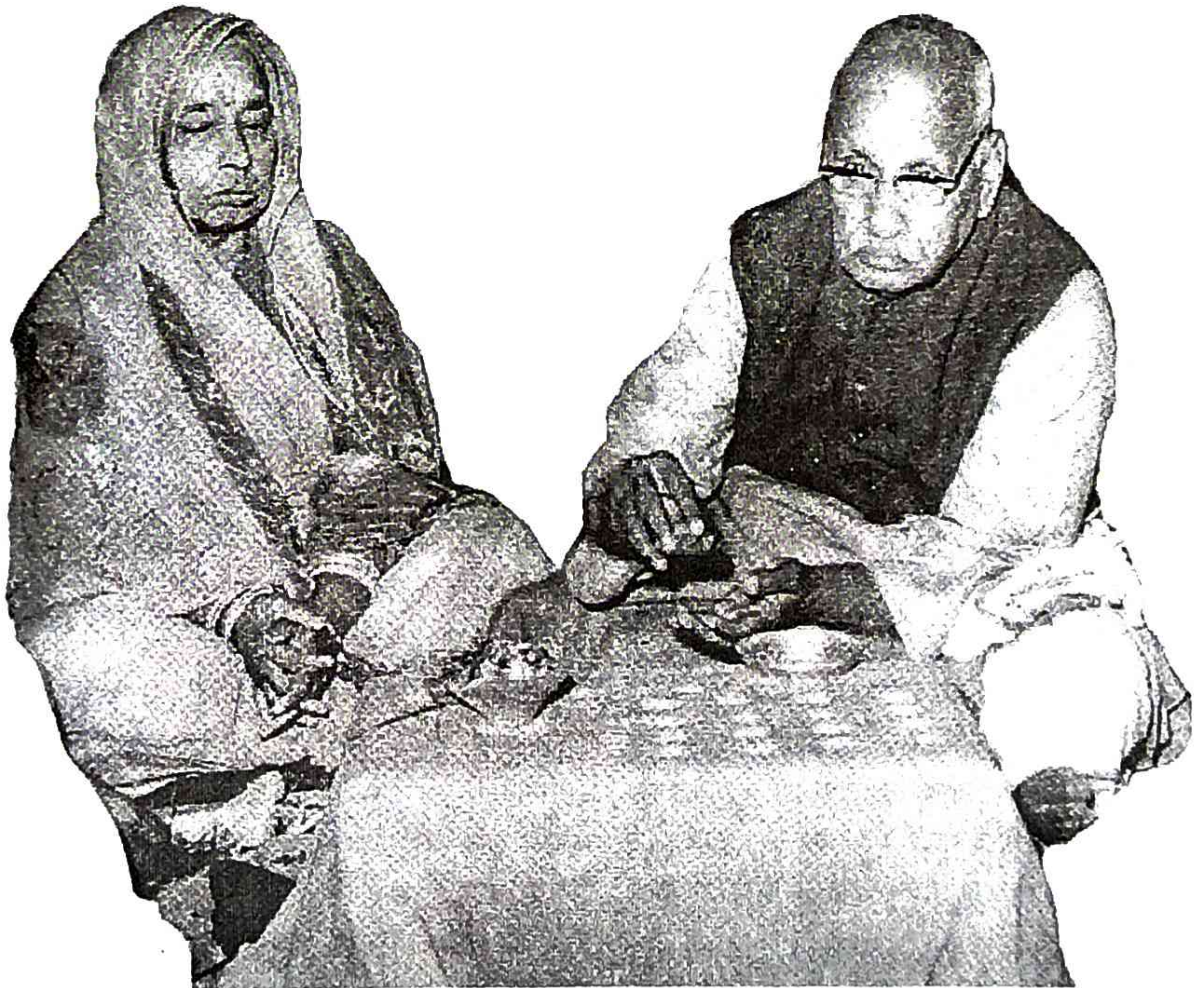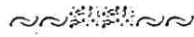
॥ श्रीहरिः ॥

उन्तीसवाँ पटल

बम्बईमें सभापतिके रूपमें हार्दिक स्वागत

श्रीभगवन्नाम-वितरण भ्रमणको समाप्त करके चरित्रनायकने गोरखपुर आकर अपने 'कल्याण' मासिक पत्रके साधारण अंकों तथा तृतीय वर्षका विशेषांक भक्तांकके सम्पादनके लिये कुछ समय लगानेका विचार किया। पर इन दिनोंमें धार्मिक मतभेदोंको लेकर मारवाड़ी अग्रवाल जातिमें खूब जोरसे वैमनस्य हो रहा था—जातिमें पंचायत एवं महासभा नामके दो दल बन गये थे। महासभावाले विधवा-विवाह, समुद्र-यात्रा, स्पर्शास्पर्श भेद मिटाने यानी वर्ण व्यवस्था विच्छेद करने आदिका प्रचार करना चाहते थे। पंचायतवाले अपने सनातन धर्मपर डटे रहकर महासभाकी इस प्रचार नीतिका जोरसे विरोध कर रहे थे। हमारे चरित्रनायक सनातनधर्मके पूरे पक्षपाती होनेसे पंचायत पार्टीके ही समझे जाते थे। उधर महासभाका दशम अधिवेशन बंबईमें होनेवाला था उस अवसरपर दोनों दलोंके नेताओंको वैमनस्य मिटानेके लिये हमारे चरित्रनायक श्रीभाईजीके जैसा निष्पक्ष तथा प्रभावशाली पब्लिक सेवा कार्यमें अपना जीवन समर्पण करनेवाला सुयोग्य सज्जन कोई नहीं दीखता था। इसलिये दोनों दल वालोंने इन्हें तथा श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको पत्रों एवं तारोंके द्वारा इस पदको स्वीकार करानेकी चेष्टा की किन्तु हमारे चरित्रनायक तो आजकल इन कामोंसे सर्वथा अलग रहकर श्रीभगवन्नामके मधुर रसास्वादनमें ही मस्त हो रहे थे। इसलिये इन्होंने तो इस पदको स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया। दोनों दलवाले अनेक प्रेमी विशिष्ट जनोंकी आग्रहपूर्वक हार्दिक प्रार्थनापर श्रीगोयन्दकाजीने श्रीभाईजीको बहुत समझा बुझाकर इस पदके द्वारा भी श्रीभगवानकी सेवा करनेका आदेश दे दिया। तब इन्हें विवश होकर इस कार्यको स्वीकार करना पड़ा।

महासभा बहुत शीघ्र होनेवाली थी। इसलिये उसके लिये समयोपयोगी दोनों दलोंके रुचिकर सभापति पदसे दिया जानेवाला सैद्धान्तिक विस्तृत भाषण एक-दो दिनमें लिखकर गीताप्रेसमें ही अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभा, दशम अधिवेशन बंबईके सभापति श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका भाषण *(यही भाषण आगे चलकर 'समाज सुधार' नामक पुस्तकके रूपमें गीताप्रेससे प्रकाशित किया गया था।)* छपाकर हजारों प्रतियां साथ लेकर चैत्र कृष्णा ११। ८४ को गोरखपुरसे अपने प्रिय मित्र महावीरप्रसादजी पोद्दार, श्रीहरिकृष्णदासजी, मोहनलालजी गोयन्दका, विहारीलालजी झुनझुनवाला आदि कई सज्जनोंके सहित रवाना हो गये।

चैत्र शुक्ला १। ८४ को प्रातःकाल कल्याण स्टेशनपर श्रीयुत श्रीनिवासदासजी बजाज (मालिक श्रीवेंक्टेश्वर स्टीम प्रेस) के अनुरोधसे एक्सप्रेससे उतरकर नागपुर मेलमें पुनः सवार होकर प्रातःकाल करीब ८॥ बजे बम्बईके प्रधान स्टेशनपर पहुँचे।

इधर हजारों मारवाड़ियोंके एकत्रित हो जानेसे विक्टोरिया टर्मिनल (बोरी बंदर) स्टेशनके प्रायः अधिकांश प्लेटफार्म ठसाठस भर गये थे क्योंकि चरित्रनायकने 'कल्याण'के वर्ष २ अंक ९ पृष्ठ ४२० में इस प्रकार आदेश दे रखा था।

स्वागतकी तैयारी करो

"मन मन्दिरमें भगवानको बुलाना चाहते हो तो पहले काम, तृष्णा, लोभ, क्रोध, बैर, हिंसा, अभिमान, आसक्ति, विषाद और मोहके दुर्गन्ध भरे कूड़ेको कोने-कोनेसे झाड़ बुहारकर बाहर दूर फेंक दो और संयम, संतोष, दया, क्षमा, मैत्री, अहिंसा, नम्रता, वैराग्य, प्रसन्नता, विवेक, भक्ति और प्रेम आदि सुन्दर-सुन्दर फूलोंको चुन-चुनकर उनसे मन्दिरको भीतर बाहर खूब

सजा दो। जब सजावटमें कुछ भी कसर न रह जाय तब उस प्यारेको जोरसे पुकारो, तुरन्त उत्तर मिलेगा और उसकी मोहनी रूप छटासे तुम्हारा मन मन्दिर उसी समय जगमगा उठेगा। ××× तुम्हारी तैयारीका तभी पता लगेगा जब तुम्हारे मनमें और कुछ भी न रहकर केवल उसका मोहन मुखड़ा देखने और कोमल चरण स्पर्श करनेकी एकमात्र तीव्र लालसा ही रह जायगी।''

चूँकि हमारे चरित्रनायक संसारके प्रापंचिक कार्योंको करनेमें अपना बाह्य जीवन बिताते हुए भी आन्तरिक भावसे निरन्तर भगवानके मन मन्दिरमें ही विहार करते थे। इसलिये उन्होंने उस मन्दिरके अनुकूल पदार्थोंकी सजावटके लिये आदेश दिया था। ऐसे प्रभु प्रेमी भक्तकी पुकार सुनकर अनेकों भाग्यशाली सज्जन अपने-अपने भावोंके अनुसार चरित्रनायकके दर्शनोंके लिये अत्यन्त लालायित होकर प्लेटफार्मपर भ्रमण करते हुए नागपुर मेल ट्रेनकी तरफ टकटकी लगा रहे थे और महासभा एवं पंचायत पार्टीवाले अपने-अपने भावोंके अनुसार प्लेटफार्मपर जहाँ तहाँ चरित्रनायकके दर्शन करनके लिये लालायित हो रहे थे।

श्रीभगवान् भी अपने लाड़ले लालको अन्तरिक्षसे निहार रहे थे। नम्रताकी मूर्ति चरित्रनायक स्टेशनके प्लेटफार्मपर उतरे। अनेकों मालाओंसे दोनों दलके लोग तथा प्रेमी समुदायने भी श्रीभाईजीका सभापति की हैसियतसे स्वागत किया। श्रीभाईजीने भी मूक भाषामें हाथ जोड़कर सबका आदर सत्कार किया। श्रीभाईजीके लिखित भाषणके कुछ अंश मूल भाषणकी प्रतिसे विनोदार्थ हम यहाँ उद्धृत करते हैं। क्योंकि हमारे चरित्रनायकने अपना सभापतिका पार्ट यहीं समाप्त कर दिया था इसलिये उनके भाषणका कुछ अंश यहींपर देना उचित है—

॥ श्रीहरिः ॥

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः।
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः॥
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसाः पश्यन्ति यं योगिनो।
यस्यान्तं नि विदुः सुरासुरगणादेवाय तस्मै नमः॥

यान्तःप्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां।
सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना॥
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणवत्वपरादीन्।
प्राणान्ममो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥

पूज्य और प्रेमी सज्जनों! आप लोगोंने मेरे प्रति जो अवर्णनीय प्रेम और आत्मीयताका भाव दिखलाया है उसकी जब मैं अपने प्रेम और अपनी योग्यताके साथ तुलना करता हूँ तो मुझे बड़ा संकोच होता है। मुझमें वह वाक्य बल नहीं कि जिससे मैं आप लोगोंके इन अनोखे प्रेमभावके लिये पूरी कृतज्ञता भी प्रगट कर सकूँ। आप लोगोंको मालूम है कि मैं कई महीनोंसे सामाजिक क्षेत्रसे प्रायः अलग-सा हो रहा था और अब भी उसी प्रकार अलग ही रहना चाहता हूँ। मेरी कमजोरियाँ, समाजकी वर्तमान परिस्थितिसे मुझे अलग रहनेके लिये बाध्य कर रही है। इसीसे मैंने अपने बम्बई और कलकत्तेके मित्रोंके प्रेममूलक अनुरोधको नहीं माना था। परन्तु जब किसी तरहसे भी आप लोगोंने मुझे छोड़ना नहीं चाहा और सिद्धान्तोंमें परस्पर कट्टर विरोधी रहनेपर भी मेरे मित्रों, मध्यस्थों, सत्संगियों और पूज्य गुरुजनोंने फिर आज्ञा दी तब मुझे कुछ समयके लिये बाध्य होकर इस क्षेत्रमें पुनः आना पड़ा। वास्तवमें मैं न तो सभापति पदके योग्य ही हूँ और न संभवतः आप लोगोंने मेरी योग्यता समझकर एक मतसे यह प्रस्ताव स्वीकार किया है। सच पूछा जाय तो मैं तो आप लोगोंके सामने एक बालक हूँ। वर्षोंतक बम्बईमें आप लोगोंकी सेवामें एक साधारण मनुष्यकी तरह रहा हूँ। आप लोगोंके प्रेमवश मैंने यह पद तो स्वीकार कर लिया पर अब आप गुरुजनोंके सम्मुख मुझे इसके व्यवहारमें बड़ी लज्जा-सी हो रही है। इसलिये मैं हाथ जोड़कर आप समस्त महानुभावोंसे यही विनय करता हूँ कि मुझे आप अपना एक साधारण भाई समझकर किसी भी तरह प्रेमपूर्वक इस कार्यको सम्पन्न करा दें। मैं न विद्वान हूँ, न मुझे विशेष अनुभव है और न अन्य कोई योग्यता ही है इस अवस्थामें मैं प्रधान रूपसे आप समस्त महानुभावोंके स्नेहपूर्ण अन्तःकरणकी एकत्रित सद्भावनाके भरोसेपर

ही यहाँ यह कार्य करनेके लिये उद्यत हुआ हूँ। इसकी सफलता भी अधिकांशमें उस सद्भावनापर ही अवलम्बित है।

मैं इस समय आप लोगोंके सामने नम्रताके साथ जो कुछ निवेदन करता हूँ वह मेरा व्यक्तिगत मत है। मैं न तो इस मतके सर्वथा ठीक होनेका दावा करता हूँ और न बलात्कारसे किसी पर इसको लादना ही चाहता हूँ। वर्तमान परिस्थितिमें पड़कर सामाजिक विषयोंपर मेरे लिये अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार मत प्रदर्शित करना अनिवार्य हो गया इसलिये मुझे बाध्य होकर सर्वसम्मत न होनेपर भी अपना मत प्रकट करना पड़ता है। मैं अपनेमें ऐसी योग्यता नहीं देखता कि जिससे सभी भाइयोंको मेरा मत उनके मनके अनुकूल प्रतीत हो और सब भाई एक मतसे उसे स्वीकार कर लें। इस बातको जानकर ही मैं किसी भिन्न मतावलम्बीकी नीयतपर किसी प्रकारका सन्देह और आक्षेप न करते हुए अपने मनका निर्भ्रान्त मत आपलोगोंकी सेवामें अपनी टूटी-फूटी भाषामें उपस्थित करता हूँ। आपलोग शान्तिपूर्वक सुनें और अपने मनके प्रतिकूल होनेके कारण स्वाभाविक ही जिन भाइयोंको जो मत भ्रान्त और अप्रिय प्रतीत हो उसके लिये मुझे क्षमा करें। आप लोग कृपापूर्वक यह न समझें कि मैं आप लोगोंमेंसे किसीका दिल दुखाने, किसीकी समाज सुधारकी सच्ची नीयतपर अनुचित आक्षेप करने या धर्म भावकी अवहेलना करनेके लिये कोई बात कहता हूँ। मैं यह नहीं कह सकता कि मुझमें द्वेष नहीं है इसलिये ऐसे कोई भाव मुझमें नहीं आते। मैं तो आप लोगोंसे विनय करता हूँ कि मुझमें ऐसा कोई दोष दीखनेपर भी आप लोग अपने मनकी सद्भावनासे ही क्षमा कर दें।

महानुभावों! समय बड़ा विकट आ गया है। देशमें एक ओर तो ब्रह्मनिष्ठ और तत्त्वज्ञ आर्यऋषियोंके विशाल गवेषणा और भगवदाराधनकी सहायतासे प्रणीत धर्मशास्त्रोंकी असीम अवहेलना होने लगी है। शास्त्रकारोंपर अत्याचारी होनेके दोषारोपण किये जाते हैं। सार्वजनिक सभामें मनुस्मृतिका ग्रन्थतक जलाया जाता है। स्वेच्छाचारका प्रवाह बहने लगा है। समाज संस्कारके नामपर धर्मनाशका दावानल प्रज्वलित हो उठा है। वर्णाश्रम धर्मको व्यर्थ ढकोसला बतलाया जाता है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके नाते उच्छृङ्खलताको आश्रय दिया जा रहा है। खानपान, आचार व्यवहारमें मनमानी करनेकी अहंकारमूलक प्रवृत्ति बढ़ रही है। सर्वशक्तिमान भगवान और उनके अवतारोंपर सन्देह, उनकी अलौकिक लीलाओंपर अनधिकार अमर्यादित आक्षेप होने लगे हैं और दूसरी ओर धर्मके नामपर अन्याय, अत्याचार, द्वेष, द्रोह और पाखण्डको आश्रय दिया जा रहा है। धर्मकी आड़में स्वार्थ सिद्ध करनेकी, व्यर्थ ही वैरकी कल्पना कर प्रतिहिंसावश प्रतिपक्षीको गिरानेके लिये हर तरहकी न्यायवर्जित चेष्टा की जा रही है। धर्मका स्वांग ही पुराना वैर निकालनेका एक तरीका समझा जाने लगा है। मानसिक शुद्ध आचरणकी परवाह न कर बाहरी दिखावेंपर ही विशेष ख्याल रक्खा जाता है। ईश्वरको मानते हुए और उसका प्रतिपादन करते हुए तथा धर्मशास्त्रोंकी दुहाई देते हुए भी लोग छिपकर पाप करने और मनमें पाप प्रवृत्तियोंको पोषण करनेमें सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी परमात्माके नित्य अस्तित्वको भुला देते हैं और विपरीत आचरणकर धर्मशास्त्रका अक्षम्य उपहास करते हैं।

मैं यह नहीं कहता कि मुझमें ये दोष नहीं हैं। जिस हिन्दू समाज-शरीरमें ये दोष उत्पन्न हो गये हैं जब मैं भी उसी शरीरका एक अवयव हूँ तब मैं अपनेको इन सब दोषोंसे अलग कैसे बतला सकता हूँ। इसलिये आवश्यकता है कि समाजको इस प्रकारके दोषोंसे बचाने की और उत्पन्न हुए दोषोंको नाश करनेकी। मुझे तो इनके नाश होने और पुन: न उत्पन्न होनेका एकमात्र सरल उपाय भगवान मनुकथित दस मानवधर्मोंके* पालनेके साथ ही साथ सच्चे मनसे भक्तभावन श्रीहरिकी शरण ग्रहण करना ही प्रतीत होता है।

---

* धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:। धीर्विद्या सत्यमक्रोध दशकं धर्मलक्षणम्॥

जबसे हिन्दू जातिने अपने जीवनके जितने अंशमें भगवानका अधिष्ठान भुला दिया, तबसे उतने ही अंशमें उसका मानव धर्म लुप्त हो गया और तदनुसार ही वह अपने स्वाभाविक शान्तिमय सुखद स्थानसे च्युत होकर अनेक दोषोंका आकार करने लगी और तभीसे उसका स्वरूप विकृत और जीवन दु:खोंसे जर्जरित होने लगा। अब फिर जब इस मुमूर्षुप्राय हिन्दूजातिके विशाल जीवन तत्वके मूलमें वही हरिभक्तिकी सुधाधारा सिंचन की जायगी तभी इसका पुनर्जीवन और उत्थान होगा एवं तभी इसे अपने लक्ष्यकी प्राप्ति होगी। परन्तु इस समय कुछ उल्टा ही प्रवाह बह रहा है।

इसके पश्चात् ४० पृष्ठोंमें निम्नलिखित विषयोंपर चरित्रनायकने विस्तृत मत प्रकट किया है। स्थानाभावसे हम उन विषयोंकी सूचीमात्र यहाँ उद्धृत कर देते हैं— (१) शिक्षा (२) विधवा (३) ब्रह्मचर्य (४) बाल विवाह (५) वृद्ध विवाह (६) कन्या विक्रय (७) अस्पृश्यता (८) विदेश यात्रा (९) कृषि गोरक्ष वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम् (१०) शिक्षा और स्त्रियोंके साथ व्यवहार (११) फजूल खर्ची (१२) दान (१३) धर्म और सदाचार (१४) खद्दर और स्वदेशी (१५) राजनीति (१६) देशी राज्य (१७) राग द्वेषका त्याग और भगवत्स्मरण (१८) श्रीमद्भगवद्गीता (१९) उपसंहार और विनय।

जिन सज्जनोंको चरित्रनायकके उपरोक्त सिद्धान्त जाननेकी अभिलाषा हो वे गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित 'समाज सुधार' नामक पुस्तकका अध्ययन कर सकते हैं।

स्वागताध्यक्ष श्रीभाईजीके लिये तीन श्लोक पंडित श्रीरमानाथजीने बनाये एवं सुनाये वे इस प्रकार हैं—

मान्य श्रीहनुमत्प्रसाद प्रमुखः पोद्दार पद्पूजित,
विद्या बुद्धि विवेकशील सुगुणैः संभूषितः सज्जनः।
श्रीमद्रामपदारविन्दयुगले संसक्त चित्तः सदा,
ब्रह्मण्योद्य सभापतित्वमलभद्भाग्योदयभाव्यते॥ १॥
संसारासक्तिमुक्त्वा रघुपतिचरणोबद्धरागो महात्मा,
तालं झालं रसालं जयति युगले पाणिपद्म च कृत्या।
राम कृष्णं मुकुन्दं बहुमधुरतरं सर्वदा मुक्त कण्ठः,
गायन्श्रीभक्तराजोवितरति भुवनेभक्तिधारामजश्रम्॥ २॥
कल्याणास्याजनामिति करकमले कल्मष क्लान्तिकर,
कल्याणं कर्मदक्षं कलयति करुण कल्प कल्याण कल्पः।
देशेदेशेचगत्वा सुखयति विबुधान्सर्वसाधारणाश्च,
सोयं श्रीरामभक्तो मम नयनपथे संगतः श्रीहनूमान्॥ ३॥

बम्बई बोरीबन्दर स्टेशनके प्लेटफार्मपर स्वागत हो जानेके पश्चात् चरित्रनायकसे महासभाके स्वागताध्यक्ष सेठ बालकृष्णलालजी पोद्दारने तथा पंचायत पार्टीके नेताओंने अपनी-अपनी मोटरोंमें बैठनेके लिंये अनुरोध किया किन्तु हमारे श्रीभाईजी तो उस समय महासभाके सभापतिके पदको स्वीकार करके आ रहे थे इसलिये उनका दोनों पार्टीवालोंके प्रति समान भाव होनेपर भी नियमानुसार अपने पुराने मित्र महासभाके स्वागताध्यक्षके साथ उनकी सजी हुई मोटरमें बैठ गये। मोटर धीरे-धीरे चलने लगी। १०-२० कदम भी मोटर न चली होगी कि पंचायत पार्टी वालोंमेंसे किसी व्यक्तिने मोटरके कांचको तोड़ डाला और किसी व्यक्तिके थोड़ी चोट भी लगी। यह दृश्य देखकर तत्काल चरित्रनायक मोटर खड़ी कराकर स्वयं उसमेंसे उतरकर एक किरायेकी गाड़ीमें बैठकर सीधे सत्संग भवन चले गये।

इन पंक्तियोंका क्षुद्र लेखक हमारे चरित्रनायककी यह सब लीलायें देख देखकर मुग्ध हो रहा था। वह तो प्राय: चरित्रनायकके चरित्र चित्रण करनेके उद्देश्यसे श्रीभाईजीके अति निकट ही रहनेकी इच्छासे प्राय: साथ ही रहा करता था। अस्तु

श्रीभाईजी सत्संग भवनमें आकर वहींपर रहकर इन दोनों दलोंके नेताओंसे बातें करने लगे। दोनों दल इन्हें अपनी-अपनी तरफ खींचनेकी चेष्टा करने लगे। महासभाके वार्षिक विशेष अधिवेशनकी भाँति पंचायत पार्टीका भी इसी अवसरपर वृहदधिवेशन हो रहा था। चरित्रनायकने दोनों दलोंसे अपनेको अलग रहना ही श्रेयस्कर समझकर महासभाके सभापति पदसे त्याग पत्र देकर उस अपने वक्तव्यको मुख्य-मुख्य पत्रोंमें प्रकाशित करा दिया।

॥ श्रीहरिः ॥

अखिल भारतवर्षीय अग्रवाल महासभा दशम अधिवेशन बम्बईके सभापति श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका वक्तव्य

बम्बई चैत्र शुक्ला ५ सं० १९८५ वि०

यहाँतक चले आनेपर भी मारवाड़ी अग्रवाल महासभाके सभापति पदसे त्याग पत्र क्यों दे दिया इसके सम्बन्धमें कोई गलतफहमी अथवा नासमझी न हो जाय इसलिये मैं उन बातोंका स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक समझता हूँ जिसके कारण मुझे ऐसा करना पड़ा।

मैं कुछ समय पूर्वसे सामाजिक तथा अन्य प्रवृतियोंसे अलग ही रहा हूँ, और उनमें भाग लेनेकी मेरी इच्छा भी नहीं थी। इसीलिये मैंने सभापति पदको उस समय स्वीकार नहीं किया था। जबकि स्वागत समितिकी ओरसे मुझे उसके लिये लिखा गया था। बादमें जबकि मुझे यह सुझाया गया कि सुधारक और सनातनी दोनोंने समझौता कर लिया है और दोनों ही दल शान्ति और प्रेमके साथ कार्य करनेको तैयार हैं, तो मुझे मित्रोंके दबावके कारण बहुत कुछ संकोचके साथ, स्वागत समितिका आमंत्रण स्वीकार करना पड़ा।

परसों जब मैं बम्बईके मार्गमें पेशावर एक्सप्रेसमें था तो मेरे कुछ सनातनी मित्र कल्याणमें आये और मुझसे ट्रेनसे उतरनेका आग्रह किया क्योंकि उन्हें कुछ आवश्यक बातें करनी थी। मैं उनके कहनेपर अपने दो मित्रोंके साथ उतर आया। मुझसे कहा गया कि पहलेके समझौतेको तोड़नेके प्रयत्न किये जा रहे हैं और कार्यकारिणीकी बैठक आज ही दोपहरको होनेवाली है। उन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं कार्यकारिणीके निर्णयकी वहाँ प्रतीक्षा करूँ। मुझे वहाँ ठहरना उचित मालूम नहीं हुआ। मैं कल्याणसे बम्बईके लिये नागपुर मेलके द्वारा रवाना हो गया। जब मैं विक्टोरिया टर्मिनल पर पहुँचा तो मैंने प्लेटफार्मपर बहुत भीड़को पाया, मारवाड़ी अग्रवाल जातिके दोनों दलोंके प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। उन सबने मेरा सप्रेम सत्कार किया। स्वागत समितिके सभापति भाई बालकृष्णलालजी पोद्दार, भाई हरिकृष्णदासजी गोयन्दका बाँकुड़ेवाले तथा अन्य मित्रोंके साथ बाहर आया। उनके साथ बाहर आकर एक मोटरमें बैठा जो इस कामके लिये गयी थी।

उपस्थितोंमें से कुछ अपनेको सनातनी माननेवालोंने मार्ग अवरोध कर लिया। कुछ ने मेरे उस मोटरमें बैठनेपर आपत्ति की, कुछने भाई बालकृष्णलालजीको उतरने पर जोर दिया और कुछ ने यह सलाह दी कि सनातनी भाइयोंके कुछ प्रतिनिधि भी गाड़ीमें बैठ जायँ। अंतिम सलाहको मैंने स्वीकार कर लिया और उनके एक प्रतिनिधिको मोटरमें बैठनेके लिये बुलाया। भीड़ तो भी अशांत ही रही और भाई बालकृष्णलालजी असंतोषको दबानेके लिये नीचे उतर आये। श्रीबालकृष्णलालजीके प्रति यह असभ्योचित व्यवहार देखकर मुझे दुःख हुआ और मैंने अनुभव किया कि स्थिति खराब होती जा रही थी। मैं भी उस मोटरसे उतर आया। दोनों ही दल मुझे अपनी-अपनी ओर खींचना चाहते थे, इसलिये मैंने एक भाड़ेकी गाड़ी करना ही उचित समझा और आगे विवाद शांत करनेके लिये उसमें बैठकर मैं अपने निवास स्थानकी ओर चल पड़ा। मैं जबरन एक गाड़ीमें बैठाया गया यह कथन सत्य नहीं है। मेरी रायमें सनातनी भाइयोंने श्रीबालकृष्णलालजीके साथ दुर्व्यवहार किया। परन्तु जहाँतक मुझसे मतलब था दोनों ही दल मेरे प्रति कृपा भाव बनाये हुए थे।

दोपहरको मेरे निवास स्थानपर मैं दोनों दलोंके प्रतिष्ठित व्यक्तियोंसे मिला। मैंने उन्हें समझौतेपर डटे रहनेको कहा। सुधारकोंके (जिनके हाथमें आजकल महासभाका संचालन है) ढंगसे मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वे सनातनियोंके बहुमतको, नियमानुकूल प्रतिनिधि माननेको तैयार नहीं हैं। वे सनातनियोंको, जिनकी संख्या अधिक है, महासभाका द्वार नहीं छिनने देंगे। उन्होंने उन नियमोंका आश्रय लिया जो संस्थाओंके द्वारा चुने जाये बिना प्रतिनिधियोंको महासभामें सम्मिलित होनेमें बाधक स्वरूप हैं। यह सत्य है कि नियमोंकी आवश्यकता

पड़नेपर उपयोग किया जाता है। परन्तु जब बहुत वर्षोंसे ऐसा होता आया है तथा इस सम्बन्धमें समझौता भी हो चुका था कि सनातनियोंके प्रतिनिधि महासभामें आ सकेंगे तो उनका प्रवेश निषेध करना अच्छा नहीं था।

सुधारकोंका एक ऐसा मत हो रहा है कि सनातनी महासभाको तोड़नेपर तुले हुए हैं। मैंने एक प्रतिष्ठित सनातनीसे इस विषयकी चर्चा की और मुझे बताया गया कि उनका ऐसा इरादा नहीं है। वे तो केवल यही चाहते हैं कि बहुमत ही महासभाका संचालन करे। मैं नहीं कह सकता कि इस सम्बन्धमें कहाँतक सच्चाई थी परन्तु मैं तो उनके शब्दोंपर विश्वास ही करता हूँ। सुधारकोंकी सच्चाईके सम्बन्धमें भी संदेह करनेका मेरे लिये कोई कारण नहीं है। सुधारकोंने इसका वादा कर लिया कि वे अधिवेशनके अवसरपर शान्ति रखेंगे। परन्तु सनातनी भाइयोंने शान्तिके लिये पूर्ण प्रयत्न करने तथा सभापतिकी आज्ञाका पालन करनेको कहा परन्तु उन्होंने कोई वादा करना स्वीकार नहीं किया क्योंकि उनके प्रतिनिधि पूर्ण संयमित नहीं थे और वे वक्ताओंके बीच हो-हल्ला कर बैठें तो उसका कोई उपाय नहीं कर सकेंगे। इसपर मैंने उनसे निवेदन किया कि ऐसे प्रतिनिधियोंको आप अलग रखिये जो हुल्लड़बाज हैं। जिससे दुर्घटनायें न होने पायें। मेरे इस कथनका उन्होंने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया।

इस प्रकार समझौतेकी कोई आशा न देखकर तथा हुल्लड़बाजीकी संभावना देखकर मैंने कार्यकारिणीको संदेश भिजवा दिया कि दूसरा सभापति चुन लें। मैं अब सभापति रहना नहीं चाहता। इस सम्बन्धमें एक वक्तव्य प्रकाशित करनेका मैंने वादा किया।

ऊपर कही हुई बातोंकी सत्यताके सम्बन्धमें मेरे मनमें कोई सन्देह नहीं है। और, दूसरे अपने-अपने मतके अनुसार इसका विवेचन कर सकते हैं। मुझे मालूम हुआ है कि दोनों दल अपने अपने सिद्धान्तोंपर तुले हैं, एक साथ काम करनेको तैयार नहीं हैं। जैसा पहले कह चुका हूँ कि मैंने सभापति पद उसी हालतमें मंजूर किया था कि दोनों दल अधिवेशनकी सफलताके लिये हिल मिलकर काम करेंगे। परन्तु अब वैसी आशा न देखकर और परिस्थितिको बुरी होते देखकर और मेरी कमजोरीकी ओर भी दृष्टिपात करके मैंने अपना यह कर्तव्य समझा कि मैं इस वाद विवादसे अलग रहूँ।

यह हर्षकी बात है कि मेरे घनिष्ठ मित्र भाई रंगलालजी जाजोदिया महासभाके कार्यका संचालन कर रहे हैं। मैं अपने मित्र भाई हरिकृष्णदासजी गोयन्दकाके साथ वातावरणको शान्त बनाये रखनेके लिये अपनी मतिके अनुसार प्रयत्नशील हूँ। और हमने प्रार्थना की है कि अलग-अलग काम करते हुए भी शान्ति बनाये रखें। हुल्लड़बाजी और मुकदमाबाजीसे परे रहें। दोनों दलोंके साथ मेरा सम्बन्ध तो सदाकी भाँति प्रेमपूर्ण ही रहा है।

इन शब्दोंके साथ मैं मेरे इन भाइयोंसे क्षमा चाहता हूँ जिन्होंने मेरे साथ प्रेम और आदरका भाव दिया है और उन्हें धन्यवाद देता हूँ कि आपसमें सिद्धान्तों और मतका भेद होनेपर भी (शान्ति रखनेके लिये) पूरा प्रयत्न किया है। मैं इस सम्बन्धमें आगे किसी भी प्रकारके वाद विवादमें नही उतरुँगा।

हनुमानप्रसाद पोद्दार
नेमानी वाड़ी ठाकुरद्वार रोड, बंबई
४ मार्च १९२८

नोट—हमारे सुयोग्य मनोनीत सभापति महोदयका यह वक्तव्य उनकी स्वाभाविक शान्त प्रकृतिके अनुकूल ही है। आपने सत्य-सत्य बातोंका विवेचन करनेका प्रयत्न किया है, और जब कि इस सम्बन्धमें झूठी से झूठी बातें उठाई जा रही हैं तो ऐसे वक्तव्यकी नितान्त आवश्यकता थी।

सम्पादक—अग्रवाल समाचार

सभापतिके पदसे त्यागपत्र दे देनेके बाद भी दोनों दलोंमें वैमनस्य न बढ़े, इसके लिये श्रीभाईजी सब लोगोंको शान्त रहनेका परामर्श देते रहे। क्योंकि उस समय बम्बईमें मारवाड़ी अग्रवाल जातिमें इतना द्वेष हो गया था कि यदि श्रीभाईजी बम्बई न पधारते तो कोर्टोंमें मुकदमेबाजी एवं खून खराबी होनेतककी संभावना हो गयी थी।

महासभाके कार्यसे तो श्रीभाईजीको छुट्टी मिल ही गयी थी और श्रीगोयन्दकाजी अपने ऋषिकेशके सत्संगमें शीघ्र आनेके लिये लिख ही रहे थे। परन्तु बम्बईका भगवत्प्रेमी सत्संगी समुदाय श्रीभाईजीकी सत्संग सुधारूपी वर्षासे तृप्त नहीं हुआ था इसलिये भाईजीका सत्संग जगह-जगह हुआ करता था।

चैत्र शुक्ला ४।८४ को रात्रिके समय श्रीनारायणजीके मंदिरमें हजारों सज्जनोंकी उपस्थितिमें चरित्रनायकने ऋषिकेश शीघ्र जानेकी अपनी इच्छा प्रकट की। इतनेमें ही श्रीहरिरामजी धेलियाने खड़े होकर सहसा घोषणा कर दी कि यदि श्रीभाईजी रामनवमीके पूर्व यहाँसे चले जायेंगे तो मैं आजसे ही प्रतिज्ञा करता हूँ कि अभीसे मैं अनशन प्रारम्भ कर देता हूँ। प्रेमी जनोंने भी उन्हें उत्साहित करनेके लिये इस प्रस्तावका हृदयसे समर्थन किया और श्रीभाईजीने उन्हें पासमें बुलाकर कहा कि ऐसी प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिये। परन्तु अंतमें श्रीभाईजीको रामनवमीतक बम्बईमें रहना पड़ा।

चैत्र शुक्ला ९। ८४ को बंबई सत्संग भवनमें चरित्रनायक निराकार भगवानके स्वरूपका वर्णन करके विष्णु भगवानकी मानसिक पूजा कराते-कराते अपने वाह्य ज्ञानको लुप्त होते देखकर उस वर्णनको बीचमें ही बंद करके एक अलग कमरेमें चले गये। इन दिनोंमें हमारे चरित्रनायककी बाह्य दशा भी कुछ अजीब-सी रहती थी।

आज रामनवमीके उपलक्ष्यमें चरित्रनायकके द्वारा प्रारम्भ किये हुए प्रति वर्षके कार्यक्रमके अनुसार नगर कीर्तनका धूमधामसे आयोजन हुआ। मतवाले प्रेमीजनोंके द्वारा नगर कीर्तन खूब उत्साहपूर्वक निकाला गया। चरित्रनायकने भी इस कार्यमें सहयोग दिया।

चैत्र शुक्ला १०। ८४ को बम्बईसे प्रस्थान करके हमारे चरित्रनायक ऋषिकेश श्रीगोयन्दकाजीके सत्संगमें पधारे। वहाँका वातावरण कुछ विचित्र ढंगका हो रहा था। जिसका वर्णन पाठकवृन्द कुछ सावधानीके साथ आगे पढ़ेंगे।

॥ श्रीहरिः ॥

तीसवाँ पटल

महात्मा गाँधीजीका लेख एवं श्रीभाईजीकी टिप्पणी

महात्मा गाँधीजीका पत्र—

महात्मा गांधीजीने गोविन्दभवन कलकत्ताके सम्बन्धमें एक पत्र 'भक्तिके नाम पर भोग' शीर्षक से लिखा था। वह 'कल्याण' वर्ष २ अंक ११ पृष्ठ ५०७-५०८ में प्रकाशित हुआ था। उसका कुछ अंश एवं चरित्रनायककी उसपर दी हुई टिप्पणी यहां उद्धृत की जाती है—

"रामनामका—द्वादश मंत्रका मैं पुजारी हूँ, पर मेरी पूजा अन्ध नहीं है। जिसमें सत्य है उसे राम नाम नौका रूप है। पर जो ढोंगसे राम नाम लेता है, उसका उद्धार रामनामसे होता है, यह मैं नहीं मानता। ××× रामनामसे मेरे विषय दूर हो जायेंगे यह माननेवालेको रामनाम फलता है, तारता है। 'रामके नामपर मैं अपनी काम वासनाको चरित्रार्थ करूँ' यह सोचकर जो व्यक्ति राम नामका उच्चारण करता है वह तरता नहीं वह डूबता है।

'जैसी जिसकी भावना वैसा उसको होय।'

××× ज्ञानी सोलनका वाक्य हृदयमें धारण करनेयोग्य है—कोई भी मनुष्य जीवित अवस्थामें अच्छा नहीं कहा जा सकता, आज जो अच्छे हैं वही कल खराब हो गये हैं। फिर दंभीको तो हम पहचान ही नहीं सकते, इसीसे पूजा केवल भगवानकी होती है। मनुष्यकी पूजा करनी ही हो तो उसकी मृत्युके बाद होती है क्योंकि बादको तो हम उसके गुणकी ही पूजा करते हैं उसके आकारकी नहीं। पुरुषोंको यह बात भोली बहिनोंको आग्रह और विनयपूर्वक बतानेकी आवश्यकता है।"

श्रीभाईजीकी टिप्पणी—

पू० महात्माजीने बहुत ठीक लिखा है—××× पूजा केवल भगवानकी ही होनी चाहिये। मनुष्यके गुणोंकी पूजा तो उसके मरनेके बाद हो सकती है। जो लोग पाप करनेके लिये ढोंगसे रामनामकी आड़ लेते हैं उनकी दुर्गतिके सम्बन्धमें तो 'कल्याण'में इससे पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है।

जहाँ तक हमें पता है श्रीजयदयालजीका मत भी यही है वे तो भगवन्नामके साथ साथ गीताके निष्काम कर्मयोगका प्रचार करते हैं जिससे लोग कर्मशील बनकर अपने-अपने कर्मोंद्वारा विश्वरूप परमात्माकी सेवा कर सकें।

हम सबको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और सावधान होकर सच्ची भक्तिका आश्रय लेना चाहिये।*

—सम्पादक

महात्मा गाँधीके कुछ महत्वपूर्ण पत्र

महात्मा गाँधी
यरवदा मंदिर
८ अप्रैल, ३२

भाई हनुमानप्रसादजी

आपका पत्र मिल गया। पिछले पत्रका कुछ ख्याल नहीं है। प्रश्नके उत्तर देनेकी कोशिश करता हूँ। इसे छापना नहीं। भविष्यमें छुट्टी मिलनेपर जो कुछ भी करना है कर सकते हैं।

---

*पूज्य श्रीसेठजीने एक व्यक्तिपर विश्वास करके उसे गोविन्द भवनमें प्रवचन करनेके लिये नियुक्त कर दिया था। उस व्यक्तिने पूज्य सेठजीके विश्वासका दुरुपयोग करके पूज्य सेठजी एवं गोविन्दभवनके साथ विश्वासघात किया। सत्यमूर्ति, सदाचारमूर्ति पूज्य सेठजीपर नाना प्रकारके झूठे आरोप लगाकर स्थानीय समाचार पत्रोंने पूज्य सेठजीको कलंकित करना चाहा। समाचार पत्रोंके मालिकोंने पूज्य सेठजीसे धन लेना चाहा। परन्तु पूज्य सेठजी एवं भाईजीने रिश्वत देना कदापि स्वीकार नहीं किया। पूज्य भाईजीने 'कल्याण' में यह टिप्पणी देकर ही संतोष नहीं किया। उन्होंने अपने परम मित्र श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडियासे गोविन्दभवनमें नित्य प्रवचन करना चालू रखा। गीताप्रेसके कुछ ट्रस्टी एवं गीताप्रेसके मैनेजरने भी पूज्य श्रीसेठजीसे नाता तोड़ लिया। पूज्य भाईजी इन सबकी बिना परवाह किये गीताप्रेसका संचालन, भगवन्नाम-प्रचार एवं सत्संग पूरी कर्मठतासे चालू रखा। पूज्य सेठजी एवं गोविन्द भवनपर लगे कलंकको निर्मूल कर दिया। पूज्य भाईजीकी दिव्य शक्तिका प्रयोग प्रत्यक्ष रूपसे उस समय देखा गया।

१-२) ईश्वरको मानना चाहिये, क्योंकि हम अपनेको मानते हैं। जीवकी हस्ती है तो जीवमात्रका समुदाय ईश्वर ही है और यही मेरी दृष्टिमें प्रबल प्रमाण है।

३) ईश्वरको नहीं माननेसे सबसे बड़ी हानि वही है जो हानि अपनेको नहीं माननेसे हो सकती है, अर्थात् ईश्वरको न मानना आत्महत्या-सा है। बात यह है कि ईश्वरको न मानना एक वस्तु है और ईश्वरको हृदयगत करना और उसके अनुकूल आचार रखना यह दूसरी बात है। सचमुच नास्तिक इस जगत्में कोई है ही नहीं।

४)ईश्वरका साक्षात्कार रागद्वेषादिसे सर्वथा मुक्त होनेसे ही हो सकता है। अन्यथा कभी नहीं। जो मनुष्य साक्षात्कार हुआ है—ऐसा कहता है उसको साक्षात्कार नहीं हुआ है। ऐसा मेरा मंतव्य है। यह वस्तु अनुभवगम्य है, परंतु अनिवचनीय है। इसमें मुझको कोई संदेह नहीं है।

५) ईश्वरमें विश्वास रखनेसे ही मैं जिंदा रह सकता हूँ। ईश्वरकी मेरी व्याख्या याद करना चाहिये। मेरे समझमें **सत्यसे भिन्न ऐसा कोई ईश्वर** नहीं है। सत्य ही ईश्वर है।

दुबारा कुछ पूछना हो तो अवश्य पूछा जाये।

मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। दिनचर्या यह है ३:४० को उठना। ४ बजे प्रार्थना, पीछे शहद, पानी और सोडा पीना। ४:४५ से ५:३० घूमना। ५:४० से ६ सो जाना। ६-६:३० शौचादि। ६:३०-७ गरम पानीसे पीसी हुई बादाम मिलाकर उसमें रोटी भिगोकर खाना। ७-१० तक वर्तमान पत्र सुनना, कुछ पत्र लिखना और अमलदार लोग आये उनसे मिलना। बीचमें सोडा, नींबू और ठंडा पानी पीना। १०-११ शौच, स्नानादि। ११ बजे कातना और थोड़ा (शायद ३० मिनट) सोना। २-३ पत्र लिखवाना। ३-४ लिखना, पढ़ना। ४-५ रोटी बादाम कोई तरकारीके साथ खाना। ५-६ आश्रमका इतिहास लिखवाना। ६-७ घूमना। ७-७:१५ प्रार्थना। ७:१५-८ या ८:३०। वार्तालाप, पढ़ना, पैरोंमें घी मलवाना इत्यादि। ८:३० आकाशवाणी करते-करते सो जाना। दिनचर्या भी छापनेके लिये हरगिज नहीं है। बात यह है सरकारी लोग मेरे खतोंका या विचारोंका प्रकट होना चाहते नहीं हैं। उनकी दृष्टि मैं समझ सकता हूँ और उसके अनुकूल यथाशक्ति चलता हूँ। इससे मित्रवर्गके साथ पत्र-व्यवहार आसानीसे चला सकता हूँ। इस शर्तसे कि राज-काजके बारेमें कोई चर्चा न करूँ। यह सब व्यवहार विश्वाससे चलता है। सत्यको ही परम ईश्वर माननेवाला मैं इस विश्वासका घात करना नहीं चाहता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

(२)

भाई हनुमानप्रसादजी,

आपका पत्र मिल गया। मेरे जीवनमें ऐसी कोई वस्तुका स्मरण मुझको नहीं है जिसे मैं यह कह सकता हूँ कि उस समय ईश्वरकी सत्ता और दयामें मेरा विश्वास जम गया। थोड़ा ही समय था जब विश्वास खो बैठा था। या तो कहीं मैं सशंक था। इसके बाद दिन-प्रतिदिन विश्वास बढ़ता ही गया है और बढ़ रहा है इसलिये कहता हूँ कि बुद्धिके लिये तो कोई प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। परंतु जबतक हृदयमें थोड़ा-सा भी विकार भरा है वहाँतक पूर्ण विश्वासका दावा नहीं किया जा सकता है। यह प्रश्न मुझसे किस कारण पूछा गया है। यदि निजी शांतिके लिये ही है तो भी ठीक है। यदि भविष्यमें भी 'कल्याण' के लिये पूछा गया है तो ऐसे प्रश्नका पूछना मुझको निरर्थक-सा प्रतीत होता है। यदि निजी शांतिके लिये ही है तो इतना समझ लिया जाये कि दूसरेके विश्वासकी कितनी भी घटनायें हम सुनें उससे हमारे हृदयकी श्रद्धा बैठ नहीं सकती। बुद्धिको अवश्य थोड़ी मदद मिलती है। हृदयके लिये निजी पुरुषार्थ अत्यावश्यक है और वह पुरुषार्थ संयममयी श्रद्धासे ही शक्य है।

देवदासको मिलते रहते हैं वह अच्छा है। वहाँ जेल सुपरिटेंडेंट कौन है? मैंने एक पत्र हिंदी शब्दकोशके लिये लिखा था, वह मिला होगा। भाई मैथिलीशरणजीने 'हिंदी शब्द संग्रह' नामक एक पुस्तक भेजा है।
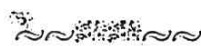
॥ श्रीहरि: ॥

इकतीसवाँ पटल

कल्याणका संपादन एवं एकान्त सेवनकी लालसा

'कल्याण' मासिक पत्रके रूपमें जबसे निकलना प्रारम्भ हुआ तभीसे बहुत तीव्र गतिसे भारत वर्षमें भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामके साथ-साथ सदाचार, ज्ञान, वैराग्य, निष्काम कर्मयोग आदि ऋषि प्रणीत सनातन धर्मके भावोंका प्रचार होने लगा था।

सं० १९८४ में प्रथम वर्षके अंततक इसके केवल दो हजारके लगभग ग्राहक थे। द्वितीय वर्षका प्रथम विशेषांक—'श्रीभगवन्नामाङ्क' के रूपमें छोटे कलेवरको लेकर परन्तु अनेक अनुभवी संतोंके अनुभवपूर्ण लेख एवं चित्रादिके साथ ऐसा सजधजके साथ बंबईसे निकला कि उसके पाँच हजारका प्रथम संस्करण हाथों हाथ बिक गया। उसके निकलनेके एक मासके अन्दर ही उसका पाँच हजारका दूसरा संस्करण छापनेका प्रबन्ध गीताप्रेस गोरखपुरमें करना पड़ा। इस प्रकार दस हजारके दो संस्करण छपनेके बाद इसके कई संस्करण छप गये। लोगोंकी माँग बनी ही रही।

सं० १९८५ के श्रावण मासमें तृतीय वर्षका विशेषांक 'भक्तांक' के रूपमें पूर्वापेक्षा दुगुने पृष्ठ तथा चित्रोंसे भी अधिक कलेवरको लेकर बारह हजारका प्रथम संस्करण लेकर निकला कि सब लोग उसे देखकर चकित हो गये। यद्यपि द्वितीय वर्षके अंततक विघ्न आ जानेसे केवल चार हजार ही कल्याणके स्थायी ग्राहक हुये थे फिर भी हमारे चरित्रनायकने बड़ी उमंगके साथ 'भक्तांक' के इतने बड़े कलेवरका इतना बड़ा संस्करण बहुत अधिक नुकसानकी कुछ भी परवाह न करके निकाल दिया।

इन्हीं दिनोंमें चरित्रनायकने इन पंक्तियोंके क्षुद्र लेखकसे कहा कि अभी तुम्हारे कल्याणके ४ हजार ग्राहक ही हैं पर आगे जाकर ४० हजारसे भी अधिक ग्राहक हो सकते हैं और हुआ भी ऐसे ही। तृतीय वर्षके अंततक कल्याणके करीब आठ हजार ग्राहक थे। कल्याणके २४ वें वर्ष में एक लाख पचीस हजार ग्राहक हो गये थे।

ज्यों-ज्यों कल्याणका प्रचार बढ़ता गया त्यों ही त्यों हमारे चरित्रनायकके एकान्त सेवनकी प्रबल लालसाकी पूर्तिमें विघ्न आने लगा। क्योंकि विशेषांकोंकी तैयारीमें २-३ महीने तो मशीनकी तरह दिन रात लगे रहकर सारा कार्य हमारे चरित्रनायकको ही करना पड़ता था। इन दिनोंमें 'कल्याण' कार्यालयके सुयोग्य मैनेजर थे बीकानेर निवासी पं० बद्री प्रसादजी आचार्य। हमारे चरित्रनायककी भाँति वे भी इतने कर्मठ थे कि अपने स्वास्थ्यकी कुछ भी परवाह न करके वे भी मशीनकी भाँति 'कल्याण' कार्यालय का कार्य दिन-रात करते रहते जिससे वे भक्तांक प्रकाशित होनेके अवसरपर अस्वस्थ होकर अधिक काम करनेमें असमर्थ हो गये। इसलिये सम्पादनके साथ साथ मैनेजरका सारा कार्य भी हमारे चरित्रनायकपर ही आ गया।

इधर तो बाह्य जगतके ऐसे-ऐसे अनेकों कार्योंमें ही चरित्रनायकको अपने स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीरकी सारी इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिको लगाना पड़ता था। उधर इनके अन्तर्जगतकी साधनाका मार्ग गंगाके प्रवाहकी भाँति जिस द्रुत गतिसे चल रहा था कि उसका कोई अनुभव भी नहीं कर सकता। भौतिक जगतके लोग अपनी-अपनी स्थूल दृष्टियोंके अनुसार इन्हें नाना प्रकारसे शक्ति सम्पन्न समझते थे। किन्तु वास्तवमें ये किस मार्गके पथिक हैं इसे कोई नहीं अनुभव कर सकता था। प्रसंगवश हम इनके साधक जीवनके कई वर्षों पूर्वके बम्बईमें बनाये हुए प्रभु प्रार्थनाके कुछ पद यहाँ उद्धृत कर देते हैं जिससे इनकी प्रारम्भिक साधनासे भी पाठकवृन्द कुछ परिचित हो जायँ—

चहौं बस एक यही श्रीराम।
अबिरल अमल अचल अनपाइनि प्रेम-भगति निष्काम॥
चहौं न सुत-परिवार, बंधु-धन, धरनी, जुवति ललाम।
सुख-वैभव उपभोग जगतके चहौं न सुचि सुर-धाम॥
हरि-गुन सुनत-सुनावत कबहूँ, मन न होइ उपराम।
जीवन-सहचर साधु-संग सुभ, हो संतत अभिराम॥
नीरद-नील-नवीन-बदन अति सोभामय सुखधाम।
निरखत रहौं बिस्वमय निसि-दिन, छिन न लहौं बिस्राम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११००)

प्रभु ! मेरो मन ऐसो ह्वै जावै।
विषयन को विष सगरो उतरै, पुनि नहिं कबहूँ छावै॥
बिनसै सकल कामना मनकी, अनत न कतहूँ धावै।
निरखत निरत निरन्तर माधुरि, स्याम मुरति सुख पावै॥
कामी जिमि कामिनि-सँग चाहै, लोभी धन मन लावै।
तिमि अबिरत निज प्रियतमकी सुधि, छिन इक नहिं बिसरावै॥
ममता सकल जगतकी छूटै, मधुर स्याम छबि भावै।
तव आनन-सरोज-रस-चाखन मन मधुकर बनि जावै॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३७)

ऐसे-ऐसे अनेकों पद बनाकर ये अपने प्रियतम प्राणाधारको एकान्तमें अन्तर हृदयसे सुनाते रहते। जिससे इनपर प्रभु प्रसन्न होकर अपने मृदुल चरणोंकी झांकीके दर्शन कराते एवं इन्हें द्रुत गतिसे अपनी तरफ खींचते रहते। प्रार्थना करते-करते कभी ये इतने मुग्ध हो जाते कि उसी अवस्थामें ये इस प्रकारके पद बनाकर प्रभुको सुनाया करते—

हुआ अब मैं कृतार्थ महाराज !
दिया चरण-आश्रय गरीबको, धन्य गरीबनिवाज !॥
घूमा नभ-जल-पृथ्वीतलपर, धरे नित नये साज।
मिली न शान्ति कहीं प्रभु ! ऐसी, जैसी मुझको आज॥
विविध रूपसे पूजा मैंने कितना देव-समाज।
कितने धनी उदार मनाये, हुआ न मेरा काज॥
दुख-समुद्रमें डूब रहा था मेरा भग्न जहाज।
चरण-किनारा मिला अचानक, छूटा दुखका राज॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३८)

इस प्रकारके पद तो इनके उस समयके बनाये हुए हैं जिस समय इनका श्रीराधा कृष्णकी व्रजलीलाओंमें प्रवेश होनेका श्रीगणेश भी नहीं हुआ था। जसीडीहमें श्रीविष्णु भगवानके प्रत्यक्ष दर्शन होनेके समयतक तो ये अपने अनन्त जन्मोंसे अपने प्रियतम युगल सरकारकी अन्तरंग लीलाओंके समबन्धसे मानो विस्मृत-से ही थे। किन्तु आगे चलकर ज्यों-ज्यों ये तेजीसे बीचके मार्ग समाप्त करते गये त्यों ही त्यों ये अपने प्राणाधार प्रियतमके उस अनुपम रसामृत सिन्धुमें निमग्न होनेके लिये छटपटाने लगे थे।

पाठकवृन्द! आप अभी जरा धैर्यके साथ इनके वाह्य जीवनके स्थूल चरित्रोंको पढ़ते रहिये। यदि सौभाग्यसे इनके अन्तर्जगत्के यत्किञ्चित् अनुभवोंको भी श्रद्धापूर्वक पढ़ सकेंगे तो सचमुच आप निहाल हो जायेंगे। आप आश्चर्य करेंगे कि ऐसे अनुपम रत्न हमें प्राप्त हो गये थे और हम उनके साथ रहकर भी उन्हें यत्किञ्चित् भी पहचान न सके। हाँ, चरित्रनायक अपने अन्तर्जगतकी बात इस क्षुद्र लेखकको एवं किसी-किसी व्यक्तिको संकेत रूपसे कभी-कभी सुना देते। जिससे उनका माधुर्य लीलाओंमें प्रवेश कैसे हुआ तथा उन्हें गोलोककी नित्य नयी-नयी लीलाओंके दर्शन कैसे होते हैं इन बातोंका अनुमान भी किया जा सकता है।

चरित्रनायकके बनाये हुए अद्वैतपरक पदोंमें से नीचे लिखा हुआ एक पद आपको सुनाते हैं। आप अनुमान करेंगे कि वे अद्वैतमार्गके भी किस श्रेणीके पथिक थे। परन्तु थे वे रसाद्वैतके पथिक, क्योंकि यह रस शुष्क वेदान्त मार्गके पथिकोंके लिये दुर्लभ है।

प्रियतम ! न छिप सकोगे, चाहे जो वेष धर लो।
अब हो चुकी है मुझको पहचान वह तुम्हारी॥
ढूँढ़ा तुम्हें अभीतक मन्दिर या मस्जिदोंमें।
पर देख तो न पाया वह माधुरी पियारी॥
जिसने बताया जैसे, वैसे ही ढूँढ़ा मैंने।
भटका, कहीं न दीखे, चैतन्य ! चित्तहारी॥
बस, बेतरह हराया, आया जो पास मेरे।

तुमको बता-बताकर, शब्दोंकी मार मारी॥
पर देखकर न तुमको, था सोचता यों मनमें।
है वा नहीं है जगमें सत्ता कहीं तुम्हारी॥
संदेह जब यों होता, झाँकी-सी मार जाते।
तिरछी नजरसे हँसकर, छिपते तुरत विहारी॥
बिजली-सी दौड़ जाती, सन्-सन् शरीर करता।
होती थीं इन्द्रियाँ सब प्रखर प्रकाशकारी॥
तब दीखता था मुझको फैला प्रकाश सबमें।
प्राणेश ! बस, तुम्हारा वह दिव्य मोदकारी॥
आँधी-सी एक आती, धन-कीर्ति-कामिनीकी।
सारा प्रकाश ढकता, उस तमसे अन्धकारी॥
आ-आके इस तरह तुम, यों बार-बार जाते।
मुझको न थी तुम्हारी पहचान पुण्यकारी॥
आँखोंमें बैठ करके, तुम देखते हो सबको।
कानोंमें बैठ सुनते तुम शब्द सौख्यकारी॥
नाकोंसे गन्ध लेते, रसनासे चाखते तुम।
हो स्पर्श तुम ही करते, लीला विचित्र-कारी॥
प्राणोंमें, चित्त-मनमें, मतिमें, अहंमें, तूँमें।
सबमें पसार करके तुम खेलते खिलारी॥
बेढब नकाबपोशी रक्खी है सीख तुमने।
अंदर समाके सबके छिपते, अजीब यारी॥
जिसको दिखाया तुमने परदा हटाके अपना।
वह रूप-रँग अनोखा, प्रेमोन्मत्त-कारी॥
फिर भूलता नहीं वह, औ भूल भी न सकता।
पहचान नित्य होती पारस्परिक तुम्हारी॥
आँधी कभी न आती आँखें न चौंधियातीं।
वह दिव्य दृष्टि पाकर, होता सदा सुखारी॥
सुख-दुःख, जय-पराजय, तम-तेज, यश-अयशमें।
दिखतीं उसे सभीमें छबि मोहिनी तुम्हारी॥
फिर देखता वह तुमसे सारा जगत भरा है।
अपनी जरा-सी सत्ता वह देखता न न्यारी॥
तुम हो समाये सबमें, वह है समाया तुममें।
भय-भेद-भ्रान्ति मिटती उस एक छनमें सारी॥

प्रिय पाठकवृन्द! अपने प्रेमास्पद प्राणाधारके मधुमय चरित्रोंके चित्रण करनेमें इन पंक्तियोंका क्षुद्र लेखक इतना पागल हो जाता है कि जिसका उसे कुछ भी पता नहीं लगता कि क्या लिखना है, क्या लिख रहा है। जिन-जिन घटनाओंको उसने हमारे चरित्रनायकके निरन्तर साथ रहकर देखा है उनके मुखारविन्दसे सुना है उन्हींके आधारपर अपने कलुषित हृदयको पवित्र करनेके लिये यह पागल व्यक्ति एक उच्च कोटिके संत मण्डलके सदस्यके चरित्र-चित्रण करनेके लिये उद्यत हुआ है।

चरित्रनायक बम्बई छोड़कर गोरखपुर इसीलिये आये थे कि 'कल्याण'के २-४ अंक गीताप्रेससे प्रकाशित करके सारा कार्य सुचारु रूपमें चलाकर कहीं एकान्तमें गंगा किनारे कुटी बनाकर त्यागमय जीवन बितायेंगे। परन्तु गोरखपुर आते ही सर्वप्रथम प्रभु-कृपासे उन्हें जसीडीहमें श्रीभगवानके प्रत्यक्ष दर्शन हुए और वापस गोरखपुर आनेपर श्रीभगवानने उन्हें भगवन्नाम प्रचारका आदेश दिया। किसी अंशमें उस कार्यको करके तृप्त ही नहीं हुए थे कि श्रीगोयन्दकाजीकी आज्ञासे अग्रवाल महासभाके सभापति पदसे बंबई जाना पड़ा। उस कार्यसे अलग होकर ऋषिकेश गये थे। गंगा किनारे रहकर अपने एकान्त सेवनकी लालसा तृप्त करनेके लिये परन्तु वहाँपर एक नये ही बखेड़ेमें पड़कर बांकुड़ा-कलकत्ता जाकर उस दुष्कर कार्यको निपटाकर फिर कल्याणके भक्तांकको निकालकर अब एकान्त सेवनका विचार कर रहे थे। प्रेस कार्यके पूरे अनुभवी श्रीयुत महावीरप्रसादजी पोद्दार गीताप्रेसके प्रधान मैनेजरका सारा कार्य अपनी पूर्ण रुचिके साथ दत्तचित्त होकर सँभालते थे। वे भी धीरे-धीरे प्रेसके कार्यसे अपनेको अलग करने लगे। ऐसे विकट समयमें हमारे चरित्रनायकके सिवाय ऐसा कोई अनुभवी व्यक्ति प्रेसके कार्यको सँभालनेवाला नहीं था। इसलिये चरित्रनायकने अपने गुरुतुल्य श्रीगोयन्दकाजीकी आज्ञासे गीताप्रेसका सारा कार्य थोड़े समयके लिये देखना स्वीकार किया।

इसीलिये श्रावण कृष्ण ५। ८५ को गोरखपुरसे रवाना होकर चरित्रनायक बाँकुड़ा श्रीगोयन्दकाजीसे परामर्श करनेके लिये गये कि भविष्यमें किस ढंगसे कार्य

करना चाहिये? क्योंकि मेरे एकान्त सेवनकी लालसा बनी हुई है। इसलिये मैं गीताप्रेसके कार्यको अधिक समयतक सँभाल न सकूँगा। इसपर श्रीगोयन्दकाजीने चरित्रनायकको नाना प्रकारकी युक्तियोंसे समझाया कि यह गीताप्रेस एवं 'कल्याण'का कार्य भी श्रीभगवानकी सेवाका कार्य ही है, इससे भी जगतका बड़ा लाभ है। तुम्हें इससे उपराम नहीं होना चाहिये। क्योंकि अभीतक तुम्हारे जैसा कोई व्यक्ति ये सब कार्य करनेके लिये तैयार नहीं हुआ है। अस्तु,

श्रीगोयन्दकाजीकी आज्ञा स्वीकार करना अपना परम कर्तव्य समझकर चरित्रनायक बाँकुड़ासे वापस गोरखपुर आ गये। फिर आश्विन शुक्ला ४-५। १९८५ को दो दिनके लिये प्रेस सम्बन्धी कई आवश्यक बातें करनेके उद्देश्यसे श्रीगोयन्दकाजीसे मिलनेके लिये ये मुगलसरायसे प्रयागतक साथ जाकर वापस गोरखपुर आ गये।

इन्हीं दिनों चरित्रनायककी बहन कमलाबाईके पति छोटूलालजी सर्राफका देहावसान हो गया था। इसलिये कार्तिक कृष्णा ११। ८५ को अपनी बहनको सान्त्वना देनेके लिये चरित्रनायक सपरिवार गोरखपुरसे रतनगढ़ गये। वहाँपर कुछ दिन उनके पास रहकर उन्हें संसारकी नश्वरताकी बातें सुनाकर भजन साधन करनेके लिये उत्साहित किया।

श्रीमोहनलालजी डागा गोरखपुरमें कई महीना रहकर वहाँपर उनके राजयक्ष्मा (फेफड़े की बीमारी) होनेका सन्देह हो जानेसे बीकानेर आ गये थे। इसलिये उनके बुलानेसे मार्गशीर्ष कृष्णा १२। १९८५ को चरित्रनायक बीकानेर जाकर उन्हें बीमारीको एक मित्रके रूपमें समझकर सदा प्रसन्न रहनेकी सलाह दी। वहाँपर परम पूज्यनीया श्रीलाली माईजीके दर्शन करने गये क्योंकि बीकानेरमें स्थाई रहनेवाले सन्तोंमें पूज्यनीया श्रीलालीमाईजीका सर्वोपरि स्थान है। इसलिये चरित्रनायक जब-जब बीकानेर जाते उनके दर्शन किये बिना वापस न आते थे।

रतनगढ़में करीब दो मास चरित्रनायक रहे। तबतक आस-पासके सरदारशहर, बीकानेर, चुरू, सुजानगढ़ आदि कई ग्रामोंमें सत्संगके लिये चरित्रनायक गये। बादमें गीताप्रेसके कार्यके लिये पौष शुक्ला ४। ८५ को रतनगढ़से रवाना होकर गोरखपुर चले आये।

अब गोरखपुरमें रहना तो एक प्रकारसे अनिवार्य-सा हो गया था। पर चरित्रनायक श्रीगोयन्दकाजीको पत्र देकर इन कामोंसे अलग होनेके लिये उनसे नम्रतापूर्वक बार-बार प्रार्थना करते रहते थे। जिसका वे उत्तर किस प्रकार देते इसकी पाठकोंकी जानकारीके लिये हम श्रीगोयन्दकाजीके लिखे एक पत्रका कुछ अंश उन्हींकी भाषामें किंचित् संशोधित करके यहाँ उद्धृत करते हैं—

भाई हनुमान,

सप्रेम राम, राम

तुमने लिखा—गोरखपुरमें रहनेकी मेरी इच्छा नहीं है। तथा 'कल्याण'में सम्पादनका कार्य करनेकी इच्छा भी नहीं है सो ठीक है। इस विषयमें कई वर्षोंसे तुम बहुत दफे कहते आ रहे हो किन्तु दूसरा कोई मनमाफिक सम्पादक न मिलनेके कारण तथा हमलोगोंके आग्रहके कारण यह काम तुमको करना पड़ता है। ××× तुमने लिखा पूज्य बद्रीप्रसादजी आचार्य यह काम कर सकते हैं किन्तु वे चुरू ऋषिकुलमें कार्य कर रहे हैं, वहाँपर उनकी जरूरत भी है सो ठीक है किन्तु पूज्य ज्येष्ठारामजी यहाँ आ गये हैं। उनके चुरू जानेके बाद पूज्य बद्रीप्रसादजी तुम्हारे पास रहकर संपादकका कार्य उनके जिम्मे लगाकर संपादकमें नाम तुम्हारा रहे और तुम्हारी सलाहसे काम वे करते रहें तब तो काम चलनेकी उम्मीद है। संपादकमेंसे तुम्हारा नाम निकालनेसे मेरी समझमें 'कल्याण'के प्रचारमें रुकावट आ सकता है। शायद बंद भी हो सकता है।

'कल्याण'से संसारमें बहुत लाभ मालूम देता है। व्याख्यानोंकी अपेक्षा लेखोंके स्थाई रहनेसे बहुत अधिक लाभ अनुमान किया जाता है। इसलिये 'कल्याण'से तुम्हारी उपरामता किसलिये होती है कुछ समझमें नहीं आता।

तुमने लिखा—मुझे आज्ञा देना चाहिये। विनयके

साथ हाथ जोड़कर आज्ञा चाहता हूँ। इस माफिक समाचार तुम्हारा पहले कभी नहीं आया। इस विषयमें तुमने हमसे परामर्श भी नहीं किया, प्रश्न भी नहीं किया किन्तु फिर भी तुम्हारे प्रेमके कारण तुम्हें बिना प्रश्न किये ही अपनी राय देनी पड़ती है। तुम्हारेसे बिना मुलाकात किये मैं तुम्हें हठात् अपनी जिम्मेदारीका कार्य छोड़नेके लिये तथा अपना नाम 'कल्याण'से हटानेके लिये कैसे लिख सकता हूँ? विचारनेयोग्य बात है सो रुबरु मिलनेपर विचार किया जा सकता है।

चौथे वर्षका विशेषांक गीतांक निकालना है। इसलिये उसकी तैयारीके लिये तुम्हें चेष्टा करनी चाहिये। गीतांक निकलनेके बाद आगेके लिये सम्पादकका विचार पीछे किया जा सकता है।

तुमने व्याख्यान देनेकी अरुचि प्रकट क्री सो तुम्हारी इस विषयमें बहुत दिनोंसे अरुचि है यह बात हमारी जानकारीमें है। किन्तु 'कल्याण'से संसारमें बहुत लाभ मालूम देता है। ऐसा कोई भी दूसरा पत्र नजर नहीं आता है। गीताप्रेसमें भी तुम्हारे द्वारा बहुत लाभ है। इन उत्तम कामोंको छोड़कर तुम्हारे द्वारा संसारमें दूसरे मार्गसे लाभ होना अभी समझमें नहीं आता है। इसलिये अभी तुम्हें इन कार्योंको छोड़नेके लिये नहीं कहा जा सकता। यह विचारनेयोग्य बात है। लाभ समझमें आनेसे इन कामोंको छोड़नेकी राय भी दी जा सकती है।

—जयदयाल

फाल्गुन शुक्ला ५। १९८५ वि०

चरित्रनायक एकान्तसेवनके लिये जिस जिस समय श्रीगोयन्दकाजीसे प्रार्थना करते वे उन्हें इसी प्रकारकी दलीलें देकर समझा देते। तात्पर्य यह कि इनके द्वारा श्रीभगवानको प्रपंचमें रहकर काम करते हुए ही अपनी साधनाको उच्चाति उच्चशिखरपर पहुँचाना अभीष्ट था। ये बहुत प्रयत्न करते पर *'होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तरक बढ़ावै साखा॥*

अत: ये उपरोक्त पत्र पाकर संतुष्ट होकर नहीं रहे। चैत्र कृष्णा ८। ८५ को गोरखपुरसे बाँकुड़ा जाकर श्रीगोयन्दकाजीको पुन: अपनी मनोदशाका दिग्दर्शन कराया परन्तु उन्होंने इन्हें कामसे अलग होनेकी आज्ञा नहीं दी। क्योंकि वे स्वयं एक जबरदस्त निष्काम कर्मयोगी व्यक्ति हैं। उन्हें इनके जैसा कर्मयोगी व्यक्ति दूसरा कोई नजर नहीं आता है। अत: इन्हें वहाँ आठ दिन रहकर भी अपने कार्यमें सफलता न मिली। बाँकुड़ामें इन्हें बंबईसे मोहनलालजी डागाका तार मिला कि आपके दर्शनोंकी अभिलाषा है इसलिये कृपापूर्वक बम्बई पधारकर दर्शन दें। कई कारणोंसे ये शरीरसे तो बम्बई न गये पर मुझको बाँकुड़ेसे ही परवारा बम्बई भेजकर उन्हें कहलाया कि आप मुझे अपने समीप ही समझें। मैं बम्बईमें रहकर आपकी जितनी सेवा कर सकता हूँ उससे कहीं अधिक दूर रहकर भी कर सकता हूँ। अत: मेरे बम्बई जानेसे उन्हें संतोष हो गया। ये चैत्र शुक्ला १। १९८६ को बाँकुड़ासे गोरखपुर वापस आकर 'कल्याण'के गीतांकके कार्यमें जुट गये।

श्रीभाईजीने मोहनलालजी डागाको उन दिनोंमें कुछ पत्र दिये थे उसका अति संक्षेपमें यहाँपर सार रूपमें दिग्दर्शन कराया जाता है।

प्रिय भाई मोहनलालजी

××× आपको किसी तरहसे इस बीमारीके हेतुको लेकर जीवनसे निराश नहीं होना चाहिये। मनमें यह दृढ़ संकल्प करना चाहिये कि इस बीमारीपर मेरी विजय होगी। हाँ, शरीर क्षणभंगुर है इसलिये भजन साधनमें सचेत रहना सबके लिये आवश्यक है। बड़ी बीमारी भवरोगकी है। उससे मुक्त होनेके लिये निरन्तर भगवच्चिन्तन करना चाहिये। भगवान भी गीता ८। ७ में यही घोषणा करते हैं कि परमात्माके चिन्तनमें लगे हुए पुरुषके लिये परमधामका मार्ग सदा खुला रहता है। अत: प्रत्येक रूपमें प्रभुको समझकर निश्चिन्त रहना चाहिये। ×× दत्तकके सम्बन्धमें सबसे अच्छी बात है, नहीं लेना। ×× दूसरे अध्याय गीताके श्लोक ११ से ३० तकका बारम्बार मनन करना चाहिये। वास्तवमें आत्माकी नित्यता और अमरता ध्रुव सत्य है। मनुष्यको समझना चाहिये कि मैं अमर हूँ, अजर हूँ, मेरी कभी मृत्यु नहीं हो सकती। शारीरिक नाशसे मेरा नाश कभी नहीं होगा। बारंबार

इसका मनन करना चाहिये। रोगसे डरकर निराश नहीं होना चाहिये। उधर मृत्युपर भी अपनी स्वाभाविक अमरतासे विजय प्राप्त करनी चाहिये। आप तो नित्य अमर हैं। निर्विकार हैं, अनामय हैं, असंग हैं। आपमें विकार, रोग, मृत्युका कोई संसर्ग नहीं हो सकता। चिन्ता नहीं करनी चाहिये। खूब सावधान, सचेत और सदा अपने स्वरूपमें स्थित रहकर जगत्‌की मायिक कल्पनाओंको प्रसन्न चित्तसे देखना चाहिये। जो वस्तु दीखती है, जिसका आपको अनुभव होता है उससे आप सर्वथा भिन्न हैं, आप द्रष्टा हैं। जगत्‌रूप दृश्यके आप साक्षी हैं। आपमें कभी कोई विकार नहीं हुआ।

आपका—**हनुमानप्रसाद**

(२)

×× मनमें बहुत हिम्मत तथा ईश्वरपर विश्वास रखना चाहिये। मृत्यु जीवात्माके जीवनका पट-परिवर्तन मात्र है। अंत नहीं है, इसमें शोक करनेकी कोई बात तनिक-सी भी नहीं है। नित्य आत्माकी स्थितिमें इससे कोई अंतर नहीं आता। अंतकालमें ब्राह्मी स्थित रह जानेसे पट- परिवर्तन भी सदाके लिये बन्द हो सकता है। ×× चेष्टा यही रखनी चाहिये कि निरन्तर परमात्मामें स्थिति बनी रहे। अखण्ड, नित्य आत्मस्वरूपका चिन्तन करना चाहिये। बीमारी शरीरमें है, नाश पांचभौतिक शरीरका है। आपके स्वरूपमें न बीमारी है और न नाश है। दूसरे शब्दोंमें यों समझिये कि यह सब लीलामयकी लीला है, हम सब उसके हाथके खिलौने हैं। यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि सर्वदा हमलोग उसके हाथोंमें ही हैं। उससे अलग कभी नहीं हैं। यह स्मरण रह जाना ही उसकी प्राप्तिका हेतु है। अत: बड़े साहसके साथ कल्पित संकटोंका सामना कर स्वाभाविक ही आनन्दमें मग्न रहना चाहिये।

॥ श्रीहरिः ॥

बत्तीसवाँ पटल

साधन समिति

चरित्र नायकके अनन्त अद्भुत चरित्रोंमेंसे चुराकर अपने पाठक वृन्दके लिये किस घटनाका चित्रण करे और किसे छोड़े इसका निर्णय करनेमें हमें भी बड़ी कठिनाइयाँ होती जा रही हैं क्योंकि उनका यथार्थमें चरित्र चित्रण करना हमारे जैसे क्षुद्र प्राणीके लिये सर्वथा असंभव है। हम एक छोटी सी घटनाका दिग्दर्शन यहाँ कराते हैं।

हरीराम ब्राह्मण रतनगढ़ निवासीको बहुत वर्षोंसे अनेकों प्रकारसे श्रीभाईजी हजारों रुपये लाभ करा दिया करते थे। चरित्रनायककी उदारताका वर्णन पाठक वृन्द गायनाचार्य श्रीविष्णु दिगम्बरजीके साथ मित्रता निभानेकी घटनामें पढ़ चुके थे। इसी प्रकार इन्हें भी श्रीभाईजी अपना मित्र माना करते थे। जबतक चरित्रनायक बम्बईमें रहते तब तक ये श्रीभाईजीके साथ रहे और उसके बाद रतनगढ़में आकर मरणासन्न बीमार हो गये। उस समयपर किसीके बहकानेसे हरीराम ब्राह्मणने कई व्यक्तियोंके सामने हमारे चरित्र नायकपर अपने झूठे दो हजार रुपयेके लगभग बाकी लेने बतलाये और वह मर गया।

श्रीरामेश्वरजी बाजोरिया इन्हीं दिनों रतनगढ़से गोरखपुर आ रहे थे। चरित्रनायकने उन्हें कल्याण तथा गीताप्रेसका कार्य करनेके लिये ही बुलाया था। इन्होंने आकर हरीराम ब्राह्मणकी सब बात चरित्रनायकको कहीं। चरित्रनायक उस समय निजमें करीब एक लाख रूपयेका ऋण देना छोड़कर बम्बईसे गोरखपुर आये थे। इसलिये उन दिनों आर्थिक कठिनाई इन्हें कम नहीं थी परन्तु अपने माने हुए मित्रकी बिल्कुल असत्य कही हुई बातको श्रीभाईजीने अपने मित्रके इस जघन्य अपराधको छिपानेके लिये इन दो हजार रूपयोंको उन्हें देनेके लिये अपनी पैत्रिक सम्पत्ति रतनगढ़में मकानादिको बेचकर चुकानेका अपने मनमें विचार कर लिया कि और तो किसीसे लेकर उनके परिवारवालोंको इतने रूपये इस समय दिये जाने कठिन हैं इसलिये ऐसे मौके पर इस पैत्रिक सम्पत्तिका उपयोग क्यों न कर लिया जाय। ऐसा करनेसे लोग हरीराम ब्राह्मणकी निन्दा न करेंगे। उनकी निन्दाको अपने सिरका आभूषण बनाकर उसके मरनेके बाद भी अपनी सच्ची मैत्रीका उदाहरण निभानेके लिये चरित्रनायकने '**गुण प्रकटहि अवगुणहि दुरावा**', और

देत लेत मन संकन धरहिं,
बल अनुमान सदाहित करहिं।
मित्र के दुःख रजमरु समाना।
निज दुःख गिरि समरजक रिजाना,

इत्यादि मानसकी चौपाइयोंको चरितार्थ किया। अपने जीवनमें ऐसे अनन्त उदाहरण हैं। हमारे चरित्रनायकके परममित्र रामकृष्णजी डालमियाने चरित्रनायककी इस अनुचित उदारताकी बात सुनकर चरित्रनायकको एक ऐसा उपदेशप्रद पत्र देकर उन्हें यह परामर्श दिया कि हरीराम ब्राह्मणको ऐसे रूपये देना सर्वथा अन्याय है। इस कार्यके लिये आप अपनी जमीन बेचना चाहते हैं, यह सरासर आपकी भूल है। आप अपनी उदारताका दुरुपयोग कर रहे हैं इत्यादि अनेक बातें लिखीं पर चरित्रनायकने बड़ी नम्रतापूर्वक उन्हें ऐसा पत्र दिया जिसमें लिखा कि भैया, आज हरीराम संसारमें नहीं हैं। यदि मैं कह दूँगा कि हरीरामने यह बात झूठ कही थी तो यह कलंक उसके जीवनमें सदाके लिये रह जायेगा। जिस व्यक्तिने आजीवन हरीरामको पाला-पोसा उसीके साथ अन्तमें मरते समय ऐसा असत्य आरोप लगाया। मैं एक समय हरीरामको अपना मित्र कहता था। अपने मित्रके इस कलंकको

दूर करनेके लिये उसके असत्य आरोपको सत्य मानकर यदि मैं ब्राह्मण परिवारकी तुच्छ सेवा ही कर दूँगा तो इससे मेरे क्या हानि होगी। लोग मेरी बदनामी ही तो करेंगे। यह तो मेरे लिये बड़ी प्रिय वस्तु होगी। मुझे अपने मित्रके कलंकको धोकर अपने सिर इस कलंकको लेनेसे बड़ा सुख मिलेगा। तुम्हें यह मेरा व्यवहार अच्छा नहीं लगता सो बहुत ही उचित है। पर मैंने तो ये रूपये देना निश्चय कर लिया है। अतः कर्ज लेकर भी ये रूपये तुरन्त उनके परिवारवालोंको रतनगढ़ भेज देना है।

प्रिय पाठक! यह घटना अत्यन्त संक्षेपमें लिखी गयी है क्योंकि चरित्र नायकके जीवनमें ऐसी घटनाओंकी गणना भी नहीं की जा सकती। ऐसी-ऐसी असाधारण घटनायें तो उनके चरित्रका ऐसा प्रधान अंग ही थी। चार-पाँच सौ वर्ष पहले गीत गोविन्दके रचयिता भक्तराज जयदेव कविने भी अपने साथ अन्याय करनेवालेको राज्य खजानेसे बड़ा पुरस्कार दिलाया था। चरित्रनायकने प्राचीन अनेकों भक्तोंके चरित्रोंसे भी बढ़कर अपने जीवनमें ऐसे-ऐसे गुप्त सेवाके कार्य किये हैं कि निरन्तर आजीवन साथ रहनेवाले इनके प्रेमीजनोंको भी इनकी सेवाओंका पता तक नहीं लगता क्योंकि इन्हें बाहरसे बिल्कुल साधारण जीवन दिखानेको श्रीभगवान्ने आदेश जो दे रखा था।

चरित्रनायकने गंगा तीरपर रहकर एकान्त जीवन बितानेके लिये बहुत चेष्टा की पर श्रीभगवान्ने इन्हें संसारमें अधिकाधिक बंधनमें डालना लाभप्रद समझा। अब तो इन्हें कल्याणके साथ गीताप्रेसका कार्य करना था। इस बड़े परिवारके बड़े-बड़े मैनेजर लोगोंको भी श्रीभगवान्के समीप शीघ्र ही ले जाना है। अभी तक सबके मनोंमें अश्रद्धा तथा राग-द्वेष आदि दोष भरे हुए थे। उन्हें ठीक रास्तेपर शीघ्र लानेके लिये चरित्रनायकने एक उपाय ढूँढ निकाला कि अब इन्हें कुछ कड़े नियमोंके बंधनमें जकड़े बिना काम न चलेगा।

बैसाख शु० ४/८६ को प्रात:काल ४ बजे प्रेसके प्रधान व्यक्तियोंको कान्तिबाबूके बगीचेमें आ जानेपर हमारे चरित्रनायक श्रीभाईजीने सबसे कहा—आज कुछ बात करनी है। दुजारीजी अभीतक क्यों नहीं आये। श्रीबिहारीलालजी तत्काल उसके समीप ही श्रीमहावीरजी पोद्दारके बगीचेमें जाने लगे। वह इन दिनों अपने राम-सुशीला, दो बच्चों तथा धर्मपत्नीके सहित उसी बगीचेके कच्ची झोपड़ीमें चरित्र नायकके सत्संगके उद्देश्यसे रहा करता था। अत: वह तो श्रीभाईजीके समीप आ ही रहा था। रास्तेमें ही बिहारी बाबूने मुझसे कहा कि आज श्रीभाईजी आपको याद कर रहे हैं क्योंकि अपने प्रेमीजनोंसे कुछ बातें करनेवाले हैं इसलिये मैं आ रहा था। भाईजीने बुलाया है तो चलिये। तत्काल दोनों श्रीभाईजीके समीप पहुँच गये। श्रीभाईजीने अपने कोठीके पीछे उत्तर पूरबमें एक कुटियाके समीप चुने हुए सात-आठ प्रेमीजनोंको वहाँ ले जाकर बड़े प्रेमसे कहा—साधकोंको साधना करनेके लिये कुछ नियम बनाकर उसका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। बिना साधन किये शान्ति सहजमें नहीं मिलती। अत: आपलोग उचित समझें तो अपने कुछ प्रेमीजनोंकी एक साधन समिति बनाकर उसके सदस्योंके लिये कुछ नियम बना लिये जायँ। नियम भले ही साधारण हों किंतु उनका पालन बहुत ही आदरपूर्वक किया जाय जिससे थोड़े ही दिनोंमें मनुष्य जन्मके लक्ष्यकी प्राप्ति हो जाय। इस विषयमें आपलोगोंकी क्या राय है?

ऐसे गम्भीर भावसे कहे हुए श्रीभाईजीके ये बचन सुनकर प्रेमीजनोंके आनन्दकी सीमा न रही। वे तो बेचारे इस बातके लिये ही अपनी शक्तिके अनुसार सब प्रकारका बाह्यत्याग करके गीताप्रेस एवं कल्याणका कार्य श्रीभगवान्का कार्य समझकर तथा कोई-कोई केवल श्रीभाईजीके साथ रहनेके उद्देश्यसे गोरखपुर आये ही थे और श्रीगोयन्दकाजी एवं हमारे चरित्रनायक श्रीभाईजीको अपना पथ प्रदर्शक स्वीकार ही कर चुके थे। सभी उपस्थित सज्जनोंने बड़े हर्षके साथ इस बातको सर्व सम्मतिसे स्वीकार करके एक साधक समिति बनाना स्वीकार किया और कई दिनोंतक लगातार नियमोंके सम्बन्धमें परामर्श हो जानेके बाद इस साधक समितिका

सुदृढ़ संगठन कर लिया। उस समितिके नियम इस प्रकार बनाये गये।

उद्देश्य—

श्रीभगवान्‌के विशुद्ध और अनन्य प्रेमको प्राप्त करना।

साधन—

शरणागतिका स्वरूप

१-जो कुछ है श्रीभगवान्‌का है।

२-जो कुछ है श्रीभगवान् हैं।

३-जो कुछ हो रहा है श्रीभगवान्‌की लीला है।

शरणागत होनेवालेका कर्तव्य

१-श्रीभगवान्‌की आज्ञाका पालन करना।

२-श्रीभगवान्‌का निरन्तर स्मरण करना।

३-श्रीभगवान्‌के प्रत्येक विधानमें आनन्दित होना।

शरणागत होनेका फल

१-परमानन्द और परमशान्तिकी प्राप्ति।

२-निर्भय और निश्चिन्त हो जाना।

शरणागति प्राप्त करनेके लिये नित्य पालन करने योग्य नियम

आहार—

१-नमकके सिवा अन्य मसालोंका त्याग, भोजन अधिकसे अधिक पाँच वस्तुओंके द्वारा ही बना होना चाहिये। जैसे आटा या चावल, घृत, दाल, नमक, साग या दूध इनमेंसे कोई एक वस्तु।

२-वस्त्र अपने पहननेके लिये देसी सूतकी हाथसे बुने हुए। लंगोटा और अंगोछाके अतिरिक्त अधिक से अधिक चार वस्त्र।

३-**जप—**प्रतिदिन कुछ खानेसे पहले तीन माला हरे रामके षोडश नाम वाले महामंत्रकी अवश्य करे तथा सोनेसे पहले कुछ १४ माला पूरी कर लें।

४-**सदाचार—**क्रोध सर्वथा न करे। क्रोधकी कोई क्रिया तो सर्वथा न होने पावे।

५-**ब्रह्मचर्य—**अपनी पत्नीसे एक महीनेमें एक बारसे अधिक स्त्री सहवास सर्वथा न करें। (पर स्त्रीको बुरी दृष्टिसे न देखें)

६-**उपासना—**नित्यप्रति नियत समय तथा नियत स्थानपर एक घंटेके लिये प्रार्थनामें अवश्य उपस्थित हो।

७-**आदेश—**समितिके आदेशका बिना किसी प्रश्नके अवश्य पालन करें।

(१) समितिके आदेशानुसार प्रायश्चित करना।

(२) समितिकी बात बिना आज्ञा किसीसे प्रकट न करना।

८-श्रीमद्भागवद्गीताके एक अध्यायका अर्थ समझते हुए पाठ करना।

९-संध्या, गायत्री तथा स्वाध्याय नियमपूर्वक करना (संध्या तथा तर्पणमें कम से कम आधे घंटेतक एक आसनपर बैठकर श्रद्धा और आदरपूर्वक पंचपात्रोंके द्वारा संध्या करना। संध्या प्रातःकाल एवं सायंकालके उत्तम समयपर ही करना)

१०-प्रार्थना नित्य प्रति आधे घंटे एकान्तमें करना।

११-सत्य भाषण—भूतकाल एवं वर्तमानकालके बचनमें जानबूझ करके असत्य न बोलना।

१२-कम से कम पाँच मिनट व्यायाम नित्य करना।

१३-श्रीभगवान्‌को सर्वत्र देखनेकी चेष्टा करना। जिन-जिनसे व्यवहार करना हो उनमें विशेष रूपसे भगवान्‌को देखना।

१४-श्रीभगवान्‌को प्रत्येक पन्द्रह मिनटपर स्मरण करना और स्मरण होनेपर न भूलनेकी चेष्टा करना।

१५-नियमोंकी डायरी—नित्य प्रति सोनेसे पहले भरना।

उपनियम

१-दंभ न करना।

२-मन, वाणी और कर्मसे किसीका अनिष्ट न करना।

३-दिल्लगीका त्याग।

४-अधिक न बोलना।

५-मादक वस्तुओंका त्याग।

६-सबसे प्रेम करना।

७-जाति, वर्ण, धर्म, द्वेषके विचार तथा बीमारीके कारण किसीसे घृणा न करना।

८-दूसरेके दोष न देखना।

९-शारीरिक परिश्रम करना।
१०-जहाँतक बने अपना काम स्वयं करना।
११-किसीसे सेवा न कराना।
१२-नीचे लिखे अवसरोंमें भगवत स्मरण करना।

प्रात: उठते समय, निद्रा लेते समय, स्नान करते समय, कुल्ला करते समय, भोजन करते समय, जल पीते समय

सत्संग समितिके सर्वेसर्वा श्रीजयदयालजी गोयन्दका एवं हमारे चरित्रनायक भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार थे। इस समितिमें जो सदस्य थे उनके नाम हैं—गंगा बाबू, शुकदेव बाबू, घनश्याम बाबू, बिहारीलालजी झुनझुनवाला-राजगढ़, पं०लाधूरामजी—वीदासर, पं० चिम्मनलालजी गोस्वामी, गम्भीर चन्द दुजारी, नंदलालजी जोशी-बीकानेर, शिवकृष्णजी डागा-बीकानेर, रामेश्वर बाजोरिया-रतनगढ़, रामकृष्णजी काबरा-लोसल, मदनलालजी चूड़ीवाला-माँडवा, ईश्वरदासजी डागा, रामजीदासजी बाजोरिया, बद्रीप्रसादजी आचार्य-बीकानेर, राधाकृष्णजी पारीक-सनावद, चिरंजीलालजी-रामगढ़, प्यारेलालजी डागा-काजिमाबाद, मुरलीधरजी-राजगढ़, बेनीमाधवजी-मकडीहा, पं० गोवर्द्धनजी पुजारी-रतनगढ़, रामनरसिंहजी हरलालका कुछ महीनोंतक

साधना समितिका कार्यक्रम

प्रात: ४:३० से ५:४० तक सबसे प्रथम सामूहिक रूपसे श्रीगीताजीके ११ वें अध्यायके ३६ वें श्लोक 'स्थाने ऋषिकेश तब प्रकीर्त्या' से लेकर ११ वें अध्यायके ४६ वें श्लोक 'किरीटिन गदिनं चक्र हस्त मिच्छामित्वां द्रष्टमहं तथैव' तक बड़े ही मधुरस्वसे भावपूर्वक प्रार्थना की जाती। फिर भाईजी इन्हीं श्लोकोंपर या अन्य उपयोगी विषयपर ५:४० से ६:१० तक नित्य प्रति प्रवचन करते। तत्पश्चात एक प्रार्थनाका पद जो श्रीभाईजीने इसी समितिके लिये उन्हीं दिनोंमें बनाया था वह निम्नलिखित है। पद भावपूर्वक स्वरके सहित आगे पीछे बोलते—

हे स्वामी ! अनन्य अवलम्बन, हे मेरे जीवन-आधार।
तेरी दया अहैतुकपर निर्भरकर आन पड़ा हूँ द्वार॥
जाऊँ कहाँ जगतमें तेरे सिवा न शरणद है कोई।
भटका, परख चुका सबको, कुछ मिला न, अपनी पत खोई॥
रखना दूर, किसीने मुझसे अपनी नजर नहीं जोड़ी।
अति हित किया—सत्य समझाया, सब मिथ्या प्रतीति तोड़ी॥
हुआ निराश, उदास, गया विश्वास जगतके भोगोंका।
जिनके लिये खो दिया जीवन, पता लगा उन लोगोंका॥
अब तो नहीं दीखता मुझको तेरे सिवा सहारा और।
जल-जहाजका कौआ जैसे पाता नहीं दूसरी ठौर॥
करुणाकर ! करुणाकर सत्वर अब तो दे मन्दिर-पट खोल।
बाँकी झाँकी नाथ ! दिखाकर तनिक सुना दे मीठे बोल॥
गूँज उठे प्रत्येक रोममें परम मधुर वह दिव्य स्वर।
हृत्तन्त्री बज उठे साथ ही मिला उसीमें अपना सुर॥
तन पुलकित हो, सु-मन जलजकी खिल जायें सारी कलियाँ।
चरण मृदुल बन मधुप उसीमें करते रहें रंगरलियाँ॥
हो जाऊँ उन्मत्त, भूल जाऊँ तन-मनकी सुधि सारी।
देखूँ फिर कण-कणमें तेरी छबि नव-नीरद-घन प्यारी॥
हे स्वामिन् ! तेरा सेवक बन तेरे बल होऊँ बलवान।
पाप-ताप छिप जायें हो भयभीत मुझे तेरा जन जान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४७)

इसके बाद श्रीभाईजी अकेले बोलकर श्रीभगवान्‌की आर्त्त प्रार्थना करते अन्य सबलोग उन्हींके शब्दोंके अनुसार अपने मनको बनानेकी चेष्टा करते। इस प्रकार श्रीभाईजीकी प्रार्थनाका ऐसा प्रभाव हुआ कि साधना समितिके सदस्योंका सहसा थोड़े दिनोंमें एक प्रकारसे सचमुच जीवनका लक्ष्य ही बदल गया। ऐसे उत्तम कमेटीके प्रत्येक नियमको अक्षरश: श्रद्धापूर्वक पालन करनेकी लोग चेष्टा करते। जरा-सा नियम भंग होनेपर कड़ेसे कड़ा दण्ड सहर्ष स्वीकार कर लेते। एक दिन सभी लोग करीब आधे मिनट देरसे कमेटीमें पहुँचे। उसके प्रायश्चितके लिये सबने एक दिन उपवास किया। हमारे श्रीभाईजी स्वयं उपर्युक्त नियमोंका खूब कड़ाईके साथ पालन करते थे। तब सबको ही नियम

पालन करनेमें बहुत उत्साह होता था। ऐसे नियमोंका पालन करनेमें सबसे तेज थे श्रीयुत् गंगा बाबू, मैनेजर गीताप्रेस एवं श्रीशुकदेव बाबू, कैशियर गीताप्रेस। इन दोनोंको थोड़े ही महीनोंमें श्रीभगवान्के दर्शनकी तीव्र उत्कण्ठा हो गयी और श्रीभाईजीसे प्रार्थना करनेपर श्रीभाईजीकी परम कृपासे इन्हें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन एवं ध्वनिका श्रवण हुआ। जिसका संक्षिप्त विवरण पाठक वृन्द आश्विन सं० १९८६ के समय पढ़कर मुग्ध होंगे।

वैसाख शु० ७/८६ समितिके प्रारंभ होते ही बीकानेर निवासी पंडित श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, एम०ए०, शास्त्री गोरखपुर पधारे। श्रीभाईजीके सत्संग एवं कल्याण मासिकमें श्रीमद्भागवत गीतांकके अंग्रेजी लेखोंका अनुवाद करनेके लिये उन्होंने साधन समितिका संगठन देख सुनकर उससे एक दिन भी अलग रहना उचित न समझा। तत्काल विनीत प्रार्थनासे उसी दिन सम्मिलित हो गये और आगे चलकर श्रीभाईजीके प्रति इतने आकर्षित हो गये कि इन्हें एक दिनके लिये भी श्रीभाईजीसे दूर रहना असह्य होने लगा। श्रीभाईजीने भी कुछ वर्षतक इनकी उत्कण्ठा बढ़ाकर योग्य पात्र समझकर सं० १९८९ से इन्हें अपने पास रहनेकी अनुमति दे दी एवं इन्हींके कारण कल्याण कल्पतरु नामसे अंग्रेजी मासिक पत्र निकालनेका निश्चय हुआ।

वैसाख शु० ८ और १०/८६ गोरखपुर प्रांतके प्रसिद्ध नेता बाबा राघवदासजीके प्रयत्नसे सोहनागमें रूद्रयाग हो रहा था। उसमें श्रीभाईजी अपने मुख्य मुख्य प्रेमीजनोंके साथ गये। वहाँपर साहित्संवर्धक अहमदाबादके संस्थापक स्वामी श्रीअखंडानंदजी श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये पधारे। उन्होंने उस रूद्रयागको देखकर इसी वर्षमें होनेवाले प्रयागके कुम्भ पर्वमें एक बहुत वृहद् श्रीगीता ज्ञान यज्ञ करानेके लिये श्रीभाईजीको सर्वप्रथम ५००० रुपये देनेका वचन दिया और उमंगके साथ तैयारी करनेका आदेश देकर वहींसे चले गये और श्रीभाईजी अपने प्रेमीजनोंके सहित गोरखपुर वापस आ गये। इन दिनों गोरखपुर साधन समितिका कार्यक्रम श्रीभाईजी ऐसी लगनके साथ स्वयं उन नियमोंका पालन करते हुए अपने प्रेमीजनोंसे खूब उत्साहपूर्वक करवाते हुए श्रीभगवानसे इस प्रकार सबके समक्ष साधन समितिमें प्रार्थना करते।

'प्रभो! आपने तो अपने मन मन्दिरके देव दुर्लभ द्वार खोल रखे हैं और अपनी बाँकी झाँकी भी दिखाना चाहते तथा वाणी भी सुनाना चाहते हो परन्तु वाणीके अनुकूल हम बनना नहीं चाहते। भगवन्! गीता आपकी दिव्य वाणी है। उसके द्वारा आप डंकेकी चोटपर सबके लिये घोषणा कर रहे हैं कि हे साधकों! चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारे सम्पूर्ण पाप-तापोंसे तुम्हें मुक्त कर दूँगा। किन्तु इतने पर भी हे नाथ! हमारे जैसे अभागे जीव सांसारिक विषयोंमें ही सुख चाहते हैं। अतः हे दीनानाथ! आप बरबस हमारे जैसे महापापी, महादुराचारी, छली, कपटी, दम्भी, पामर प्राणियोंपर अपनी अहैतुकी कृपाके द्वारा हमारे मन मन्दिरमें आपके स्वरूपकी झाँकीके दर्शन अवश्य कराइये। हे प्रभो! आप तो पतितपावन हैं फिर हमारे इस शब्दाम्बरसे पूर्ण प्रार्थनाको तत्काल क्यों नहीं सुनते और हमारे जैसे भिखमंगोंको किंचित कृपा द्वारा सदाके लिये निहाल क्यों नहीं कर देते; क्यों नहीं अपनी दिव्यवाणी रूपी गीताके एक-एक शब्दको हमारे हृदयमें धारण करा देते—दीनानाथ!

इस प्रकार श्रीभाईजी साधन करनेवाले प्रेमीजनोंके लिये प्रार्थना करके सभीसे कहते कि 'जब स्तुतिका पद या शब्द बोले जाय तब अपने मनमें यही भाव रखना चाहिये कि हम ऐसी ही प्रार्थना स्वयं श्रीभगवान्के सामने कह रहे हैं। ये सब बातें कृपापूर्वक श्रीभगवान् हमारे समीप आकर सुन रहे हैं और हमें निर्भय बना रहे हैं—इस प्रकार यदि सब साधना करनेवालोंका एक सा भाव हो जाय तो इससे बहुत बड़ा लाभ होनेकी सम्भावना है।

॥ श्रीहरिः ॥

तैतीसवाँ पटल

श्रीगंगाबाबू एवं श्रीशुकदेव बाबू

प्रिय पाठकवृन्द! संसारमें सबसे दुर्लभ वस्तु यदि कोई है तो श्रीभगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन होना है। श्रीभगवान्के सुरमुनि दुर्लभ दर्शन सहजमें किसीको नहीं मिलते। जन्म जन्मान्तरोंकी तीव्र साधना और भगवान् स्वरूप संतकी पूर्ण कृपासे यह काम संभव है। हमारे चरित्रनायक श्रीभाईजीके प्रतिं ऐसी कृपा श्रीगोयन्दकाजीने की थी। वैसे ही श्रीगंगा बाबू एवं शुकदेव बाबूको ध्यानमें भगवान्के दर्शन हुए एवं उनको जो विशेष लाभ हुआ उसका श्रेय श्रीभाईजीको ही दिया जा सकता है। मारवाड़ी अग्रवाल शुकदेव बाबूने साधन-समितिमें बड़ी लगनके साथ साधन किया।

पूज्य श्रीसेठजीके सं० १९७९ में आसाम भ्रमणके समय श्रीशुकदेव बाबूसे तिनसुखियामें मुलाकात हुई थी। यद्यपि इन्हें हिन्दी साहित्यकी विशेष जानकारी नहीं थी परन्तु मारवाड़ी ढंगसे हिसाब रखनेमें बड़े योग्य थे। बालब्रह्मचारी थे। धनके प्रति तनिक भी तृष्णा या लोभ नहीं था। अपनी एक मात्र वृद्ध माताके साथ बड़े त्याग एवं सादगीसे रहते थे। फाल्गुन सं० १९८३ में इन्हें गोरखपुर, गीताप्रेसमें काम करनेके लिये बुला लिया। तबसे शुकदेवजी बड़ी लगन एवं त्यागवृत्तिसे बड़ी जिम्मेवारीसे गीताप्रेसकी सेवा करते थे। इसीलिये श्रीगोयन्दकाजीको यह बहुत प्रिय लगते थे। श्रीगोयन्दकाजी ऐसे ही मनुष्योंको गीताप्रेसमें रखना चाहते थे जो कि अपना तन, मन, धन प्रेसपर न्यौछावर करके अधिक से अधिक समयतक मशीनकी तरह प्रेसका काम करके अन्न, वस्त्रके लिये कम से कम लें। ये सब बातें शुकदेव बाबूमें मिल गयी। अत: ये प्रेसके प्रधान मैनेजरमें गिने जाने लगे। जब प्रेसका कार्य करते इन्हें करीब तीन वर्ष हो गये तब ये श्रीभगवान्के दर्शनके लिये अधीर हो गये और इन्होंने श्रीभाईजीसे साधन पूछा। श्रीभाईजीने इन्हें प्रेसकी रोकड़का काम भगवान्का समझकर करनेका साधन बताया।

साधन तो निमित्त होता है वास्तवमें लाभ होता है संत-कृपा, भगवत् कृपासे। सं० १९८३ के करीब एक बार ये श्रीभगवान्के दर्शनोंके लिये अत्यन्त अधीर होकर गोरखपुरके पास कुसुम्हीके जंगलमें बिना किसीको सूचना दिये ही चले गये और वहाँपर वृक्षोंपर रात्रिमें रहकर आठ-दस दिनतक अन्न, जल बिना लिये ही रहकर साधन करने लगे पर यह कार्य उन्होंने संतकी आज्ञा लिये बिना ही किया। इसीलिये उस समय तो इन्हें विशेष सफलता नहीं मिली पर अब इन्हें श्रीगोयन्दकाजी एवं श्रीभाईजीपर विश्वास था इसीलिये इन्होंने श्रीभाईजीसे साधन पूछा फिर तीव्र साधनाकी। उसीके फलस्वरूप आश्विन शु० ८६ को दोपहरके समय श्रीभाईजी इन्हें साथ लेकर गोरखनाथसे आगे कच्चे रास्तेपर श्रीचेतरामजी जालानका बगीचा है उसी बगीचेमें ले जाकर किसी वृक्षके नीचे ये दोनों बैठ गये। तब श्रीभाईजीने उस समय श्रीकृष्ण भगवान्के बाल स्वरूपका जैसे-जैसे वर्णन किया इन्हें उसी प्रकार भगवान्के दर्शन होते गये।

जब गंगा बाबूको ध्यानमें श्रीभगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हो गये तब शुकदेव बाबूको विश्वास हो गया कि अब मुझे भी दर्शन हो जायेंगे। इन्होंने भी दूसरे ही दिन प्रातःकाल साधन समितिके समय श्रीभाईजीसे प्रार्थना की कि दशहरेके दिन रावणपर श्रीरामने विजय प्राप्त की है अत: हमारी भी विजय होनी चाहिये। उस समय भाईजीने कहा कि कल देखेंगे। इसपर इन्होंने अपने मनमें ऐसा समझ लिया कि कल प्रातःकाल

श्रीभाईजी हमें दर्शन करायेंगे। बगीचेसे प्रेसमें आकर दिनभर उसी धुनमें विभोर रहे। रात्रिमें उस दिन गोरखपुरकी रामलीलामें भरत मिलाप होनेवाला था। शुकदेव बाबू भी भरत मिलापमें जाकर वहाँपर अपनी धुनमें ही मस्त हो रहे थे और विचार कर रहे थे कि कब सवेरा हो और कब हम भाईजीके पास पहुँचें। आश्विन शु० ११ को प्रात: ६बजे समितिका समय था। आज शुकदेव बाबू कुछ पहले साधन समितिके स्थान(भाईजीके बगीचे) पहुँचकर खूब जोरसे हँसने लगे और बाह्य ज्ञान शून्य होकर अंतरमें न जाने क्या-क्या दृश्य देख रहे थे। समय पर श्रीभाईजी एवं समितिके सभी सदस्य आ गये और इनकी यह दशा देखकर सब लोग नाना भाँतिकी कल्पना करने लगे। कई प्रेमी सज्जन तो इनकी ऐसी अवस्था देखकर बड़े ही प्रसन्न हो रहे थे। किसी-किसीके मनमें ऐसी कल्पना हुई कि शायद ये कुछ दंभ तो न करते हों। इसलिये श्रीभाईजीने उस अश्रद्धालु व्यक्तिके संदेहके कारण सबके सामने कहा कि श्रीशुकदेवजीको जो दृश्य दीख रहा है वह अभी दृश्य दिखना बंद हो जाय। उसी समय शुकदेव बाबू शांत हो गये। समितिका समय समाप्त होनेके बाद शुकदेवजी वही बैठे रहे। श्रीभाईजीने उनसे कहा कि मैं थोड़ी देरमें आऊँगा तब बात करूँगा। आप अपना ध्यान करते रहिये। श्रीशुकदेवजी नेत्र बंद किये हुए वही ध्यान करते रहे। फिर नेत्र खोलनेसे रामेश्वरजी जालानसे कहा कि भाईजीको बुलाइये। इधर श्रीभाईजी स्वत: ही आ रहे थे। फिर रामेश्वरजीको तो अलग कर दिया और उनसे बोले क्या चाहते हो? तब उन्होंने कहा श्रीभगवान् तो खड़े हैं। इनसे बातें कराइये और वंशी ध्वनि सुनाइये। इसके बाद उन्हें वंशी सुनायी देने लगी। जिससे वे बेसुध हो गये। करीब ४ बजे भाईजी मेरे पास आकर बोले—मैं प्रेस जा रहा हूँ। आकर बातें करेंगे। आपको कुछ खा लेना चाहिये पर उन्होंने कह दिया मुझे भूख नहीं है। फिर उन्हें वही दृश्य दिखने लगा। श्रीभाईजी प्रेससे वापस आकर भोजन आदिसे निवृत होकर श्रीगंगा बाबूको साथ लेकर फाटकके सामने वाले कमरेके अंदर चले गये। कमरा भीतरसे बंद कर लिया गया। फिर श्रीभाईजीने कुछ बातचीत करके श्रीकृष्ण भगवान्के स्वरूप एवं वंशी ध्वनिका वर्णन प्रारंभ किया। तब दोनों सज्जनोंको भगवान्से स्वरूपके उसी प्रकार दर्शन होने लगे जैसा कि श्रीभाईजी वर्णन करते थे। वंशी ध्वनि केवल शुकदेव बाबूको ही सुनायी देती थी और श्रीशुकदेव बाबू कई महीनों तक तो ध्यानमें प्राय: खूब जोर-जोरसे हँसा करते थे। कुछ महीनों बाद भी कई वर्षोंतक उनके यह क्रम चलता रहा।

श्रीशुकदेव बाबू श्रीभाईजीकी कृपासे अपनेको श्रीभगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन हुए ही मानते हैं। श्रीगोयन्दकाजी कहा करते हैं कि जब तक मनुष्यके राग-द्वेष आदि विकार समूल नष्ट न हो जाय तबतक मनुष्यको श्रीभगवान्के दर्शन हो गये ऐसे नहीं कहा जा सकता। श्रीभाईजी कहते हैं कि दर्शनोंमें भी कई स्तर हुआ करते हैं। संभव है उन्हें ध्यान ही हुआ हो जो कुछ भी हो गंगा बाबू एवं शुकदेव बाबू एक बहुत अच्छे साधक अवश्य हैं। विशेषकर गीताप्रेसके कार्यमें दिन-रात उलझे रहनेसे व्यवहारमें जैसी साधुता, नम्रता आदि गुण जैसा श्रीगोयन्दकाजी और श्रीभाईजी चाहते हों वैसा न हो पर उनमें संतोचित अनेक गुण विद्यमान हैं। उनके द्वारा गीताप्रेसकी बहुमूल्य सेवा होती है। विश्वमें गीताप्रेसके द्वारा आध्यात्मिक जगत्में अनिर्वचनीय लाभ हुआ है। उस गीताप्रेसके प्रधान मैनेजरोंमें इनके नाम स्वर्णाक्षरों खुदा दिये जाय तो भी गीताप्रेस ग्रन्थोंके पाठक इनके ऋणसे मुक्त न होंगे क्योंकि इनके जैसे ये लोग ही थे।

॥ श्रीहरि: ॥

चौतीसवाँ पटल

गोरखपुरमें महात्मा गाँधीजी

महात्मा गाँधीजीको श्रीभाईजीने कलकत्तामें हिन्दू महासभाके मन्त्री पदसे सं० १९७२ वि० में सबसे प्रथम मान पत्र दिया था तभीसे इनका उत्तरोत्तर महात्मा गाँधीजीसे प्रेमका सम्बन्ध घनिष्ट होता गया था। अनेकों बार ये उनसे मिलते उनके अनेक कार्योंमें सहायता करते तथा वे भी श्रीभाईजीकी प्रेरणासे कल्याणमें श्रीभगवन्नाम महिमा सम्बन्धी लेख लिखते थे। जिससे इन दोनों में आत्मीयता का सम्बन्ध दृढ़ होता गया। महात्मागाँधीजी जब गोरखपुर पधारे तब तो श्रीभाईजीने अपने परिवारके आवश्यक कार्यको भी बिल्कुल तिलाञ्जलि देकर महात्मागाँधीजी के स्वागत सत्कारमें अपना सारा समय लगा दिया।

श्रीप्यारेलालजी डागा कासिमाबाद (अलीगढ़) निवासी एक बड़े संत सेवी सज्जन है इनके ग्रामके समीप रहने वाले पूज्यपाद श्री उड़ियाबाबा एवं पूज्यपाद श्रीहरि बाबा पूज्य अच्युतमुनिजी, भोले बाबाजी आदि बड़े-बड़े संतोंके श्री प्यारेलालजी बड़े भक्त हैं गीताप्रेसके ग्रन्थ एवं कल्याण मासिक पत्रके द्वारा हमारे चिरपरिचित श्री गोयन्दकाज़ी एवं श्रीभाईजी भी अब उच्चकोटिके गृहस्थ संतोंमें प्रसिद्ध हो चुके थे इसलिये श्री प्यारेलालजी डागाने अपने यहाँ सं० १९८६ वि० के भाद्र शुक्लपक्षमें गीता ज्ञान यज्ञके नामसे बड़े-बड़े संत महात्मा भक्तवृन्दों का बड़ी उमंग के साथ सम्मेलन किया था उसमें श्री गोयन्दकाजी एवं श्रीभाईजी को भी बड़े प्रेमके साथ इन्होंने काजिमाबाद बुलाया था। इसलिये श्रीभाईजी अपने प्रेमी बिहारलालजी झुनझुनवाला (प्रधान मैनेजर गीताप्रेस पेपर एजेंसी)के साथ इस गीता ज्ञान यज्ञमें गये। वहाँ पर बड़े-बड़े संतोंके दर्शन सत्संग किया तथा अपना मधुर भाषण भी बड़े ही नम्र शब्दों में श्रीभगवन्नाम संकीर्तन महिमा आदि विषयों पर दिया जिससे वहाँके लोगों पर तथा खासकर हमारे प्रिय डागाजीके अन्त:करणपर इनके प्रति बड़ा अनुराग उत्पन्न हो गया। इधर हमारे चरित्रनायक श्री भाईजी ने भी डागाजी को अपने गीताप्रेस के प्रचार क्षेत्रके उपयुक्त पात्र समझकर अपने प्रेममय व्यवहार से इन्हें अपना बना लिया जिससे थोड़े महिनों के बाद ही श्री प्यारेलालजी डागा अपने घरके सारे कामधंधों को समेटकर गीताप्रेसमें आकर अपने पारमार्थिक जीवनको उन्नत बनानेके उद्देश्य से कुछ वर्ष के लिये रहने लगे पहले-पहले इनके कामसे प्रेस वालों को संतोष नहीं था किन्तु श्री भाईजी की इनपर प्रारम्भ से ही अपार कृपा थी इसलिये बढ़े यत्नसे श्रीभाईजी ने इन्हें गीताप्रेसके काम से अलग न होने दिया। आगे चलकर प्रेसके सभी लोगोंने इनकी बहुमूल्य सेवाओं से संतुष्ट होकर इन्हें बड़े आदरपूर्वक प्रेसके कार्यसे अलग न होने दिया। इन्होंने अपने व्यापारिक कार्यको अपने ग्रामके आसपास फैलाने पर भी गीताप्रेसका कार्य बड़े प्रेमसे निभाया।

श्रीभाईजी अपने प्रेममय अत्युदार व्यवहार एवं अलौकिक साधुता व्यवहार से इस प्रकारके अनेक सज्जनों को गीताप्रेसके कार्यके लिये तथा कल्याण सम्पादन विभाग में अपने पास रखकर उनको अपने निजके परिवारकी भाँति सब प्रकारसे तन-मन-धन से आनेवाले सज्जनों की सेवा करके उन्हें भी सदाके लिये भक्तिमार्ग के पथिक बना लेते। श्रीभाईजीका ऐसा उदार व्यवहार होता था कि उसका वर्णन किया ही नहीं जा सकता। क्योंकि श्रीभाईजी जैसे भगवान् सदाशिवकी उदारताको पितामह ब्रह्माजी भी बड़ी कठिनतासे सह सकते थे जैसे विनय पत्रिका में गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक पदमें वर्णन किया है। ब्रह्माजी माता भवानीसे कह रहे हैं—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन, देत दये बिनु, बेद बड़ाई भानी॥
निज परकी बरबात बिलोकहु, हौं तुम परम सयानी।
सिबकी दई सम्पदा देखत, श्री सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मोरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक संवारत, हौं आयौ नकबानी॥
दुःखी दीनता दुखियन के दुःख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहि, भीख भली मैं जानी॥
प्रेम प्रंससा-विनय व्यंगजुत, सुनि विधिकी बरबानी।
तुलसी मुदित महेश मनहिं मन, जगत मातु मुसकानी॥

श्रीभाईजी के भी अति उदार व्यवहारको गीताप्रेसके प्रायः सारे मैनेजर व्यवहारिक दृष्टि से कुछ कम पसंद करते थे परन्तु ये किसी की भी परवाह न करके अपने अलौकिक व्यवहार को जरा भी परिवर्तन नहीं करते थे जो इनके सम्पर्कमें कुछ भी समयके लिये आ गया है उसे ही इनके अलौकिक गुणोंका किंचित अनुभव हो सकता है।

इस जड़ लेखनी में वह शक्ति नहीं कि इनके अलौकिक चरित्रोंका चित्रण कर सके फिर भी यत्किञ्चित गुणोंका वर्णन इनके इस चरित्रको पढ़ने वालों को स्वतः ही होता रहेगा।

संवत् १९८६ वि० के श्रावणमें कल्याण मासिक पत्रके चौथे वर्षके विशेषाङ्क 'श्रीमद्भगवद्गीता' के बहुत ज्यादा पृष्ठ एवं लेख तथा चित्रों से सजाकर श्रीभाईजीने ऐसा सुन्दर निकाला कि तीसरे वर्षतक ४००० ग्राहक संख्या थी गीतांकको देखकर लोग मुग्ध हो गये और इस वर्षके अंत तक ग्राहकों की संख्या पहिलेसे दुगुनी तक पहुंच गयी। गीतांकमें लेखकोंमेंसे कुछ संतों एवं विद्वानों के चित्र भी छापे गये थे किन्तु भविष्यमें जीवित पुरुषोंके चित्र न छापनेका नियम श्री गोयन्दकाजीने बना दिया क्योंकि श्रीगोयन्दकाजीको जीवित पुरुषोंके चित्र प्रकाशनसे अनेक प्रकारकी हानियाँ प्रतीत होती थी।

श्रीमहात्मा शुक्ल एक सरकारी विभागमें एक उच्च अधिकारीके पद पर नियुक्त थे। वे बड़े प्रेमसे गीताप्रेसमें कार्य करनेकी अभिलाषा रखते थे। श्रीमहावीर प्रसादजी पोद्दारकी प्रेरणासे श्रीभाईजीने इन्हें बड़े सम्मानके साथ कल्याणके मैनेजरी विभागमें कार्य करनेके लिये सम्मिलित किया आगे चलकर ये गीताप्रेस एवं कल्याण परिवारके अंग ही बन गये थे। भाईजीके प्रति ये बड़ा ही उच्च भाव रखते थे क्योंकि भाईजी अपने सहज स्वभावसे ही काममें पूरा समय न देनेकी इनकी शिकायतों की कुछ भी परवाह न करके इन्हें अपने परिवारके अंग की भाँति तनमन धनसे इनकी सहायता करते तथा इन्हें बड़े सम्मानपूर्वक (प्रेसके कार्यके लिये पूरा समय इनके न देने पर भी) इन्हें गीताप्रेस से अलग न होने देते।

अनेक सज्जनों के साथ भाईजीने ऐसे-ऐसे व्यवहार किये हैं कि उनका वर्णन करने से बहुत विस्तार हो जानेका भय है। अस्तु, महात्मा शुक्लजीके साथ भी श्रीभाईजीका बहुत ही प्रेममय व्यवहार अंत तक रहा।

श्रीरामकृष्णजी डालमिया इन दिनोंमें आर्थिक संकटसे बड़े ही दुःखी रहते थे। लाखों रूपयोंका कर्ज इनपर था तथा कोई व्यापारका कार्य इनके आगे था नहीं। फाटकके काममें इन्होंने बहुत कर्ज कर लिया था। श्रीभाईजीके ये परम मित्र हैं इसलिये ऐसी संकट अवस्थामें श्रीभाईजी इनके साथ अत्यधिक प्रेमका व्यवहार करते अश्विन कृष्ण १२/१९८६ में श्रीडालमियाजीके बुलानेसे ये बनारस गये वहाँ जाकर इन्हें सट्टेके कार्यको सर्वथा छोड़कर कोई इण्डस्ट्रीके कार्य करनेके लिये श्रीभाईजीने परामर्श दिया परन्तु अभीतक श्रीडालमियाजीके संकटका समय अवशेष था इसलिये वैसा कार्य ये कर न सके परन्तु श्रीडालमियाजीके संकटकालमें श्रीभाईजीकी दैवीशक्ति इनकी रक्षा करती रही। जब-जब श्रीडालमियाजीके विपत्ति आती उस समय श्रीभाईजीको ही अपना रक्षक समझकर इनके प्रति बड़ी श्रद्धा दिखलाते। आगे चलकर श्रीभाईजी ने इनके लिये कैसे-कैसे अनुष्ठानादि करके श्रीडालमियाजीको करोडपतियोंमें भी प्रधान बनाया। इसका यत्किंञ्चित वर्णन समय-समयपर पाठक वृन्द आगे चलकर इसी ग्रन्थमें अध्ययन करेंगे।

आश्विन शुक्ल २/१९८६ को महात्मागाँधीजी गोरखपुर पधारे तब श्रीभाईजी इनके स्वागत सत्कार तथा इनके भाषणका प्रबन्ध गीताप्रेसके बगलमें गोपाल मंडल

वाले स्थानमें करानेके लिये इतने तल्लीन हो गये कि उस दिन अपनी सगी बहन कमलाबाईकी छोटी कन्या गीताको अपने बगीचेमें देहावसान हो जानेपर भी उन्हें देखनेके लिये भी ये बगीचे न जा सके। उसका अन्य कर्म भी ये अपने हाथसे न कर सके।

इतने दिन श्रीभाईजीको कोई सन्तान जीवित नहीं रहती थी। और ये अपने एकान्तमें भजनमय जीवन बितानेकी प्रबल इच्छा क़ी पूर्ति के लिये प्रयत्न करते ही रहते थे परन्तु श्री भगवान् अन्तरिक्ष से इनके ऐसे मनो राज्यके विचारों को जानकर मुस्कुराते रहते और कहते कि भैया तुम्हें तो अपना जीवन इसी प्रपंचमें रहकर जीवों की परमसेवा करने में ही बिताना है तुम्हारे एकान्त जीवन के मनोरथ कभी पूर्ण नहीं हो सकेंगे। इसलिये श्री भगवान्ने हमारे चरित्रनायकको गृहस्थ के बंधन में बंधे रहनेके लिये अबकी बार इनकी एक कन्या रत्न प्रदान करनेका विचार किया।

इसी हेतुसे इन्हें अपने बगीचेके एकान्त जीवनको छोड़कर कुछ दिनके लिये कार्तिक कृष्ण ७/१९८६ से गीताप्रेसमें आकर बिहारी बाबूके निवास स्थानमें उनके साथ रहना पड़ा। उसी समय श्रीभाईजीकी रामदेई नामकी धर्मपत्नीके उदरसे कन्याका जन्म हुआ जिसका नाम सावित्री रक्खा गया।

पोष कृष्ण ९/१९८६ के दिन प्रेम दर्शन आदि अनेक ग्रन्थोंके प्रसिद्ध लेखक वियोगी हरिजी गोरखपुर आये थे। तब अपने कई मित्रों और श्रीभाईजीके साथ बौद्ध धर्मके प्रसिद्धतीर्थ कसयामें बुद्धदेवके दर्शन करने लौरी से गये। उसी दिन रात्रिमें वापस गोरखपुर आ गये। उन दिनों वियोगी हरिजीके विचार साहित्यके साथ-साथ भक्ति परक भी थे, जिसका नमूना उनके द्वारा लिखित और गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित 'प्रेमयोग' नामक पुस्तकमें देख सकते हैं।

इन्हीं दिनोंमें श्रीभाईजीके सिरमें अत्यधिक दर्द रहा करता था जिससे वे गीताप्रेसके ऊपरके बिहारी बाबूके रहनेवाले कमरोंमें दिनभर खाटपर सोते रहते थे। एक सत्संगी उनके समीप हर समय उदास मनसे बैठा रहता क्योंकि एक तो उसे श्रीभाईजीके सिरके दर्दकी चिन्ता थी और दूसरे श्रीभाईजी उसे सनावद दुकानका काम देखनेके लिये वहाँ जानेको बार-बार कहा करते थे पर वह तो सं० १९८४ के मार्गशीर्ष पौषके दिनोंकी भाँति आजकल भी श्रीभाईजीसे अलग रह ही नहीं सकता था। श्रीभाईजी उसको खूब डाँटते और कहते कि हजारों रुपये वहाँ बखेर कर यदि काम न सँभालोगे तो मुनीम गुमास्ते सब रकमको वर्बाद कर देंगे। पर उसे अपनी दुकानकी बिल्कुल परवाह नहीं थी। श्रीभाईजी उसे अधिक डाँटते तो वह कमरेके बाहर आकर रोने लग जाता। जिससे श्रीभाईजी की माताजी कहती कि हनुमान तू इनको इतना क्यों डाटता है, इसपर श्रीभाईजी कहते माँजी इनके पीछे गृहस्थ लगा है, उन बाल-बच्चोंको अकेले सनावद छोड़कर यह मेरे पास रह रहा है, यदि मैं इनको सनावद न भेजूँ तो इनके पापका हिस्सेदार मैं बनूँ। इत्यादि बातें होनेपर भी सनावद जानेकी बातपर वह ध्यान नहीं देता।

वर्तमानमें आश्रमके कारण अधिकांश लोग संत महात्माओंके चरण स्पर्शकी महिमा न जाननेके कारण न जाने क्या-क्या प्रलाप करते रहते हैं उनकी तरफ हमें जरा भी ध्यान देनेकी जरूरत नहीं है श्रद्धालु पुरुषोंको लाभ की दृष्टिमें हम एक सच्ची घटनाका उल्लेख करते हैं।

चरित्रनायकका ऊपरी व्यवहार ऐसा होता था कि जिससे उनमें कोई श्रद्धा करे ही नहीं। इसीलिये उनके साथ रहने वालोंमें अधिकांश लोगों की उनमें विशेष श्रद्धा नहीं हो सकती थी। उदाहरणार्थ श्रीभाईजीके एक अन्तरंग प्रेमीकी भी उनके प्रति कोई विशेष श्रद्धा नहीं थी वह अन्य मनस्क सा हुआ श्रीभाईजीकी कृपासे श्री गङ्गाबाबू एवं शुकदेव बाबू की अद्भुत स्थितिका चिन्तन करता हुआ कार्तिक कृष्ण ११/१९८६ वि० के प्रात:काल के समय श्रीभाईजीके पास खड़ा हुआ उनकी ओर निहार रहा था ज्योंही वे स्नान करके अलग होकर धोती पहिनने लगे त्योंही न जाने वह किसी अज्ञात प्रेरणासे बिना श्रद्धा ही उसने श्रीभाईजीके चरणोंका स्पर्श किया अहा उनके चरण स्पर्श होते ही उसके सारे शरीरमें

सचमुच बिजलीके करेंटकी भाँति एक प्रकारकी सनसनाहट होने लगी और वह अपनी दयनीय दशाका स्मरण करके रूदन करने लगा और उसके हृदयमें भगवत्कृपाके हिलोरे आने लगे। उसने उस समय प्रत्यक्ष अनुभव किया कि संत चरण स्पर्शकी क्या महिमा होती है जबकि अश्रद्धासे चरण स्पर्श करने वालेका यह हाल है तब जो श्रद्धाभक्ति पूर्वक संत चरण स्पर्श, स्मरण एवं सेवन करते हैं उनके लाभका वर्णन कौन कर सकता है।

इन दिनोंमें श्री शुकदेवजीकी बड़ी विलक्षण स्थिति रहा करती थी वे कमेटीमें खूब हंसते और ध्यानमें इतने मस्त रहते कि उन्हें बाह्यका बहुत कम ज्ञान रहता।

मार्गशीर्ष शुक्ल ६/१९८६ वि० को इनके अंत होते-होते इस शुक्ल ७ के प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त में सब लोग सन्ध्या करनेकी तैयारी कर रहे ही थे। पौष कृष्ण १९८६ के डूंगरमलजी अग्रवाल नामक एक सज्जन अकस्मात श्रीभाईजीके पास आये और बोले कि मेरे अमुक व्यक्ति से द्वेष है मैं उसका सर्वनाश चाहता हूँ तब श्रीभाईजीने बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें उनसे कहा पापी या द्वेषीका नाश न चाहकर उसकी बुद्धि निर्मल हो ऐसा भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये तब वे बोले आपके कहनेसे चारआना तो द्वेष छोड़ दूँगा बारह आना रक्खूँगा इसपर श्रीभाईजीने कहा कि यहाँ आकर भी यदि आप इतना सा काम ही हमारे कहनेसे नहीं करेंगे तो यह तो हमारे ऊपर एक प्रकार का कलंक ही रहेगा इतना सुनकर अंतमें उन्होंने कहा कि आपकी ऐसीही आज्ञा है तो मैं उससे द्वेष करना छोड़ दूँगा। भाईजीके प्रभावसे ऐसी अनेक घटनायें होती रहती।

अब तो प्रयागमें जो कुंभका मेला १२ वर्षोंसे हुआ करता है उसके प्रारम्भ होनेका समय समीप आ गया है और श्रीभाईजीको उस मेलेमें श्रीभगवान्नामका प्रचार करने तथा गीता ज्ञानयज्ञका आयोजन वृहत् रूपमें करनेके लिये जाना है इसलिये अपने सिर दर्दको एक किनारे रखकर प्रयाग जानेकी तैयारी करने लगे। इन्हीं दिनोंमें गोरखपुर शहरमें प्लेगका प्रकोप था जिससे साहबगंजमें रहनेवाला एक मारवाडी ब्राह्मण बनारसी प्लेगकी बिमारी से मर गया। साहबगंजमें रहने वाले अधिकांश लोग शहर छोड़कर बगीचों आदिमें चले गये थे। उस बनारसीके घरवाले अनाथ हो गये थे उन्हें अपने घरको छोड़कर दूसरी जगह जाना था पर गरीब होनेसे उन्हें कोई स्थान रहनेके लिये मिल नहीं रहा था अत: उन लोगोंने श्रीभाईजी से प्रार्थना की। तब भाईजीने अपने (किरायेसे लिये हुए रहने वाले बगीचेके) कमरोमें उन्हें भेजनेका विचार किया पर उस बगीचेको आजकल कांति बाबू से खरीद करके श्रीहरि कृष्णदासजी जालानके परिवार वालोंने ले लिया था और इस समय वे लोग वहाँ रहनेके लिये चले गये थे इसलिये उन्होंने बनारसी के घरवालोंको भेजनेमें कुछ आपत्ति की जिससे श्रीभाईजीने उस बगीचेमें रहना ही सदाके लिये छोड़ दिया। प्रयागसे आकर गोरखनाथके मंदिर के समीप एक बगीचेको किरायेपर लेकर सपरिवार उसमें रहने लगे। उन लोगोंने वह बगीचा श्रीभाईजी रहते थे इसीलिये खरीदा था पर जरासी भूल हो जानेसे फिर पछताना पड़ा।

पौष शुक्ल ४/१९८६ श्रीभाईजीके पास एक साधु आया जो सदगुरूकी खोजमें बड़े-२ नाम धारी साधुओं एवं महन्तों के गुप्त दुष्कर्मों को देखकर अत्यन्त व्यथित हो रहा था और श्रीभाईजीसे इसपर कल्याणमें लेख देनेके लिये कहा श्रीभाईजीने दूसरे ही दिन 'सद्‌गुरू' शीर्षक एक महत्वपूर्ण बड़ा लेख सहजहीमें लिखकर कल्याण के अगले अंकमें छपनेके लिये दे दिया। लेखके प्रारम्भमें सद्‌गुरू शरणागति, सद्‌गुरू कृपा, सद्‌गुरू महिमा, सद्‌गुरू के सान्निध्यकी आवश्यकता, सद्‌गुरू प्राप्तिके लिये ईश्वर से प्रार्थना इत्यादि गुरु महिमाका विशद वर्णन किया है क्योंकि सर्वशास्त्रों एवं अनुभवी संतोंका यह अनुभूत सिद्धान्त है कि सद्गुरु कृपा से सहज ही में भगवत्प्राप्ति हो सकती है दूर क्यों जाय, इस बातकी प्रत्यक्ष प्रमाण के पात्र तो हमारे श्रीभाईजी ही हैं कि जिन्हें श्रीगोयन्दकाजीकी अनिर्वचनीय कृपा सर्वप्रथम सं० १९८४ में भी विष्णु भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन हुए ऐसी सद्गुरु महिमा होते हुए भी वर्तमान कालके ढोंग, दम्भी, धन-सम्मान चाहनेवाले पूजा-

आरती करानेवाले, एकान्तमें स्त्रियोंसे मिलने वाले, शिष्यका आत्मकल्याण चाहकर धनके लोभके लिये कानोंसे मंत्र सुनानेवाले लोगोंसे बहुतही सावधान रहनेके लिये श्रीभाईजीने सद्गुरु शीर्षक लेखमें विस्तारसे वर्णन किया है जिन्हें देखनेकी इच्छा हो वे कल्याण वर्ष ४/७/९०८ से ९१४ में देख सकते हैं। (भगवच्चर्चा अंक)

श्रीभाईजीके एकान्तमें रहनेकी तीव्र उत्कण्ठा दिन पर दिन बढ़ती ही रहती थी। श्रीगोयन्दकाजीके पत्रसे आप जान जायेंगे कि वे इन्हें किस प्रकारसे दबाव देकर गोरखपुरमें रहनेके लिये बाध्य करते थे।

बाँकुडा, पौष शु० ४

तुमने लिखा मेरे द्वारा अधिक दिन काम होना कठिनसा है सो भगवान्‌की इच्छा और उनकी आज्ञा होनेसे कुछ भी कठिन नहीं है तुमने लिखा कई दिनसे मन उपराम रहता है सो ठीक है। रामायणाङ्कका काम बंद रखनेके लिये लिखा सो मेरी समझमें उस कामको बंद रखनेकी विशेष जरूरत नहीं है। कल्याण या रामायणाङ्क बंद करनेसे क्या लाभ है?××× तुम्हारे जानेके विषय में मैं क्या लिखूँ? मुझे तो (गीता) प्रेस और कल्याण से संसारमें बहुत लाभ दीख रहा है। भविष्यमें नास्तिकताका प्रचार हो रहा है कल्याणके प्रचार द्वारा नास्तिक लोग कुछ आश्चर्य कर रहे हैं। तुम्हारी उपरामता का हमें तो कुछ पता नहीं लगता। काम अच्छी प्रकारसे हो रहा है। मेरी बुद्धिके अनुसार तो तुम्हें गोरखपुरमें ही एकान्तमें रहकर काम देखना चाहिये। ×××× यदि मेरा और तुम्हारा प्रयाग जाना हो जाय तो वहाँपर एकान्तमें सब बातें की जा सकती है। ××××

शास्त्रोंमें इसीलिये गुरु आज्ञा पालन पर जोर दिया जाता है क्योंकि वे भविष्यकी सब बातें विचारकर शिष्यके हित की ही आज्ञा देते हैं श्रीभाईजीके ऊपर भी अपने गुरुतुल्य श्रीगोयन्दकाजीका शासन नहीं होता तो वे कभी के एकान्त सेवी हो जाते। न जाने उस स्थितिसे संसारका कितना अधिक लाभ होता। परन्तु श्री भगावान्‌को इन्हें अधिकसे अधिक प्रपंचमें रखकर ही इनके द्वारा संसारका अधिक लाभ कराना है इसलिये इन्हे बार-बार अपने मनकी उपरामताको बरबस रोककर अधिकसे अधिक कर्म क्षेत्रमें कार्य करना पड़ता। श्रीगोयन्दकाजी अपने पत्रोंमें इन्हें प्रेरणा करते ही रहते हैं।

बाँकुडासे जयदेवका प्रेम सहित राम-राम बचना। भजन, ध्यान, सेवा, सत्संगके लिये साधन समितियोंका कार्य बहुत जोरसे चलता होगा? तुम्हारी चेष्टा तो रहती ही है और भी बहुत ज्यादा लोगोंको लाभ हो ऐसा प्रयत्न करते रहना चाहिये।

॥ श्रीहरि: ॥

पैंतीसवाँ पटल

प्रयाग कुम्भके गीता यज्ञमें

भारतवर्ष भगवान् राम कृष्ण आदि अवतारोंकी पवित्र भूमि होनेके साथ-साथ यहाँ पर बड़े-बड़े तीर्थ होनेसे अनेकों जगह प्रतिवर्ष सन्त समागम, देवदर्शन, तीर्थ स्थानोंके लिये बड़े मेले हुआ करते हैं। उन मेलोंमें प्रति १२ वर्षोंमें प्रयागराज, हरिद्वार, उज्जैन, नासिक इन चार स्थानोंमें कुम्भका पर्व आनेपर बहुत बड़े रूपमें संत समागम, तीर्थस्नान के लिये कुम्भ के मेले हुआ करते है। जिसमें बिना किसी विज्ञापनके लाखों मनुष्योंकी सङ्ख्यामें दूर-दूरसे चारों दिशाओंसे अपनी-अपनी मण्डलियों तथा जमातोंको साथ लेकर संत सन्यासी साधु लोग तथा धर्मप्राण गृहस्थी भक्तलोग, सेवा करनेकी उमंग वाले सेवा समितियों वाले अनेकों जगहसे आते हैं। जो विरक्त संत कभी रेल या मोटर आदिमें नहीं सवार होते वे भी सैकड़ों कोसोंसे पैदल चलकर कुम्भ मेलेके अवसर पर आकर मेलेसे २-३ मील दूर जंगलमें अपने बड़े सफाईसे रहने योग्य डेरे बना लेते हैं।

पौष शुक्ला १३/१४ मोली/ १९८६ को प्रात:काल बनारससे रवाना होकर श्रीभाईजी प्रयाग गये साथमें पूज्य माँजी एवं सावित्री बहुत छोटी १ महीनेकी ही थी इसलिये उनकी माँको बनारसमें डालमियाँजीके यहाँ ही रख दिया।

प्रयागमें श्रीगोयन्दकाजी दारागंजमें एक मकान किरायेसे लेकर अपने परिवार एवं प्रेमीजनोंके सहित यहाँ ठहरे थे श्रीभाईजी सर्वप्रथम वहीं गये। वहाँ पर मंगतू रामजी नामके एक व्यक्ति बीमार थे उनकी व्यवस्था करके श्रीगोयन्दकाजीके साथ गीताज्ञान यज्ञके छोलदारी वाले कैंपमें करीब २ बजे गये वहाँपर श्री ज्वाला प्रसादजी कानोडिया मिले। उन्होंने कहा अभीतक गीताज्ञान यज्ञके पण्डाल आदिका कुछ भी काम नहीं हुआ है। इसके बाद भाईजी गीताज्ञानके पाण्डाल तथा उनके पास ही गीता प्रदर्शिनी एवं पच्चीसों कुटिया भोजन भण्डार आदि बनानेके कार्यमें ऐसे लगे कि दिन रात एक करके २-३ दिनोंमें वहींका सब कार्य व्यवस्थित कर दिया। उस समय शौच, स्नान, भोजन, शयन आदि का कुछ भी ध्यान नही था। इसलिये श्रीभाईजीने कहा कि मेरे स्वास्थ्यका तुम ख्याल रखा करो। मैं तो श्रीभाईजीकी मनो मुग्धकारी लीलायें देख-देखकर मस्त रहता हुआ श्रीभाईजीके कार्योंमें यत्किंचित सहयोग देता। पौष शुक्ल १५/१९८६ के दिन भारतवर्षके प्रसिद्ध गायनाचार्य और श्रीरामनामके परम भक्त (श्रीविष्णु दिगम्बरजी का परिचय १५वें पटलमें लिखा ज़ा चुका है।) श्रीविष्णु दिगम्बरजी अपने शिष्य वर्ग सहित गीता ज्ञानयज्ञके कैम्पमें त्रिवेणी तट पर पधारे। श्रीभाईजीने उनका हृदय खोलकर स्वागत सत्कार करके उन्हें वहीं पर ठहरनेके लिये सुन्दर कुटियायें देकर मण्डपमें उनकी कथा कीर्तन तीनों समय करानेका प्रबन्ध कर दिया।

रात्रिके समय श्रीविष्णु दिगम्बरजीने बड़े प्रेमके सहित कथाके बाद अपने कोकिल कूजित कमनीय कंठसे मधुर स्वरके सहित—'रघुपति राघव राजाराम, पतित-पावन सीताराम'का हृदयहारी कीर्तन कराया जिसे सुनकर तथा पीछे-पीछे भगवन्नाम लेकर लोग मुग्ध हो गये। इसके बाद श्रीभाईजीने थोड़े से शब्दोंमें श्रीभगवन्नाम महिमाके सम्बन्धमें ऐसे हृदय प्रेरक वाक्य कहे कि वे सुनते ही उन्हें नोट करनेवाली कलम रूक जाती थी।

श्रीभाईजीने कहा—मैं कहना नहीं चाहता पर कहे बिना रहा भी नही जाता। भाइयों! रामनामसे असम्भव संभव हो सकता है। यह मैं मानता हूँ केवल मानता ही नहीं मेरा अनुभव है इसलिये आपलोग आइये और इस पवित्र रामनाम को सुनकर तथा स्वयं लेकर आनन्द लूटिये। इस समय यदि भारतका उद्धार हो सकता है तो इन्हीं दो अक्षर रामनामसे ही हो सकता है—गोस्वामीजीने कहा—

तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य-प्रान ते प्यारो।
जाते होय सनेह राम पर, एतो मतों हमारो॥

प्रेम होनेका सरल और सर्वोत्कृष्ट उपाय मुझे तो केवल एक मात्र रामनाम ही दीखता है। कल से यहाँ पर 'रघुपति राघव राजाराम, पतित-पावन सीताराम', इस नामका अखण्ड कीर्तन एवं श्रीमद्भगवद्गीताका अखण्ड पाठ प्रारम्भ होगा। आप लोग जिस परमार्थ की कामनाके उद्देश्यसे यहाँ आये हैं बस उसी भगवन्नाम जप, पाठ, सत्संग आदि उत्तम कार्योंमें निरन्तर लगे रहिये मनुष्य जीवन बड़े भाग्यसे केवल भगवान्का भजन करनेके लिये ही मिला है इसलिये यहाँ तीर्थराज प्रयाग पर आकर तो निरन्तर भजनमें ही समय बिताइये।

हर सालकी भाँति इस साल भी होलीतक होने वाले नाम जप यज्ञमें मालायें अधिकसे अधिक सज्जनोंके द्वारा लिखने तथा लिखानेके लिये मुझसे कहा—

माघकृष्ण १/१९८६ को प्रात:काल देशके उज्ज्वल रत्न महामना श्रीमदन मोहनजी मालवीय अध्यक्ष गीताज्ञान यज्ञका प्रयागने इसका श्रीगणेश अपने हाथोंसे भगवान्का पूजन करके तथा सम्पूर्ण १८ अध्याय श्रीमद्भगवद्गीताका पाठ करके किया।

महामना श्रीमालवीयजी देशके नेताओंमें श्री सनातन धर्म के सर्वांगरूपमें पूरे आचरण एवं प्रचार करनेवाले सर्वप्रधान देशके उज्जवल रत्न महर्षि हैं। इनका नित्यनियम पूर्वक सध्योपासन गीता-महाभारत विष्णु सहस्रनाम तथा श्रीमद्भगवतका पाठ बालकपनसे वृद्धावस्था तक चल रहा है। इनका हमारे श्रीभाईजीसे बहुत पुराना प्रेम है। बनारसके हिन्दू विश्वविद्यालयका काम जब इन्होंने प्रारम्भ नहीं किया था तब ये उसके चन्दा एकत्रित करनेके लिये वि० सं० १९७० के लगभग कलकत्ते गये थे तब श्रीभाईजी इनके कार्यमें बहुत सहयोग कर बिड़ला बन्धुओंसे इनका परिचय कराया था।

गीता ज्ञान यज्ञको ये अपना ही कार्य समझकर नित्य प्रति वहाँपर श्रीगीताजीका पाठ करने आते थे तथा समय-समयपर गीताजी की महिमा के सम्बन्धमें भाषण भी देते थे। उन्हींके द्वारा कहे गये कुछ वाक्य यहाँ दिये जाते हैं।

'वेद और उपनिषदोंका सार, इसलोक और परलोक दोनोंमें मंगलमय मार्गका दिखानेवाला, कर्म, ज्ञान और भक्तिके तीनों मार्गों द्वारा मनुष्यको परमश्रेयके साधनका उपदेश करने वाला, सबसे ऊँचे ज्ञान, सबसे विमल भक्ति, सबसे उज्ज्वल कर्म, यम, नियम, १८ अध्यायोंवाला श्रीमद्भगवद्गीता त्रिविधतप, अहिंसा, सत्य और दया का उपदेश करनेवाला यह एक अद्भुत ग्रन्थ है। मेरी यह अभिलाषा और जगदाधार जगदीश्वरसे प्रार्थना है कि मैं अपने जीवनमें यहा समाचार सुन लूँ कि बड़े-से बड़े से लेकर छोटेसे छोटेतक प्रत्येक हिन्दू सन्तान के घरमें एक भगवद्गीताकी पोथी भगवान्की मूर्तिके समान भक्ति और भावनाके साथ पूजी जाती है।'

गीता ज्ञानयज्ञमें श्रीगोयन्दकाजीके भी दिनमें श्रीभगवद्गीतापर सारगर्भित अपने अनुभव पूर्ण ओजस्वी भाषण हुआ करते। प्रात:काल विजय और विद्या सम्पन्न ब्राह्मणकी साक्षात् मूर्ति काशीके परम विद्वान श्रीमदनमोहन जी शास्त्रीकी श्रीभगवद्गीताकी रसीली कथा नित्य हुआ करती तथा अनेक विद्वानोंके भी मण्डपमें भाषण तथा भगवन्नाम कीर्तन प्राय: दिनभर होते रहते।

पण्डालके एक तरफ गीता प्रदर्शनीकी सजावट बड़ी ही सुन्दर ढंगसे की गयी थी जिसमें सैकड़ों प्रकारकी गीतामें तथा गीताप्रेसमें बनाये हुए चित्रकारोंके हाथके मूल डिजाइनोंके नाना प्रकारके श्रीभगवान्के अनेकों चित्र सजाये गये थे जिससे दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ लगी ही रहती थी। सारांश यह कि कुम्भ मेलेमें गीता ज्ञान यज्ञका पाण्डाल अपने ढंगका एक अद्भुत छटा लिये हुए था। पंडालके बाहर मैंने मुख्य रास्तेकी सड़कपर गीताप्रेसके पुस्तक तथा चित्रोंकी बड़ी दुकान लगा रखी थी जिसपर यात्रियोंको सस्ती सुन्दर तथा धार्मिक पुस्तकें मिला करती थीं। सब प्रकारसे गीता ज्ञानयज्ञ द्वारा खूब प्रचार कार्य होता रहता था।

माघ कृष्ण ४/१९८६ को गीताज्ञानयज्ञके पण्डालमें श्रीभाईजी का ओजस्वी भाषण हुआ जिसके कुछ वाक्य यहाँ लिखे जाते हैं।

गीताका प्रारम्भ एवं पर्यवसान भगवत् शरणागतिसे हुआ है। प्रारम्भमें अर्जुन कहते है—**'शिष्येऽहम् शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'** गीता २/७ और अंतमें कहते है कि **'करिष्ये वचनं तव'** गीता १८/७३।

अर्जुन भगवान्के साथ हर समय रहते थे परन्तु जबतक वही शिष्यत्व भाव स्वीकार करके भगवान्के

शरणागत नहीं हुए तबतक भगवान्ने उन्हें गीताका उपदेश नहीं दिया। जब वह भलीप्रकारसे भगवान्के शरण हो गये तब भगवान् ने उन्हें गीताके गुह्यतिगुह्य परम रहस्यमय शरणागति योगका गीता अ० १८/६५-६६ में उपदेश देकर कहा कि 'तू धर्मोंका आश्रय त्यागकर केवल मेरी शरणमें आओ। मैं तुझे सर्वपापों से छुड़ा दूँगा। 'तू भय मत कर' इसलिये गीताका पर्यवसान शरणागति में है जैसे ब्रह्म अनिर्वचनीय है वैसे ही प्रेम या शरणागति भी अनिर्वचवनीय है। १८वें अध्यायका नाम इसीलिये मोक्ष संन्यासयोग है इसमें मोक्षका भी त्याग हो जाता है। उसे चारों प्रकारकी मुक्ति देने पर भी वह नहीं लेता **'दीयमानं न गृह्णान्ति बिना मत्सेवनं जनाः' 'मुक्ति निरादरि भक्ति लुभाने'** भगवान्के शरणागत होकर जो भक्त उनसे मुक्तिकी याचना करता है वह भक्त ही कैसा? वह भक्त तो भगवान्से यही प्रार्थना करता है कि 'हे भगवन्! मुझे तो निरंतर अपने चरणोंमें ही रक्खें और निरंतर मेरेसे सेवा कार्य लेते रहें।' कई लोग भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् न मानकर गीताको मानते हैं पर जब भगवान् श्रीकृष्णको ही न माना जाय तो फिर गीताका मानना ही कैसा? भक्ति सकाम भले ही हो पर द्रौपदी और गजेन्द्रकी भाँति अनन्यता अवश्य होनी चाहिये फिर सब भार भगवान्पर आ जाता है।'

आज रात्रिमें श्रीडूंगरमलजी लोहिया अतिरेक उत्साहमें भरकर कुछ उटपटांग व्यवहार करने लग गये। सारांश यह कि उनका मस्तिष्क कुछ विकृत सा हो गया। पर वे अपने पागलपन की अवस्थामें भी श्रीभाईजीकी बातको अक्षरसः पालन करते थे। जब प्रयागमें उनका स्वास्थ्य ठीक न हुआ तो उनको पहुँचानेके लिये माघ कृष्ण ९/१९८६ के दिन श्रीभाईजीको उनके साथ कलकत्ते जाना पड़ा इधर गीताज्ञान यज्ञको सारी जिम्मेवारी श्रीभाईजी पर ही थी इसलिये उन्हे कलकत्तेसे लौटकर माघकृष्ण १२/१९८६ को वापस प्रयाग आना पड़ा और थोड़े दिन बाद तो श्रीडूंगरमलजी भी स्वस्थ होकर पुनः गीताज्ञानयज्ञमें आ गये।

इधर पूज्यपाद श्री हरिबाबाजी जो कि गंगाके उसपार झूंसीमें ठहरे हुए थे। श्री भाईजीसे मिलनेके लिये गीताज्ञानयज्ञमें अकेले आकर चुपचाप पण्डालमें श्रोताके रूपमें बैठ गये। प्रोग्राम समाप्त होनेपर जाते समय उन्होंने पूछा कि श्रीभाईजी कहाँ है तो मैंने बड़ी नम्रतासे कहा कि वे तो कलकत्ते गये हुए हैं शीघ्र ही वापस आने वाले हैं आप कहाँ विराजते है? उनके यहाँ आने पर सूचना कर दूंगा जिससे वे आपकी सेवामें उपस्थित होकर आपके दर्शन करेंगे।

माघ कृष्ण १४ को प्रातःकाल जयदेवजी डालमियाका पुत्र विष्णु जो उस समय करीब ३ वर्षका होगा केम्पसे बाहर निकलकर उस असीम जन समुदायकी भीड़में खो गया। जब इस बातकी खबर मिली तो चारों तरफ खोज होने लगी पर ऐसे मेलोंमें पता लगना सहज थोड़े ही था श्रीभाइजीने मुझसे पूछा—विष्णुकी खबर मिली या नहीं? मैंने कहा—नहीं, इतने में ही श्रीभाईजीके मुँहसे सहसा निकल पड़ा राम, राम, इधरसे तत्काल किसीने सूचना दी कि विष्णुको सेवा समिति वालोंने संभालके रक्खा है वहाँसे ला सकते हैं। इस प्रकार श्रीभगवन्नामके अनन्त आश्चर्यजनक चमत्कार घटते हैं पर आजकलके जमानेमें इन बातोंपर कोई बिरले जन ही विश्वास करते हैं।

माघ कृष्ण ३०/८६ आज श्री गोयन्दकाजी बाँकुडा जाने वाले हैं और श्रीभाईजीको नये-नये कार्योंमें लगे रहनेसे एकान्तमें उनसे बात करनेका अवसर ही न मिला। पर बातेंतो करना अत्यावश्यक था क्योंकि श्रीभाईजी शीघ्र ही श्रीचित्रकूट जानेका विचार कर रहे हैं और बिना श्री गोयन्दकाजीकी आज्ञा मिले वे गोरखपुर की जिम्मेवारी से छुटकारा पा नहीं सकते।

अतः आज प्रातःकाल गीताज्ञान यज्ञके कैम्पकी एक घासकी कुटीमें ही श्रीगोयन्दकाजी से श्रीभाईजीने बातें की। कुटीके बाहर पहरे पर मुझको नियुक्त कर दिया जिससे मैं बात भी सुन रहा था। पहले गीता-ज्ञान-यज्ञके कार्य से संतोष प्रकट किया गया फिर श्रीभाईजीने अपने एकान्त सेवनके लिये श्रीगोयन्दकाजीसे आज्ञा माँगी जिसपर श्रीगोयन्दकाजीने कहा कि मेरे तो गोरखपुरके महत् कार्यको छोड़कर कहीं जानेकी बिल्कुल नहीं जँचती है परन्तु तुम्हारा इतना आग्रह है इसलिये कुछ दिनके लिये तुम्हारी प्रबल इच्छाको रोकना उचित न जानकर तुम्हें छुट्टी दी जाती है, पर श्रीरामायणाङ्कका

सम्पादनादि सब प्रकारके कार्यकी जिम्मेवारी तुम्हारी है। तुम्हारी इच्छा हो तो उसका सम्पादन अलग रहकर करो या तुम्हारे सुविधा हो तो गोरखपुर रहकर। अस्तु, इतनेमें महामना मदनमोहनजी मालवीयके यहाँसे बुलावा आ जानेसे वहाँ जाना पड़ा। श्रीरामायणाङ्कके सम्पादनका मानसिक कार्य यहींसे प्रारम्भ हो गया।

माघ शुक्ला १/१९८६ को प्रात:काल मुझको साथ लेकर श्रीभाईजी पूज्यपाद श्रीहरिबाबाके यहाँ त्रिवेणीतटसे नौकामें बैठकर गंगाके उसपार झूंसी गये। वहाँपर पूज्यवर श्री मधुसूदनजी भट्ट वृन्दावन वालोंने चैतन्य महाप्रभु तथा श्रीयशोदा मैयाके वात्सल्य प्रेम, बाललीला, राधाप्रेम आदिके सम्बन्धमें एवं श्रीमद्भागवतमें से ऐसी रसीली कथायें सुनायी की सब लोग मुग्ध हो गये। फिर वहां पर पूज्य श्री बंगाली स्वामी पुरुषोत्तम नंदजी महाराज, पं० रामशंकरजी मेहता अनूपशहरवाले, श्रीघासीरामजी नागपुर वाले, प्यारेलालजी डागा आदि के समक्ष पूज्य श्रीहरिबाबाने श्रीभाईजीसे अपने मनके भाव प्रकट किये। उन्होंने कहा—बांधपर बड़े-बड़े उत्सव हुए श्रीभगवन्नाम कीर्तनका सैकड़ों ग्रामोंमें खूब प्रचार हुआ तथा लोगोंके लाभ भी हुआ परन्तु उन लोगोंके जीवनमें जैसा परिवर्तन प्रेमका संचार होना चाहिये वैसा नहीं हुआ इससे आजकल वहाँ उत्सव करानेसे मेरा मन उपराम हो रहा है। वहाँके प्रचार कार्यसे मुझे संतोष नहीं है। इसलिये आपकी क्या सम्मति है सब लोगोंने बांधपर संकीर्तन चालू रखनेकी ही राय दी पर उन्होंने पूरा स्वीकार नहीं किया। श्रीभाईजीने कहा मैं भी बहुत दिनोंसे एकान्त सेवनकी चेष्टा करता हूँ परन्तु अभीतक ऐसा संयोग नहीं मिला इत्यादि वार्तालाप में बहुत अधिक समय बीत गया इसलिये वापस गीता ज्ञानयज्ञ में दोपहरके करीब १॥ बजे आये। वहाँपर पंडालमें व्याख्यान आदि होकर ४॥ से ६ बजेतक बंगाली स्वामीजी श्रीपुरुषोत्तम नंदजीका बड़ा मस्ती भरा संकीर्तन हुआ।

सायंकाल ६॥ बजे ही श्रीहरिबाबाके स्थानपर पुन: श्रीभाईजी गये वहाँपर श्रीभट्टजी महाराजकी श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धपर ऐसी मनोमुग्धकारी कथा हुई कि सबलोग रोने लग गये बादमें स्वामी पुरुषोत्तमानंदजीने सबको थोड़ा प्रसाद अपने हाथसे खिलाया। १०॥ बजे कथाके बाद ११॥ बजेतक घासी रामजीके पद हुए फिर पूज्यपाद श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी वहाँ आ गये तब श्रीभाईजी उनसे मिलकर रात्रिमें वहीं सो गये दूसरे दिन प्रात:काल पूज्य श्रीहरिबाबासे एकान्तमें बातें करके श्रीभाईजी गीताज्ञान- यज्ञके कैम्पमें आये।

बनारस से पूज्य माँजीका शीघ्र बुलानेका तार आ जानेसे गीताज्ञानयज्ञका सारा कार्य वहाँ रहने वाले प्रमुख लोगोंको संभलाकर सहसा माघ शुक्ल ३/८६ को प्रात:काल लौरीमें बैठकर प्रयागसे बनारस कई मित्रोंके साथ गये। गीताज्ञानयज्ञमें कुल मिलाकर क़रीब १२ हजारके लगभग खर्च हुआ।

बनारसमें श्रीरामकृष्णजी डालमियाके घर पर ही ठहरे। उनसे सट्टेका व्यापार छोड़नेके लिये बहुत कहा पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। बनारसमें श्रीगौरी शंकरजी गोयन्दका, श्रीवृद्धिचन्दजी पोद्दार, श्रीबद्रीदासजी लोहियासे मुमुक्ष-भवन आदि स्थानोंमें जाकर सबसे मिले।

माघ शुक्ल ७/१९८६ को प्रात:काल सपरिवार गोरखपुर पहुँचे और दिनमें बगीचे में रहनेके स्थानोंको देखकर श्रीगोरखनाथजीके मंदिरके सभीप बालमुकुंदलालजी रईसके बगीचेको किरायेसे लेकर अबसे श्रीभाईजी वहीं रहने लगे। वह बगीचा बहुत ही साधारण छोटासा खपरैलोंसे बना हुआ बिना मरमम्मत पड़ा था। श्रीभाईजी के रहने योग्य बिल्कुल नहीं था, और विचार स्थायी रूपसे तो गोरखपुरमें रहनेका भी नहीं था। पर सत्संगकी उमंग थी ही इसलिये अधिक किरायेके खर्च न करनेकी दृष्टिसे भी इसी बगीचेको पसंद किया क्योंकि अभीतक श्रीभाईजीको अपने स्वल्प खर्चमें ही निर्वाह करना था। प्रेससे कुछ न लेनेका कठोर नियम अंततक निबाहना था।

इसी बगीचेके सामने एक बगीचा साधारणसा था उसको मेरे रहनेके लिये किरायेसे श्रीभाईजीने ले लिया क्योंकि मैं भी अपने परिवार सहित इन दिनोंमें गोरखपुर रहता था।

॥ श्रीहरि: ॥

छत्तीसवाँ पटल

श्रीकृष्ण प्रेमजी वैरागी

वि० १९८६ माघ मासमें श्रीभाईजी प्रयागसे गोरखपुर आकर यहाँपर रहने तो लगे पर मन इनका कहीं दूसरे जगत्‌में ही तल्लीन रहा करता था। इसमें एक हेतु यह भी था कि इतने दिन तो श्रीभाईजीको श्रीविष्णु भगवान्‌के प्रत्यक्ष आदेशके अनुसार प्रधानरूपसे श्रीभगवान्नाम प्रचारका कार्य करना था। पर कई महीनोंसे अब इनके अनेक जन्मोंसे की हुई भगवान् श्रीकृष्णके युगल रूपकी उपासनाको फल देनेका समय आ गया था और ये ज्यों-ज्यों व्रजकी माधुर्य लीलाका अनुभव करने लगे त्यों ही त्यों ये निरन्तर अन्तर्जगतमें अर्थात् युगल सरकारकी नित्य नयी-नयी लीलाओंके दर्शन करके तृप्त ही नहीं होते थे। बाहर के स्थूलशरीरके कार्य तो संसारके जीवोंके मंगलके लिये होता था। किन्तु वास्तवमें ये सूक्ष्म शरीर सहित उस अनिवर्चनीय माधुर्य रससे परिपूर्ण भगवान् श्रीराधाकृष्णके रूपमें होने वाली व्रजलीलामें प्रवेश कर गये थे जिन लीलाओंको इस बाह्यजगतसे यत्किंञ्चित भी सम्बन्ध नहीं है। पर बाहरसे ये इतने छिपे हुए रहते थे कि अभीतक इस अवस्थामें रहनेका वर्णन प्राय: किसीके सामने नहीं किया। फिर इस अवस्थाका पता कैसे लगा सो सुनिये। कई वर्षोंतक यह स्थिति परिपक्व हो गयी तब ये अपनी इस स्थितिका यत्किंञ्चित् प्रकाश अपनेएक अन्तरंग मित्रके सामने कभी-कभी उनकी उत्कट इच्छा देखकर कर देते थे। जिसका वर्णन आगे किया जायगा यहाँ तो संकेत मात्र कर देना आवश्यक है। अब श्रीभाईजी अपने स्थूल शरीरको भी एकान्तमें ले जानेके लिये शीघ्र ही चित्रकूट जानेका विचार कर ही रहे थे कि तत्काल श्रीगोयन्दकाजीका बाँकुड़ेसे फाल्गुन कृष्ण १/८६ का लिखा हुआ पत्र इन्हें मिला, उसमें लिखा था—

'फाल्गुन शुक्लमें तुम्हारा चित्रकूट जानेका मन लिखा तथा मेरेसे सलाह पूछी सो प्रेसका काम देखनेके लिये तुमको गोरखपुरमें रखनेका विचार नहीं है। प्रयागमें अपने एकान्तमें पूरी बातें न हो सकी थीं××× विशेष हर्ज न हो तो होलीके बाद (चित्रकूट) जा सकते हो। फाल्गुन सुदी में ऋषिकेश जाते समय तुमसे इस समबन्धमें पुन: निश्चय करनेका विचार है।'

अस्तु, जब-जब श्रीभाईजीकी एकान्त सेवनकी प्रबल इच्छा होती तभी श्रीगोयन्दकाजी इन्हें नाना प्रकारकी बातें कहकर इनको बाध्य कर देते। ये भी उनकी आज्ञाके बिना अपने मनसे कोई निर्णय नहीं करते। (इसीलिये शास्त्रोंमें गुरु-शिष्यके सम्बन्धको इतना आवश्यक बतलाया है क्योंकि श्रीगुरुदेव अपने सुयोग्य शिष्यके मनकी प्रत्येक स्थितिको तथा उसके एवं जगतके लाभको एवं भविष्यमें होनेवाली बातको प्रत्यक्ष जानते हैं।) श्रीभगवान् इन्हें प्रपंचमें रखकर ही अपनी माधुर्य लीलाका अनिर्वचनीय रसास्वादन अधिकाधिक रूपसे कराना चाहते हैं और ये उस अमीयरससे कभी तृप्त न होकर इस स्थूल शरीरको भी एकान्तमें ले जानेकी चेष्टाको नहीं छोड़ते हैं पर विजय तो श्रीभगवान्‌के निर्दिष्ट विधानकी ही होती है।

फाल्गुन कृष्ण ७/१९८६ वि० को श्रीभाईजी अपने एक मित्रको साथ लेकर एक अंग्रेज जातिके श्रीकृष्ण भक्त श्रीकृष्णप्रेम वैरागीजीसे मिलनेके लिये लखनऊ गये। इनका संक्षेपमें परिचय इस प्रकार है—

सं० १९७१ में होनेवाले जर्मन और ब्रिटिशके महायुद्धमें रोनाल्ड निक्सन साहब ब्रिटिश सरकारकी तरफसे युद्ध लड़ रहे थे। युद्ध समाप्त होनेपर इनके मनमें वैराग्यका संचार हुआ ये विचारने लगे कि जगतके क्षणभडगुर भोगोंके लिये ही तो ये सब कार्य हो रहे हैं। मनुष्य जन्मतो किसी महानकार्यके लिये मिलता है। इस

कार्यको सबसे प्रथम सम्पन्न करनेके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। उस महान् कार्यके लिये भारत ही सबसे श्रेष्ठदेश है वहीं चलना चाहिये। तब ये योरोपसे चलकर हिन्दुस्थानके परम पवित्र तीर्थ काशीजीमें आये। यहाँ आकर ये ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती और उनकी धर्मपत्नी यशोदा माईसे परिचय प्राप्त करके उनके साथ कुछ वर्ष लखनऊकी युनिर्वसिटीमें ८००/- मासिक वेतन पर कार्य किया। इसके बाद वे काशीके हिन्दु विश्वविद्यालयमें प्रोफेसरका कार्य करते हुए तत्परताके साथ श्रीराधाकृष्ण भगवान्‌की उपासनामें संलग्न रहे। श्रीभाईजीने कल्याण वर्ष अङ्क १ पृष्ठ १८२ में इनके ज्ञान और भक्तिके नामके लेखके साथ सम्पादकीय टिप्पणीमें इनका परिचय दिया है अत: उन्हींके लिखे हुए शब्द इस प्रकार है—

'ये एक अंग्रेज सज्जन हैं। कुछ दिन हुए काशीमें आपसे मुलाकात हुई थी। आपका सुन्दर स्वभाव वैष्णवोचित व्यवहार देखकर मनमुग्ध हो गया। पहले आपकी बुद्ध धर्म पर आस्था हुई। अब पूरे वैष्णव है। श्रीराधाकृष्णके उपासक हैं, बड़े आनन्दी और मिलनसार पुरुष हैं, बनावटका नाम नहीं। भगवान्‌की शरणको ही प्रधान साधन मानते हैं। भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होनेमें विश्वास रखते हैं। लड़ाई पर भी गये थे और हवाई जहाज पर उड़ते थे। इस समय आप अल्मोड़ामें हैं। आपने हालमें लिखा है कि 'अब मैंने नौकरी छोड़ दी है। हिमालयमें छोटासा आश्रम बनाकर रहूँगा।' आपकी नागरी लिपि सुन्दर है। भाषा भी बुरी नहीं। × × × × × हमारे देशके अंग्रेजी शिक्षित सज्जनोंको इससे शिक्षा लेनी चाहिये है कि सात समुद्र पार रहनेवाले अंग्रेज तो हिन्दी और हिन्दुत्वको इतना पंसद करते हैं और हम अपने घरमें भी अंग्रेजी बोलना लिखना पसंद करते और हिन्दुत्वसे नफरत करते हैं। आपके देवमदिंरके चित्र सहित विशेष विवरण अगले अंकमें प्रकाशित करनेका विचार है।—**सम्पादक**

इससे आगे कल्याणके वर्ष ४, अंक २ पृष्ठ ३२२ में श्रीभाईजी लिखते हैं—

प्रतिज्ञाके अनुसार निकसन महोदयके देव स्थानका चित्र पाठकोंको अर्पण किया जाता है हमने काशीमें इनके इस देवस्थानके दर्शन किये थे। अबतो निक्सन साहेब 'श्रीकृष्ण प्रेमी' वैरागी हो गये हैं श्रीकृष्ण प्रेमजीके शरीरका फोटो कल्याण वर्ष ३ अंक ६ पृष्ठ ६३९ के सामने दिया गया है। समस्त सांसारिक कार्योंको त्यागकर इस समय में केवल श्रीकृष्ण भजनमें ही अपना समय लगाते हैं। अल्मोड़ा में रहनेवाले एक सन्यासी लिखते हैं कि—'भक्तवर मि.रोनाल्ड निक्सनके जीवनको देखकर आश्चर्य होता है कहाँ तो बालपनसे युवावस्था तक पाश्चात्य सभ्यतामें पलना और कहाँ वैष्णव आचार विचार पर आरूढ हो जाना। आजकल इन्होंने वैराग्यके कारण गेरूआ वस्त्र धारणकर लिया है। कंठी, माला, तिलक और चोटी धारण किये हुए हैं। यथा नियम ईश्वर भजन करते हैं और श्रीराधेश्याम पर बड़ा प्रेम रखते हैं। नाम बदलकर 'कृष्णप्रेमी वैरागी' रखा है। बड़े निष्कपट और सरल स्वभावके सज्जन हैं। इतना त्याग बहुत कम देखनेमें आता है।' जडवादके पीछे मुट्ठी बांधकर दौड़ते हुए पाश्चात्य जगतके एक महानुभावका सगुण ब्रह्म श्रीकृष्णके प्रति इतना आकर्षित होना बड़े ही आनन्द का विषय है। श्रीकृष्णप्रेम ऐसी ही अनोखी वस्तु है जो एकबार इसकी ओर लग जाता है उसका फिर उधरसे मुँह मोड़ना बड़ा कठिन हो जाता है। हमारे देशवासी इनके इस आचरणसे शिक्षा ग्रहण करें।'

श्रीभाईजीने श्रीकृष्ण प्रेमजीका परिचय करानेके साथ-साथ संक्षेपमें बहुतसी शिक्षाप्रद बातें कहीं है जिसका मनन करना आवश्यक है। अब श्रीकृष्ण प्रेमजी लखनऊमें एक विरक्त संन्यासीके वेशमें है श्रीभाईजी उनसे प्रणाम कर रहे थे कि वे पहिले से ही भाईजी तथा उनके साथ वालोंसे आलिंगन करके मिले। इसके बाद श्रीकृष्ण प्रेमजी ने अपनी दीक्षा गुरु सन्यासिनी वेशमें (डॉक्टर ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्तीकी धर्मपत्नी) यशोदा माईसे भेंट कराई। उन्होंने संक्षेपमें श्रीकृष्ण प्रेमजीके भगवत्प्रेमकी कुछ घटनायें सुनाई 'भगवान्‌के नेत्रोंमें अश्रुपात होने' आदिकी। माँजी दो अंग्रेज भक्त साहब एवं एलेक्जेन्डर साहब से बड़े प्रेमसे बातें करते हुए उन्हें

फल खिला रही थी। श्रीभाईजीके इशारेसे कुछ फल माँजीके आगे रखने लगा तो माँजीने बड़े प्रेमसे अपने वस्त्रकी झोलीमें उन्हें ले लिये और श्रीभाईजी के द्वारा अलमोड़ेकी दिनचर्या पूछनेपर माँजीने कहा कि यह श्रीकृष्णप्रेम रात्रिके ३। बजे उठकर अपने नित्यकर्म, मंदिरकी पूजा आदि कामोंसे ९ बजे निवृत्त होकर श्रीमद्भागवतकी कथा करता है फिर १२ बजे भिक्षा करके दोपहरमें सत्संग करता है सायंकाल पुन: मंदिरकी पूजा, जप, तथा थोड़ा प्राणायाम करता है। इसके बाद श्रीभाईजीने श्रीकृष्ण प्रेमजीसे कुछ प्रश्नोत्तर किये।

श्रीभाईजी—श्रीभगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होने में आपका विश्वास कैसा है?

श्रीकृष्णप्रेमजी—मेरा पूर्ण विश्वास है।

श्रीभाईजी— क्या आपको भी कभी दर्शन हुए?

श्रीकृष्णप्रेमजी—खाते हुए रूककर स्तब्धसे हो गये पर कुछ बोले नहीं।

श्रीभाईजी—यदि आपको कहनेमें संकोच हो तो न कहें।

श्रीकृष्णप्रेमजी— मैं इस विषयमें अधिक कुछ न कहकर इतना ही कहता हूँ कि कुछ भगवत् प्रेम मुझे मिला है क्योंकि न तो मैं यह कह सकता कि कि मुझे दर्शन हुए हैं और स्पष्ट ऐसा भी कहना नहीं बनता कि दर्शन हुए हैं।

श्रीभाईजी—अधिक कहनेकी आवश्यकता भी नहीं है—हाँ, आप साधनके सम्बन्धमें क्या कहते हैं?

श्रीकृष्णप्रेमजी— केवल शरणागति।

श्रीभाईजी—शरणागति कैसे प्राप्त होती है?

श्रीकृष्णप्रेमजी—सत्संग और भगवन्नाम जपसे। इनके विशेष विचार कल्याण वर्ष ४-५-६ में इनके अनेक लेखोंमें वर्णित है जिन्हें देखकर वहाँसे देख सकते हैं। इत्यादि वार्तालाप करके उसी रातको लखनऊसे रवाना होकर फाल्गुन कृष्ण ९ को गोरखपुर वापस आ गये।

इधर फाल्गुन शुक्ल १/८६ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन गोरखपुरमें होनेवाला है। जिसकी तैयारियाँ हो रही है। श्रीभाईजीके अनेक प्रेमी विद्वान् सम्पादकोंमेंसे श्रीबनारसीदासजी चतुर्वेदी, श्रीनरोत्तमजी, ठाकुर शिवमूर्ति सिंहजी इत्यादि कई प्रेमी सज्जन उस टूटे-फूटे खपरैलोंके मकान और अत्यन्त सादगीकी रहन-सहन करने वाले छोटेसे श्रीभाईजीके रहने वाले बगीचेमें ही ठहरे। उस समय केवल सेवकोचित व्यवहार मात्रसे श्री रामजीदास बाजोरिया बुढ्ढे बाबाने सबको आतिथ्यसे आप्यापित कर दिया जिससे उल्लसित होकर श्रीबनारसीदासजीने तो यहाँ तक कहा कि यदि किसी कॉलेजका मैं प्रिंसपल होऊँ तो इन बुढे बाबाको सेवा विभागका प्रोफेसर नियुक्त करूँ।

साधन समितिका कार्य बहुत उत्साह पूर्वक चल ही रहा था उनमेंसे श्रीभाईजीके किसी प्रेमीके मनमें भगवद्दर्शनकी कुछ उत्कण्ठा हुई। उसकी धारणामें यह कार्य श्रीभाईजीकी कृपासे कुछ भी कठिन नहीं है इसलिये उसने श्रीभाईजीके द्वारा बताये हुए श्रीविष्णुसहस्रनामके पाठ '**शिष्यस्तेहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**' के संपुट सहित करनेका खूब उमंगके सहित अनुष्ठान प्रारम्भ भी कर दिया और उसमें उसको कुछ चमत्कार भी मिले जिसे यहाँ व्यक्त नहीं किया जा सकता।

फाल्गुन शुक्ला ४/१९८६ को प्रात:काल तम्बू आदि खोलकर साधन समिति वाले १. गंगाबाबू, २. शुकदेव बाबू, ३. पं०लाधूरामजी, ४. पं० बद्रीप्रसादजी, ५. पं नंदलालजी, ६. रामेश्वरजी, ७. मैं बासेवाली जगहमें एकत्रित होकर बातों ही बातोंमें श्रीभगवद्दर्शन करानेके लिये सत्याग्रह अनशन आदि करनेका विचार करने लगे बातें गम्भीरतापूर्वक होने लगी। तब सबकी राय से एकान्तमें बातें करनेके लिये बगीचेसे कुछ पीछे जंगलमें जाने लगे। जाते समय घनश्यामदासजी भी साथे हो गये। वहाँपर बैठनेके पश्चात् बहुत देरतक परामर्श होनेके बाद श्रीशुकदेवजीका यह प्रस्ताव पास हुआ कि इस शुभ कामनाकी पूर्तिके लिये श्रीभाईजी जैसे कहें वैसे ही करना चाहिये। तब श्रीभाईजीको बुलाया गया साथमें श्रीबिहारी बाबू एवं श्रीरामजीदासजी भी आ गये। फिर श्रीभाईजीने ऐसी शुभकामनाकी बड़ी प्रशंसा करके प्रेमके रहस्यकी बड़ी ही विलक्षण बातें कहकर इस प्रकारसे

कार्य करनेको उचित न बताया। तब सबने इसकार्यके लिये साधन पूछा तो श्रीभाईजीने कहा रात्रिके समय अलग-अलग एकान्तमें श्रीभगवान्के सामने आर्तभावसे वास्तविक रूदन करना चाहिये। इसके बाद करीब १०॥ बजे साधन समितिवाले उठकर अपने-अपने काममें लग गये।

इन्हीं दिनों श्रीशुकदेवजीके कुटुम्बके भाई श्री मुरलीधरजी एवं श्रीप्यारेलालजी डागा प्रेसमें काम करनेके लिये आये थे।

फल्गुन शुक्ला ७/१९८६ को श्रीभाईजी अपने प्रेमीजनोंके सहित श्रीगोयन्दकाजीसे एकान्तमें बातें करनेके लिये मुगलसराय गये और वहाँ पर श्रीभाईजीने अपनी उपरामताकी बातें कही पर श्रीगोयन्दकाजीने अनेक युक्तियाँ देकर श्रीभाईजीको गोरखपुरमें ही रहनेका परामर्श दिया। इसके बाद एकान्तमें एक सत्संगीको बुलाया उसके आ जानेसे श्रीभाईजीने श्रीगोयन्दकाजीके समक्ष उसकी कुछ प्रशंसा करके उसके लिये सिफारिशकी। इतनेमें रामेश्वरजी जालान आ गये तब उनसे वार्तालाप किया। उनके चले जानेपर श्रीगोयन्दकाजीने कहा कि यदि श्रीभगवान् मेरेसे सलाह लें तो मैं तो उन्हें ऐसे ही कहूँ कि रामेश्वरको अंत समयमें भले ही दर्शन दें अभी दर्शन न दें क्योंकि ऐसे दर्शन देनेसे दर्शनोंका महत्त्व ही कम हो जाता है।

फाल्गुन शुक्ला ८/८६ श्रीगोयन्दकाजीके साथ श्रीभाईजी अपने प्रेमीजनोंके साथ मुगलसरायसे लखनऊ तक आये रास्तेमें बातें होती रही लखनऊ स्टेशनपर गाड़ी के चलते समय श्रीगोयन्दकाजीने खिड़कीमेंसे मुख निकालकर कहा कि इस समय मेरेसे कोई साधन पूछे तो मैं तो उसे ऋषिकेश आनेके लिये ही कहता हूँ। क्योंकि इन दिनोंमें प्रायः प्रतिवर्ष ऋषिकेशमें श्रीगोयन्दकाजीका सत्संग बड़े ही विलक्षण ढंगसे हुआ करता है।

फाल्गुन शुक्ल ९/८६ श्रीभाईजीकी इच्छा गोरखपुरमें रहनेकी बिल्कुल न रहकर किसी एकान्त तीर्थ स्थानमें रहनेकी रहती और श्रीगोयन्दकाजी इन्हें गोरखपुरमें रहकर गीताप्रेस एवं कल्याणका कार्य करनेसे कभी छुट्टी नहीं देते इस बातमें तथा और भी कई बातोंको दोनोंमें सिद्धान्त रूपसे वर्षोंतक मतभेद रहता था इसके लिये श्रीभाईजीसे उनके किसी मित्रने बड़ी नम्रता पूर्वक पूछा कि श्रीभाईजी! एक तरफ तो आप श्रीगोयन्दकाजीमें पूर्ण रूपसे गुरुभाव रखते हैं और एक तरफ आप उनके विचारोंसे अपने विचार सर्वथा भिन्न रखते हैं। इसमें क्या रहस्य है कुछ समझमें नहीं आता कृपा करके समझाइये। इस पर श्रीभाईजीने कहा यद्यपि यह बात है तो बहुत गोपनीय परन्तु तुम्हें तो कह रहा हूँ कि मेरा श्रीगोयन्दकाजीमें गुरुभाव तो है परन्तु मैंने अपना आत्मसमर्पण श्रीभगवान्के प्रति किया हुआ है। इसलिये उनके विचारोंसे भिन्न मेरे मनमें स्फुरण होना कोई दोषयुक्त नहीं है।

मेरे आभ्यन्तरिक जीवनको अभीतक किसीको यत्किंश्चित भी पता नहीं है। मेरा जीवात्मा इस स्थूल शरीरसे निकल कर कहीं ऐसी वस्तुमें घुलमिल गया है कि जिसकी लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। वास्तवमें श्रीगोयन्दकाजीमें और मेरे में कोई भेद नहीं हैं। ऋषिकेश में उनसे कोई साधन पूछनेकी इच्छा करनेवालेको आवश्यकता है नहीं तो नहीं। गंगाबाबू और शुकदेव बाबूकी स्थिति अपेक्षाकृत बहुत अच्छी है पर पूर्णस्थिति अभीतक नहीं हुई। तुमको मैंने अपना समझ रक्खा है इसलिये लोगोंके उद्वेग होनेपर भी तुम्हें मैं जँचे जैसे कह देता हूँ क्योंकि तुम पर मैं अपना अधिकार समझता हूँ। मेरे बाहरी जीवनको बहुत साधारण रखनेकी मेरी भी पहिलेसे इच्छा थी और श्री भगवान्का भी मुझे यही आदेश है। तुम्हें मैं अपने जीवनकी अत्यन्त गुह्य बातें बता देता हूँ जितनी तुम्हारे सिवा अन्य किसीको भी नहीं बताता क्योंकि तुम्हारी नियत अच्छी है और तुम्हारी ऐसी बातें सुननेकी तीव्र उत्कण्ठा रहती है। इत्यादि अनेक प्रकारकी रहस्यपूर्ण बातें श्रीभाईजी अपने उस अंतरंग मित्रसे ऐसे खुलकर कह देते कि वह तो मुग्ध हो जाता कि ऐसी अनिवर्चनीय स्थिति वाले भी इतने बड़े प्रपंचका कैसे यथोचित व्यवहार कर सकते हैं? लोग अभीतक इनसे बिल्कुल ही अपरिचित हैं। श्रीभगवान्की अपने ऊपर ऐसी अद्भुत कृपा है कि ऐसी विलक्षण स्थिति वाले इतनी गुह्यातिगुह्य बातें खुले

दिलसे कह देते हैं जिसका वर्णन हो ही नहीं सकता।

श्रीभाईजीके सुधामय चरित्रको तो कोई जान ही नहीं सकते किन्तु कल्याणमें उनके द्वारा लिखे गये अपने निजके अनुभवपूर्ण लेखोंको पढ़कर असंख्य जीव अपने मनुष्य जीवनको सार्थक बनानेमें लगे हैं यद्यपि उन लेखोंका रसास्वादन इस ग्रन्थमें कराया नहीं जा सकता तथापि कल्याणके तीसरे और चौथे वर्षमें भी श्रीभाईजीके निजके लेख प्रकाशित हुए हैं उनमेंसे मुख्य-मुख्य लेखोंकी संक्षिप्त सूची दी जाती है।

जिन्हें श्री भाईजीके लेख पढ़ने हों तो कल्याणकी * **पुरानी फाइलोंमें उनके निम्नलिखित लेख पढ़ सकते हैं :**

नूतन वर्ष (भक्ताङ्क)	३ । १ । २-३
भक्तिसुधा सागर तरंग	३ । १ । ९८ से १०९
नम्र निवेदन	३ । १ । २४४-४५
विनय (भक्तांक) ३ । १ । के टाइटलका तीसरा पृष्ठ	
जीवकी तृप्ति कैसे हो ?	३ । २ । ४८ से ४०
ईश्वर भक्त	३ । २ । २६०
पुराणोंके रत्न (नरोत्तम)	३ । २ । २८४ से ९०
विवेकवाटिक ३ । २ से १२ तक कई अंकोंमें	
क्या ईश्वरके घर न्याय नहीं है	३ । ३ । ३३१ से ३४
पुराणोंके रत्न (शुकदेव)	३ । ३ । ३४८ । ४०
भक्तगाथा (दामोदर)	३ । ३ । ३६०-६५
भगवन्नाम माहात्म्य	३ । ३ । ३६६
ईश्वरकी ओर झुकें	३ । ३ । ३६ से ७२
भगवत्प्रेमही विश्व प्रेम है	३ ।४ ।४०८ से ४१३
भगवन्नाम माहात्म्य	३ । ४ । ४४०
पुराणोंके रत्न	३ । ४ । ४४४-४६
भक्तगाथा (चन्द्रहास)	३ । ४ । ४६४-६९
मातर्गीते (गीतांक)	४ । १ । ३-४
गीता और भगवान् श्रीकृष्ण	४ । १ । २९३ से ३०४
गीता और श्रीभगवन्नाम	४ । १ । ३५५
गीता और वैराग्य	४ । १ । ३६७
गीताका पर्ववसान साकार ईश्वरकी शरणागतिमें है।	४।१।३९८ से ४००
भक्तगाथा (नीलाम्बरदास)	४ । २ । ५५२ से
,, (सुधन्वा)	४ । ३ । ६६२ से ६६
,, गोपाल चरवाहा	४ । ४ । ७२८ से ३२
,, (भक्त शान्तोबा)	४ । ८ । १०४८
,, ,,	४ । ९ । १११४
,, ,, (करमैतीबाई)	४ । १० । १२११
,, ,, (नारायणदास)	४ । ११ । १२८९
,, ,, (राजा जयमालसिंह)	४ । १२ । १३८६
दीपावली	३ । ४ । ४ । १० से ७९
हरिनामका भूत	३ । ४ । ४८५-८६
साधकोंके प्रति (साधनपथ) ३ वर्षके अंकोंका	
प्रेमकी पराकाष्ठा (जगाई मधाई)	३ । ४ । ४२४ में
कुछ प्रश्नोंके उत्तर	३ । ६ । ६१३-१४
भक्तगाथा (धन्नजाट)	३ । ६ । ६३३-३६
श्रीभगवन्नाम	३ । ६ । ६३७-३८
भक्तोंको दु:ख नहीं होता	३ । ७ । ६९१-९२
विष्णुप्रियाको पादुकादान	३ । ८ । ७८७-८८
होली पर हमारा कर्तव्य	३ । ८ । ८०६
भक्तगाथा (मोहन गोपाल)	३ । ९ । ८१७
बुद्धिवाद और भक्ति	३ । ९ । ०४०-४४
उन्नतिका स्वरूप	३ । १० । ९४४-६२
सच्चा भिखारी	३ । ११ । १०३६ से ४१
ईश्वर विरोधी सम्मेलन	३ । १२ । १०१० । ४२
भक्तगाथा (रघुनाथ)	३ । १२ । १०७८-९०
भगवत्प्रेमी	४ । ३ । ४९१
मधुरस्वर सुनादो	४ । ४ । ६८०-८१
दीवानोंकी दुनिया	४ । ५ । ७५९-६१
श्रीभगवन्नामजप	४ । ६ । ८३९
,, ,,	४ । ७ । ९२०
एक लालसा	४ । ६ । ८४१-४२
सुदुरु	४ । ७ । ९०८ से १४
आकांक्षा	४ । ११ । १२६३-६४

* उपरोक्त लेख अब गीताप्रेसकी पुस्तक '**भगवच्चर्चा**' एवं भक्तगाथाकी पुस्तकोंमें है।

॥ श्रीहरि: ॥

सैंतीसवाँ पटल

ऋषिकेशमें अलौकिक संकीर्तन और श्रीनारायण स्वामीजी की अनुभूति

भारतवर्ष में उत्तराखण्ड परम पवित्र माना जाता है क्योंकि जगज्जननी ब्रह्मद्रव स्वरूपा श्रीगंगाजीका उद्गम स्थान यहीं से है। आहा! जिन भाग्यवान श्रद्धालु मनुष्योंने जिस गंगा माताका दर्शन किया हे, पान किया है, स्नान किया है वे यत्किंचित उसकी महिमा जान सकते हैं। इसमें भी ऋषिकेशका स्थान उन दिनोंमें बहुत एकांतका भजन साधन करने वालोंके लिए अत्युत्तम था। इसीलिए श्रीगोयन्दकाजीने अपने सत्संगके लिए उसे प्रधान केन्द्र बना रखा था, और वे प्रतिवर्ष वहाँ अपने प्रेमी मित्र मंडलीके सहित दो-तीन महिना केवल भजन ध्यान सत्संग आदि साधन करने करानेके लिए जाया करते थे। और इस वर्ष तो सबको निमन्त्रण ही दे गए थे। इसलिए चैत्र कृष्ण ७। १९८६ को प्रात:काल श्री भाईजी हरिद्वार स्टेशनसे सीधे लौरीमें बैठकर ऋषिकेश आए। डेरे आदिका प्रबंध करके श्रीगोयन्दकाजी तो प्रात: ७॥ बजे वसुधाराकी रेतीमें, जहाँ नित्यप्रति सत्संग हुआ करता था, आ गए और भाईजी भी करीब ८॥ बजे वहाँ पहुँचे। वहाँ पर प्राय: दिन भर सत्संग होता ही रहता है जिसका वर्णन हो नहीं सकता। किन्हीं भाग्यवान श्रद्धालु प्राणीको वहाँके सत्संग रूपी सत्संग सरिताका दर्शन श्रवण एवं गंगाकी भाँति अहर्निश निरन्तर झर-झर करती हुई बहने वाली सर्वसन्ताप हारिणी नदीमें गहरा गोता लगाकर अवगाहन करके खूब गहरा जाकर मध्य धारामें डूबकी लगनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे ही उसके मधुर रसास्वादनका अनुभव कर सकते हैं। वर्णन तो वे भी नहीं कर सकते क्योंकि वास्तवमें वह ऐसा ही गूंगेके गुडके रसास्वादनकी भाँति अनिर्वचनीय रस है। परन्तु यह रस संसारासक्त प्राणी नहीं प्राप्त कर सकते यह तो सच्चे सूरवीरोंका काम है—

एक गुजाराती संत कविकी वाणीमें ही उन शूरवीरोंका लक्षण वर्णन किया है जरा सावधान होकर सुनिये—

हरि नो मारग छे शूरानो नहिं कायरनु काम जोने।
परथम पहेलु मस्तक मूकी, बलती लेवु नाम जोने॥
सुत बित दारा सीस समर्पे, ते पामे रस पीवा जोने॥
सिन्धु मध्ये मोती लेवा मांही पड्या मरजीवा जोने॥
मरण आंगमें ते भरे मूठी, दिलकी दुगधा वामे जोने।
तीर ऊभा जुवे तमासो, ते कौड़ी नव पामे जोने॥
प्रेम पंथ पावक नी ज्वाला, भाली पाछा भागे जोने।
माँही पड्या ते महा सुख माणे, देखनारा दाझे जोने॥
माथे साटे मांधी वस्तु, सांपउवी नहिं सहेल जोने।
महा पद पाम्या ते मरजीवा, मूकी मन नो मेल जोने॥
राम अमलमाँ राता माता, पूरा प्रेमी परसे जोने।
प्रीतम ना स्वामीजी लीला, ते रजनी दिन नरखे जोने॥

अच्छा तो थोड़ी देरके लिये आपभी श्रद्धा रूपी शूरवीरताका कवच पहनकर मनसे ही ऐसे अमृत भरे सरोवरमें गहरी डुबकी लगाइये। सचमुच तत्काल निहाल हो जायंगे, इसी क्षण जीवनमें शान्तिका श्रोत बहने लगेगा। अब पुन: आइये अपनी अभीष्ट वस्तुके मधुमय चरित्र चिन्तनकी तरफ और थोड़ी देरके लिये नेत्रमूंदकर श्रद्धा विश्वासरूपी सरितामें डूबकर श्रीभाईजीकी मधुर मूर्तिका ध्यान करिये यह ध्यान भी भगवत्स्वरूप संतकृपासे ही होना सुलभ है-

श्रीभाईजीका जिन श्रद्धालु पुरुषोंने अपने इन चर्म चक्षुओंसे नहीं किन्ही दिव्य चक्षुओंके द्वारा दर्शन किये हों, करते हों उन्हें ही इस स्वरूपकी यत्किंञ्चित झांकीके दर्शन हो सकते हैं।

श्रीभाईजी अपने १-२ अंतरंग प्रेमीजनोंके साथ

परम पावनी गंगा मैयाके किनारे बैठे हुए उनकी ओर निहार रहे हैं और स्नान करनेकी तैयारी कर रहे हैं कोई प्रामर प्राणी भी उनकी मधुमय इस स्थूल शरीरके दिव्य रोमोंको देख रहा है आपको भी यदि दर्शन करना हो तो श्रीगोयन्दकाजीके सर्वोच्च श्रेणीके सच्चे प्रेमी संत शिरोमणि स्वामी रामसुखदासजी महराजके नेत्रोंसे उनका दर्शन करेंगे। श्रीरामसुखदासजी महाराज श्रीभाईजीके दिव्य स्थूल शरीरके रोमों पर अपना हाथ फेंरते हैं तब न जाने वे किस सुखका अनुभव करते होंगे सो उन्हींसे श्रवण करिये। इससे अधिक वर्णन के लिये यह लोह लेखनी रुक रही है।

अस्तु श्रीभाईजी श्रीगंगाजीमें स्नान करके शुद्ध खादी धोती पहिनकर खुली लांग लगाये हुए खादीका कुर्ता पहने हुए ललाटपर श्रीगोपी पद पद्मपराग-गोपी चन्दनकी टीकी दिये हुए खुले मस्तक अपने १-२ प्रेमी मित्रोंके साथ आज ऋषिकेश से स्वर्गाश्रममें रहने वाले एक संतका अनुभव शीर्षक लेखको लिखाने वाले सच्चे संत स्वामीजी महाराज श्रीनारायण स्वामीजीके पास लेख लिखनेके लिये गये।

कल्याण वर्ष ४ अंक १० पृष्ठ ११४८ में श्रीभाईजीने संपादकीय टिप्पणीमें उस लेखके प्रारम्भमें लिखा है।

'कुछ दिनों पूर्व साधु संग लाभके लिये मैं ऋषिकेश गया था। यहाँ स्वर्गाश्रममें श्रीनारायण स्वामीजीके दर्शन हुए। आप अमीर घरानेमें पैदा हुए एक उच्च शिक्षित पुरुष हैं इस समय निरंतर श्री 'नारायण' नामका जप करते हैं, चौबीसों घंटे मौन रहते हैं। केवल सवा दो घंटे सोते हैं। अपने पास कुछ भी संग्रह नहीं रखते। कमरेमें एक डोरी बांध रखी है, उसीके सहारे टाटके टुकड़ेका कौपीन लगाये रहते हैं। भगवान् और भगवत्प्रेमकी बातें होते ही आपके नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगते हैं। इस समय रातको आप विनय पत्रिका सुना करते हैं। × × × उस समय आपके चेहरे पर प्रेमके जो भाव प्रकट होते हैं, वे देखने योग्य होते हैं। हम लोगोंके अनुरोध करनेपर अपने अपने जीवनकी कुछ बातें रातको मानसिक भजनमें से समय निकाल कर उर्दूमें लिखने की कृपा की आपने लिखकर बताया कि इसमें जो कुछ भी साधन लिखे गये हैं वे सब मैं अपने जीवनमें कर चुका हूँ या कर रहा हूँ। इसमें ऐसी कोई बात नहीं लिखी गयी है जिसका मुझे स्वयं अनुभव न हो। × × × हिन्दीमें लिखवाते समय स्वामीजी के चेहरे पर प्रेमभावका विकास देखकर सबको बड़ा आनन्द होता था यह लेख पुस्तकाकार अलग भी छप गया है। जिनको चाहिये वे अपने लिये गीताप्रेससे एक 'संतका अनुभव' नामसे × × × मंगवा सकते हैं। —**संपादक**

श्रीनारायण स्वामीजीके तीव्र वैराग्य होने और उनकी उत्कट इच्छा होनेपर स्वयं भगवान् स्वप्नमें उन्हें दर्शन देकर 'नारायण' नापका जप करनेका उपदेश तथा चारों धामकी यात्रा करने का आदेश दिया। श्रीस्वामीजी महाराजने अनेक कठोर साधन तथा तीव्र तपस्या करके ४ वर्षके अन्दर भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन कर लिये। जिसका विस्तारसे वर्णन उस 'एक सन्तके अनुभव' नामकी पुस्तक में किया है। प्रेमीजनोंको वह पुस्तक अवश्य देखनी चाहिये।

नारायण स्वामीजीने कहा 'राम' नाम लिखकर गोली बनाकर उन आटेकी गोलियोंको नित्य प्रति ११ लाख मछलियोंको डालनेसे मनोवाच्छापूर्ण हो जाती है यह अनुभवकी हुई बात है।

इनके द्वारा उर्दू लिखा हुआ लेख हिन्दीमें भी भाईजीने लिख लिया। उसके बाद स्वर्गाश्रम (वर्तमानमें मुनिकी रेती) में रहनेवाले स्वामीजी श्री शिवानंदजी महाराजसे बड़े प्रेमसे मिले और सायंकालको वापस ऋषिकेश ही आ गये। उन दिनों ऋषिकेशमें श्रीगोयन्दकाजीके सत्संगका मुख्य स्थान था।

आज एकादशीकी रात्रिका समय है, ऋषिकेशमें झाड़ियोंके समीप वसुधारा पर गंगाजीके किनारे स्वच्छ रेतीले मैदानमें कीर्तन होने वाला है और श्रीगोयन्दकाजी तथा हमारे श्रीभाईजी जैसी युगल मूर्ति अपने सारे परिकरोंके सहित संकीर्तन करनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

अहा! उस समयके श्रीभाईजीके द्वारा होनेवाले संकीर्तनके दर्शन ज़िन श्रद्धालु प्रेमी जनोंने किये हैं वे ही

उस दृश्यका हाल जान सकते हैं पर व्यक्त वे भी नहीं कर सकते क्योंकि 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' इस ढंगका ऋषिकेशका श्रीभाईजीके द्वारा कराया हुआ इस यह कीर्तन पहली बार एवं अन्तिम ही है तो सुनिये।

सब भक्त वृद एक गोलाकार मैदानकी जगह गोलाकार बड़े ढंगसे बैठ गये हैं चारों तरफ सन्नाटा है। श्रीभाईजी उसके बीचकी जगहमें बड़ी ही मनोमुग्धकारी मूर्तिके रूपमें खड़े हैं घेरेके अंदर ही धीरे-धीरे गोलाकार मंडलके किनारे-किनारे मधुर नृत्य करते हुए भक्तजनोंके मनोमें प्रेमरसका संचार करनेवाले परमपावन श्री भगवन्नामकी परम युगल मधुर नाम, 'राधे कृष्ण सीताराम' इस ध्वनिको आगे-आगे बोलकर बड़े ही मधुर स्वरोंमें कीर्तन करा रहे हैं। पीछे-पीछे सब लोग एक स्वर से कीर्तन कर रहे हैं। जरा मनके नेत्रों द्वारा कल्पना करके हम लोग भी उस दृश्यका ध्यान करके अपने जीवनको पवित्र बनावें।

ऐसे अनिर्वचनीय कीर्तनके प्रारम्भमें श्रीभाईजीने अपने इष्टदेवके आह्वानके लिये निम्नलिखित स्वरचित यह दोहा बड़े मधुर स्वरके साथ उच्चारण किया।

जय रासेश्वरी राधिके, जय गोविन्द रसेश।
कीर्तन रस रण रंग महँ, सत्वर करहु प्रवेश॥

—जिस कीर्तनमें श्रीभाईजी जेसे प्रेमी भक्त आह्वान करे उस जगह स्वयं श्री भगवान् अपने साकार श्रीविग्रहके रूपमें प्रकट न हो तो सब शास्त्र एवं प्रेमी भक्तोंके अनुभव ही व्यर्थ हो जाय। पर नहीं श्री भगवान् वहाँ पधारते हैं और निश्चय हो अवश्यमेव पधारते हैं। किन्तु उनके पधारनेमें विश्वास करनेवाले बिरले ही होते हैं। आज तो दोनों युगल संतोंके प्रधान परिकर वहाँ बड़ी संख्यामें उपस्थित उनमेंसे किसी भावुक व्यक्तिको यह प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा कि अहा! आजतो श्रीभाईजीके साथ-साथ श्रीभगवान् नृत्य कर रहे हैं। ऐसी पावन बालुका फिर अपने जीवनमें कब मिलेगी, जहां भी भगवान् अपनेभक्त सहित अपने देव मुनिजन दुर्लभ चरणारविन्दके द्वारा उस गंगाजीकी बालुकामें अपने श्रीचरण अंकित कर रहे हैं। क्या इस बातका भी सत्य विश्वास करने वाले व्यक्ति वहाँ भी उपस्थिति थे। हाँ, तभी तो इतना विस्तारसे इस कीर्तन रसरंगका वर्णन किया जा रहा है अस्तु,

श्रीभाईजीके अत्यन्त निकटके परिकरोंमेंसे किसी एक व्यक्तिको तुरन्त बाह्य ज्ञान शून्य होकर सचमुच वह दृश्य दृष्टि गोचर होने लगा। अब वह अपनी उमंगको संवरण न कर सका और धीरे-धीरे उस चरण रजमें लोटनेकी तैयारी करने लगा क्योंकि शास्त्रोंका यह निर्णीत सिद्धान्त है कि 'बिना महत्पाद रजोभिशंका बिना महापुरुषों के चरणारविन्दकी रजसे अपने मस्तकको अभिशिक्त किये बिना इस पामर जीवका निस्तार होनेका दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं। वह व्यक्ति बाह्यज्ञान शून्य होकर जिस मंगलाकार भूमिमें श्रीभाईजी अपने इष्टदेवके सहित नृत्य कर रहे थे उस चरणरजसे अपने अंगोंकी अभिशिक्त करने के लिये लोट-पोट होने लगा।

श्रीभाईजी यह सब दृश्य देख रहे थे। इतनेमें ही ऐसी घटनाओंमें भी कहीं दंभका प्रवेश न हो जाय इस बातका निरीक्षण करनेवाले लोगोंमें से एक प्रतिष्ठित सज्जनने अपने अधिकारका वहाँ सदुपयोग किया। अर्थात् कीर्तनके समाप्त होने पर कहा कि ऐसे अलौकिक कीर्तनमें इस प्रकारकी क्रिया करनेवाले कहीं दंभको आश्रय न देने लगे, इसपर श्रीभाईजीने ही तत्काल उत्तर दिया कि जो व्यक्ति इस मंडल में आया है वह न तो दंभ कर रहा है और न यह दिखावटी क्रिया ही है। क्योंकि वह व्यक्ति श्रीभाईजीका ही एकमात्र कृपाका अवलम्बन रखनेवाला था।

चैत्र कृष्ण १२/८६ वि०सं० प्रात:काल श्रीभाईजी अपने प्रवचनके समय सत्संगमें सबसे प्रथम यही बात कही कि श्रीभगवन्नाम कीर्तनमें कल रात्रिकी भाँति भावावेश होना बड़ा ही शुभ कार्य है किन्तु आजसे भावुकताकी बातें न कहकर जो साधन करना चाहें उन सब स्त्री पुरुषोंके लिये कुछ ऐसे मुख्य-मुख्य साधन बताना रहा हूँ जिसके पालन करनेसे थोड़े समयके अन्दर ही अपने जीवनमें आनन्दका श्रोत बहने लगा जाता हूँ। वे साधन ये हैं—

(१) अपनी जानमें जानकर असत्य न बोला।
(२) प्रकट रूपमें क्रोधकी क्रिया न करना।
(३) हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
इस महामंत्रकी १४ मालाका नित्य नियमसे जप करना।
(४) प्रत्येक घंटामें एक बार श्री भगवान्का स्मरण करना।
(५)(अ) निद्रासे जगने पर, (आ) शयन करते समय, (इ) खाने के समय, (ई) पीनेके समय, (उ) स्नान करते समय भगवत् स्मरण करना।
(६)भोजनमें कितनी ही संख्या कराने उससे अधिक वस्तुएं न रखना।

इन छः नियमोंमेंसे किसी नियमके भंग होनेपर एक दिन अथवा एक समयका उपवास करना। यह प्रायश्चित है। इनके सिवा निम्नलिखित बातें भी पालन कनेकी चेष्ट करना। (१) ब्रह्मचर्यका पालन करना, पर स्त्रीको बुरी दृष्टि से न देखना (२) जीव मात्रपर दया रखना (३) अपना अपकार तथा दूसरेका उपकार किया हुआ प्रकट न करना (४) बने जहांतक प्राणी मात्रकी सेवा करना। इत्यादि बातोंका ध्यान रखना चाहिये।

विधवा बहिनोंपर श्रीभगवान्की बडी ही कृपा है जो कि भगवान्ने गृहस्थमें रहते हुए उन्हें प्रपंचसे छुड़ाकर एक प्रकारसे त्यागमय रहकर भजन करनेके लिये यह सुअवसर उन्हें प्रदान किया है।

सधवा बहिनीको चाहिये कि वे अपने पतिको ईश्वर रूप मानें, पतियोंको चाहिये कि वे अपनी स्त्रीको मित्ररूप मानें तथा संकीर्तनमें स्त्रियोंका निषेध किया। सर्व साधारणके सामने रूदन करनेका निषेध करके जिनके सामने रोनेसे कुछ काम सरे उन दया मूर्ति श्री भगवान्के सामने एकान्तमें हृदय खोलकर आर्तभावसे खूब रोना चाहिये। इत्यादि बातें कहकर सत्संगका कार्य समाप्त हुआ। श्रीभाईजीने अपने एक प्रिय सखासे बड़े ही प्रेमसे कहा कि आज तुम कहाँ गये थे, मैं तुम्हारे से बात करनेके लिये सत्संग छोड़कर संध्याके समय तुम्हें बिहारी बाबूके द्वारा तलाश भी कराया था। वह सखा तो ऐसे अद्भुत प्रेममय व्यवहार को खकर मन ही मनमुग्ध हो रहा था और भी भाईजीने उसे जंगल जाते समय एकान्तमें साथ लेकर उससे बड़े प्रेमकी बातें की श्रीभाईजीने उस सखासे बड़े मधुर शब्दोंमें कहा कलसे तुम्हारेसे बात करनेका विचार था क्योंकि परसों तुम्हारी रात्रिके कीर्तनके समय बड़ी ही अच्छी स्थिति थी। लोग कुछ उपहास कर रहे थे सो वह भी तुम्हारे लिये बड़ा हितकर था क्योंकि तुम्हारे कोई दिखावापन तो था ही नहीं इसपर वह सखा श्रीभाईजी यह सब आप ही के एक मात्र कृपाका परिणाम था।

श्रीभाईजीका प्रवचन वहां नित्य कई दफे होता जिसे लोग बड़ी ही उत्सुकताके साथ सुनते श्रीभाईजीने कहा श्रीभगवान्के हाथकी कठ पुतली बन जाना चाहिये, वे जैसे नचावें वैसे ही नाच करता हुआ, उनके प्रत्येक विधानमें आनन्द मानता हुआ जिन-जिन प्राणियोंसे व्यवहार करना पड़े, जड़ चेतन जहाँ-जहाँ दृष्टि जाय श्रोतोंके द्वारा शब्द सुने जायं, उन सबमें श्रीभगवान्की भावना करनेका अभ्यास करना चाहिये। यह जो कुछ दीख रहा है, हो रहा है वह सब कुछ (१) भगवान् ही है (२) भगवान्का ही है (३) भगवान्का लीला मात्र है इन बातोंको बड़े ही रसीले शब्दोंमें कहते कि श्रोता लोग उन बातोंको सुनकर मुग्ध हो जाते।

एक समयके सत्संगमें श्री भाईजीने रामायणके उत्तरकाण्डमें श्री भगवान्ने प्रजाको उपदेश दिया है उन चौपाइयोंको बड़े ही रसीले स्वरोंमें बोलकर उनपर विस्तृत व्याख्या की—

चौपाई

बड़ें भाग मानुष तनु पावा।सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
दो० सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ।
एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
दो०— जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥ ४४॥
जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥
ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥
पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥
दो०— औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥ ४५॥
कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥
बैर न बिग्रह आसन त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥
दो०— मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥ ४६॥
सुनत सुधासम बचन राम के। गहे सबनि पद कृपाधाम के॥
जननि जनक गुर बंधु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे॥
तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी॥
असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ॥
हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥

चैत्र कृष्ण ३०। ८६ आज रात्रिमें पुनः उसी स्थानपर गंगा किनारे रेतीले मैदान में श्रीभाईजीका कीर्तन होने वाला है अपने प्रेमी परिकरों तथा पूज्य गुरुदेव श्रीगोयन्दकाजीके परिकरों सहित कीर्तन की प्रतीक्षा की जा रही है। इधर इन्दुदेव स्वयं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करनेके लिये घनघोर घटामें उस घोर अन्धकारमयी रात्रिमें बारम्बार बिजलीके प्रकाश द्वारा कीर्तनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इधर श्रीभाईजी भी उपस्थित जनसमुदायको सम्बोधन करके कह रहे हैं कि आज सब लोग खूब प्रेमोत्साहके सहित कीर्तनमें टुटे रहिये क्योंकि इन्दुदेवभी आज इस कीर्तनमें श्रीभगवान्‌के लिये पाहन देनेके लिये तैयार खड़े हैं इसलिये हमलोगोंको भी अपनी पूर्ण श्रद्धाके सहित बड़े ही प्रेमसे श्रीभगवन्नाम कीर्तनमें भगवन्नामोंकी पुष्पाञ्जलि की वर्षा श्रीभगवान् पर करते हुए लज्जा, भयको त्याग कर संकीर्तनमें सहयोग देना चाहिये।

श्रीभाईजीने बात एकादशीके कीर्तनकी भाँति वही दोहा बोलकर श्रीभगवन्नामका संकीर्तन प्रारम्भ किया कि तत्काल खूब जोरसे वर्षा प्रारम्भ हुई सब जन समुदायके वस्त्र खूब अच्छी प्रकारसे भीग गये इधर प्रबल वायुदेवके वेगसे पधारनेके कारण वहाँके परम पावन परमाणुओंकी रमणीक देखी श्रीभगवान्‌के सहित भक्त वृन्दोंकी चरणरज खूब वेगके साथ उड़ती हुई जन समुदायको पवित्र करने लगी। इधर हमारे श्रीभाईजी खूब उमंगके साथ कीर्तन करते हुए भक्त समुदायको सम्बोधन करके कह रहे हैं कि आज खूब मस्त होकर कीर्तन करते रहिये किसीका किसी प्रकारसे संकोच न करें। भगवान् श्रीकृष्ण वंशी बजाते हुए यहाँपर प्रत्यक्ष रूपसे उपस्थित हैं। सबलोग ध्यान देकर उस बंशी ध्वनि को सुें। उसदिन एकादशीके कीर्तनमें दंभका आरोप करनेवाले सज्जनको भी आज बंशीध्वनि सुनाई दी भाईजीके परिकरोंमेंसे एक व्यक्तिको उस दिन बड़ा आनन्द रहा उसकी यही अभिलाषा थी कि अभी यही रहकर इसी परम पवित्र चरणाविन्दोंसे मर्दितकी हुई इस बालुकामें खूब लोटपोट किये जाय। उसदिनकी घटना का उसे स्मरण था इसलिये वह कीर्तन समाप्त होनेके

बाद सबलोगोंके चले जानेपर भी नेत्र बंध किये हुए वहां पर बैठा रहा किन्तु उनके प्रेमीजनोंने बरबस उसके हाथ पकड़कर खड़ा करके समझा-बुझाकर डेरेपर उसे जैसे तैसे ले आये वह भी विचारा चुपचाप चला आया।

पौष शुक्ल १। ८७ के दिन श्रीभाईजी गोरखपुर जानेके लिये तैयार हो गये हैं इधर हमारे बीकानेरके परम प्रेमी सज्जन श्रीचिमनलालजी गोस्वामीजी महाराज पधारे हैं इसलिये श्रीभाईजीने अपने एक सखासे कहा कि तुम इनके लिये यहाँ रह जाओ पर वह तो कि श्रीभाईजीको उन दिनों किसी दूसरे सोचोंसे ही देख रहा था इसलिये उसने नम्रतासे कहा कि घरवालोंने आपके साथ चलनेकी सब तैयारी करनी है तब श्रीभाईजी ने कहा कि जाकर उन्हें प्रेमपूर्वक समझा दो पर वह हठीला श्रीभाईजीका सखा उनकी आज्ञा पालन करनेवाला तो या नहीं इसलिये उसने श्रीभाईजीकी बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया फिर श्रीभाईजीने राधाकृष्णजी पारीक सजावट वालोंको समझाबुझाकर सजावट जानेकी कही और वे विचारे श्रीभाईजीकी आज्ञा मानकर सजावट चले गये और गये भी ऐसे कि फिर वही मस्त होकर इधरके सत्संगसे प्राय: वञ्चित ही रहे।

श्रीभाईजी अपने प्रेमी मित्रोंके सहित श्रीगंगाजीके अन्दर खड़े होकर सबके सहित स्नान सन्ध्यादि नित्यकर्म करने लगे इधर हमारे चिर-परिचित सखा यह सब श्रीभाईजीकी मनोमुग्धकारी लीलायें देख-देखकर मुग्ध हो रहा है।

आज दिनमें ऋषिकेशके समीप सोमेश्वरके वनमें सत्संग होनेका प्रोग्राम है श्रीभाईजी भी अपने प्रेमी परिकरोंके सहित वहाँ पहुँचे और प्रात:कालके सत्संगमें सम्मिलित हो गये इधर हमारे बीकानेरीय गोस्वामीजी महाराज भी १२॥ बजे वहाँ पहुँचे श्रीगोयन्दकाजी एवं श्रीभाईजीसे एकान्तमें ४ बजे तक वार्तालाप करते रहे।

ये वही गोस्वामीजी महाराज हैं जो इसी वर्ष गोरखपुर पधारे थे और साधन समिति में करीब १॥-२ महीने भी भाईजीके साथ रहकर वहाँसे बीकानेर जाना ही नहीं चाहते थे। श्रीभाईजीने समझा-बुझाकर उन्हें भेजा था क्योंकि अभीतक, इनके हृदयमं वह तैयारी नहीं हुई थी कि ये सदाके लिये वहाँ रह सकें इसलिये आज एकान्तमें भी उन्हें इसीप्रकार समझा-बुझाकर शांत किया। ये आये थे श्रीभाईजी के संगके लिये पर भाईजी तो आज जा रहे हैं अत: ४ बजेके बाद श्रीगोस्वामीजी महाराजके कुछ पद सत्संगमें सुनाये गये।

अब श्रीभाइजीको प्रेमपूर्वक विदा करनेके लिये श्रीगोयन्दकाजी बहुतसे सत्संगी लोगोंके सहित ऋषिकेश स्टेशन पर पधारे। गाड़ी चलनेमें विशेष विलम्ब नहीं था तब श्रीगोयन्दकाजीने बड़ा ही अनुग्रह करते हुए अपने प्रेमिल हृदयसे दुजारीसे कहा कि—दुजारीनी आज आप श्रीभाईजीके साथ गोरखपुर जा रहे हैं कुछ पूछिये। तब दुजारी बड़ा ही गद्गद होता हुआ नम्रतापूर्वक श्रीगोयन्दकाजीके अपने पर असीम कृपा का अनुभव करता हुआ बोला कि श्रीभगवानमें विश्वास कैसे हो? इसपर श्रीगोयन्दकाजी ने कहा 'जनका श्रीभगवानमें विश्वास हो उनके संग रहकर उनके अनुकूल आचरण करनेसे श्रीभगवान्में विश्वास हो सकता है।

गाड़ीके चलनेके २-४ मिनट पूर्व श्रीगोयन्दकाजी ने भाईजी के पास खड़े होकर प्रेमीजनोंके संयोग वियोगकी बड़ी ही रसीली मार्मिक बात कही श्रीभाईजी तो उनकी मधुरमूर्ति को निहारते हुए गद्गद हो गये और गाड़ी चलने लगी सबने परस्पर वंदन अभिवादन करके सियावर रामचन्द्रकी जय घोषणा की।
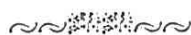
॥ श्रीहरि: ॥

अड़तीसवाँ पटल

गोरखपुरमें विलक्षण संकीर्तन एवं नमक सत्याग्रहमें

चैत्र शुक्ला २। १९८७ रात्रिको श्रीभाईजी तथा मैं गोरखपुर पहुँचे। इन्हीं दिनों श्रीभाईजीको भगवान् श्रीकृष्णके युगल स्वरूपके दर्शन आदि होने लगे थे फिर उनकी माधुर्य लीलाओंमें श्रीभाईजीका प्रवेश हुआ वह क्रमश: इतना गहरा हो गया कि हमलोग उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

चैत्र शुक्ल ३। ८७ को प्रात:काल से साधन समितिमें नियत समयपर खूब उत्साहवर्धक बातें होती थी। श्रीभाईजीने कहाकि मनसे लगनपूर्वक यदि नियम पालन किये जाय तो इतने दिन भी श्रीभगवद्दर्शनमें लगने न चाहिये। चैत्र शुक्ल ९। ८७ श्रीरामनवमीके दिन प्रात:काल श्रीभाईजीने अपने एक प्रेमी व्यक्तिसे कीर्तन करानेकी कही उसने बड़ी ही उमंग पूर्वक प्रसन्न मनसे श्रीभाईजीकी आज्ञाको शिरोधार्य करके कीर्तन कराना आरम्भ किया। फिर श्रीभाईजीकी कृपावर्षासे उस दिन के कीर्तनमें कमी क्यों रहती। अंतमें श्रीभाईजी उस प्रेमी व्यक्तिसे सबके सामने बोले कि आज तो आपने पवित्र कर दिया बड़ा सुन्दर कीर्तन हुआ।

श्रीभाईजीका एक मित्र इन दिनोंमें कई कारणोंसे कभी-कभी कुछ उदास सा रहता था इसलिये श्रीभाईजीने उससे कहा कि हर समय प्रसन्नचित्त रहना चाहिये। उस मित्रने कहा कि यह बात बिल्कुल सत्य है पर अपने वशकी यह बात प्रतीत नहीं होती। इसपर श्रीभाईजीने कहा कि जब प्रभुने अपनेको अपना लिया है तब असीम आनन्द ही रहना चाहिये। फिर सबसे कहा कि इसका मेरे में तो श्रद्धा प्रेम है पर श्रीगोयन्दकाजीमें जितना होना चाहिये उतना नहीं है। इसीलिये इनके अधिक लाभ नहीं होता। मैंने इनसे ऋषिकेशमें ठहरनेके लिये कहा था पर यह वहाँ न रहा इसलिये मुझे तो इसका कृतज्ञ ही रहना चाहिये पर मेरेमें सच्चा प्रेम तभी समझा जाय कि जब मेरेसे भी अधिक प्रेम श्रीगोयन्दकाजीके प्रति हो।

साधन समिति वालोंसे श्रीभाईजीने कहा कि मनसे दृढ संकल्प करना चाहिये। भगवान्को प्रत्येक वस्तुमें हर समय प्रत्यक्ष देखनेकी भावना करनेके लिये खूब जोशीले शब्दोंमें श्रीभाईजी इन दिनों बहुत विस्तारसे कहा करते थे। नियमोंको खूब तत्परताके साथ पालन करनेके लिये चेतावनी देते हुए बोले कि सत्संगका फल तो यह होना चाहिये कि नियम केवल नियम न रहकर जीवनकी साधारण क्रिया वन जानी चाहिये। प्रत्येक प्राणीमें और खास करके जिन जिनके साथ व्यवहार करना पड़े उन सबमें भगवान्को देखना चाहिये। जैसे नामदेवजीको कुत्तेमें भगवान् दीखे इसी प्रकार न जाने किस व्यक्तिके अन्दरसे भगवान् प्रकट हो जाये। ऊपरका परदा हटाकर देखा जाय तो सिद्धान्त से तो भगवान् सबमें है ही पर विश्वास होनेपर यह बात ठीक अनुभवमें आ ही जाती है। इसलिये किसीका अनादर आदि न करके सबके साथ प्रेम तथा आदरका व्यवहार बर्ताव करना चाहिये।

* * * *

१९८७ वैसाख कृष्ण एक गोरखपुर में श्रीभाईजीके रहने वाले बगीचेमें पीछेकी तरफ रात्रिके समय विशेष कीर्तन हुआ। चुने हुए प्रेमी जनोंके साथ श्रीभाईजी कीर्तन खूब मत्त होकर कराने लगे अंतमें श्रीभाईजीने कहा देखिये भी भगवान श्रीकृष्ण बंशी बजा रहे हैं उनके दिव्य विग्रहमें से दिव्यगंध आ रही है पासमें ही श्रीयमुनाजी बह रही हैं जिसमेंसे किसी की इच्छा हो तो पानी पी सकते हैं इत्यादि बड़े ही अनुभूत बातें कहकर चले गये। श्रीशुकदेव बाबू खूब खिलाखिलाकर हंसने लगे तथा बैजनाथजी नौगछियावाले खूब लोटपोट करने लगे पौन घंटेतक यह स्थिति रही। चुने हुए प्रेमी

जनोंकी रात्रिके २ बजेतक खूब प्रेमप्रभाव की बातें होती रही। उन दिनोंके प्रेम प्रवाहका कैसे वर्णन हो सकता है।

एक दिन श्रीभाईजीने अपने एक प्रेमी मित्रसे कहा कि शुकदेवजीकी अपेक्षा गंगाबाबूकी स्थिति अच्छी है। शुकदेव बाबूके कुछ भ्रम रहनेकी गुंजाइस है पर गंगाबाबूकी ऐसी बात नहीं है। तुम्हारे ध्यान कैसे होता है? ऐसा प्रश्न किया तब उस मित्रकी उत्कण्ठा तीव्र देखकर उसे एक दिन विष्णु भगवान्का ध्यान करानेका आश्वासन दिया और श्रीभाईजीने कहा कि ध्यान होनेके बाद कभी आर्तभावसे पुकार होनेपर उसी समय दर्शन भी हो सकते हैं। इस प्रकारकी अद्भुत बातें कहकर अपने अनुभूत साधनकी कुछ युक्तियाँ बताई, और यह दोहा बोले—

भक्त संग छाडू नहीं, सदा रहुँ तिन पास।
जहां भक्त जन पग धरे, तहां धरू मैं माथ॥

एक दिन श्रीभाईजी रात्रिमें जहाँ सो रहे थे वहीं पर करीब ३॥ बजे उनका एक प्रेमी उनके चरणारविन्दके समीप आकर बैठ गया। क्योंकि श्रीभाइजी स्वयं अपने युगल सरकारकी लीलाओंमें इस समय अवश्य प्रवेश किया करते हैं वह प्रेमी यह सब बातें यत्किंञ्चित सुन चुका था। इसलिये उसने उनके श्रीचरणोंके समीप अपना मस्तक रख दिया तब श्रीभाईजी बोले कौन है? उस प्रेमीने कहा मैं हूँ। तब श्रीभाईजी बोले हाथ किसने लगाया। तब वह बोला मैंने तो नहीं लगाया। इसके बाद वह प्रेमी वहीं अपनी इष्ट मूर्तिके समीप बैठा हुआ ४॥ बजेतक मन ही मन स्तुति प्रार्थना करता रहा तथा कमेटीके समय श्रीभाइजीसे प्रार्थना करने लगा कि अबकि बार देश में चूरू जाते समय तो शुकदेव बाबू को साथमें ले जाना चाहिये। इसपर श्रीभाईजीने प्रेम प्रभावकी खूब रसीली बातें कही।

श्रीशुकदेवजीने अपने एक प्रेमीसे अपने तथा गंगाबाबूके वंशीबारेके ध्यानकी बातें बतलाई और बोले उसे चरण स्पर्श हो गये मुझे अभीतक दो दफे दर्शन मात्र हुए है उस दिनकी सत्याग्रह वाली कमेटीके समय मुझे भगवानने आकर दो साधन बतलाये इत्यादि खूब रहस्यप्रद बातें हुई। १९८७ वैसाख कृष्ण आज दिनके ३॥ बजेसे श्रीभाईजीने एकान्तमें अपने एक प्रेमीको बासेकी जगहमें बैठकर श्रीविष्णु भगवान् का ध्यान कराया तथा बोले कि और भी कुछ कहते हैं क्या? उस हतभाग्य प्रेमीने कहा कुछ नहीं। अहा, उस समय वह प्रेमी दर्शन करानेकी कह देता तो दर्शन भी हो जाते पर वह भूल कर गया। पर उस दिन उसके ध्यान खूब अच्छा हुआ।

इन दिनोंमें महात्मा गाँधीजीके सन् १९३० में नमक बनानेका सत्याग्रह आन्दोलनका श्रीगणेश हो रहा था। ब्रिटिश सरकार की तरफ से उस आन्दोलनको दबानेके लिये जगह-जगह घोर अत्याचार हो रहा था।

श्रीभाईजीका एक अत्यन्त प्रेमी अज्ञात साधु उन दिनों गयामें (बिहार) से ही एम०ए० पढ़ते समय कांग्रेसके बड़े अनुयायी थे वहांके कार्य करने वालोंके वे नेता थे। इसलिये उन्हें दो दफे ६-६ महीनेकी कड़ी जेलमें रहना पड़ा था। उस समय गयामें एक अंग्रेज जेलर बड़ा ही निर्दयी था। वह बहुत कठोरतासे कैदियोंको स्वयं मारता और सिपाहियोंसे मरवाता। सबकी भाँति वह जेलर उन साधु बाबाके पास जाकर उनके दोनों हाथ खड़े करनेके लिये कहा। इसपर बड़ी निर्भीकताके साथ साधु बाबा बोले नहीं करूँगा। तब उस जेलरके साथवालोंने तो केवल साधु बाबाको समझाया पर मारा नहीं। पर उस निर्दयी जालिम जेलरने नृशंसताके साथ मुक्के और बेतोंसे साधु बाबाको ऐसे मारा कि वे अधमरे से हो गये।

(उस जेलरकी मारसे ३ आदमियोंके प्राण ही निकल गये थे और अंतमें वह जेलर स्वयं अपने आप आत्मघात करके मर गया) हमारे साधु बाबा जब मार सहन न कर सके तब मुँहपर हाथ रखकर बैठ गये। इसलिये उस जालिम जेलरने समझा कि यह बेहोश हो गया है कहीं मर न जाय ऐसा सोचकर चला गया। वह प्रति सप्ताहमें साधु बाबाके पास एक बार आया करता

था। साधु बाबा बड़े दु:खी होकर अपना कोई रक्षक न समझकर उस अनाथ नाथ श्रीभगवान्‌के शरण होकर आर्त भावसे उनके परम पावन नामको नित्यप्रति एक हजार तो गिनती करके और बिना गिने हर समय नाम जप करने लगे। इससे पहिले साधु बाबाका भक्तिमार्गमें प्रवेश ही नहीं था। साधारण गीता आदि पढ़ लिया करते थे। पर अब तो सिवा भगवान् के कोई रक्षक न दीखनेसे आर्त होकर नाम जप करनेसे साधु बाबाको अनिर्वचनीय शांति मिली। और नाम जपसे चमत्कार यह हुआ कि वह नृशंस जेलर साधुबाबाकी कोठरी के आगेसे जाता और सजायाफ्ता कैदियोंको मारता पर साधु बाबाकी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखता मानो उनकी दृष्टिमें साधुबाबा वहाँ है ही नहीं। फिर आगे चलकर तो कांग्रेसके कार्यकर्ताओंमें परस्परमें रागद्वेष मान बड़ाई की ही प्रधानता रहनेके कारण उन साधुबाबाका मन उस कार्यसे सर्वथा हट गया और उससे सम्बन्ध ही छोड़ दिया। सं० १९८७ में एफ०ए०की पढ़ाई करते समय गृहस्थाश्रमसे उपराम होकर कुछ महीने पहिले गेरूआ वस्त्र धारण कर लिये थे। पहले पहल ये ही साधु बाबा कट्टर वेदान्ती थे।

श्रीभाईजीके चरित्रका वर्णन करते हुए इन साधु बाबाकी यह घटना इसलिये लिखनी आवश्यक है कि आगे चलकर इनका श्रीभाईजीके साथ अच्छेसे सम्बन्ध हो गया था। ऐसे उच्चकोटिके महात्माओंपर इस प्रकारका अत्याचार हो रहा है तथा देशके अनेकों मित्र नेताओंपर भी ऐसी बीत रही है इन अत्याचारोंको देख सुनकर श्रीभाईजीका प्रेमिल हृदय तिलमिला उठा।

बैसाख कृष्ण १। १९८७ ता० १४ अप्रैलको दिन प्रात:काल श्रीभाईजीने गोरखपुर स्टेशनपर आकर कानुपर वाले श्रीगणेश शंकरजी विद्यार्थी परिवारका प्रताप का हृदयसे स्वागत किया। वे आज नमक बनानेका सत्याग्रह करनेके लिये पडरौना बाबा राघवदासजीके निमन्त्रणसे जा रहे थे।

श्रीभाईजी भी अपने एक मित्र मुझको साथ लेकर इस नमक सत्याग्रहमें सक्रिय स्वयं भाग लेने के उद्देश्यसे पडरौना श्रीविद्यार्थीजीके साथ गये। क्योंकि तन, मन, धनसे श्रीभाईजीकी उस काममें सहानुभूति थी। वहाँ पर खुब जोशीले व्याख्यान होकर नमक नीलाम किया गया तब श्रीभाईजीने भी जरा-सा नमक २५/-की बोल देकर खरीद किया। रात्रिमें ११ बजे वापस गोरखपुर आ गये।

अब यहींसे श्रीगणेश करके इस आन्दोलनमें विशेषरूपसे भाग लेनेके लिये अपने गुरू श्रीगोयन्दकाजीसे खूब आग्रह पूर्वक प्रार्थना करने लगे किन्तु वे तो सच्चे दिव्यमूर्ति गुरू थे। वे इन्हें बड़े प्रेमसे समझाते रहे। श्री गोयन्दकाजीने वैशाख कृष्ण ७। ८७ को भिवानी से इन्हें पत्र लिखा—'तुमने लिखा हमारे बहुतसे मित्र गिरफ्तार हुए हैं। मैं सत्याग्रह में सम्मिलित होना चाहता हूँ और आपकी राय चाहता हूँ। दयाकरके मेरेको आज्ञा दी जाय जिसका जवाब कल इस प्रकारसे दिया है कि सत्याग्रहमें सम्मिलित मत होओ। वह तार तुम्हें मिला होगा× × ×

नमक के आन्दोलनमें सम्मिलित होनेके विषयमें तुमसे रूबरू ऋषिकेशमें बात हो गयी थी कि तुम्हारे सम्मिलित होनेसे इस आन्दोलनमें हमें कोई लाभ प्रतीत नहीं होता। राजनैतिक कामोंमें पड़नेसे भक्तिके प्रचारमें रूकावट होनेकी संभावना है। कल्याणका कार्य भी चलना मुश्किल है। सैकड़ों मनुष्य जेलमें जा रहे हैं, उनके साथ तुम भी यदि जेलमें चले गये तो इससे कुछ भी लाभ होनेकी संभावना नहीं है। प्रथम तो इस सत्याग्रहका क्या परिणाम होगा इसका भी पता नहीं है यदि उत्तम परिणाम हो तो भी तुम्हारे इसमें सम्मिलित न होनेसे कोई हानि नहीं है। तुम्हारे न सम्मिलित होनेसे यह कार्य रूकेगा नहीं। जो कुछ होने वाला है वही होगा।

भक्ति और ज्ञानका प्रचार है वह तो केवल पुरुषार्थ पर ही निर्भर है, इसलिये सत्याग्रहमें सम्मिलित होना किसी प्रकारसे उत्तम नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे उन मनुष्योंको सहायता दे सको तो उत्तम बात है।

नमक या वस्त्रके लिये सत्याग्रह करना तुम्हारे तथा

हमारे लिये उत्तम कार्य मालूम नहीं देता××× विशेष बात तुम चूरू आओ तब रूबरू कर सकते हो। बैसाख कृष्ण १२ तक चूरू पहुँचनेकी चेष्टा करनी चाहिये और भी भाई लोग आवें तो अच्छी बात है × × ×

श्रीगोयन्दकाजीके इस प्रकार परामर्श देनेपर भी हमारे श्रीभाईजीका हृदय अपने प्रेमीजनोंके दु:खसे द्रवित था इसलिये उनके विचारोंमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ तब आगे चलकर श्रीगोयन्दकाजीने स्पष्ट रूपसे श्रीभाईजीको इस नमक आन्दोलनमें शामिल होनेसे रोक दिया। इसीलिये शास्त्रोंमें श्रीगुरूदेवकी सन्निधिमें उनके समीप रहकर उनकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करनेकी इतनी महिमा है। श्रीभाईजीने भी सहर्ष अपने गुरूतुल्यकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली। उनके संकेतके अनुसार वैसाख कृष्ण १२। ८७ को श्रीभाईजी चूरू ऋषिकुलके उत्सवमें पहुँचे 'कृष्ण १३-१४ तक चुरूके उत्सवके कामको निपटाकर वैसाख कृष्ण ३० को मैं तथा दोनों संत बीकानेर अपने मित्र मंडलके सहित पहुँचे—प्रात: दुज़ारियोंकी बगीचीमें नित्यकर्म से निवृत्त होकर मेरे घरपर भोजन करके प्रेमीजनोंसे वार्तालाप करके करीब ३ बजे सीताबाई डागाके यहाँ दोनों संत जाकर उनमें सत्संगके बीज बोकर पूज्यनीया लालीमाईजीके यहाँ पधारे। पूज्यनीया लालीमाईको श्रीभाईजी एक उच्चकोटिकी संत माना है। इन्होंने बीकानेर शहरमें रहकर वहाँके स्त्री समाजमें हमारी विधवा बहिनोंका जीवन सुखमय बना दिया है उनके प्रभावसे बीकानेर शहर एक तीर्थ स्थानकी भाँति सत्संगका केन्द्र स्थान बना हुआ है—श्रीभाईजी एवं श्रीगोयन्दकाजी बीकानेर जाने पर उनके दर्शन किये बिना नहीं लौटते क्यों कि इनका परस्परमें बड़े श्रद्धा प्रेमका सम्बन्ध है। श्रीभाईजीने श्रीलालीमाईजीके यहाँ कहा—

पारसमें अरू संतमें बड़ा अन्तर जान।
वह लोहा कंचन करे वह करे आप समान॥

तत्पश्चात श्रीडूंगरदासजी राठीकी बगीचीमें सत्संग होकर वहींपर सन्ध्यावन्दन आदि करके मेरे यहाँ सबप्रेमी मंडल सहित भोजन किया—मैं मन ही मन मुग्ध होता हुआ।

'शबरी सगुन मनावे मोरे घर राम आवेंगे' इस पदकी आवृत्ति करता हुआ इनके आतिथ्यमें चक्कीकी तरह तल्लीन था। रात्रिमें ९॥ से ११ बजे तक श्रीरघुनाथजीके मंदिरमें बड़े ही मनोहर भाषण श्रीभाईजी एवं श्रीगोयन्दकाजीके हुए। दूसरे दिन प्रात:काल वहाँके अलख मठमें नित्यकर्म करके वहाँके ब्रह्मचर्याश्रममें भाषण आदि करके मेरे यहाँ भोजन करके श्रीगोयन्दकाजी तो श्रीमरूनायकजी के मन्दिरमें सत्संगके लिये पधारे और श्रीभाईजी सीताबाईके यहाँ अपने प्रेमी भक्तके साथ गये। क्योंकि अबकी बार इन्हींकी उत्कण्ठासे ये लोग बीकानेर पधारे थे। सीताबाई को सत्संगकी महिमा तथा तीव्र उत्कण्ठाके साथ त्यागमय जीवन बिताकर निरन्तर भजन करने का आदेश दिया।

इधर श्रीगोयन्दकाजी भी सत्संग कराकर सीधे स्टेशनपर आकर सबलोग आज ही रवाने हो गये।

श्रीभाईजी रतनगढ़, चुरू होते हुए श्रीरामायण अङ्कके लिये चित्र संग्रह आदि कार्योंको करते हुए जयपुर होते हुए गोरखपुर वैसाख शुक्ल १२। ८७ को पहुँचकर रामायणांकके कार्यमें जुट गये।

सीताबाई अपनी माताके साथ बीकानेरसे तत्काल गोरखपुर आ गयी और श्रीभाईजीने उन्हें अपने घरमें ही रहनेके लिये स्थान दे दिया। एक दिन सीताबाईके विष्णु भगवान्‌का प्रत्यक्षवत् ध्यान हुआ। श्रीभाईजीने प्रत्येक १२ मिनट पर ठीक समय पर भगवत् स्मरण करनेका सीताबाईको साधन बनाया। जिससे निरन्तर स्मरण हो सके। जितनी बार भूल हो उसके प्रायश्चित के लिये हरे राम वाले पूरे मंत्रकी २ माला के हिसाबसे जप करना चाहिये। श्रीभाईजीने अपने एक सखासे कहा कि किसी व्यक्तिमें श्रद्धा उत्पन्न नहीं करानी चाहिये।

सीताबाईकी माता के आग्रहसे उन्हें १४ दिनसे अधिक इस अमोघ सत्संगका लाभ न मिल सका। किन्तु उन्हें श्रीभाईजी पहुँचानेके लिये स्टेशन पर आये। तब

सीताबाईसे कहा कि आप किसी जगह रहें ईश्वरका विश्वास रखें कि वह हमारा उद्धार अवश्य करेगा और हर समय उसे अपने साथ देखते रहना चाहिये। आपके लिये मेरा तो यही संकल्प रहेगा कि आप पर ईश्वरकी दया हो, सत्संगकी तीव्र उत्कण्ठा रहनेपर श्रीभगवान् स्वयं उसकी पूर्ति कर सकते हैं। घरवालोंके आज्ञानुसार बर्ताव करनेसे परमार्थ में भी बहुत लाभ होता है। अपने एक सखाको बरबस उन्हें बीकानेर पहुँचानेके लिये श्रीभाईजीने आज्ञा दी तब उसको मन मसोस कर जाना पड़ा।

आषाढ़ शुक्ल ४। ८७ श्रीभाईजी अपने प्रेमी भाई रामकृष्णजी डालमियाँ के बुलानेसे दानपुर गये इन्हें सत्याग्रह देनेके लिये शुक्ल ६ को वापस गोरखपुर आ गये।

श्रीगोयन्दकाजी इन दिनोंमें गोरखपुर आये हुए थे। एक दिन श्रीभाईजीने अपने गुरूतुल्यसे सबको शीघ्र लाभ हो वैसा साधन पूछा। ये उनकी कृपा का अनुभव कर चुके थे। लोगोंको भी शीघ्र भगवद्दर्शन कैसे हो इसके लिये अपने प्रेमी जनोंकी अपेक्षा ये अधिक लालायित रहते थे। अस्तु श्रीगोयन्दकाजीने सबके लिये शीघ्र फलदायक साधन बताया कि जिस समय श्रीभगवान्का स्मरण हो उसी समय से श्रीभगवान्का निरन्तर स्मरण करे तथा अन्तर हो जानेपर पुनः उन्हें न भूलनेकी चेष्टा नित्य निरन्तर करनेसे बहुत लाभ है। इसी जन्ममें श्रद्धा रहा तो साधारण बात है। विशेष रूपसे स्मरणकी चेष्टा करनेवालेको बहुत शीघ्र भगवतदर्शन हो सकते हैं।

श्रावण कृष्णा ४। ८७ को श्रीभाईजीके आफिसके आगे बड़ी उमंगसे श्रीगोयन्दकाजीकी सन्निधिमें श्रीभाईजीने ऋषिकेश की भाँति लज्जा छोड़कर बड़ी उमंग के सहित मस्त होकर कीर्तन कराया जिसका बार-बार वर्णन करना उचित प्रतीत नहीं होता।

भाद्रकृष्ण ४। गोरखपुरमें साधन समिति श्रीभाईजीकी देखरेखमें बड़ी उमंगसे अपना काम कर रही थी उस कमेटीमें श्रीभाईजीने कहा कि बहुत थोड़े समयमें जीवन पलटनेका साधन है 'एक बार श्रीभगवान्को प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा कर ले फिर श्रीभगवान् उसका हाथ पकड़ लेते हैं सो अंततक नहीं छोड़ते।'

इन्हीं दिनोंमें पं० गोवर्द्धनजी महराजने रतनगढसे गोरखपुर आकर श्रीभाईजीको अपना पथ प्रदर्शक बनाया। आगे चलकर इनकी निष्ठा श्रीभाईजीके प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी।

इसी प्रकार पं० गौरी शंकरजी द्विवेदी भी इन्हीं दिनोंमें कल्याणके सम्पादन विभाग में काम करनेके लिये आये। जिनको अंततक श्रीभाईजीही निभाये।

इन दिनों के सत्संगमें श्रीभाईजी खूब उत्साहसे साधन समितिमें तथा बादमें भी लोगोंसे कहते 'मालाके द्वारा जप और मूर्ति पूजा ये दोनों कार्य बड़े उत्तम है क्योंकि इनके द्वारा भगवानका स्मरण अधिक होता है। इसमें धोखा नहीं हो सकता। मनसे नामके अक्षर देखकर या अक्षरोंका स्मरण करके मनको भगवान्के नाम जपमें लगाना चाहिये जिसके जैसा अभ्यास हो वह उसी प्रकार करे। मनको स्मरणके साथ लगनेकी अधिक चेष्टा करे। मनके कार्यका अधिक अभ्यास हो जानेसे उसे शरीर अनायास कर लेता है जैसे तकलीसे सूत कातना, माला फेरना इत्यादि।

मनसे एक समयमें एक ही कार्य होता है इसलिये बहुत प्रयत्न करना चाहिये। सत्य बात तो यह है—प्रथम तो ऐसी बातोंके होनेका अवसर ही कम मिलता है। पैसा पैदा करने वाले ही सबसे अधिक मिलते हैं। कुछ विवेक वालोंको इसपर समय अधिक लगानेके लिये टाइम नहीं मिलता। पैसा पैदा करनेवाले ही सबसे अधिक मिलते हैं। कुछ विवेक वालोंको इसपर समय अधिक लगानेके लिये टाइम नहीं मिलता किन्तु यह भगवान्की बड़ी दया है और हमलोगोंके बड़े भाग्य है कि इस प्रकारसे दैवी संपत्तिके गुणवृद्धि एवं भगवान्में प्रेमवृद्धि करानेवाला वातावरण हमें मिल रहा है। यदि कोई कहे कि अमुक काम कर लेनेके बाद भजनमें लगेंगे तो यह मनका धोखा है। जिस समय भगवद्भजनकी रूचि हो उसी क्षण और सब कामोंको गौण समझकर उन्हें छोड़कर प्रधानरूपसे

इसी कार्यमें लग जावें। मैं भी पहिले ऐसे विचारता था परन्तु भगवान्‌की इच्छा उस कामको पूर्ण करनेकी थी नहीं। यदि किसी व्यक्तिको किसी समय भगवद्भजन करनेकी रूचि उत्पन्न होती है और वह उस समय को टाल देता है तो वह बड़ी भारी भूल करता है। यदि किसी समय भगवद्भजन करनेकी रूचि हमारे मनमें उत्पन्न होती हो तो उस समयको व्यर्थ न जाने देना चाहिये। क्योंकि हमलोगोंको आज ऐसे उत्तम वातावरणसे अलग होकर लोभी, पापी पामरोंके साथ जीवन बिताना पड़े तो भगवत् भजन होना कठिन हो जायगा।

इसप्रकार श्रीभाईजी सत्संग कराते हुए अपने संपादनका प्रधान कार्य भी करते। अबकि बार श्रीरामायणांक बड़े ही सजधजके साथ भाद्रकृष्णामें तैयार हो गया। यह कल्याणके पांचवें वर्षका प्रथम अंक है इसके पहिले कल्याणके हजार ग्राहक थे इसके निकालने के बाद १२ हजार ग्राहक हो गये। इसी रामायणांक अंकको तैयार करके इसको साथ लेकर भाद्रा कृष्णा १२ को श्रीभाईजी अपने परिवार तथा परिकरोंको साथ लेकर भगवान् श्रीरामके जन्म स्थान अयोध्यापुरीमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरणोंमें रामायणांक भेंट करके वहाँ कुछ दिन रहकर वहाँके मंदिर एवं भगवान्‌के साकार विग्रह संत मंडलके दर्शन करके श्रीअयोध्याजीसे सब लोगोंको गोरखपुर भेजकर स्वयं श्रीभाईजी भाद्र शुक्ल ३को अपने प्रिय बन्धु डालमियाँजीकी चिन्तनीय स्थितिमें उन्हें सत्यपरामर्श देनेके लिये बिहारके दानापुरको गये। इनका संक्षिप्त परिचय पहिले दिया जा चुका है।

॥ श्रीहरिः ॥

उन्तालिसवाँ पटल

व्रजमें भ्रमण

चैत्र शु०१/१९८८ गोरखपुर, श्रीभाईजी इन दिनों साधन समिति एवं सत्संगमें खूब उत्साहसे प्रवचन करते। नवरात्रिमें प्रात:काल रामायणके उत्तरके आरंभमें भरत मिलापके प्रसंगको बड़े सुन्दर ढंगसे कहते। इन्हीं दिनों भाईजीने वयोवृद्ध पूज्य श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्देको सर्वप्रथम गोरखपुर कल्याण सम्पादन विभागमें सहयोग देनेके निमित्त बुलाया। वे श्रीभाईजीमें अतिशय प्रेम और श्रद्धाका भाव रखते थे जिसका परिचय आगे चलकर पाठकोंको मिलेगा।

चैत्र शु० ९/१९८८ श्रीभाईजी अपने प्रिय परिवार तथा प्रेमी परिकरोंको साथ लेकर आज प्रात:काल गोरखपुरसे रवाना होकर व्रजयात्रा करनेके लिये सर्वप्रथम अलीगढ़ संकीर्तन सम्मेलनमें चैत्र शु० १० को प्रात: सम्मिलित हुए। यहाँपर अनेक सन्त महात्मा कीर्तन मंडलियाँ तथा श्रीलाडलीशरणजी वृन्दावनवालोंकी रासमण्डली आयी हुई थी। आज 'गोदन' लीला हो रही थी। उसमें श्रीभाईजी भी सम्मिलित हुए। प्रसंग यह था कि भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधिकाजीसे मिलनेके लिये गोदनवारीका वेश बनाकर आये थे। श्रीमतीजी कह रही थी कि मेरे अमुक अंगमें भगवान्‌के अमुक स्वरूपको अंकित कर दे और बड़ी विह्वल हो रही थीं। वहाँ पर बड़े भावुक दर्शक लोग एकत्रित हुए थे जिससे रासलीलामें प्रेमवर्षा हो रही थी। श्रीभाईजी आजकल श्रीराधाकृष्णकी व्रजलीलाके उपासक बन ही चुके थे। अत: इस रासलीलामें मुग्ध-विह्वल होकर अजस्र रूपसे नेत्रोंके द्वारा अश्रु प्रवाहित करते रहे। इन वर्षोंमें रासलीला देखनेका श्रीभाईजीका यह अभूतपूर्व पहला अवसर था।

चैत्र शु० ११/१९८८ को अलीगढ़से सायंकालके समय लारीमें बैठकर सीधे चिन्मय वृन्दावन धाममें रात्रिके समय प्रवेश किया। सर्वप्रथम स्टेशनके पास मिर्जापुरवालोंकी धर्मशालामें विश्राम किया। इस यात्रामें परिवारसहित मैं और प्रिय श्रीजयदयालजी डालमिया भी गोरखपुरसे साथ हो गये थे और भी कई प्रेमी परिवारके सहित साथ थे तथा श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठिया आदि कई सज्जन बम्बईसे चलकर श्रीवृन्दावनमें साथ हो गये थे।

वृन्दावनके श्रीराधारमणजीके मंदिरवाले गोस्वामी सज्जनोंको श्रीभाईजीके यहाँ आनेकी सूचना मिलते ही वे बड़े आग्रह एवं प्रेमके सहित श्रीभाईजीको सब प्रेमीजनोंके सहित अपने मंदिरके समीप एक मंदिरमें ले जाकर वहाँपर सब प्रकारसे आतिथ्य सत्कारसे तीन दिनोंतक निवास कराया।

वृन्दावनके प्रधान श्रीविग्रह श्रीविहारीजी, श्रीराधारमणजी, श्रीराधावल्लभजी तथा मदनमोहनजी, गोविन्ददेवजी, ललितकिशोरीजीके बड़े मन्दिर आदिके सहित मुख्य मंदिर एवं वहाँके वयोवृद्ध संत श्रीरामकृष्णदासजी महाराज एवं श्रीप्रियाशरणदासजी महाराज तथा श्रीसंकर्षणदासजी आदि प्रधान संतों एवं सेवाकुंज, निधिवन, वंशीवट, कालियदह आदि मुख्य स्थलोंके दर्शन तथा महारानी श्रीयमुनाजीमें स्नानादि करते हुए कल्याणके इस वर्षमें विशेषांकके रूपमें निकलनेवाले 'श्रीकृष्णांक'के लिये प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मंदिर तथा स्थानोंके फोटो एवं विद्वानोंके लेख आदि सामग्री लेनेकी व्यवस्था करके वैशाख कृ० १/१९८८ रात्रिको हाथरस पहुँचे। यहाँपर श्रीजानकीप्रसादजी बागलाके प्रबन्धसे वहाँकी हाईस्कूलमें श्रीभाईजीने सर्वसाधारणकी बड़ी सभामें भक्ति एवं नाममहिमापर बड़ा ही सारगर्भित भाषण दिया एवं रात्रिभर वहाँ विश्राम किया।

वै०कृ० २/८८ प्रात:काल हाथरससे चलकर श्रीप्यारेलालजी डागाके द्वारा आयोजित किये हुए 'गीता ज्ञानयज्ञ' नामक वृहत् संत सम्मेलनमें सम्मिलित होनेके लिये काजिमाबाद पहुँचे। यहाँपर पूज्यपाद श्रीअच्युतमुनिजी, पूज्यपाद श्रीभोलेबाबाजी, पूज्यपाद श्रीकृष्णानंदजी कीर्तनमंडलीवाले तथा अपने अनेक परिकरोंके सहित पूज्यपाद श्रीहरिबाबाजी आदि उच्चकोटिके संत एवं श्रीगौरीशंकरजी गोयन्दका खुर्जावाले, श्रीरामशंकरजी मेहता अनूपशहरवाले इत्यादि बहुतसे प्रेमी भक्त पहलेसे ही एकत्रित हो चुके थे। यहाँ पर प्रात: ४ बजेसे पूज्यपाद श्रीहरिबाबाका विलक्षण संकीर्तन अपने परिकर समुदायके सहित बड़ी ही मस्तीसे हुआ करता था। सौभाग्यवश जिन लोगोंको उनके संकीर्तनमें सम्मिलित होनेका सुअवसर मिला हो वही उसका आनन्द अनुभव कर सकते हैं। वर्णन तो वे भी नहीं कर सकते। प्रात:काल पहले पूज्यपाद श्रीभोलेबाबाजीके द्वारा उपनिषदकी कथा एवं पूज्यपाद श्रीअच्युतमुनिजीके द्वारा श्रीमद्भागवतकी वेदान्तपर बड़ी सुन्दर कथा होती। दोपहरमें कथा-कीर्तन करनेवालोंके कीर्तन होनेके पश्चात् श्रीभाईजीका प्रवचन होता जिसमें श्रीभाईजीने बड़ी नम्रताके साथ कहा—एक भक्तने कहा है—

अब तो बंध मोक्षकी इच्छा, व्याकुल कभी न करती है।
मुखड़ा ही नित नव बंधन है, मुक्ति चरणसे झरती है॥

श्यामसुन्दरमें ऐसे अनिवर्चनीय दिव्य गुण हैं कि जीवनमुक्त महात्मागण भी उन्हें सुनकर मुग्ध हो जाते है इसीलिये उनका एक नाम है— **'आत्मारामगणाकर्षी'**। यदि हम लोग भी उन श्यामसुन्दरके दर्शन कभी कर सकें तो धन्य हो जाय। मैं अपने मनकी बात कहता हूँ कि यदि हम लोग अपने मनको उनके चरणोंमें लगाकर उनकी शरण हो जाय तो वे सहज ही हमें दर्शन दे सकते हैं।

इसीलिये गीताजीमें कहा है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

दूसरे दिन श्रीभाईजीने श्रीभगवन्नाम महिमाके सम्बन्धमें अपने अनुभवोंमेंसे कुछ घटनायें सुनाकर ऐसे जोशीले शब्दोंमें भाषण दिया कि लोग सुनकर मंत्रमुग्ध हो गये। श्रीभाईजीने कहा—जिसने किसी भी प्रकारसे एक बार श्रीभगवान्का नाम ले लिया उसके भला होनेमें कुछ भी संदेह नहीं है। इस बातका मेरे पास प्रबल प्रमाण है चाहे इस बातको कोई न माने परन्तु यह बात सर्वथा शास्त्र सम्मत और संतोंके द्वारा अनुभव की हुई है। इसलिये सज्जनों हम सबको श्रीभगवन्नामकी ही शरण लेनी चाहिये। कलियुगमें अन्य कठिन साधन हरेक व्यक्ति द्वारा हो नहीं सकते और सच कहा जाय तो नामके समान दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। नाम आत्माका प्राण है। नाम भगवत् अवतार है, भगवान है। यह मैं बहुत जोरके साथ कहता हूँ नामके समान नाम ही है। नाम ऐसी वस्तु है कि इससे मंगल ही होता है।

'भाव कुभाव अनख आलसहू
नाम जपत मंगल दिसि दसहू।'

सबके कामकी बात कह रहा हूँ। आप लोग इन बातोंको व्याख्यान न समझकर नित्य नियमपूर्वक कुछ नाम जप करनेका नियम करें। यदि यह नियम आपका निभ गया तो स्मरण रखिये आपको भगवान् मिल जायेंगे। नाम आपको सारे दु:खोंसे छुड़ा देगा अर्थात् संसार समुद्रसे तार देगा। निश्चय ही आपका उद्धार हो जायेगा। नाम जप करनेकी आप प्रतिज्ञा कीजिये। हमारी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे भगवान् अर्थात् प्रतिज्ञा हमारी निभायेंगे भगवान्। ऐसा विश्वास करके निश्चिन्त हो जाइये। सज्जनों मुझे नामसे जो लाभ हुआ है वह मैं वर्णन नहीं कर सकता। नाम असंभवको संभव कर देता है। इसलिये अपनी कमजोरियोंको देखकर निराश न होइये। गरूड़ पुराणमें कहा है—

पापानलस्य दीप्तस्य मा कुर्वन्तु भयं नरा:।
गोविन्द नाम मेघोघैर्नश्यन्ते नीरविन्दुभि:॥

हे मनुष्यों! प्रदीप्त पापाग्निको देखकर भय न करो, गोविन्द नाम रूप मेघोंके जल विन्दुओंसे इसका नाश हो जायेगा। अतएव साधकके हाथमें बस एक

ही बात है कि अपनी जानमें गफलतसे, प्रमादसे अथवा अन्य किसी भी कारणसे नामजप करनेमें कमी न होने दें।

इस प्रकार श्रीभाईजीके भाषणको काजिमाबादमें एकत्रित हुए समुदायने सब प्रवचनोंसे बढ़कर आदर दिया और श्रीभाईजीके प्रति बड़े आकर्षित हुए।

पूज्यपाद श्रीहरिबाबाने श्रीभाईजीसे उनके मुख्य मुख्य प्रेमीजनोंके साथ एकान्तमें कई व्यक्तियोंके भगवद्दर्शनकी एवं विलक्षण अनुभवोंकी बातें विस्तारसे सुनायी।

रात्रिमें एक दिन हरिबाबाके परिकरों द्वारा चैतन्य महाप्रभुके द्वारा एक धोबीको हरिनाम देनेवाला अद्भुत अभिनय किया। जिसका अभिनय करनेवालों एवं दर्शकोंपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। सुना गया कि उन अभिनय करनेवालोंमेंसे एक व्यक्ति तो कई दिनोंतक पागल हो गया। इस प्रकार ३-४ दिन काजिमाबादमें बड़ा आनन्दोत्सव रहा।

वै० कृ०६/८८ को कई प्रेमीजनोंके अनुरोधसे श्रीभाईजी मोटरकारसे अनूपशहर जाकर वापस आ गये।

वै० कृ०७/८८ को श्रीभाईजी अपने परिवार तथा प्रिय श्रीजयदेवजी डालमियाँके साथ गोरखपुर रवाना हो गये और अन्य प्रेमीजन काजिमाबादसे ही श्रीगोयगन्दकाजीके सत्संगमें स्वर्गाश्रम गये। इन लोगोंके तथा स्वर्गाश्रमके अनेक प्रेमीजनोंके सहित श्रीगोयन्दकाजीके विशेष अनुरोधसे श्रीभाईजी शीघ्र ही वै०शु० ५ को स्वर्गाश्रम पहुँचे। हरिद्वारसे सीधे लारीमें बैठकर मुनिकी रेतीमें आकर यहाँपर श्रीभाईजीके एक मित्रके पुत्रको मियादी बुखार खूब जोरसे हो रहा था जिसको देखकर उचित परामर्श देनेके लिये कुछ समयतक यहाँ ठहरे क्योंकि यह बालक श्रीभाईजीके साथ गोरखपुरसे चलकर व्रजयात्रा करके काजिमाबादमें बीमार हो गया था। इसलिये वहींसे स्वर्गाश्रम अपने अभिभावकोंके साथ आ गया था। अत: इस बालककी व्यवस्था करके श्रीभाईजी स्वर्गाश्रमके वट वृक्षके नीचे होनेवाली सत्संगमें सम्मिलित हुए। इस बार श्रीभाईजीके साथ श्रीगोयन्दकाजीके छोटे भाई श्रीमोहनलालजी गोयन्दका भी थे। इनका इन दिनोंमें श्रीभाईजीके प्रति आकर्षण विशेष होने लगा था।

स्वर्गाश्रममें ३-४ दिन श्रीभाईजी रहे तबतक वहाँके प्रेमीजनोंकी अतिशय उत्कंठासे श्रीभाईजीने भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, वैराग्य, भगवत्कृपापर विश्वास और भगवन्नाम सम्बन्धी अद्भुत प्रभावोत्पादक भाषण दिये जिससे वहाँके सत्संगी लोग मुग्ध हो गये।

वै० शु० ८/८८ को स्वर्गाश्रमसे रवाना होकर पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबा (स्वामी पूर्णानंदतीर्थ)जीके दर्शन करनेके लिये काजिमाबाद वै०शु० ०९/८८ को प्रात:काल पहुँचे। साथमें मैं, श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, श्रीईश्वरदासजी, श्रीशिवकृष्णजी डागा आदि ६-७ प्रेमीजन काजिमाबाद गये थे।

यहाँपर पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाने श्रीभाईजीसे गोरखपुरकी साधन समितिके नियम पूछकर उसमें पहिले और दूसरे नियम १-सर्वत्र भगवद्दर्शन एवं २-प्रत्येक पाँच मिनटसे भगवत्स्मरण करनेकी बड़ी प्रशंसा की और बोले कि इन दो नियमोंको तो पालन करनेकी हम भी चेष्टा करते हैं। इसके सिवाय उनसे एकान्तमें बहुत सी रहस्यप्रद बातें हुईं। वहाँपर केवल दो दिन रहकर श्रीभाईजी वहाँसे रवाना होकर वै०शु० ११/८८ को कई प्रेमीजनोंके सहित गोरखपुर आकर अपने परिवारवालोंको साथ लेकर वै०शु०१२/८८ को वहाँसे रवाना होकर कलकत्ते अपनी बहिन कमलाबाईकी पुत्री भगवान् देवीका भात (मायरा) भरनेके लिये गये। वहाँपर विवाहका काम निपटाकर वहाँसे

ज्येष्ठ कृ० ५/८८ को वापस गोरखपुर आकर कल्याणके 'श्रीकृष्णांक' नामक छठें वर्षके विशेषांकके कार्यमें जुट गये।

इन दिनोंमें कमेटी (साधन समिति)में तथा बादमें भी प्रात:काल श्रीभाईजी नित्यप्रति बड़े उत्साहके सहित सत्संग कराते थे।

इन दिनोंमें श्रीभाईजीको भगवान् श्रीराधाकृष्ण युगल सरकारकी व्रज-माधुर्य-लीलाओंमें प्रवेश होना प्रारंभ हो गया था जिसका पता उन्हींके द्वारा अपने किसी प्रेमीको कहनेसे पीछेसे लगा था। अबसे श्रीभाईजी

सर्वभूत हित-रत

बाह्यरूपसे प्रपंचका कार्य करते हुए अपने सूक्ष्म शरीरसे जीवात्माको भगवान् श्रीराधाकृष्णकी माधुर्य लीलाओंका रसास्वादन करनेके लिये विशेष रूपसे अन्तर्जगतमें ही विहार करने लगे थे। ये अनिवर्चनीय गुह्यातिगुह्य ऐसी विलक्षण बातें है कि प्रथम तो जगत्में विषयभोगोंमें रचे पचे जीवोंके सामने आ ही नहीं सकती। इसके सिवा किसी अनिर्वचनीय भगवत्कृपासे किसी भाग्यशाली व्यक्तिको यत्किञ्चित सुननेको मिल भी जाय तो वह व्यक्ति इन बातोंके सुननेका यथार्थ अधिकारी न होनेसे उन्हें हृदयंगम ही नहीं कर सकता इसलिये वास्तवमें ये बातें अनुभव करनेकी वस्तु ही है। कहने-सुननेकी नहीं इसलिये उन बातोंका वर्णन जहाँ तहाँ किया जाता है। वह केवल संकेत मात्र ही किया जाता है क्योंकि हमारे चरित्रनायक श्रीभाईजीके इतने अनिवर्चनीय अनुभव है कि वे प्रकाशमें आ ही नहीं सकते। इतनेपर भी यदि कोई उन्हें वर्णन करनेका दु:साहस करे तो वह पागलपनके सिवाय और कुछ नहीं क्योंकि यथार्थ वर्णन कर ही नहीं सकता।

श्रीभाईजी इन्हीं माधुर्य लीलाओंका अहर्निश रसास्वादन करनेके लिये इस बाह्य प्रापंचिक जगत्से अलग एकान्तमें जीवन बितानेके लिये छटपटाया करते थे पर श्रीभगवान्‌को उनके स्थूल शरीरको प्रपंचमें रखना ही अभीष्ट था। सं० १९८८ के श्रावण शुक्लामें कल्याणके छठें विशेषांक 'श्रीकृष्णांक'का काम समाप्त करके ये अपने प्रियमित्र डालमियाँ बन्धुओंके लिये करीब ८-१० दिन दानापुरमें रहे।

भाद्र कृ० से शु० तक ये श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका द्वारा अनुवाद किये हुए श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्यकी छपाईके कामके लिये गोरखपुरमें ही रहे। इसके बाद श्रीगीता परीक्षा समितिकी मीटिंग तथा चन्द्रग्रहणपर भाद्र शु० १३-१५ तक परम पावनी काशीपुरीमें श्रीनीरघाटपर मारवाड़ी संस्कृत कालेजमें निवास करके परम पुनीत श्रीगंगाजीके दर्शन-स्नान-पानका आनन्द लेते रहे।

आश्विन मासमें गोरखपुरमें ही रहकर वहाँका काम निपटाकर कुछ समयके लिये यहाँसे अलग रहनेके लिये कार्तिक कृ० ८ को रतनगढ़, बीकानेर गये। साथमें श्रीगोयन्दकाजीके लघु भ्राता एवं दत्तकपुत्र श्रीमोहनलालजी गोयन्दका भी कई महीनों तक रहे। श्रीमोहनलालजीका इन दिनोंमें श्रीभाईजीके प्रति अत्यन्त प्रेमाकर्षण था। ये कहा करते थे कि मैंने श्रीभाईजीके सदृश उच्चकोटिका संत न तो देखा है और न सुना है। इसीलिये कुछ महीनोंके लिये इन्होंने श्रीभाईजीकी देव दुर्लभ सेवा-सत्संगका आनन्द लूटा।

मार्गशीर्ष मासमें चुरू ऋषिकुलके वार्षिकोत्सवमें जाकर वहाँकी सुव्यवस्थामें परामर्श देते रहे।

पौष कृ० ६/८८ को रतनगढ़में रात्रिमें होनेवाली सत्संगमें जप यज्ञमें मालायें लिखानेके लिये मैं सबसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना की। इसपर वहाँके प्रसिद्ध वयोवृद्ध सेठ श्रीतोलारामजी थरडने श्रीभाईजीसे कहा कि यदि होलीतक आप नित्य प्रति इस

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

मंत्रकी १०१ माला जपनेका नियम लें तो मैं ५० माला नित्यप्रति जपनेका नियम ले सकता हूँ। श्रीभाईजीने बड़े ही प्रेमोत्साहसे १०१ माला नित्यप्रति जपनेका नियम ले लिया और अनेक स्थानोंमें भ्रमण सत्संग आदि अनेकों कार्य करते हुए रात्रियोंमें जगकर नियमका पालन किया।

अब बम्बईवाले प्रेमीजनोंके प्रेमाकर्षणसे खिंचकर श्रीगोयन्दकाजीने श्रीभाईजीको साथ लेकर बम्बई जानेका निश्चय किया।

रतनगढ़से चलकर सर्वप्रथम सुजानगढ़में पौष कृ० ८ को ठहरे। इन दिनों कुछ समयसे श्रीमोहनलालजी गोयन्दकाने अपने यज्ञोपवीतको विसर्जन कर दिया था। श्रीभाईजीकी आज्ञासे सुजानगढ़में उन्होंने पुनः श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीसे संक्षिप्त संस्कार कराकर यज्ञोपवीत धारण किया।

पौष कृ० १०/८८ को अहमदाबादमें प्रिय गुलाबरायजी नेमाणीके पास स्वदेशी मिलमें ठहरकर प्रातःकाल वहाँके प्रसिद्ध भक्त पं० श्रीगिरिजाशंकरजी ज्योतिषीके घरपर श्रीकृष्ण भगवान्‌के प्रेमके सम्बन्धमें बड़ी ही रसीली भाषामें भाषण दिया। दोपहरमें साबरमतीपर महात्मा गाँधीजीके आश्रममें गये। वहाँपर काका कालेलकरजीसे खादीके सम्बन्धमें तथा वहाँके कर्मचारियोंकी बड़ी संख्यामें सायंकाल भक्तनाम महिमापर भाषण दिया और भी कई जगह श्रीभाईजी तथा श्रीगोयन्दाकाजीके भाषण हुए। दूसरे दिन रात्रिमें वहाँसे रवाना हो गये।

पौष कृ० १२/८८ को प्रातःकाल बम्बई सेन्ट्रल स्टेशनपर सैकड़ों प्रेमीजन गाड़ीके पहुँचनेपर युगल मूर्तियोंका अभिवादन करते हुए उन्हें पुष्प माला पहनाने लगे। बड़ी मुश्किलसे उन्हें इस कार्यसे निवृत्त करके मोटरकारसे सत्संग भवन (ठाकुरद्वारा रोड, नेमाणीजीकी बाड़ीमें) आकर नित्यकर्म करके वहाँपर दोनोंके भाषण हुए।

पौष शु० ६/८८ तक बम्बईमें रहे तबतक नित्य नये-नये स्थानोंमें जैसे श्रीनरनारायणजीके मंदिर, चाँदी बाजार, बुलियन एक्सचेंज, गीता पाठशाला, माधोबाग, कपड़ा बाजार, राममंदिर, महाजनी पट्टी, शान्ताक्रूज, आदिमें श्रीभाईजीके भाषण हुए। पर सबसे बढ़कर एक दिन सत्संगभवनमें प्रातःकाल अनेक प्रेमीजनोंके आग्रहसे श्रीभाईजीनें प्रारंभमें भगवान्‌की प्रार्थना करते हुए उनकी मानसिक पूजा करना प्रारंभ किया कि उनकी अवस्था विलक्षण होने लगी। जिससे वे उस वर्णनको अधूरा ही छोड़कर पासमें ही एक कोठरीके अंदर एकान्तमें जाकर कोठरीको भीतरसे बंद कर लिया। ऐसी अवस्था श्रीभाईजीकी समय-समयपर हो जाया करती थी वे उसे संवरण करना भी चाहते थे पर जब परवश हो जाते तब उन्हें ऐसा करना पड़ता था। बम्बईमें श्रीजमनालालजी बजाज, श्रीलक्ष्मणदासजी डागा आदि अनेकों मित्रोंसे मिले। बम्बईसे रवाना होकर पौष शु० ७ को अहमदाबादमें आये। दिनभर ठहरकर वहाँसे रवाना होकर पौष शु० ८ को रात्रिके समय रतनगढ़ पहुँचे। रतनगढ़में अनेकों बार श्रीभाईजीके पुराने मित्र राजनैतिक नेता लोग वहाँपर आने लगे और श्रीभाईजीके घरपर ही ठहरने लगे। श्रीभाईजी उनका आतिथ्य बड़े प्रेमसे करते जिससे बीकानेर राज्यको यह बात बहुत अखरने लगी। श्रीभाईजीके आसपास सी.आई.डी. घूमने लगे। इधर श्रीभाईजी राजनीतिक कामोंसे अलग रहनेपर भी उन प्रेमीजनोंका आतिथ्य प्रेमपूर्वक करते ही थे यह बात भी बीकानेर राज्यको सहन नहीं हुई जिससे श्रीभाईजी माघ कृ०३/८८ को रतनगढ़से सहसा रवाना होकर गोरखपुर आना पड़ा। साथमें श्रीमोहनलालजी गोयन्दका आदि थे।

इन्हीं दिनों दानापुरमें श्रीभाईजीके एक प्रेमीबन्धुको किसी कारणवश बड़ी चिन्ता हो रहीं थी। उन्होंने श्रीभाईजीको लिखा कि इस कष्टसे हमें मुक्त कर दीजिये। फिर आपको बार-बार कष्ट न देंगे। इसपर श्रीभाईजी कुछ देरतक नेत्र बंद करके मौन रहे फिर मेरे सामने मोहनलालजीसे कहा कि उन्हें लिख दो कि भगवान्‌से प्रार्थना करे वे सब ठीक करनेवाले हैं और उनका वह कष्ट सहज दूर हो गया। अनेकों बार उन्हें श्रीभाईजीने अनेकों घोर संकटोंसे बचाया है क्योंकि संकटके समय वे श्रीभाईजीका ही आश्रय लेते थे।

माघ कृ० १२ को गोरखपुरसे दानापुर जाकर माघ शु० २ को वापस गोरखपुर आये। इन दिनोंमें श्रीभाईजीके पास शुकदेवजी रात्रिमें सोया करते थे। एक दिन श्रीशुकदेवजीको एक दिव्य स्वप्न आया। जिसका वर्णन उन्होंने मुझसे किया। वह उन्हींके शब्दोंमें सुनिये—

शुकदेवजीने श्रीभाईजीसे कहा कि आपके अन्तर्जगतकी बातें सुननेकी मेरी बड़ी इच्छा रहती है। परन्तु अपनी अपात्रताको देखकर कुछ कह नही सकता। इसपर श्रीभाईजी बोले इसमें अपात्रताकी कोई बात नहीं है और कुछ अपने व्रजलीलाओंके अनुभवकी बातें कहीं जिसे सुनकर श्रीशुकदेवजीने कहा हमें भी श्रीभगवान्‌की नित्यलीलाओंमें साथ ले चलिये। तब श्रीभाईजीने कहा

कि स्वप्नमें जा सकते हो। इसके बाद एक रात्रिमें श्रीशुकदेवजीने स्वप्न देखा कि श्रीभाईजी तेजीसे चलकर जा रहे हैं और पीछे-पीछे श्रीशुकदेवजी भी जाने लगे परन्तु श्रीभाईजी बहुत तेजीसे चलकर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलामण्डपके अन्दर चले गये। दरवाजेपर श्रीनंदबाबा बैठे हुए थे। उन्होंने श्रीशुकदेवजीको रोक दिया तब श्रीशुकदेवजीने कहा मैं श्रीभाईजीके साथ आया हूँ और श्रीभाईजीके हाथकी चिट्ठी भी दिखायी पर नंदबाबाने कहा कि भीतर जानेकी आज्ञा नहीं है। श्रीशुकदेवजीके बहुत कहनेपर भी कोई सुनवायी न हुई तब श्रीशुकदेवजी वहीं खड़े-खड़े छड़ोंकी खिड़कियोंमेंसे भीतर जो गोपांगनाओंके साथ श्रीभगवान्की नृत्यरासलीला हो रही थी उसे देखने लगे और उन्हें बड़ा आनन्दका अनुभव होने लगा। श्रीभाईजी तो भीतर थे ही श्रीशुक्रदेवजी फाटकपर आये। तब श्रीशुकदेवजीने उनसे कहा कि मैं श्रीभाईजीके साथ आया हूँ। पर नंदबाबा मुझे भीतर नहीं आने देते। तब श्रीभाईजीने नंदबाबासे कहा कि इनके आनेकी मनाही नहीं है और शुकदेवजीसे कहा फिर कभी आ सकते हो। इसके बाद श्रीशुकदेवजीकी आँखें खुल गयी। स्वप्न भंग हो गया। इस प्रकार श्रीभाईजीका प्रभाव उनके कई अन्तरंग प्रेमियोंको प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा था पर श्रीभाईजी ऊपरसे ऐसा व्यवहार करते थे कि उन्हें यथार्थ रूपसे कोई पहचान नहीं सकता था।

चौदह वर्षका एक बालक आनन्द मंडोलियाकी माताके देहान्त हो जानेसे उसका दु:खी पिता आनन्दको और आनन्दकी एक छोटी बहनको लेकर गीताप्रेसका नाम सुनकर आश्रय पानेके लिये गोरखपुर आया। प्रेसवालोंने कह दिया कि यह कोई धर्मशाला नहीं है।-हम यहाँ नहीं रख सकते तब वह दु:खी प्राणी स्टेशन चला गया। श्रीभाईजीको जब इस बातका पता लगा तब उन्होंने तत्काल स्टेशन आदमी भेजकर उन्हें बगीचेमें बुलाकर बड़े प्रेमसे वार्तालाप किया। उसने कहा इन बालकोंको कुछ दिन आप रख लें तो मैं अपनी आजीविकाका प्रबन्ध कर सकूँगा।

श्रीभाईजीने बड़े उत्साहपूर्वक आनन्द और उसकी अपनी बहनको अपने बगीचेमें रखकर उनका अपने पुत्र-पुत्रीकी भाँति कई महीनोंतक लालन-पालन किया। बालक अवस्थाके कारण आनन्द उन दिनों कुछ उद्दण्डता कर लेता था जिसे प्रेसवाले उन्हें रखना नहीं चाहते थे क्योंकि उसके रहनेसे अन्य लोगोंको कुछ असुविधा रहती थी। इसपर प्रेसमें श्रीभाईजीने सबके सामने कुछ डाँटकर कहा कि क्या गीताप्रेस केवल बड़े बड़े भक्तोंके चरित्र छापनेवाली मशीनोंका नाम है। जो किंसी अनाथ व्यक्तिको आश्रय नहीं दे सकती। उन बच्चोंको प्रेसमें तो रखा नहीं गया है। हम अपने घर चाहे जिसे रक्खें इसमें किसीको क्यों आपत्ति होनी चाहिये। ऐसे ऐसे कई अनाश्रित व्यक्तियोंको श्रीभाईजी आश्रय देते थे। कुछ दिन बाद वे दोनों बालक चले गये। और आनन्द दिल्ली जाकर नौकरी करने लग गया।

इन्हीं दिनोंमें एक चमत्कारपूर्ण बड़ी विलक्षण घटना घटी कि श्रीभाईजीके एक मित्र श्रीकृष्णकान्तजी मालवीयकी इलाहाबाद जेलसे बदली बस्ती जेलके लिये हो गयी थी। उनका तार प्रेसमें करीब प्रात: १० बजे आ गया था। पर श्रीभाईजीको बगीचेमें शाम ६॥ बजे मिला। उसमें लिखा था कि आज संध्या ७ बजेकी ट्रेनसे मैं दस आदमियोंके सहित गोरखपुरके स्टेशनपर पहुँच रहा हूँ। इसलिये आप खानेका प्रबन्ध करवा दें। श्रीभाईजीने कहा कि मुझे यह तार पढ़कर बड़ी चिंता हुई कि प्रेसवालोंने न तो तार भेजा परन्तु न तांगा और न खानेका प्रबन्ध ही किया। अब समय केवल आधा घंटेका ही रह गया है। उस समय श्रीभाईजी गोरखनाथ मन्दिरके पास एक किरायेके छोटे बगीचेमें रहते थे। वह सुनसान जंगल-सा था। वहाँ कोई सवारीका साधन भी नहीं था, न ही कोई भोजन सामग्री तैयार थी। अस्तु, मैं उसी समय पैदल ही स्टेशन जानेके लिये तैयार हो गया।

इतनेमें श्रीभाईजीने देखा कि एक तांगेमें एक व्यक्ति मिठाई, भोजन सामग्री और फलोंकी दो टोकरी लेकर आया और उसने कहा कि श्रीबालमुकुन्दजीने

(उक्त बगीचेके मालिक) आपके लिये भेजा है। यह बात सुनकर श्रीभाईजी बड़े ही आश्चर्यचकित होकर प्रसन्न हुए और उसी आदमीके सहित अपना एक आदमी देकर तांगा और फल- मिठाई लेकर स्टेशन भेज दिया और उस मित्रका बड़े ही प्रेमसे आतिथ्य सत्कार हुआ।

श्रीभाईजीने कहा मनुष्य जीवनमें अनेकों बार ऐसी-ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनायें घटती हैं फिर भी प्रमादवश मनुष्य श्रीभगवान्‌की कृपालुताको भूल जाता है।

श्रीभाईजीने कहा कि ऐसी एक घटना कई वर्षों पूर्व कलकत्तेमें हुई थी। एक डाक्टर कैलाशबाबूकी माँ मरणासन्न बीमार थीं। तब कैलाशबाबूने अपनी माँसे पूछा कि आपकी अब क्या अभिलाषा है। तब उस वृद्धाने कहा कि मेरी इच्छा अंजीर खानेकी है। तब उसी समय वह डाक्टर मोटर लेकर बाजारोंमें गया और सारे बाजारोंमें बहुत ढूँढ़नेकी चेष्टा की पर उसे अंजीर नहीं मिली। वह निराश होकर घर आकर अपने पूजाके एकान्त स्थानपर जाकर श्रीभगवान्‌के सामने करुण हृदयसे सच्चे भावसे रोकर उस अंज़ीरके लिये प्रार्थना करने लगा। ठीक उसी समय डाक्टरके एक परिचित मित्रको स्वप्न हुआ जो कि वह मित्र अंजीर लेकर बम्बईसे रंगून जा रहा था। रास्तेमें कलकत्तेमें ठहरा था। तब स्वप्नमें उसे किसीने कहा कि तुम्हारे मित्र कैलाशबाबूको अभी अंजीरकी आवश्यकता है। तुम अंजीर लेकर उनके पास अभी जाओ। पर उस मित्रने स्वप्नकी बातपर ध्यान नहीं दिया। तब उसे दुबारा पुनः स्वप्न हुआ तब उसने अंजीर देकर अपने नौकरको कैलाशबाबूके पास भेजा जिसे देखकर कैलाशबाबू मुग्ध हो गये और अपनी माँको अंजीर खिला दिया।
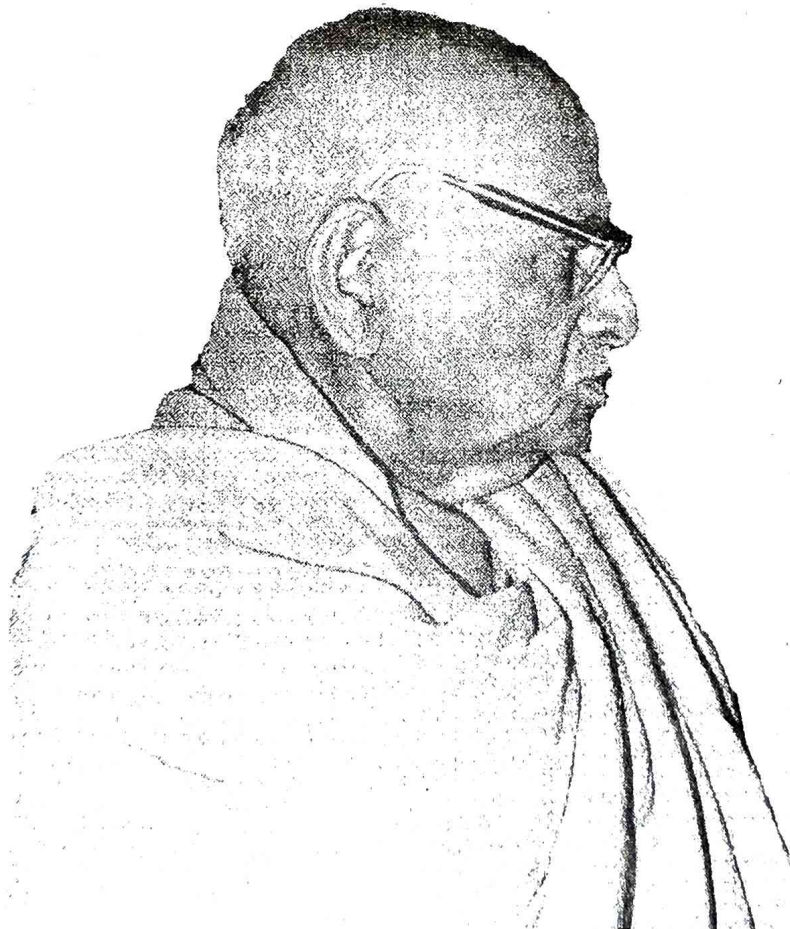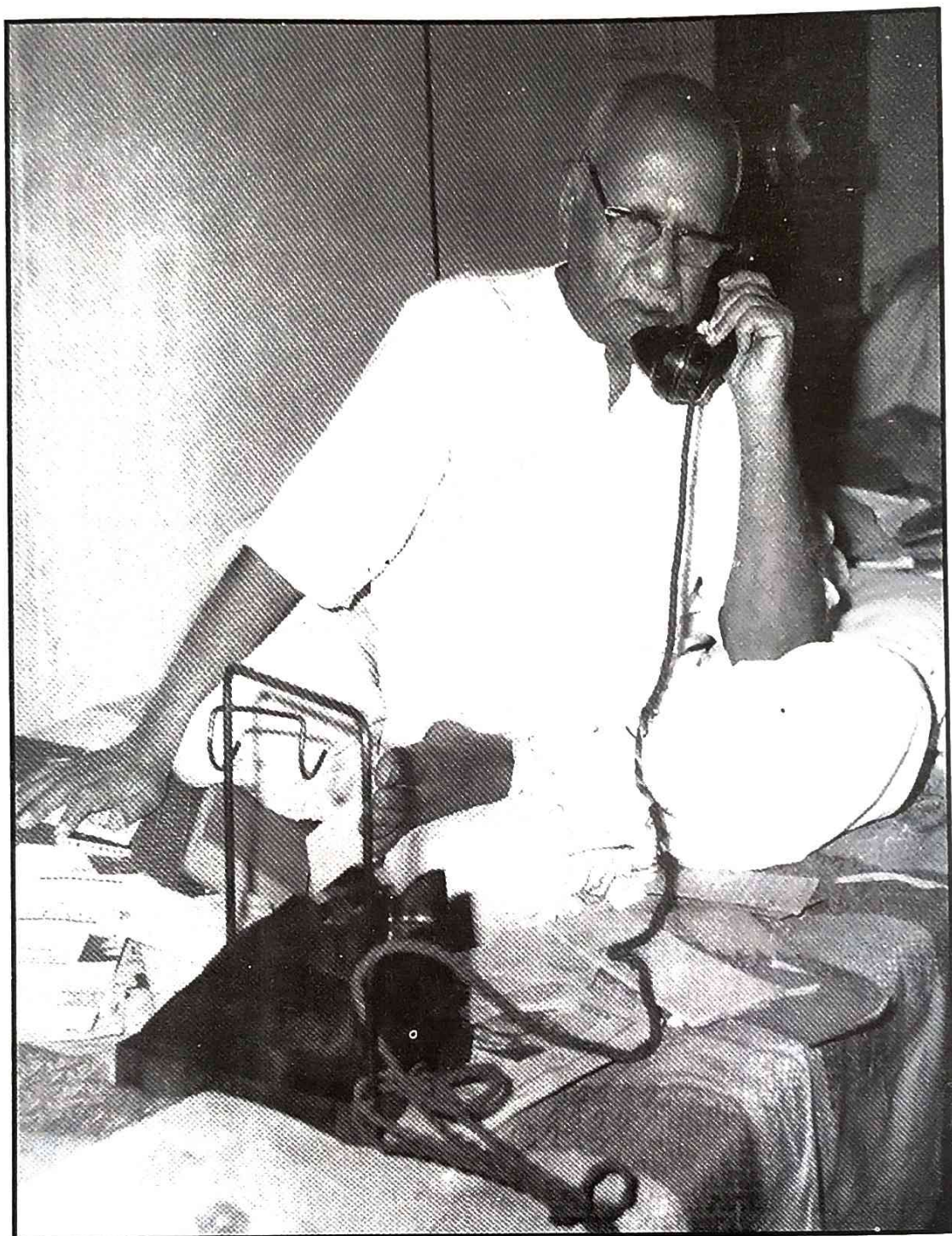
जिनके रोम-रोमसे 'दिव्य संदेश' प्रसारित होता था

॥ श्रीहरिः ॥

चालीसवाँ पटल

माधुर्य लीलाओंका अलौकिक वर्णन

चैत्र शु० १/८९ श्रीभाईजी जितने दिन गोरखपुरमें रहते उतने दिन प्रातःकाल साधन समिति एवं सत्संगमें खूब उत्साहपूर्वक प्रेमीजनोंको भजन साधनमें अग्रसर करनेके लिये नित्य नयी-नयी युक्तियों द्वारा बड़ी ही विलक्षण बातें कहते तथा अपने अनुभूत साधन एवं भगवान् श्रीराधाकृष्णकी माधुर्य लीलाओंका भी कभी-कभी विस्तारसे प्रेमीजनोंके समक्ष वर्णन करते जिससे साधन करनेवाले श्रीभाईजीके सत्संगमें आनेवाले लोगोंको अद्भुत लाभ भी प्रतीत होता। प्रवचनके नोट मैं लिया क़रता था। प्रवचनके अतिरिक्त बहुतसे प्रेमीजनोंको भजन साधन सम्बन्धी आध्यात्मिक समाचारोंके पत्र भी श्रीभाईजी खूब देते थे। उनमेंसे मुख्य-मुख्य पत्रोंकी नकल भी मैं लिया करता था।

चैत्र शु०९/८९ श्रीरामनवमीको श्रीरामजन्मोत्सव मनाकर श्रीभाईजी अपने प्रिय डालमिया बन्धुओंके बुलानेसे दानापुर गये।

इन दिनों श्रीभाईजीको इनके लिये बहुत कुछ करना पड़ता था। वहाँसे चैत्र शु० ११ को वापस आकर कल्याणके इस वर्षमें विशेषांक रूपमें निकलनेवाले ईश्वरांककी तैयारीमें लग गये तथा 'ईश्वरांक'के परिशिष्टमें चार प्रश्नोंके उत्तर अनुभवी संत महात्माओंके पास ज़ाकर उनसे प्रार्थना करके उनके द्वारा उत्तर लिखानेके लिये श्रीप्यारेलालजी डागा एवं मुझको कई स्थानोंमें भेजा। प्रश्नावली इस प्रकार है। जिसके उत्तर कल्याण वर्ष ७ अंक २ में है।

१-ईश्वरको क्यों मानना चाहिये?

२-ईश्वरको न माननेमें कौन-कौनसी हानियाँ हैं?

३-ईश्वरके होनेमें कौन-कौनसे प्रबल प्रमाण हैं?

४-अपने जीवनकी ऐसी सच्ची घटनायें लिखिये जिससे ईश्वरकी सत्ता और दयामें आपका विश्वास बहुत बढ़ा हो? *

इन दिनों महात्मा गाँधीजीके सुपुत्र श्रीदेवदासजी गाँधी ब्रिटिश सरकारकी दमन नीतिसे गोरखपुर जेलमें निर्वासित होकर रहते थे। उनकी सब प्रकारसे सेवा सुश्रुषा एवं मिलने जुलनेका कार्य श्रीभाईजी बड़े प्रेमसे करते थे। महात्मा गाँधीजीके पत्र इस सम्बन्धको लेकर बहुत आते थे। श्रीभाईजी जबतक श्रीदेवदासजी गाँधी जेलमें रहे तबतक वे तथा अनेक नेता लोग एवं सम्बन्धी उनसे मिलने आते। उनमेंसे बहुत-से श्रीभाईजीके पास ही ठहरते थे। श्रीभाईजी उनकी सब तरहकी व्यवस्था करते। सरकारको पूरा विश्वास था कि श्रीभाईजी राजनैतिक कार्योंमें भाग नहीं लेते। वे श्रीभाईजीको कुछ नहीं कहते थे। श्रीदेवदासजी गाँधीके साथ बड़े प्रेमका व्यवहार करते थे। जिसका महात्मा गाँधीपर बहुत अच्छा असर हुआ।

श्रीगोयन्दकाजी इन दिनोंमें चैत्रसे आषाढ़ तक हर साल ऋषिकेश स्वर्गाश्रममें रहकर अनेक सत्संगी प्रेमीजनोंको बड़े उल्लासके साथ सत्संग कराया करते थे। श्रीभाईजी कुछ दिनके लिये प्रायः वहाँ जाया करते थे। इस वर्ष कई विशेष कार्यवश वहाँ न जा सके। गोरखपुरमें रहकर भी वहाँके सत्संगी प्रेमीजनोंको वहाँके सत्संगकी महिमा बतलाते हुए एक पत्रमें श्रीभाईजी लिख रहे हैं—

गोरखपुर, बै०कृ०१४, १९९९

---

* यह पुस्तक रूपमें 'ईश्वरकी सत्ता एवं महत्ता' नामसे गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित एवं उपलब्ध है।

भाई शिवदयाल,

सप्रेम राम राम।

जो महानुभाव और भाग्यवती माँ बहनें इस सत्संगका लाभ ले रही हैं, उनका जीवन धन्य है। प्रात:कालसे लेकर सोनेके समय दीर्घ रात्रिकाल तक लगातार भगवचर्चामें समय बीतना बड़े ही पुण्यका प्रभाव है। इतना ही नहीं यह भगवान्‌की विशेष कृपा है। सच्चे साधु महात्माओंका प्रथम तो मिलना दुर्लभ होता है और जो मिलते हैं उनसे बड़े ही संकोचके साथ कभी थोड़े समयके लिये सत्संग करनेका सुअवसर मिलता है पर यहाँ तो सत्संगकी पवित्र और अनवरत सुधा धारा बह रही है। जो श्रद्धाके साथ श्रवण और आचरण करनेवालोंको पावन करनेमें समर्थ है। तुम सत्संगी भाई बहनोंसे मेरी ओरसे विनम्र प्रार्थना कर सकते हो कि वे इस सुअवसरका जो उन्हें ईश्वरकी विशेष कृपाके फलसे मिला है पूरा लाभ उठावें। अपने मनमें यह विश्वास करें कि वे दिनरात श्रीभगवान्‌के सहवासमें रह रहे हैं। जहाँ दिनरात चर्चा होती हो, वहाँ भगवान्‌का रहना अनिवार्य है। यों तो सभी जगह सदा ही भगवान् रहते हैं, परन्तु ऐसे सुअवसरोंपर तो उनका विशेष रूपसे निवास होता है, वे सदा सर्वदा भक्तोंपर दया करके उनका कल्याण करनेके लिये प्रस्तुत होकर उतावलेसे हुए ही ऐसे सुअवसरोंपर रहा करते हैं। प्रेमकी जरा विशेष भावना होते ही काम बन सकता है। इस विश्वास और निश्चयको मनमें रखकर सत्संगका लाभ उठाइये। ऐसा सुअवसर सदा नहीं मिला करता। मैं तो आप सब भाग्यवान् सत्संगियोंसे सविनय आशीर्वादकी भीख माँगता हूँ। आप लोगोंका हृदय भगवद्भावोंमें ओतप्रोत-सा होगा। ऐसी अवस्थामें आप लोगोंके शुभाशिषसे मुझे भगवत्प्रेम प्राप्तिमें बल मिलेगा।

श्रीजुहारमलजी ढंढारियासे कह सकते हो वे मनमें परम श्रद्धा और विश्वास रक्खें। भगवती भागीरथीका तट, पुण्य तपोभूमि और ऐसा विलक्षण सत्संग, सभी मोक्षका सामान उनके लिये सहज हो गया है। अत: उनका यदि भगवत्प्राप्तिमें निश्चय हो जाय तो मेरी समझसे उनके लिये वैसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। वे दृढ़ विश्वास रक्खें और यह समझें कि 'श्रीभागवान्‌ने दया करके मुझको अपनी गोदमें आश्रय दे दिया है, मैं निर्भय हो गया हूँ।' मेरे लिये उनका कहना बड़े ही प्रेमका है। परन्तु मैं आकर उनको क्या सहायता पहुँचाऊँगा। वे तो मुक्तिके किनारे बैठे हैं। उनका निश्चय ही उन्हें मुक्त कर सकता है। फिर सच्ची बात तो यह है कि मुझमें जिन चरणोंके प्रसादसे यत्किंचित अच्छापन समझा जाता है, वे चरण उनके पास है ही। बस, इससे अधिक मैं और क्या लिख सकता हूँ।

भाई मोहनका पत्र आया था। वह यहाँ आनेकी उत्सुकता दिखला रहा है।

हनुमान

गोरखपुर, वै०कृ० ३०/८९

प्रिय श्री ......

सप्रेम राम राम। स्वर्गाश्रमसे आपके पत्र मिले। आपने यहाँ आनेका जल्दी मन लिखा सो इतनी उतावल क्यों कर रहे हैं? ऐसा अवसर स्वर्गाश्रम सत्संगका बार-बार थोड़े ही मिलता है। अच्छी तरह मन टिकाकर रहिये। समयको अधिक-से-अधिक सत्संगमें बितानेकी चेष्टा कीजिये। सत्य निष्ठा होनेपर भगवद्ध्यानकी तो बात ही क्या भगवत्कृपासे साक्षात् भगवद्दर्शन हो सकते हैं और एकमात्र भगवच्चिन्तनकी ही चिन्ता शेष रह सकती है। हाँ, सत्य हृदयसे विश्वासपूर्वक लगन होनी चाहिये।

इस प्रकार स्वर्गाश्रमक सत्संगी प्रेमीजनोंको श्रीभाईजी उत्साहित करते थे।

वै०शु० ५/८९ को श्रीभाईजी शान्तिप्रसादजी जैनके साथ बाई रमा डालमियाका विवाह कानपुरमें हो रहा था। उसमें सम्मिलित होनेके लिये गये। वहाँसे लौटकर वै०शु० ९ को गोरखपुर आ गये।

ज्येष्ठ कृ० ६/८९ को रात्रिमें श्रीभाईजीने अपने जीवनकी कई बातें कही। जिसमें अलीपुर जेलमें श्रीभगवन्नाम जपमें विश्वास होनेकी, शिमलापालमें साधन

करनेकी थी। जिसकी विस्तारसे बातें, बम्बई जाकर पहले आर्थिक और सामाजिक कामोंमें फिर तीव्र साधनमें समय बिताकर एकान्तमें भजन करनेके उद्देश्यसे बम्बई छोड़नेतककी विस्तारसे बातें कही। जो यथास्थान इसी जीवनीके प्रारंभमें दी गयी हैं। इसलिये यहाँपर उनका संकेत मात्र क़र दिया गया है।

दिव्य लीलाका ध्यान

ज्येष्ठ कृ० ७/८९ रात्रिको ९ बजे श्रीभाईजी जिस बगीचेमें रहते थे। उसमें हालके ऊपरकी छतपर श्रीभाईजी, श्रीगंगाप्रसादजी, श्रीशुकदेवजी, पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, पं० गोवर्द्धनजी, मैं, श्रीरामेश्वरजी बाजोरिया, श्रीबजरंगलालजी बजाज, श्रीप्यारेलालजी डागा, चिरंजीलाल जालान, गोपालजी ब्रह्मचारी—सबके यथास्थान बैठ जानेके बाद सर्व सम्मतिसे श्रीकृष्ण भगवान्‌के ध्यानकी बात कहनेका विचार हुआ।

श्रीभाईजीने कहा—भगवान् इस जगह हैं, आ रहे हैं, आवेंगे। इस बातमें किंचिंतमात्र भी संदेह, संशय न करें। मैं जैसे-जैसे बोलूँ उसी प्रकार दृश्य देखते जायँ और उसमें जरा भी संदेह न करें। यदि कोई एक भी उसमें संदेह करेगा तो ध्यानमें सबके रुकावट हो जायेगी। संदेह करनेवालेको नुकसान होगा और ध्यानमें बाधा आयेगी। इसलिये पूर्ण विश्वासके साथ जैसे मैं बोलूँ वैसे प्रत्यक्ष देखनेकी चेष्टा करें। किसीको नींद आवे तो वह खड़ा हो जाय या यहाँसे चला जाय। इसके बाद सबने मिलकर एक स्वरसे—**'वंशीविभूति करान्, कस्तूरी तिलकं ललाट पटले, फुल्लेन्दीवर कान्त, त्वमेव माता च पिता'** आदि मंगलाचरणके श्लोक बोले। इसके बाद श्रीभाईजीने सहसा वृन्दावनकी एक छोटीसी दिव्य लीलाका इस प्रकार वर्णन किया—

श्रीभाईजी बोले—श्रीवृन्दावन धामका पवित्र स्थल है जो श्रीभगवान्‌का नित्य धाम है। पासमें श्रीयमुनाजी बड़े वेगसे बह रही हैं। जिसका जल नीलवर्ण है। पासमें कई दूरतक मुलायम नीली बालू है। सायंकालका समय है। सूर्य अस्ताचलके लिये प्रस्थान कर रहे हैं। जिसकी लालिमासे सब जगहपर एक प्रकारसे लाल रंगका दृश्य दीख रहा है। पासमें ही एक कदम्बका वृक्ष है। उसके समीप दो तीन गायें बैठी हैं, कुछ खड़ी हैं। पाँच सखा वहाँपर उपस्थित हैं। जिनकी अवस्था लगभग आठ दस वर्षकी होगी। उन सखाओंकी आकृति बड़ी ही सुन्दर है। उनके हाथोंमें सींग आदि है। उनके बहुत समीपमें तीन सखियाँ हैं जिसमें अगल बगलमें तो श्रीललिताजी और श्रीविशाखाजी खड़ी हुई हैं। बीचमें श्रीमती राधिकाजी खड़ी हुई श्रीभगवान्‌के लिये अधीर हो रही हैं। यद्यपि श्रीभगवान्‌ने अपने आनेके समयका जो निर्देश किया था वह समय अभी तक नहीं हुआ था। फिर भी श्रीमतीजी श्रीभगवान्‌की प्रतीक्षामें बेसुध-सी हो रही हैं। दोनों सखियाँ उन्हें सँभाल रही हैं। श्रीललिताजीने श्रीभगवान्‌से प्रार्थना की कि हे प्रभो! हे त्रिभुवनेश्वर! आप विलम्ब क्यों कर रहे हैं? अरे निष्ठुर! ओ निर्दय! कपट .... इस प्रकार श्रीमतीजीके अधीर होनेपर भी तुम्हें विलम्ब करना उचित नहीं है। इस प्रकार कहकर श्रीललिताजी फिर बोलीं—वे तो प्रेमी हैं। प्रेमके रहस्यको वे ही जानते हैं। इसलिये उन्हें दोष देना उचित नहीं। हम तो अपने सुखके लिये उन्हें बुलाती हैं। कई प्रकारसे श्रीललिताजीने प्रार्थना की।

इतनेमें दूरसे वंशी ध्वनिकी आवाज सुनायी देने लगी। वंशीकी आवाज सुनते ही श्रीललिताजी बोलीं—वे आ रहे हैं। वंशीकी आवाज अब बंद हो गयी है। थोड़े ही क्षण बाद श्रीभाईजी बोले—यह वंशी ध्वनि फिर सुनायी दे रही है। अब तो वंशीकी ध्वनि अति समीप आ रही है। अब तो नूपुर ध्वनि भी सुनायी दे रही है और दिव्य गंध भी आ रही है, प्रकाश भी फैल गया है। सूर्यदेव तो अस्त हो गये हैं परन्तु यह नवीन सूर्यका उदय हुआ है। श्रीभगवान् आकर कदंबके वृक्षके नीचे शिलापर बैठ गये हैं। बायाँ पैर नीचे लटक रहा है। दाहिना पैर बायें पैरके ऊपर है और मधुर हास्य मुखसे हम सब लोगोंकी तरफ भी

देखा जिससे हम सब निहाल हो गये।

श्रीमतीजी श्रीभगवान्‌के बायें पैरके समीप बेसुध पड़ी हुई हैं। श्रीभगवान्‌की माधुरी मूरतिका वर्णन हो नहीं सकता। कानोंमें मोरपंख रखे हुए हैं। कुण्डलकी मोरपंखके हैं। मुकुट भी मोरपंखका है। बीच बीचमें काक पक्षी भी कहीं-कहींपर है। गुंजाओंकी माला है। इस प्रकारके दृश्यका बहुत देरतक वर्णन होता रहा पर उस समय ध्यानकी मस्तीमें अधिक लिखा न गया।

श्रीमतीजीको इस प्रकार अपने चरणोंके निकट बेसुध पड़ी देखकर श्रीभगवान् बोले कि क्या मुझे इसीलिये बुलाया है। यह दृश्य पलटता ही नहीं है। बहुत देरतक यही दृश्य बना रहा। इसके बाद श्रीभगवान्‌ने श्रीललिताजी और श्रीविशाखाजीसे कहकर श्रीमतीको सचेत कराया और वहाँसे उठकर श्रीमतीजीको साथमें लेकर धीरे-धीरे एक तरफ श्रीयमुनाजीके किनारे किनारे घूमने लगे। पीछे-पीछे दोनों सखियाँ जा रही हैं। उनके बादमें पाँचों सखा हैं तथा सबसे पीछे गायें भी उठकर चल रही हैं। थोड़ी दूर जानेपर श्रीभगवान्‌का इशारा पाकर क्रमश: गायें, सखा, सखियाँ नियत स्थानतक जाकर रुक गये हैं। श्रीभगवान् और श्रीमतीजी सघन वृक्षोंकी कुंजमें चले गये। जिससे अदृश्य हो गये और वंशी ध्वनि आ रही है। वह भी धीरे-धीरे दूरसे सुनाई देती देती बंद हो गयी है इसके बाद श्रीभाईजी बोलते-बोलते सहसा रुक गये और दृश्य समाप्त हुआ ऐसा कहकर हरि ॐ तत्सत कह दिया।

फिर श्रीभाईजी बोले—यह श्रीवृन्दावनकी एक बहुत छोटी सी लीलाका ध्यान है। सो आजसे पहले समुदायमें न तो कभी किया गया और न कभी वर्णन ही किया है। यह बड़े गुप्त रहस्यकी बात है। यहाँ वाले हैं इनके सिवाय किसीको नहीं कहना चाहिये। मेरा विचार पहले लीलाका ध्यान करनेका बिल्कुल नहीं था। यह ध्यान होने लगा। बीच-बीचमें संकेत भी हुआ कि इसे शीघ्र बंद कर देना चाहिये। सो मैंने तो कुछ न किया परन्तु स्वत: ही यह दृश्य बहुत जल्दी एक साथ ही सहसा अदृश्य हो गया। नहीं तो यह लीला तो बहुत ही अधूरी ही हुई है। क्योंकि इसमें न तो विसाखाजीकी स्तुति ही हुई है और न श्रीभगवान्‌की श्रीमतीजीके साथ एकान्तमें जो बातें हुई उसीका वर्णन है। वे बातें बड़े ही शास्त्रोंके रहस्यकी हुआ करती हैं। जिसको कोई उस समय लिख ले तो बड़े ही कामकी चीज हो जाती है।

ऐसी लीलायें नंददासजी, सूरदासजी आदिने देखी है। यह बड़ी गुप्त लीलायें हैं। जिनका ग्रन्थोंमें भी वर्णन नहीं है। इसपर श्रीगोस्वामीजीने श्रीभाईजीसे पूछा कि आपको इसका अनुभव कैसे हुआ कि नंददासजी, सूरदासजी आदिने देखी है। इसपर श्रीभाईजीने कहा मेरा ऐसा विश्वास है। मैंने पूछा कि उस समय नंददासजी आदिका स्वरूप कैसा था? इसपर श्रीभाईजीने कहा कि उस समय स्थूल शरीरसे किसीका सम्बन्ध नहीं रहता। उस समय श्रीभगवान् एवं वहाँ उपस्थित रहनेवाले व्यक्ति तथा बाहरी सब वस्तुएँ चिन्मय हुआ करती हैं। श्रीभाईजीने उस समय उपस्थित रहनेवालोंसे पूछा कि लीलाका वर्णन करते समय आपकी स्थिति कैसी रही? और, श्रीभाईजीने कहा कि श्रीशुकदेवजीके २-३ वर्ष पूर्व अष्ट सात्विक भावोंमेंसे ३-४ भावोंका उदय हुआ करता था। वैसे ही शायद आज हुआ है क्योंकि श्रीशुकदेवजी बीच-बीचमें खूब जोर जोरसे हँस रहे थे और बहुत रोकनेकी चेष्टा करनेपर भी वे अपने भावोंको रोक नहीं सकते थे। श्रीप्यारेलालजी डागा रुदन कर रहे थे। श्रीभाईजीने फिर कहा कि ऐसे समयमें कोई व्यक्ति यदि श्रीयमुनाजीका जल पीना चाहे तो पी सकता है। इन्हीं बातोंको प्रकट करनेके लिये मनाही की गयी है। गीताजीमें कहा है—

'इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥
य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥

(गीता १८/६७-६८)

जो श्रीभगवान्‌को पानेकी एक बार भी इच्छा कर लेता है वह भी भक्त ही है। इसलिये अपने तो

भक्तोंमें ही बातें कहीं हैं। जगाई मधाई जैसे घोर पापियोंको भी विश्वास हो गया तो हम लोगोंको विश्वास न होनेकी कौनसी बात है। मनमें खूब जोशके साथ विश्वास रखना चाहिये कि हमें श्रीभगवान् अवश्य मिलेंगे।

आज ध्यान करते समय अन्तरकी प्रार्थना नहीं हुई। यदि अन्तरसे प्रार्थना की जाती तो यहाँपर ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं निकलता जो रोये बिना रह सके। श्रीगोस्वामीजी महाराज बोले—आज ऐसा सुन्दर अवसर मिलकर भी मेरे ध्यान नहीं हुआ। यह हमारी अपात्रता ही है। इसपर श्रीभाईजीने कहा कि इसमें आपकी तो कुछ भी अपात्रता नहीं है। इसमें तो मेरी ही अपात्रता है क्योंकि ध्यान करानेकी जिम्मेवारी तो मैंने ली थी। किन्तु आज कई नयी बातें हुई हैं जिन्हें व्यक्त नहीं किया जा सकता। समझनेवाले समझ गये होंगे। तब पं० श्रीगोवर्द्धनजीने कहा कि आज केवल ध्यानकी बात ही नहीं हुई है। आज तो श्रीभगवान्की लीलाका प्रत्यक्ष प्राकट्य हुआ था। इस बातका श्रीभाईजीने कुछ भी विरोध नहीं किया।

श्रीभाईजीने कहा इस प्रकारके ध्यान अर्थात् श्रीभगवान्की लीलायें बंधी हुई हैं। अलग-अलग समयकी अलग अलग लीलायें हुआ करती हैं। जैसे प्रात:कालकी, मध्याह्न समयकी, सायंकालकी, रात्रि समयकी भिन्न भिन्न लीलायें हुआ करती हैं। जो श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें भी लिखी हुई नहीं हैं। जितनी लीलायें हुआ करती हैं वे सब तो हम देख नहीं सकते और जो देख सकते हैं वह कह नहीं सकते और जितनी भी बातें कही जाती हैं वे बड़े ही महत्वकी होती हैं। इसके बाद श्रीभाईजीने श्रीगोस्वामीजी महाराजसे कहा कि आप जैसे अंग्रेजी पढ़े लिखे व्यक्ति भी हम पागलोंकी बातोंमें सम्मिलित हो जाते हैं यह क्या कम त्याग है। इस प्रकारका ध्यान न तो कोई कराते हैं और न कहीं होता ही है।

चैतन्य महाप्रभुको समुद्रमें श्रीयमुनाजीका भाव हो गया था तब वे लगातार तीन दिनोंतक समुद्रमें ही पड़े रहे। श्रीभगवानकी नित्य व्रजलीलाओंको देखते रहे। जब वह दृश्य दीखना बंद हुआ तब मछली पकड़नेवालेने उन्हें जालमें बाँधकर निकाला।

श्रीकिसनसिंहजी ठाकुर अपने घोड़ेपर चलते हुए ही श्रीभगवान्की मानसिक पूजा कर रहे थे। किसी व्यक्तिने उनको जरासा हिला दिया जिससे प्रत्यक्षमें उनके हाथसे कढ़ी ढुल गयी।

श्रीभाईजीने कहा कि यह विचार था कि किसी दिन ध्यान हो जायेगा। तब श्रीयुगलछबिवाली श्रीभगवान्की मूर्तिको आफिसके आगे बरामदेसे दक्षिण तरफवाली उत्तराभिमुखी कोठरीमें स्थापित करके अलग समयतक बैठना प्रारंभ करेंगे। सो आज ध्यान हो गया कलसे उसमें बैठेंगे।

ज्येष्ठ कृ० ८/८९ प्रात:काल सत्संगमें प्रवचन करनेके पश्चात् श्रीभाईजीके संकेतके अनुसार उपर्युक्त कोठरीमें झाड़ू लगाकर उसे साफ कर दिया तब श्रीभाईजी अपने हाथसे श्रीभगवान्की युगलछवि श्रीराधाकृष्णकी मूर्ति जिसके वृक्षके पत्ते-पत्तेमें बालगोपाल श्रीभगवान् विराजमान हैं को अन्दरसे लाकर उसे कोठरीमें अपने बैठनेके सामनेवाले स्थानमें विराजमान करके आसनपर बैठकर आन्तरिक एवं बाह्य पूजा करके अपने ईश्वरांकके सम्पादनके काममें लग गये। कुछ समय बाद जब श्रीगर्देजी महाराज सम्पादनके कार्यमें सहयोग देनेके लिये आये तब उन्हें श्रीभाईजीने कहा कि आप इसी कोठरीमें रहिये। यह बड़ा अच्छा कमरा है और श्रीगर्देजी महाराजको उस कोठरीमें एक दिन सुन्दर स्वप्न भी हुआ। इसी प्रकार श्रीभाईजीने पं० श्रीगोवर्द्धनजीसे भी उस कोठरीकी पवित्रताके सम्बन्धमें वर्णन किया था।

श्रीभाईजी तो अपने सम्पादनके कार्यमें तल्लीन हो गये। इधर उनके प्रेमीजन श्रीगोस्वामीजी महाराज, पं० श्रीगोवर्द्धनजी, श्रीप्यारेलालजी डागा अलग बैठकर मुझको बुलाकर कल रात्रिमें लीला वर्णन करते समय जो नोट लिये थे उनका मनन करने लगे तथा उसमें कुछ संशोधन तथा परिवर्द्धन भी कराया। आज रात्रिमें वैसे ही वर्णन करनेके लिये श्रीभाईजीसे प्रार्थना करनेका निर्णय किया। श्रीभाईजी रात्रिके ९ बजे तक प्राय:

सम्पादनका कार्य ही करते रहे। उसके बाद श्रीगोस्वामीजी महाराज श्रीभाईजीके समीपमें निम्नलिखित गुजराती भाषाका पद बोलकर प्रार्थना करने लगे।

म्हारी नाड़ तुम्हारे हाथे प्रभु संभालजो रे।
मुझने पोतानो जाणीने प्रभु पर पालजो रे॥
पथ्या पथ्य नथी समजातुं, दुःख सदैव रहे उभरातु।
मने हरो शुं थातुं, नाथ निहालजो रहे॥
अनादि आप वैद्य छो साचा, कोई उपाय विषे नहिं काचा।
दिवस रह्या छे टांचा, वेला वालजो रे॥
विश्वेश्वर शुंहजी विसारो, बाजी हाथ छतां का हारो।
महा मुंझारो मारो, नटवर टालजो रे॥
केशव हरि म्हारा शुंथासे, घाण बल्योशुं गढ़ घेराशे ?
लाज तमारी जाशे, भूधर भालजो रे॥

इसके बाद श्रीगोस्वामीजी महाराजसे परामर्श करके मैंने श्रीभाईजीसे कहा कि आप तो हमलोगोंको सरलसे सरल युक्तियाँ बतलाते हैं। परन्तु हमलोग उन्हें भी काममें नहीं लाते इसलिये आपको कृपा करके हमलोग काममें ला सकें ऐसी कोई बात बतानी चाहिये। इसपर श्रीभाईजीने बड़े प्रेमसे कहा कि श्रीभगवान्‌की दयापर विश्वास रखना चाहिये। तब मैंने कहा कि कल जैसी बातें हुई थीं वैसी आज भी कहनेकी कृपा करनी चाहिये। इसपर श्रीभाईजी बोले आज तो १०॥ बज गये हैं। नींद आ रही है। कल रात्रिमें याद दिलाना चाहिये। फिर मैंने कहा—उत्कंठा बढ़े वैसी बात कहनेकी कृपा करनी चाहिये। इसपर श्रीभाईजीने कहा कि कल प्रातःकाल सत्संगके समय याद दिलाना चाहिये।

इसके बाद श्रीभाईजी तो भीतर चले गये। फिर मैं शुकदेवजीका हाथ पकड़कर पासके कुएँपर ले गया। साथमें श्रीगोस्वामीजी महाराज भी आ गये। तब तीनों व्यक्ति वहाँ बैठ गये और लगभग १२ बजे तक खूब प्रेम, प्रभाव, श्रद्धा विश्वास, अन्तर्जगत एवं जसीडीह आदिकी अलौकिक बातें तथा श्रीशुकदेवजी एवं गंगाबाबूके सं० १९८६ के आश्विन शुक्लामें जो स्थिति परिवर्तन हुई थी उस समय की बातें श्रीशुकदेवजीने बड़े ही उल्लासके साथ कहीं। जिसे सुनकर वहाँसे उठनेके बाद मैंने वे सब बातें उसी समय नोट कर लीं। यथास्थान उसका वर्णन किया जा चुका है।

अंतमें श्रीशुकदेवजीने कहा कि कल रात्रिकी बात मैं बता नहीं सकता। कल भी मुझे बाह्य ज्ञान विशेष नहीं था। श्रीभाईजीकी बातें मुझे पूरी सुनायी नहीं देती थीं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि शुकदेवजी जब श्रीभाईजी उस मधुर लीलाका वर्णन कर रहे थे तब उस समय वे उस लीलाका प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे थे। इसके बाद श्रीशुकदेवजीने श्रीगोस्वामीजी महाराजसे कहा कि श्रीभाईजीकी तीव्र इच्छा है कि इन लोगोंको शीघ्र लाभ हो परन्तु हमलोगोंके विश्वासकी ही कमी है। अभीसे यह विश्वास बढ़ाइये कि कल रात्रिमें बातें कहनेके लिये श्रीभाईजीने इसीलिये कहा है कि इन लोगोंके इतने समयमें उत्कंठा बढ़ जाय तो काम बन जावे। इसलिये खूब जोशके साथ उत्कंठा बढ़ानी चाहिये। बस केवल उत्कंठा तीव्र होनेकी देर है। पीछे किसी बातकी कमी नहीं है।

ज्येष्ठ कृ० ९/८९ को प्रातःकालके सत्संगमें मैंने प्रश्न किया कि तीव्र उत्कंठा कैसे हो? इसपर श्रीभाईजीने विस्तारसे भूख आदिका उदाहरण देकर तीव्र उत्कंठा होनेके साधन, उत्कंठाका स्वरूप आदिका वर्णन किया। वे बोले—भूखका स्वरूप तो हम जानते हैं पर उसका अनुभव हमें नहीं है। जब असली भूख हमें लगती है तब प्राण छटपटाने लगते हैं। उस समय न तो कोई बात सुहाती है और न किसी बातमें मन ही लगता है। रग-रगमें भूख समा जाती है। नेत्र, पेट बैठ जाते हैं। भूखकी व्याकुलता चेहरेपर आ जाती है। भूख निराकार होने पर भी यह भूखका साकार स्वरूप है। यह तो अन्नकी भूखका स्वरूप है। इसी प्रकार यदि कोई भाग्यवान परमात्माको पानेके लिये व्याकुल हो जाय तो उस विरहीका चित्र कोई लेखक या व्याख्याता खींच नहीं सकता। जिसे परमात्मासे मिलनेकी उत्कण्ठा जागृत हो जाती है। वह सबकुछ भूल जाता है। इस उत्कंठाका कुछ-कुछ अस्फुट वर्णन श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके २९-३०-३१ वें अध्यायमें किया गया है।

वंशी ध्वनि सुनकर श्रीगोपांगनाओंकी कैसी दशा हुई थी? उस समय उन्हें कोई भी विघ्न बाधा नहीं दे सके। स्त्रियोंको पतिसे भी बढ़कर अपने बालक अधिक प्रिय होते हैं। लज्जा बहुत प्रिय होती है। वे सब प्रिय वस्तुएँ सहज छूट गयीं। किस अंगका वस्त्र कहाँ पहनना चाहिये सो भूल गयीं। खानेके लिये हाथका कौर हाथमें रह गया। स्त्रियोंको खासकर दूध बहुत ही प्रिय होता है। दूध उफन रहा है पर उस तरफ देखा भी नहीं। ये सब कार्य जानबूझकर नहीं किये। उस वंशीध्वनिको सुनते ही सहजमें ही छूट गये। क्योंकि बुद्धि पूर्वक धर्मोंका त्याग करना तो पाप है। प्रेमका यह नियम है कि सब नियमोंका सहज ही टूट जाना, जानकर तोड़ना नहीं इसीलिये कहा है—

'न लाज तीन लोककी न वेदको कह्यो करे।
न संक भूत प्रेतकी न देव यक्ष ते डरे।
सुनै न कान की दृशै न और इच्छना।
कहै न मुख और बात, यह भक्ति प्रेम लच्छना॥

'कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम' और

'कामातुराणां न भयं न लज्जा'

उस जगह धर्म, कर्म, मोक्ष तकका भी ज्ञान नहीं रहता। जैसे पुत्रकी मृत्युके समय, इज्जत जाते समय व्याकुलता होती है, बस उसी प्रकार श्रीभगवान्से मिलनेके लिये व्याकुल हो जाय। उस तीव्र इच्छाके सामने अन्य सब इच्छायें दब जायँ, दूसरा चाहे अच्छा समझे, मूख समझे या पागल समझे, कुछ भी समझे हमें तो केवल श्रीभगवान् ही मिलने चाहिये। इसीका नाम तीव्र उत्कंठा है। इसका एक उदाहरण रामायणके उत्तरकाण्डके प्रारंभमें श्रीभरतजीका श्रीरामजीके दर्शनोंकी अवधिका है तथा अयोध्याकाण्डमें दशरथजी एवं सुतीक्षणजीका कैसा सुन्दर चित्र रामायणके अरण्यकाण्डमें खींचा है।

दिसि अरु विदिसि पंथ नहीं सूझा,
को मैं कहाँ चलेउ नहिं बूझा।

चैतन्य महाप्रभुको श्रीकृष्णके विरहमें नेत्रोंसे अश्रुकी फव्वारे छूटते थे। श्रीपरमात्माकी प्राप्ति हो जानेवाले व्यक्तिसे भी जिस भाग्यवान्को श्रीभगवान्से मिलनेकी तीव्र उत्कंठा हो गयी है वह उससे भी बढ़कर है। अब प्रश्न यह रहा कि ऐसी तीव्र उत्कंठा कैसे हो? सो यह किसी शुभ कर्मका फल नहीं है। यह तो केवल श्रीभगवान्की दयाका फल है और श्रीभगवानकी अपार दया हर समय निरन्तर बरस रही है। इस दयाके प्रभावको जानकर यह जीव जितना-जितना अधिक उस दयाका अनुभव करेगा उतनी ही अधिक उत्कंठा श्रीभगवान्से मिलनेके लिये तीव्र होगी। असली उपाय तो श्रीभगवान्की महिमा जानकर उनकी दयाका यथार्थ अनुभव करना ही है। और, आनुसंगिक उपाय अनेक हैं। जैसे रोगी वैद्यपर विश्वास करके भूख लगनेके लिये कुपथ्यका त्याग करके सुपथ्य और औषधका सेवन करता है उसी प्रकार शास्त्रानुमोदित सदाचार और सत्संगरूप सुपथ्य तथा श्रीभगवन्नाम जप और ध्यान रूप महौषधका सेवन तथा कुसंग और दुर्गुणरूप कुपथ्यका त्याग करनेसे भी क्रमशः उत्कंठा शनैः शनैः होती है।

यह मैं बड़े जोरके साथ कहता हूँ कि श्रीभगवान्की दया सदा सर्वदाकाल हमें अनन्त पापों तथा दुःखोंसे बचाती है। यत्किंचित जो दुःख आते हैं वह तो श्रीभगवान् हमें सावधान करनेके लिये भेजते हैं। भगवान्की दया हमारे अनन्त जन्मोंके तथा वर्तमानकालके पापोंकी जरा भी परवाह नहीं करते। गीता अध्याय ९ श्लोक ३० अपि चेत्सुदुराचारो तथा ३१-३२ में श्रीभगवान्ने डंकेकी चोटपर घोषणा करके गीता अध्याय १२ श्लोक ७ में कहा है कि

तेषामहं **समुद्धर्त्ता मृत्यु संसारसागरात्।**
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेषित चेतसाम्॥

श्रीभगवान्को अपना प्रियसे भी बढ़कर प्रियतम यथार्थ रूपसे समझ लेनेपर उनसे मिलनेकी उत्कंठा अपने आप तीव्र हो जायगी। इसलिये मेरे सारे कथनका सारांश यही है कि श्रीभगवान्की महिमाको समझकर उनकी दयामें प्रत्यक्षके सदृश विश्वास कर लें। बस, तीव्र उत्कंठा होनेका यही सर्वोत्तम उपाय है।

श्रीभाईजीके नित्य प्रात:कालके सत्संगमें ऐसी-ऐसी विलक्षण बातें सदा हुआ करती थीं। यह तो एक दिनके थोड़ी देरके सत्संगमें नोट किये हुए शब्दोंका अति संक्षेपमें वर्णन किया गया है क्योंकि विस्तार करनेके लिये न तो स्थान है और न आवश्यकता ही है।

प्रात:कालके सत्संगकी उपर्युक्त बातोंका उस दिन प्रेमीजनोंपर दिनभर असर रहा। दोपहरमें अन्य कार्योंसे अलग समय निकालकर श्रीगोस्वामीजी महाराज तो पत्र पुष्पादिमेंसे चुन-चुनकर प्रार्थनाके पद बोलकर उत्कंठा कैसे तीव्र हो मन ही मन यह मनन कर रहे थे। मैं एक तरफ बैठकर श्रीचैतन्य चरितावलीके प्रथम खण्डके अन्तिम अध्यायको पढ़ते हुए रुदन कर रहा था। बहुत देरतक ऐसी अवस्था रही। अन्तमें पुस्तक पढ़ न सका और रोना रोक न सका।

रात्रिके ९ बजे हालके ऊपर छतपर श्रीभाईजी, श्रीगंगाबाबू, श्रीशुकदेवजी, श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीगोवर्द्धनजी, रामेश्वरजी बाजोरिया, प्यारेलालजी डागा, गोपालजी ब्रह्मचारी और मैं आदि सब लोग यथास्थान बैठ जानेके बाद श्रीभाईजीने मुझसे कहा कि तुम्हारी कापीमें परसों रात्रिमें लिखी हुई बातोंको मैंने पढ़ा था। उसमें एक जगह भूल थी। इसपर मैंने कहा वह भूल बादमें सुधार ली गयी। फिर श्रीभाईजी बोले—अधिक बोलने और लिखनेका क्या लाभ है? श्रीव्यासजीके लिखे हुए ग्रन्थ भरे पड़े हैं। उनसे अधिक कोई क्या लिखेगा? यह भी एक प्रकारका सात्त्विक प्रमाद है। तब मैंने प्रश्न किया कि प्रमाद सात्त्विक कैसे होता है? इसके उत्तरमें श्रीभाईजीने कहा कि 'कामोस्मि भतर्षभ' धर्मके अविरुद्ध काम भी भगवान्‌का स्वरूप है। तब इसे सात्त्विक प्रमाद कहनेमें क्या हर्ज है। मैंने फिर पूछा कि इस प्रकार ध्यानका वर्णन हो उस समय उस वर्णनको लिखना चाहिये या नहीं? तब श्रीभाईजी बोले कि या तो ध्यान करनेकी चेष्टा हो सकती है या लिखना हो सकता है। दोनोंमेंसे एक बात हो सकती है।

श्रीभाईजी कहने लगे—दस वर्षतक एक हजार आदमियोंके सामने लगातार व्याख्यान देनेसे जितना काम नहीं हो सकता है उतना काम भगवत्कृपाके बलसे एक दिनके शुभ संकल्पसे हो सकता है। परन्तु ऐसी शक्ति प्राप्त करनेके लिये साधना करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। एकान्तमें रहकर साधन करनेकी मेरी इच्छा बनी हुई है। उस बगीचेमें रहता था तब भी २-३ घंटे एकान्तमें निकालना चाहता था और यहाँपर भी चाहता हूँ परन्तु ऐसा कर नहीं सकता। इसलिये जो कुछ हो रहा है वह सब भगवत्प्रेरणासे ही हो रहा है। ऐसा मानकर संतोष हो जाता है।

यह तो आप लोगोंको विश्वास ही होगा कि आप लोगोंकी आध्यात्मिक उन्नति शीघ्रसे शीघ्र हो उसकी मेरे मनमें बहुत लगी रहती है। परन्तु मेरे वशकी बात नहीं है। यदि मेरे वशकी बात होती तो अभीतक यह कार्य हो जाता। हाँ, मुझे जो वस्तु प्राप्त है उसे मैं श्रीभगवान्‌के बिना आज्ञाके वितरण नहीं कर सकता। इसपर श्रीगोस्वामीजीने कहा कि आज्ञा लेकर उस शक्तिको काममें लाना चाहिये। तब श्रीभाईजी कुछ रुककर बोले—आज्ञा मांग नहीं सकता। हाँ, वे चाहें तो प्रदान कर सकते हैं। परन्तु मेरी इच्छासे नहीं हो सकता। मैं दिव्य लीलाओंमें किस प्रकार प्रवेश हो सका हूँ यह बातें बड़े रहस्यकी हैं। जिसे मैं कह नहीं सकता परन्तु मेरा विश्वास है कि भगवत्कृपासे ऐसी शक्ति भी प्राप्त हो सकती है। इसपर पं० श्रीगोवर्द्धनजी बोले कि हम लोग अपात्र हैं इसलिये आप हमारे सामने नहीं कहते तब श्रीभाईजीने कहा—यह बात नहीं है। यदि आपकी जगह श्रीनारदजी महाराज आ जायँ जिनकी चरण रजसे ही मैं पवित्र हो सकता हूँ। उनसे बढ़कर कौन अधिकारी हो सकता है। परन्तु मैं उनके सामने भी उन बातोंको प्रकट नहीं कर सकता। आपलोग अपात्र हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिये। इसमें यही कारण है कि मैं जितना कर सकता हूँ उससे अधिक करनेकी मुझे अनुमति नहीं है। श्रीभाईजीसे मैंने कहा कि यह बातें सुन तो रहा हूँ परन्तु जितनी शक्ति आपको प्राप्त है उसीका हमें विश्वास हो जाय तो हमारा काम तो बन सकता है। हमें अधिकसे क्या प्रयोजन है? यह बात सुनकर

श्रीभाईजी मुस्कुराये और कहने लगे कि ये तो कोई न कोई नयी बात ही कहेंगे। तब श्रीगोस्वामीजी महाराज बोले कि इन्होंने ठीक ही तो कहा है।

इसके बाद श्रीभाईजीने कहा—सब लोग सावधानीके साथ श्रीभगवान्‌का स्मरण करिये। मनमें ऐसा विश्वास करिये कि हमारे समीपमें भगवान् श्रीश्यामसुन्दर विराजमान हैं। नौ व्यक्ति तो हम बैठे हैं और दसवें श्रीभगवान् हैं। श्रीभगवान् हम सबके बीचमें हैं। अब श्रीभगवान् पूर्वकी तरफ जाकर पश्चिमकी तरफ मुख करके खड़े हो गये हैं और हम सबकी तरफ नेत्र घुमा-घुमाकर देख रहे हैं जिससे हम कृतार्थ हो गये हैं। श्रीभगवान् कमलपर खड़े हुए हैं। उनके चरणारविन्द बड़े ही कोमल हैं। एक दाहिना चरण सीधा है बायाँ चरण घुमाकर तिरछा किया हुआ है। पैरोंमें सुवर्णकी पैजनी पहने हुए हैं। पीताम्बरकी जगह जाँघियाँ घुटनोंके ऊपरतक पहने हुए हैं। कटिमें सोनेकी तागड़ी है। पीताम्बर ओढ़नेकी जगह श्रीभगवान्‌के आज पीले रंगके महीन वस्त्रका कुरता पहना हुआ है, जो जंघाओंतक नीचा है। उसके अंदरसे श्रीभगवान्‌का चमकीला प्रकाशमय अंग प्रकाशित हो रहा है। श्रीभगवान्‌के गलेमें एक गूँथे हुए पुष्पोंकी माला है। एक रत्नोंका हार पहने हुए हैं। श्रीभगवान्‌का शरीर कुछ मोटा है। सो मनको बड़ा ही लुभानेवाला है। श्रीभगवान्‌के कानोंमें सुवर्णके कुण्डल हैं। नासिकामें लालमणि लटक रही है। श्रीभगवान् अपने हास्यमुखसे मुस्कुरा रहे हैं। लाल-लाल होठ बड़े ही सुन्दर हैं। ललाटपर श्रीबल्लभ सम्प्रदायवालोंकी जैसी तिलक है। मस्तकपर मुकुटकी जगह आज श्री भगवान् टोपी पहने हुए हैं जिसमें मोरपंखका चंदोवा लगा हुआ है। वह बड़ा ही शोभा दे रहा है। दोनों हाथोंमें श्रीभगवान्‌की बाँसुरी है। वह मुखसे लगी हुई होनेसे मनको मोहित कर रही है। श्रीभगवान् बारंबार हम सबकी तरफ देख देखकर मंद-मंद मुस्कुरा रहे हैं। अहा कैसा सुन्दर श्रीभगवान्‌का स्वरूप है।

ऐसा वर्णन करनेके बाद भी श्रीभाईजी कुछ देर रुककर फिर बोले—अब श्रीभगवान्‌की मानसिक पूजा करनी चाहिये। एक टोकरी पुष्पोंकी भरी हुई गोस्वामीजी और शुकदेवजीके बीचमें डागाजी और स्वामीजीके आगे धीरेसे रखकर सब सखा दूर जाकर खड़े हो गये हैं। दूसरे एक थालमें कुंकुम, केशर, कपूर आदि लाकर मानो वर्णन करते-करते मुग्ध हो गये हैं। फिर बोले—उसके पासमें दूसरे सखाने धूपियेमें अग्नि लाकर उसमें धूप डाल दिया है और जला हुआ दीपक लाकर रख दिया है तथा एक थालमें साफ किये हुए आम, खरबूजे और केले ले आये हैं। एक छिनीमें बहुत बढ़िया मथुराजीके पेड़े नैवेद्यके लिये लाकर रख दिये हैं। इसके बाद कुछ रुककर बोले कि सबको अलग-अलग मानसिक पूजा करनी चाहिये। फिर बोले—जलके पात्रसे हाथ धोकर पहले भगवान्‌के सुन्दर चरणोंमें पाद्य देवे। फिर एक जलपात्रसे भगवान्‌के हाथमें अर्घ्य देवें। फिर पंचपात्र आचमनी भगवान्‌के समीप कर दें जिससे भगवान् स्वयं आचमन कर लें। फिर सुगंधित संप्रदायी तिलकके बीचमें श्रीकी भाँति सीधा तिलक कर लिया है। इसके बाद पुष्पोंकी टोकरीमेंसे अंजलीमें पुष्प लेकर भगवान्‌के आगे छोड़ दे तथा एक गूँथी हुई पुष्पोंकी माला है भगवान्‌के नैवेद्यके लिये पेड़ोंकी छिन्नी आगे कर दे। उसे भगवान् अपने हाथोंकी वंशीको पहले दाहिनी तरफ फिर बायीं तरफ कमरमें खोंसकर अपने हाथोंसे धीरे धीरे भगवान् नैवेद्यको खा रहे हैं। अहा! कैसे सौभाग्यकी बात है कि भगवान्‌के इस प्रकारके सुन्दर मुखारविन्दको हम देख रहे हैं और भगवान् मंद-मंद मुस्कुराते हुए हमारी तरफ देख रहे हैं। भोजनके बाद आचमन करावें फिर भगवान्‌के आगे फलकी थाली कर देवें। जिसे भी भगवान् धीरे-धीरे अपने हाथसे खा रहे हैं। फिर आचमन कराके पानीकी बोड़ी भगवान्‌के हाथमें दें जिसे भगवान् खा रहे हैं। उसकी लाली भगवान्‌के दाँतोंपर बड़ी ही शोभायमान हो रही है। अहा, भगवान्‌का सुन्दर स्वरूप मनको मोहित कर रहा

है फिर भगवान्‌को आचमन कराके कर्पूरको थालीमें रखकर भगवान्‌की आरती करें तथा उसके बाद हाथमें पुष्प लेकर पुष्पांजली भगवान्‌के ऊपर आकाशमें छोड़ दें।

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

इस मंत्रको बोलकर फिर भगवान्‌की स्तुति करें।

हे श्यामसुन्दर! तुमही ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि जो कुछ हो सब तुम्ही हो इत्यादि बोलकर फिर बोले—कैसी अद्भुत मूर्ति आज भगवान्‌की है। हमेशासे आज विलक्षण ही है। आज गुंजाओंके गहने न होकर सुवर्णके कुण्डल पैजनी तागड़ी आदि हैं। पीताम्बरकी जगह चोला और जाँघिया है। शरीर भी भगवान्‌का आज स्थूल है इत्यादि बातें कहकर फिर बोले—अब भगवान् पश्चिमकी तरफ धीरे-धीरे जा रहे हैं। अब भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। फिर जिस जगह भगवान् खड़े थे उस जगहको श्रीभाईजी अपने हाथोंसे पोंछकर अपने मस्तकपर लगाया। और बोले—इस जगह भगवान् प्रत्यक्ष खड़े थे। इसके बाद श्रीशुकदेवजी फिर पूर्ववत हँसने लगे और उछलने लगे। करीब ११ बज गये थे। श्रीभाईजीने गंगाबाबूसे पूछा आज आपके कैसा ढंग रहा? तब उन्होंने कहा कि आज हमारे बहुत अच्छा ध्यान हुआ। पहले नींद आती थी पर ध्यानकी बातें आरंभ होते ही सब कहीं चली गयीं। रामेश्वरजीसे पूछा तब वे बोले—आप कहते थे वैसे भगवान्‌की पूजाकी जाती थी। प्रत्यक्षवत् मूर्ति नहीं बँधी। उत्तरकी तरफ भगवान् खड़े थे।

पं० गोवर्द्धनजीने कहा परसों जैसा ध्यान नहीं हुआ। मुझसें पूछनेपर मैंने कहा—भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन तो नहीं हुए। परन्तु आप जैसे-जैसे वर्णन कर रहे थे वैसी-वैसी आकृति बँध रही थी और यह दृढ़ विश्वास हो रहा था कि भगवान् श्रीकृष्ण साकार बालरूपमें यहाँ प्रत्यक्ष विद्यमान हैं।

श्रीगोस्वामीजी महाराज एवं प्यारेलालजी डागाने कहा कि परसों जैसा ध्यान आज नहीं हुआ। इसके बाद श्रीभाईजीने कहा हमारा काम तो हो गया क्योंकि आज गंगाबाबूके ध्यान बहुत अच्छा हुआ।

परिशिष्ट

(१)

जसीडीहमें श्रीविष्णु भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन

(उन्नीसवाँ पटल पृष्ठ सं० १०२ के संदर्भमें)

पहली घटना

स्थान : जसीडीह सं० १९८४ आश्विन कृष्णा ६ से ९ (श्रीघनश्यामदासजीके हाथके छोटे-छोटे तीन पन्नोंमें कई नोट किये हुए शब्दोंकी अक्षरश: नकल नीचे है।)

१-हे महाराज! पहले तो आप प्रेरणा करी थी निष्काम भक्तिको प्रचार खूब जोरसे करनेके लिये, अब तीन वर्षसे प्रचारमें रुकावट अस्वस्थ शरीरसे क्यों हुई? पहले तो थे प्रेरणा करी अब इस समय धर्मपर आपत्ति भोत रही छे। आपके प्रकट होनेसे संसारमांय भोत विश्वास होने सक छ।

२-हनुमान यों हनुमान म्हारो पुरानो भायलो छै फिर आप हनुमानदास गोयन्दकाने कही देख यार ज्वालाप्रसादजी तेरी भोत बड़ाई करा कर छ आपणी पुराणी बातां सुना।

३-हनुमानदास गोयन्दकेकी ज़बानी—आँख मीचने सू जैसे-जैसे हनुमान बोल रयो थो वैसे-वैसे मेरे ध्यान होय रयो थो, विह्वलता और कंठाको अवरोध हुये रयो थो और भगवान्‌को जो स्वरूप मन दीखे थो ज़िकेसे मैंने सुनी यदि यो कह देव तो ऐन बिना भी दरसन दे देऊं यो तो विना ही ऐन थोड़ो सो काम करथो जिकपर लोगोंके उद्वेग हुयो और पीछे मेरे मुखसे आपकी बोत पुराण। स्वरूपको वर्णन असोज वदी ८ रातकी बातां हनुमान बकसकी—आपकी पुरानी बातें

शुक्रवार असोज वदी ६ पहाड़ीपर ड्योडी बाता। कुतो

मेरे या फुरना हुई दूसरे दिनकी बातांके समय यो भाव हुयो सगलांने दर्शन हो जाव तो यो मैं मेरो ही काम समझूं।

(आश्विन कृष्णा ६, १९८४ की जसीडीहकी घटना श्रीभाईजीने घनश्यामजीको बोलकर लिखायी। घनश्यामदासजीके स्याहीके अक्षर और श्रीहनुमानप्रसादजीके हाथके पेंसिलसे लिये हुए तथा स्याहीके अङ्कोंसे संशोधन किये हुए पन्नेकी नकल इस कापीमें ब्लू स्याहीके अक्षर घनश्यामजी एवं लाल स्याहीक अक्षर हनुमानप्रसादजी पोद्दारके समझने चाहिये।)

(ब्लू स्याही) मेरी बड़ी उत्कंठा थी कि मैं कोई रहस्यकी बात प्रत्यक्ष देखूँ। उस दिन आपसे भगवान् रामके दर्शनोंकी बात और ज्वालाप्रसादजीसे आपके प्रेम प्रभावकी बात होनेसे उत्कंठा बहुत ज्यादा बढ़ गयी थी। (लाल स्याही)

भगवानके साक्षात् दर्शनोंकी इतनी उत्कंठा मेरे जीवनमें कदे भी हुई नहीं।

(ब्लू स्याही)

इस निमित्त उनसे प्रार्थना करनेकी घनश्याम मेरे साथ थो जाते ही बिना कहे ही आप बोल्या कि चलो आज ध्यान करणे पहाड़ीपर चालां पहाड़ीपर जाणेकी बात अलग लिख्योड़ी छै ही। जब मैं ध्यानकी भावना करी जद सब दृश्य एकदम जातो रयो।

(लाल स्याही)

'चारों तरफ अकस्मात् बड़ो भारी प्रकाश होय गयो।'

(ब्लू स्याही)

'जिस जगह आप विराजमान था उस जगह भगवान्‌की चतुर्भुज मूर्तिका मन प्रत्यक्ष

(लाल स्याही)

'आख्यां खोल्या हुवां दो जना आमने सामने बैठा जयां।'

(ब्लू स्याही)

दर्शन होने लाग गया मेरे आनन्दको पार रयो नहीं

मैं थोड़ी देर भगवान्‌के रूपको वर्णन कर्‌यो, मेरी वृत्तियां बाहरसे बिल्कुल हट गयी, मैं भगवान्‌के चरणोंको स्पर्श करनेके लिये, हाथ आगे बढ़ानेके लिये कई दफे चेष्टा करी, हाथ आगे बढ्यो ही नहीं, जणा हाथ आगीने बढ़ानेके लिये मैं कही जणा हाथ आगे बढ्यो किन्तु भगवान्‌को आसन ओर गेलने हुय गयो फिर मैं कही जणे भगवान्‌को आसन मेरे हाथके समीप आय गयो और मैं चरण स्पर्श करनो चावे थो कि इतने मांय भगवान् अन्तरध्यान हुय गया और उस जगह श्रीजयदयालजी दीखने लाग गया। मैं कही या के बात हुई जणे आप बोल्या मेरे या फुरणा हुई कि मैं करुं हूँ जणे मैं बोल्या मैं करूं हूँ पण मन भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श होना चाये जणे आप बोल्या

(लाल स्याही)

'पहली होयो जिसो'

(ब्लू स्याही)

ध्यान होनो तो बहुत सहज है, चरणोंका स्पर्श होना तो अगलेकी मर्जीपर है।

(लालस्याही)

'इस कहनेके साथ अकस्मात् अनन्त प्रकाश होय गयो मन फिर।'

(ब्लू स्याही)

उसी तरह दर्शने होने लाग गया मैं आनन्दमग्न विह्वल होयकर भगवान्‌के दाहिने चरण न पकड़ लियो और चरणमें बलात्कारसे जा पड्यो और भगवान् मेरे मस्तकपर हाथ राख दियो, जणे पीछेसे लोगां कही—न तो श्रीजयदयालजीके चरणपर पड्यो थो बाकी मेरी दृष्टिमें वी जगा भगवान् नारायणके सिवाय और कोई भी नहीं थो, श्रीजयदयालजी भी नहीं था, केवल नारायणदेव ही था। इस स्थिति मांय मैं बहुत देर तांई पड्यो रहो और भगवान् मेरे मस्तकपर हाथ राखे हुए हँसते रहे। कुछ समयके बाद मन या दीखी कोई विलक्षण पुरुष भगवान्‌की षोडशो प्रकारसे पूजाकर रहा छै। मैं पूजाने देखकर बहुत प्रसन्न हुयो कुछ समयके बाद मैं देखूं हूँ तो भोत-सा ऋषि पधारा है ऋषियोंमें—भगवान् नारद, व्यास, सनत्कुमार आदि,

(लाल स्याही)

'हनुमान इत्यादि'

(ब्लू स्याही)

था वह आवतां ही आप आपको नाव बताकर मेरी ही तरह भगवान्‌के चरणों मांय पड़ने लाग गया और मने भगवान्‌के चराणों मांय पड़ो देखकर भोत राजी होया। इसके बाद विलक्षण पुरुषके द्वारा पूजा करनेके समय जो प्रसाद लगायो थो वह प्रसाद सबने बाँटनेके लिये एक ऋषि बालकने आज्ञा देही और वह भगवान्‌की आज्ञा पाकर सबने प्रसाद बाँट दियो ज्यो भगवान् कह्यो इसने भी देव जपे मन भी उठकर प्रसाद दियो और मैं बड़े आनन्दके साथ उस प्रसादने खायो इतना विलक्षण

(लाल स्याही)

'स्वादको अनुभव जीवन मांयकदे भी हुयो नहीं। इसके थोड़ी देर बाद श्रीभगवान् अन्तर्ध्यान होते ही मेरे चित्त मांय व्याकुलता-सी हुयकर आंख खुलते ही मैं कही भगवान् तो चला गया। जना श्रीजयदयालजी कही आपणे भी चालो। मैं देख्यो मेरो सिर श्रीज्वालाप्रसादजीकी गोदी मांय थे। वे लोग मन उठायो बाकी मेरे अन्दर आनन्दकी इतनी बाढ़ थी कि मेरो बाह्य ज्ञान फिर जातो रह्यो मन प्रत्यक्ष दीख कि भगवान् मेरे साथ चल रहा है। मैं बड़े आनन्दसेती चालतो रयो, मन लायकर भवन मांय बिठा दियो उठे भी मन उसी श्रीभगवान्‌का दर्शना होता रया पीछे मन श्रीजयदयालजीके पाससे ले गया उठे फिर श्रीभगवान्‌का दर्शन हुआ तथा मैं दण्डवत् करी जगणे पीछे मन बाहरी चेतो होय गयो।'

दूसरी घटना

सं० १९८४ वि० मिति आश्विन कृ० नवमी सोमवारको जसीडीहमें महेन्द्र सरकारकी कोठीके पास चरित्रनायकको पुन: श्रीविष्णु भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। उस समय निम्नलिखित सज्जन उपस्थित थे, जिसकी नामावली श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाने लिखी। उसकी

नकल इस प्रकार है—

(१) श्रीजयदयालजी गोयन्दका (२) श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (३) श्रीघनश्यामदासजी नुवेवाला (४) श्रीबद्रीदासजी गोयन्दका (५) श्रीहनुमानदासजी गोयन्दका, (६) श्रीमदनलालजी चूड़ीवाला, (७) श्रीमोहनलालजी झुनझुनावाला, (८) श्रीदौलतरामजी दूधवेवाला, (९) हरदत्तरायजी गोयन्दका, (१०) पूर्णमलजी ढंढारिया, (११) श्रीरामदासजी बाजोरिया, (१२) द्वारकादासजी जीवराजका, (१३) रामेश्वरलालजी नुवेवाला, (१४) द्वारकादासजी नुवेवाला, (१५) श्रीगंगाप्रसादजी अग्रवाल, (१६) शुकदेवजी, गीताप्रेस, (१७) श्रीरामकृष्णजी कावरा, (१८) श्रीदुर्गादत्तजी कावरा, (१९) श्रीवासुदेवजी लोहिया, (२०) कुञ्जलालजी सुलतानिया, (२१) श्रीसीतारामजी पोद्दार, (२२) शिवदयालजी गोयन्दका, (२३) डूँगरमलजी बागला, (२४) ज्वालाप्रसाद कानोडिया, (२५) केदारनाथजी कानोडिया, (२६) शुभकरणजी चूड़ीवाल, (२७) प्रह्लादरायजी जालुका, (२८)गजानन्दजी सर्राफ, (२९) गंगाधरजी बागला, (३०) महादेवप्रसादजी बागला, (३१) राधेश्यामजी नुवेवाला, (३२)शुकदेवजी शर्मा राँचीवाला।

उस दिन घटना घनश्यामदासजीके लिखे हुए पत्रोंसे लेख रूपमें रहनेके लिये उसको इन पंक्तियोंके लेखकके सामने चरित्रनायकने बोलकर लिखायी। उसकी नकल इस प्रकार है—

(दूसरी घटना)

श्रीहरिः

मिति आश्विन कृष्णा नवमी, सं० १९८४ वि०, सोमवार, स्थान-जसीडीह, महेन्द्र सरकारकी कोठीके पूर्व भागमें

(मारवाड़ी) आरोग्य भवनके पुस्तकालयमें दिनके दो बजे लोग एकत्रित हुए। श्रीजयदयालजीने हरदत्तराय गोयन्दकाके कहनेपर हनुमानप्रसाद पोद्दारसे कहा कि हरदत्त कहता है, इसलिये उस दिनकी तरह आँखें खोले हुए प्रत्यक्ष भगवान्‌के दर्शन हों, इस बातके लिये चेष्टा करनी चाहिये। उसके बाद थोड़ी देर तो हनुमान चुप रहे। पीछे श्रीजयदयालजीने कहा—कुछ स्तुतिके श्लोक और 'अजोऽपि' इत्यादि श्लोक बोलकर आरम्भ करना चाहिये। इसके बाद स्वयं ही 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' उच्चारण करके चुप हो गये। इसके कुछ मिनट बाद हनुमानने 'शान्ताकारम्' बोलकर 'अजोऽपि', 'यदा-यदा', 'परित्राणाय'—ये तीन श्लोक बोलकर उपस्थित लोगोंसे एक साथ मिलकर एक ध्वनिसे भगवान्‌के आह्वानके लिये व्याकुल होकर मनसे प्रार्थना करनेके लिये कहा और यह भी कहा कि किसीको, किसी प्रकारका शब्द नहीं करना चाहिये। यदि कोई शब्द हो तो उसकी तरफ ध्यान नहीं देना चाहिये। यहाँतक मनको भगवान्‌में लगाना चाहिये कि यदि वज्रपात हो तो भी उसकी तरफ ध्यान न जाय। उसके बाद भाईजी भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे।

उन्होंने कहा—हे प्रभो! हे दीनानाथ!! मेरे तो कोई प्रेम नहीं, मेरा तो कोई बल नहीं, मेरी तो कोई योग्यता नहीं, कोई शक्ति नहीं, जिसके प्रेम और बलके वशीभूत होकर उस दिन आप साक्षात् प्रकट हुए थे, उसीके प्रेम और बलसे आज भी हमलोगोंमें आविर्भूत होनेकी दया करिये। हे नाथ! मैं तो कोई प्रार्थनाकी योग्यता नहीं रखता, उसीकी प्रेरणासे आपसे प्रार्थना की जा रही है। प्रार्थना करनेमें भाईजी बीच-बीचमें रुक रहे थे। कुछ समयतक चुप रहनेके बाद उन्होंने कहा—हे प्रभो! आज आप प्रकट क्यों नहीं होते? आज क्या बात है? थोड़ी देर बाद भाईजीने श्रीसेठजीसे कहा—आज चेष्टा करनेपर भी कोई फल नहीं होता। साधारण आँख खोले हुए ध्यान करा करूँ जको भी नहीं होता आज क्या बात है? आप मुझको फिर एक बार आज्ञा करे जिससे मुझको वैसा दर्शन होने सके। उसके बाद हनुमान बोल्यो अब थोडो ध्यान होने लाग्यो। इसपर आपने कहा मेरे यह फुरणा हो रही है कि इसके लिये पहाड़ी ठीक है। यह जगत् राजसी है, वह जगत् सात्विकी है और वह प्राकृत है। इसपर हनुमानने कहा अच्छा वहाँ चलना चाहिये।

सब लोग तैयार हो गया। आप भी उठ खड़ा हुआ आगे-आगे चलणे लाग गया। पहाड़ीके रास्ते मांय एक स्थानने देखकर या बात कही यो स्थान भी चोखो है, परन्तु आज तो उसी जगह चलनो चाहिये। आखिर सब लोग पहाड़ीके उस स्थानपर पहुँच गया कि जिस स्थानपर पहले भगवान्का दर्शन हुया था। उठे पहुँचनेपर आप हनुमानने कही हाथ धो लिया कि नहीं। हनुमान बोल्यो हाथ पग धो लिया। मोहनलालजी जल लेय गया था। वह हाथ पग धोवाया था। आप हनुमान पहिली जिस जगह बैठा था, उस जगह बैठ गया। पहिले शुक्रवारने बैठा था। जिकी जगह जिसी माफक और सब लोग भी बैठ गया। बैठनेके बाद हनुमान 'त्यमेव' 'यदा यदा' 'परित्राणाय' यह दो श्लोक बोलता-बोलता बीच मांय अटक्यो। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद बोल्यो—देखो, सब भाई सावधान हुय जावो मनने एकाग्र करके भगवान्का दर्शन करना चाये। आँख खोल्यां जिसको मन दूसरी जगह जावे जिकेने आँख मींच लेनी चाये। इसपर आप बोल्या दो ही बात ठीक है या तो आँख मींच लेई जावे या नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि राखी जावे।

तथा हनुमान बोले—जिस तरह ही भगवान्को ध्यान करनो चाये, जैसे पूर्वकालमें मैं हनुमान गोयन्दकैने ध्यानकी बात वर्णन कार्या करतो थो। हनुमान भी ध्यान लगानेकी चेष्टा कर्या करतो थो। उस माफक ही भगवान्के स्वरूपकी भावना सबने करनी चाये। उसके बाद थोड़ी देर चुप रहनेके बाद हनुमान बोल्यो कि उस दिनके माफक श्रीभगवान् उस स्थानमें प्रकट हुय गया है। आज आनन्दकी अधिक विलक्षणता है। वही कमलको विशाल आसन है, कमलको रंग नीचेसे सफेद बीचमें लालिमा ऊपर नीलिमा इसपर उसी प्रकारसे भगवान् दाहिने चरणारविन्दने नीचेके तरफ करकर विराजमान हैं। मेरी वृत्तियाँ रुकी जावे है। जितनो भगवान्के रूपको वर्णन करने सक्यो उतनो करूँ हूँ। आप लोगोंने उसी माफक भगवान्के रूपको ध्यान करनो चाये। इसके बाद हनुमान फिर बोल्यो भगवान्के चरण कमलके नखकी ज्योतिमें कितनो प्रकाश हुय रयो छे मानो सूर्यका-सा टुकड़ा हो। भगवान्के चरणों मांय रत्नोंका बड़ा सुन्दर आभूषण है, जिनको अत्यन्त प्रकाश हुय रयो छे। उन गहनोंको मैं नाम नहीं जानूं हूँ। इसके बाद हनुमानको बोलनो रुक गयो। इसके बाद श्रीजयदयालजी बोल्या तै बोलनो बंद क्यों कर दियो? भगवान्के स्वरूपको स्पष्ट वर्णन कर। दो दफे श्रीजयदयालजी केयो बाकी हनुमान बोल्यो नहीं। थोड़ी देरके बाद हनुमान बेहोश होकर गिर पड़्यो। रामजीदासजी बाजोरिया भागलपुरकी गोदीमें हनुमानको सिर पड़ गया। रामजीदासजीने श्रीजयदयालजी कह्यो इने बैठो कर्‌यो। उन्होंने चेष्टा की और बोल्या कि मेरी उठानेकी सामर्थ्य नहीं है। आप बोल्या हनुमान सावधान हुयकर ध्यान कर। कुछ देर बाद रामजीदासजी ही स्वयं बैठो कर दियो।

और हनुमान पड्यो थो। जणे श्रीजयदयालजी कीर्तन सुरू कर्‌यो। 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।' कीर्तन सरु कर्‌यो। जब रामजीदासजी बोल्या तू बोले क्यों नहीं है? जणे हनुमान वा बात कही मैं बोलनेकी चेष्टा करी पर मेरेसे बोल्यो गयो नहीं। जणे आप बोल्या कि तू स्वरूपको वर्णन कर्यो विना दूसरोंको के फायदो हुने, इतना संग क्यों लायो थो, नहीं बोलनो हो तो अकेलो क्यों नहीं आयो? इतने कहनेके साथ हनुमान बोलने लाग गयो और बोल्यो मैं पहिले बहुत चेष्टा करी थी मेरेसे बोल्यो गयो नहीं।

इसके बाद हनुमान भगवान्के स्वरूपको वर्णन करने लाग गयो और स्वरूपके वर्णन करनेके बाद श्रीजयदयालजी बोल्या कें तू पड्यो रेयो जणे के व्यवस्था हुई। जणे हनुमान बोल्यो मैं के बताऊँ? आपने किसी वेरो कोनी, आप किसा सुणे कोनी था अब सुनो अबके कह रया छे इतनी कहकर फिर बेहोश हो गयो। फिर आज कीर्तन सरु कर्यो। ' जय रघुनन्दन जय सियाराम, जानकीवल्लभ सीताराम।' फिर थोड़ी देरके बाद आँख खोलनेके बाद हनुमान बोल्यो मेरी इतनी

सुणायी नहीं होणे सके छे आपके कहनेसे सबने दर्शन होने सके छे जणे आप की म्हे क्यों केवा? आप जैसे उचित समझो वैसे ही करो। जणे हनुमान बोल्यो दर्शनकी सबको इच्छा नहीं है जणे श्रीजयदयालजी बोल्या जिन जिनकी इच्छा होवे उन- उनको होना चाहिये। जणे हनुमान बोल्यो थे केवो जिस जिसने दर्शन होने सके छे जणे आप बोल्या थे कवो जयाँ करणेन अगलो राजी है जणे आप वोल्या चौड़े आयकर क्यों नहीं कहे सगले जणा सुणे यदि चौड़े आकर प्रकट नहीं होवेतो जैसी आगे आकाशवाणी होती थी, उसी माफिक कहनेसे सगलोंने सुन सके छे जणे हनुमान बोल्यो या कानून नहीं है। आपने किसी मालूम नहीं है। इसके बाद फिर हनुमानकी आँखें मिच गयीं और बेहोश होइ गयो और थाड़ी देरके बाद हनुमान फिर आँखें खोलकर बोल्यो कि थे केवोतो दर्शन होवे सके छे जणे श्रीजयदयालजी बोल्या मैं क्यों कहूँ फिर आँखे मिच गयीं। फिर थोड़ी देरके बाद आँखें खुलनेसे हनुमान बोल्या कि भगवान् कवे है कि तूँ कवे तो तेरी खातरीसे दर्शन होने सके छ। जना आप बोल्या तने तो दर्शन होय रया छे। जणा हनुमान बोल्यो मेरी बात नहीं आपके कहनेसे सबने दर्शन होने सके छे। इसपर आप बोल्या अगलेने गरज हुये तो दर्शन दो म्हाने तो गरज नहीं है म्हें तो खुशामदियाँ नहीं अगलेने गरज हुवे तो दर्शन दो, नहीं तो अगलेकी खुशी, म्हें तो आगलेकी राजीमें राजी हो फिर आखें मिच गयीं। फिर आँखें खुलनेके बाद हनुमान बोल्यो श्रीभगवान्‌ने गरह है जणे ही तो आपकी बात माने है। जणे आप बोल्या म्हे तो म्हारो काम खोटी कर-कर आया छ। इसपर भी खुशामद चावै तो अगलेके नामको कीर्तन कर रया छ और खड़ा हुयकर नाचने सकां छ। इसके बाद हनुमान बोल्यो आप खाली कह देवो इसपर आप बोल्या म्हे तो यों कवां नहीं। इसके बाद बहुत गम्भीरताके साथ सबने या बात कही आंके कहे मुजब चालनेसे दर्शन होने लगे छे। इसके थोड़ी देर बाद फिर हनुमानप्रसाद जोरसे बोल्यो सुणो भगवान्‌के कह रया छे—

एँकी आज्ञापालनसे ही मेरी आज्ञापालन है।
एँकी प्रसन्नतासे ही मेरी प्रसन्नता है।
एँकी इच्छामें ही मेरी इच्छा है।
एँकी रूपमें ही मेरो रूप है।

इसके बाद श्रीजयदयालजी बोल्या मेरो स्वरूप तो सगलोंने ही दीखे छे। इसके बाद हनुमानबक्सजी गोयन्दको बहुत जोरसे बोल्यो तेरो नहीं। हनुमानपोद्दार बोल्यो भगवान् अन्तर्धान हुय गया जणे हनुमानबक्सजी गोयन्दका बोल्या भगवान् मौजूद है।

हनुमानकी जुबानी

आँख खुली थी तबतक तो श्रीभगवान्‌के स्वरूपके सिवाय और कोई भी वस्तु नहीं दीखी थी। जिस स्थानपर श्रीजयदयालजी बैठा था उस जगह श्रीभगवान्‌का दर्शन हुए था। भगवान्‌के रूपको वर्णन करनेके बाद तत्काल ही भीतरसे प्रेमको भोत आविर्भाव हुयो तथा भगवान्‌के दर्शनोंसे इतनी विह्वलता हुई कि जिकेसे बोल्यो गयो नहीं मुग्धता इतनी बढ़ी कि बाह्यज्ञान एकदम नष्ट हय गयो। आँखें मिच गयीं। इसके बाद दो स्वरूपका दर्शन हुआ। कमलके ऊपर भगवान् विराजमान था ही उनके बावें गोड़ेके आगे उनकी तरफ देखते हुए श्रीजयदयालजी विराजमान था। दोनों बड़ा प्रफुल्लित और प्रसन्न है दोनों ही भोत जोरके साथ हँस रह्या था। बीच बीचमें मेरे स्तुति करनेकी इच्छा हुई परन्तु करने सक्यों नहीं। इसके बाद श्रीजयदयालजी बोल्या कि भाई तने जो कुछ कहने हो कह क्यों कोनी इन शब्दोंने सुनते ही मेरे माँय बोलनेकी शक्ति-सी आय गयी और मैं बड़े ही कातर स्वरसे बोल्यो कि प्रभो इन सब लोगोंने आप दर्शन देवो तो भोत आनन्दकी बात है। मेरे शब्दने सुनकर दोनों ही बहुत प्रसन्न हुया और हँसा। श्रीजयदयालजी बोल्या कि महाराज हनुमानकी प्रार्थनापर आपको के विचार है। श्रीभगवान् मने कही कि सबके दर्शन करनेकी इच्छा नहीं है। इसपर मैं बोल्यो कि प्रभो इच्छा नहीं है तो के आपत्ति है। आपने दया करनी चाये। इसपर भगवान् बोल्यो कि तू चेष्टा कर, इसपर प्रकार प्रार्थना करनी

उचित नहीं, जिसपर मैं बोल्यो न सही। श्रीजयदयालजी बाते सुनकर भोत जोर-जोरसे हँस रया था। इसके बाद भगवान् बोल्या तने कुछ कहनो हो तो कह। मैं बोल्यो कि आपके चरणोंको वियोग कदे भी न हो। इसपर श्रीजयदयालजी फेरूँ भोत हँस्या और बोल्या कि महाराज हनुमानने आपके कहो हो श्रीभगवान् श्रीजयदयालजीने बोल्या कि तेरी आज्ञा मानणे बालेने मेरे चरणोंको वियोग कैसे होणे सके छे फिर श्रीजयदयालजी बोल्या कि ईने आपके आज्ञा देवो हो इसपर श्रीभगवान् बोल्या कि जबतक तेरा यो शरीर रेवे तबतक। श्रीजयदयालजीके केये मुजब मेरी भक्ति मेरे नाम और निष्कामभावोंको कोई तरह को भी कोई मायँ भेदबुद्धि न राखकर प्रचार करनेकी चेष्टाकर इसके बाद मैं कुछ बोल सक्यों नहीं। मन ही मन भगवान्की स्तुति करतो उन दोनों हीके स्वरूपने देख देखकर मुग्ध होतो रयो। इसके बाद फिर आँखें खुल गयीं। और फिर पहलेके माफिक एक श्रीभगवान्काही दर्शन होने लाग गया। श्रीजयदयालजी कठे भी दीख्या नहीं किन्तु उनके शब्द सुनायी दिये जिनको वर्णन इसी कापीके अलग पृष्ठमें किया जा चुका है। फिर आँखें मिच गयीं फिर उसी माफिक दोनों रूप फेरूँ दीखने लाग गया। श्रीजयदयालजी भगवानने कही कि महाराज! सबने दर्शन देने माँय अगर कोई विशेष आपत्ति नहीं होवे तो विचार करनो चाह्ये। श्रीमहाराज बोल्या तेरेसे मेरी विधि छानी नहीं है। श्रद्धा-भक्ति और सबल इच्छा होनेसे ही दर्शन होवे सके छे तथा महत्व समज्यो जाणे सके छ। अठे तो कुछ लोग इसा भी है जका मेरे स्वरूपकी हँसी उड़ानेवाला है सो सब लोगोंने दर्शन होना युक्ति और न्यायसंगत नहीं है बाकी तू ठीक समझकर कवे तो हो सके है। इतनी बात सुननेके बाद फेरूँ आँख्या खुल गयीं और पहलेकी तरह एक ही स्वरूप फेरूं दीखने लाग गयो। थोड़ी देरके बाद फिर उसी तरह आख्यां मिच गयीं और दोनों स्वरूप दीखने लाग गया। श्रीजयदयालजी बोल्या कि महाराज युक्तिसंगत नहीं है तो मेरे तो कोई दान नहीं है मेरी तो सम्पत्तिमात्र है बाकी आपकी राजी मांय ही मैं राजी हूँ फेरू आँखें खुल गयीं। एक रूपके दर्शन होने लाग गये थोड़ी देरके बाद फिर आँखें मिचीं फिर श्रीभगवान् श्रीजयदयालजी सूं बोल्या कि तू कहे तो तेरे कहनेसे तरे कहे मुजब करने सकूं छूँ हालताई तो समय तो वह आयो नहीं है कि सबने जबरदस्ती दर्शन दियो जावे। इसपर श्रीजयदयालजी हँसकर श्रीभगवान्ने कही कि थारो समय आवे जणे कराया मने तो कोई गरज नहीं है। श्रीभगवान् बहुत हँस्या और बोल्या कि गरज तो म्हाने है सो तेरे के यो मुजब काम करनेके वास्ते बाध्य हाँ म्हे तो तेरे ही सदृश पुरुषोंका उपासक हाँ। फिर आँखें खुल गयीं। एक स्वरूपका दर्शन होने लाग गया। थोड़ी देरके बाद फिर आँखें मिचीं फिर देख्यो कि श्रीजयदयालजी और भगवान् दोनों भी भोत हँस रया है श्रीभगवान कह रहे हैं—

(१) तेरा भक्त है सो मेरा भक्त है।

(२) तेरी आज्ञापालन माँय ही मेरी आज्ञापालन है।

(३) तेरी प्रसन्नतामें ही मेरी प्रसन्नता है।

(४) तेरी इच्छामें ही मेरी इच्छा है और

(५) तेरे स्वरूपमें ही मेरो स्वरूप है।

(६) तेरी आज्ञा मानणेवाले और तेरे कह्यां मुजब मेरी भक्ति करनेवालेके उद्धारमें कोई शंकाकी बात नहीं है।

(७) मेरा दर्शन तो तेरे सहारे है।

श्रीजयदयालजी बोल्या कि मैं तो आपको ही हूँ। आपकी इच्छाके विरुद्ध मेरी कोई इच्छा नहीं हुवे है। आप उचित समझो सो ही करने सगो छे। इतनी बात कहनेके बाद दोनों हँसने लग गया। भगवान्के मुख कमलको दया और आनन्द उमड़ रया था। इसके बाद आँखें खुल गयीं और एक स्वरूपके दर्शन होने लाग गया और भगवान्की आज्ञा लोगोंने सुणानेके बाद भगवान्को स्वरूप अन्तर्धान हो गयो। श्रीजयदयालजी उस जगह ही दीखने लाग गया।

प्रिय प्रेमी पाठक वृन्द! यहाँतक आप हमारे चरित्रनायककी मातृभाषा मारवाड़ी भाषामें उपर्युक्त घटना पढ़कर ऊब गये होंगे और अनुमान करते होंगे कि जो कल्याण-जैसे भारतके प्रधान मासिक पत्रके सम्पादक हैं, उनकी ऐसी बेतुकी भाषा कैसी?

(२)

विलक्षण ध्यान

(बीसवाँ पटल, पृष्ठ संख्या ११५ के संदर्भमें)

लोग प्राय: कहा करते हैं कि भजनमें हमारा मन नहीं लगता, ध्यानमें आनन्द नहीं आता, मनमें निरन्तर सांसारिक स्फुरणाएं उठती ही रहती हैं। वास्तवमें इस प्रकार समझने और कहनेवाले लोग भजन-ध्यानके आनन्द और प्रेमसे प्राय: परिचित नहीं रहते। भजन-ध्यानका आनन्द जिस भाग्यवानको थोड़ा-सा भी प्राप्त हो जाता है उससे पूछनेपर पता लग सकता है कि भजन ध्यानमें उसका मन कितना लगता है! अभी हालमें एक ऐसी अद्भुत घटना हुई जिसे सुनने और जाननेमें बड़ा आनन्द मिलता है और इस बातका पता लगता है कि ध्यानका आनन्द प्राप्त होनेपर उसमें कैसी विलक्षण मत्तता होती है। पाठकोंके लाभार्थ हम उस अद्भुत घटनाका कुछ विवरण नीचे प्रकाशित करते हैं। कुछ दिनोंसे श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका शरीरकी अस्वस्थताके कारण जलवायु परिवर्तनार्थ मारवाड़ी आरोग्य भवन, जसीडीहमें ठहरे हुए थे। सत्संगके प्रेमी लोग प्राय: आपके पास आया-जाया करते थे। यद्यपि शारीरिक दृष्टिसे विशेष बोलना-चालना उनके स्वास्थ्यके लिये हानिकर ही समझा जाता है परन्तु लोकहितकी स्वाभाविक इच्छासे वे प्राय: आने-जानेवाले सत्संगियोंसे बातचीत किया करते थे।

गत मिती आश्विन शुक्ल प्रतिप्रदा सोमवारको कलकत्तेसे श्रीयुत रामनृसिंहजी जसीडीह आये। रामनृसिंहजी कलकत्तेके एक प्रतिष्ठित मारवाड़ी कुलके नवयुवक थे। आपके पिता आदि कलकत्तेमें बहुत दिनोंसे व्यवसाय करते हैं। रामनृसिंहजीकी उम्र अनुमान तेईस सालकी होगी। वे बड़े सच्चरित्र और सरल स्वभाव हैं। कई वर्षोंसे भक्तिभावमें आपका प्रेम है।

रामनृसिंहजीने श्रीजयदयालजीसे कहा कि मुझे कोई ऐसा साधन बतलाना चाहिये कि जिससे तीन दिनोंमें भगवान् मिल जायँ। कठिनसे कठिन साधन होगा तो भी मैं उसके पालन करनेकी चेष्टा करूँगा। श्रीजयदयालजीने उस समय कोई उत्तर नहीं दिया। रामनृसिंहजीको आये दो दिन बीत गये। इस बीचमें रामनृसिंहजीने दो एक बार और भी प्राय: इसी प्रकार प्रश्न किये थे किन्तु उनका कोई उत्तर नहीं मिला। तीसरे दिन मिती आश्विन शुक्ल द्वितीया बुधवार प्रात:काल ८ बजे श्रीरामनृसिंहजीने फिर श्रीजयदयालजीसे कहा कि मैंने तीन दिनका साधन पूछा था उसमें दो दिन तो बीत गये और एक बाकी है। आपने अबतक कुछ भी नहीं कहा अब कृपाकर मुझे वह साधन बतलाइये। अति कठिन होनेपर भी मैं उसके लिये चेष्टा करूँगा। श्रीजयदयालजीने उत्तरमें कहा कि मेरी समझसे यदि मनुष्य आलस्य और विक्षेपसे (सांसारिक स्फुरणासे) रहित होकर तैलधारावत् निरन्तर एकतार भगवान्‌का ध्यान करे तो चौबीस घंटेके साधनमें ही उसे भगवान् मिल सकते हैं। परन्तु पहलेका कुछ अभ्यास हुए बिना लगातार चौबीस घंटे सांसारिक स्फुरणा और आलस्यसे रहित होकर ध्यान होना कठिन है। क्योंकि ऐसे ध्यानमें संसार या शरीरकी कोई भी स्फुरणा किसी प्रकार भी नहीं होनी चाहिये।

यदि आलस्यका सर्वथा त्याग न हो सके तो केवल सांसारिक स्फुरणाओंको छोड़कर ही तीन दिनों तक लगातार भगवान्‌का ध्यान करे। नींद आवे तो सो जाय और क्षुधा-पिपासाकी इच्छा हो तो अन्न जल ग्रहण कर ले। इसी प्रकार आवश्यकता हो तो मलमूत्रका भी त्याग करता रहे। ध्यानकी गाढ़स्थितिमें भूख-प्यासकी या मलमूत्र त्यागकी भावना ही न हो तो कोई खाने-पीने और मलमूत्र त्यागकी चेष्टा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। वास्तवमें इन सब शारीरिक क्रियाओंके न होनेमें कोई आपत्ति नहीं परन्तु ध्यानकी गाढ़स्थिति निरन्तर एकसी बनी रहनी चाहिये। ध्यानकी निरन्तरतामें किसी

प्रकारका व्याघात न हो। सांसारिक स्फुरणा किसी प्रकार भी न आवे। ध्यानका तार न टूटे।

मेरी समझसे इस प्रकार शारीरिक क्रियाओंके रहनेपर भी विक्षेपरहित तीन दिनके ध्यानसे भगवान् मिल सकते हैं। परन्तु पहलेकी भाँति यह साधन भी पूर्वाभ्यासके बिना होना कठिन है। इस बातचीतके होते ही श्रीरामनृसिंहजी वहीं उसी कमरेमें श्रीजयदयालजीके पलंगके पास बैठकर ध्यान करने लगे, उनकी ध्यानावस्था बड़ी ही विलक्षण प्रतीत होती थी, नेत्र खुले हुए थे, ध्यानकी गाढ़स्थितिमें देखकर लोगोंने उनसे खानपानके लिये कुछ भी नहीं कहा। दिनभर इसी अवस्थामें बीत गया। रातको श्रीजयदयालजीने उनसे भोजन करने और जल पीनेके बाबत पूछा तो उन्होंने कहा कि मुझे इच्छा नहीं है। पीछे यह पता चला कि वे अपने मनमें यह भाव कर चुके थे कि जबतक भगवान् न मिलेंगे तबतक कोई भी क्रिया नहीं करूँगा। यह इच्छा इस समय उनके हृदयमें जाग्रत थी। करीब आठ बजे उस रोज श्रीजयदयालजीने उपस्थित अन्य सत्संगियोंमेंसे श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया, आनन्दरामजी जालान, हनुमानदासजी गोयन्दका आदिसे पूछा कि आपकी भावनामें रामनृसिंहजीको भगवान् मिलेंगे या नहीं? इसके उत्तरमें लोगोने भिन्न-भिन्न प्रकारकी बातें कहीं। आनन्दरामजीने कहा कि भगवान् जरूर मिलेंगे। किसीने कहा कोई बड़ी बात नहीं। ज्वालाप्रसादजी और हनुमानदासजीनेकहा कि आपकी जो सम्मति है वही हमारी सम्मति है। अन्तमें सबने श्रीजयदयालजीसे ही पूछा, तब उन्होंने कहा कि रामनृसिंहजीके प्रेमके आधारपर सब निर्भर है। प्रेम हो तो मिल सकते हैं नहीं तो नहीं। यह भी कहा कि यदि प्रात:काल आठ बजे तक संसारकी स्फुरणा और आलस्य बिलकुल न हो तो मिल सकते हैं। अन्तमें श्रीहनुमानदास गोयन्दकाने उनके पास पूजाकी सामग्री रखकर उनसे कह दिया कि आवश्यक हो तो पूजाकी सामग्री तुम्हारे पास रखी है। इससे उनके अन्त:करणमें विश्वास और भी बढ़ गया। ध्यानका आनन्द इतना बढ़ा कि वे उसमें मुग्ध हो गये।

दूसरे दिन वृहस्पतिवारको प्रात:काल सात बजे श्रीजयदयालजी उनके पास आये, रामनृसिंहजी ध्यानमें ज्योंके त्यों बैठे हुए थे। श्रीजयदयालजीका आना समझकर वहीं बैठे हुए रामनृसिंहजीने उन्हें प्रणाम करके कहा कि भगवान् अभीतक नहीं आये। श्रीजयदयालजीने कहा कि वे अभी पूरे २४ घंटे भी नहीं हुए हैं। उसमें भी एक घंटा बाकी है, चेष्टा करनी चाहिये। श्रीजयदयालजीने वहाँपर आनन्दरामजी आदि सत्संगियोंको बुलाकर उनसे कहा कि रातको भगवान्ने इन्हें दर्शन नहीं दिये सों अब कोशिश करनी चाहिये। क्या आप लोग सब यह चाहते हैं कि इन्हें भगवान्के दर्शन हो जाना चाहिये, हमें चाहे न हों। इसपर किसीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया केवल एक आनन्दरामजीने कहा कि मुझे चाहे भगवान् न मिलें परन्तु इन्हें मिलने चाहिये। इसके बाद श्रीजयदयालजीने भगवान्के स्वरूपका सविस्तार बड़ा ही मनोहर वर्णन करके रामनृसिंहजीसे पूछा कि अब बताओ तुम्हारी स्थिति कैसी है? उन्होंने कहा कि 'मेरा चित्त बहुत प्रसन्न है, बड़ा आनन्द और शान्ति है। नेत्र बन्द रखनेपर भगवान्के दर्शन होते हैं, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज भगवान् विष्णु आपके पास पलंगपर बैठे हैं। भगवान्ने दोनों चरणकमल पलंगसे नीचे लटका रखे हैं और इस भावसे तिरछें होकर बैठे हैं कि जिससे उनका मुखारविन्द आपको और मुझको दोनोंको दीखे।' श्रीजयदयालजीने कहा कि 'जब आँख मूँदे हुए भगवान् दीखते हैं तो उन्हें आँख खोलकर भी देखो' रामनृसिंहजीने कहा—'आँख खोलकर देखनेपर एक बार आभास-सा पड़ता है परन्तु प्रत्यक्ष नहीं दीखते, आँख मूँदनेपर तो प्रत्यक्षकी तरह दीखते हैं।' श्रीजयदयालजीने कहा कि यदि प्रत्यक्षकी तरह दीखते हैं तो उनके चरण पकड़ने चाहिये। रामनृसिंहजीने उत्तर दिया कि आप उनके हाथ पकड़िये, मैं चरण पकड़ता हूँ। इसपर श्रीजयदयालजी बोले कि 'मुझको तो आँख खोले बिल्कुल ही नहीं दीखते मैं कैसे पकड़ सकता हूँ। तुमको तो आँख खोले रहनेपर भी कुछ आभास तो होता ही है। तुम पकड़ सकते हो।' इस प्रकार बातें होते-होते आठ बज गये। श्रीरामनृसिंहजीने कहा कि अभी तक भगवान् आँख खोलने पर नहीं दीखते इसलिये मुझे इतनेमें सन्तोष नहीं

है। मैं तो यह चाहता हूँ कि मुझको और मेरे पास बैठनेवाले सबको वे दीखें। श्रीजयदयालजीने रामनृसिंहजीसे पूछा कि रातको तुम्हें आलस्य आया? उन्होंने कहा कि एक-दो बार क्षणिक रूपसे आया फिर मैं सावधान हो गया।' फिर पूछा कि तुम्हारे मनमें कोई स्फुरणा हुई! उन्होंने कहा कि सांसारिक स्फुरणा तो एक भी हुई याद नहीं है। किसी-किसी समय जरासे कालक लिये ध्यान छूट जाता था। इतनी बातें होनेपर रामनृसिंहजी फिर ध्यानमग्न हो गये। अन्नजलके लिये पूछा गया तो कहा कि रूचि नहीं है। श्रीयुत आनन्दरामजी जालान और दत्तलालजी भी कुछ समयतक ध्यानके लिये रामनृसिंहजीके पास बैठे परन्तु अधिक समय तक नहीं बैठ सके; दत्तलालजीने कहा कि मेरी वृत्तियाँ स्थिर नहीं हुई इससे मैं नहीं बैठ सका, आनन्दरामजीने कहा कि मुझे बार-बार पेशाबकी हाजत होती है इसलिये उठना पड़ता है। रामनृसिंहजीसे पूछा गया कि तुम्हें कुछ भूख-प्यास लगी है? उन्होंने कहा—नहीं। पेशाबकी हाजतके सम्बन्धमें पूछनेपर भी यह कहा कि हाजतका ख्याल हुआ। इसपर श्रीजयदयालजीने कहा कि तो पेशाब करना चाहिये। उन्होंने कहा—मेरी तो यह इच्छा थी कि जबतक भगवान् न मिलें तब तक कोई सी क्रिया न करूँ।

श्रीजयदयालजीने कहा कि इस विषयमें हठ करना उचित नहीं, भगवान्‌के ध्यानमें खाने-पीने और मलमूत्र त्याग न करने या नींद न लेनेका हठ नहीं करना चाहिये। इन क्रियाओंका त्याग देना कोई प्रधान बात नहीं है। ध्यानकी गाढ़तामें इनकी भावना ही न हो तो बड़ी अच्छी बात है परन्तु जबरदस्ती भूख-प्यासको या मलमूत्रकी हाजतको रोकना मेरे मनसे प्रतिकूल है। इससे भगवान् प्रसन्न नहीं होते। ये उनके ध्यानमें बाधक होते हैं। मैं तो यह चाहता हूँ कि इन क्रियाओंके होते रहनेपर भी ध्यानका तार न टूटे, ध्यानकी गाढ़स्थिति तैलधारावत् निरन्तर एकसी बनी रहे। इसलिये तुम्हें हाजत हो तो पेशाब कर लेना चाहिये। इसपर रामनृसिंहजीने बाहर जाकर पेशाहब किया। इस समय करीब संध्याके ५ बजे थे। इस तरह अनुमान ३३ घंटेसे अधिक समय बीतनेपर मूत्र त्याग किया।

तदनन्तर रामनृसिंहजी फिर उसी जगह ध्यानमें बैठ गये। रात होनेपर श्रीजयदयालजीने कहा कि रातको नींद आवे तो रोकना नहीं चाहिये। सो जाना उचित है। अनुमान रातको १ बजे बाद उनको आलस्य आया तब वे वहीं लेट गये। पहले दिन प्रातःकाल ६ बजेसे पहले अनुमान से सोकर उठे थे। इसप्रकार प्रायः ४३ घंटे बाद वे सोये। करीब चार घंटे नींद लेनेपर प्रातःकाल फिर उठकर उसी स्थानमें वैसे ही बैठ गये। शुक्रवारको प्रातःकाल उनसे फिर स्थितिके सम्बन्धमें पूछा गया तो उन्होंने कहा कि—'बहुत आनन्द है, बड़ी शान्ति है।' भूख-प्यासके सम्बन्धमें पूछनेपर उन्होंने कहा कि बड़ी तृप्ति-सी हो रही है। खाने-पीनेकी किंचित् भी इच्छा नहीं है। न मलमूत्र त्यागकी ही किंचित् हाजत है।

इसी दिनके प्रायः तीन बजे रामनृसिंहजीने कहा कि 'भगवान् तो अब तक नहीं मिले।' तब श्रीजयदयालजीने कहा कि अपने सबको मिलकर कीर्तन करना चाहिये। इसपर पलंग और सतरंजी आदि कमरेसे बाहर निकाल दिये गये और सब मिलकर कमरेमें कीर्तन करने लगे। कुछ समयतक तो बैठे-बैठे ही कीर्तन होता रहा। तदनन्तर श्रीजयदयालजीने कहा कि सब खड़े होकर कीर्तन करें। परन्तु रामनृसिंहजीको उसी प्रकार आसनसे बैठे रहने और खड़ा न होनेके लिये कहा। इसपर रामनृसिंहजीने कहा कि मुझे खड़ा होनेसे क्यों रोका जाता है? श्रीजयदयालजीने उत्तर दिया कि यदि तुम्हारे ध्यानकी स्थितिमें कोई विक्षेप न हो तो तुम भी उठ सकते हो। सब आदमी खड़े होकर कीर्तन करने लगे। रामनृसिंहजी बैठे रहे। प्रायः १॥ घंटेतक लगातार कीर्तन होता रहा। कीर्तनके बाद रामनृसिंहजीसे पूछा गया कि कीर्तनकालमें तुम्हारी कैसी स्थिति रही? इसपर उन्होंने कहा कि बड़ा आनन्द रहा। ध्यानकी गाढ़स्थितिमें प्रसन्नता, आनन्द और शान्तिका पार नहीं है। जब आप लोग बैठे हुए कीर्तन करते थे तब मुझे आँखें बन्द किये ऐसा प्रत्यक्षसा प्रतीत होता था कि इस कमरेमें एक कदम्बका वृक्ष है और उसके नीचे भगवान् श्रीकृष्ण-श्रीमतीराधाजीके साथ खड़े हुए वंशी बजा रहे हैं। वंशीकी धुन कीर्तनके धुनमें मिल रही है। आँख

खोलनेपर प्रायः दो मिनटतक इसी प्रकारकी स्थिति रही।

श्रीजयदयालजीने कहा कि तुम तो बैठे हुएं थे। तुम्हें कैसे पता लगा कि वह वृक्ष कदम्बका था। तुम्हारी तो दृष्टि नीची थी। इसपर उन्होंने कहा कि एक वृक्ष था। भगवान् कदम्ब तले रहा करते हैं। इसलिये अनुमानसे मैंने कदम्ब बताया। शायद दूसरा भी हो सकता है। श्रीजयदयालजीने कहा कि तुमने चरण क्यों नहीं पकड़ लिये? उन्होंने कहा कि 'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी दृढ़ भावनासे मुझे भगवान्‌की मूर्ति दीख रही थी। वास्तवमें प्रत्यक्ष दर्शन नहीं थे। इसीसे उनके चरण पकड़नेकी कोई चेष्टा नहीं हुई। आप लोग जब खड़े होकर कीर्तन कर रहे थे। उस समय आँख मूँदे मुझे ऐसा दीख रहा था कि चतुर्भुज भगवान् विष्णुकीर्तनमें शामिल होकर स्वयं नृत्य कर रहे हैं। आँख खोलनेपर प्रत्यक्षकी ज्यों ऐसा दीखता था परन्तु आँख मूँदनेपर नहीं दीखते थे। पर आनन्द और शान्ति अपार थी और है।'

इसके बाद संध्याको ५ बजे उनसे भूख-प्यासके लिये पूछा गया, तब उन्होंने कहा कि थोड़ी प्यास है। जल पीनेको कहा गया तब थोड़ा-सा पी लिया। इससे पहले उन्होंने बुधवारको प्रातःकाल ५ बजे जल पीया था। इस प्रकार ६० घंटे बाद जल ग्रहण किया। जल पीकर फिर वैसे ही वहीं बैठ गये। रातको करीब १ बजे जब श्रीजयदयालजी जागे तो उन्होंने कहा कि 'तुम अभी सोये नहीं'। रामनृसिंहजीने उत्तर दिया कि मुझे आलस्य नींद बिल्कुल ही नहीं है। श्रीजयदयालजीने कहा कि 'नहीं है तो भी सो जाओ।' इसपर वे वहीं लेट गये। शनिवार प्रातःकाल ६ बजे तक सोये। फिर उठकर वहीं बैठ गये। इस समाचारको सुनकर उनके पिताजी भी कलकत्तेसे आ गये थे। उन्होंने मलमूत्र त्याग करने और अन्न-जल ग्रहण करनेके लिये बड़ा आग्रह किया। श्रीजयदयालजीने रामनृसिंहजीसे कहा कि तुम्हें मल त्याग करनेको जाना चाहिये। रामनृसिंहजीने कहा कि मुझे बिल्कुल हाजत नहीं है। श्रीजयदयालजीने कहा कि नहीं है तो भी जाओ। रामनृसिंहजी शौचके लिये गये, शौच हो भी गया और वे वहाँसे लौटकर हाथ-मुँह धोकर फिर वहीं बैठ गये। इस प्रकार बुधवार प्रातःकाल शौच जानेके बाद आज शनिवारको प्रातः करीब ८ बजे ७४ घंटेके बाद शौचको गये।

दिनके करीब दस बजे उन्हें श्रीजयदयालजीने दूध या अन्नके लिये कहा। इसपर वे बोले कि मुझे भूख-प्यासका बिल्कुल पता नहीं है। बहुत भारी शान्ति और तृप्ति तथा बड़ा आनन्द हो रहा है। खाने-पीनेके लिये मुझे क्यों कहा जाता है? इसपर श्रीजयदयालजीने कहा कि जब भूख-प्यास नहीं है तो न खाना-पीना ही उत्तम है। ध्यानकी गाढ़तामें भूखप्यासका पता न रहना बड़े ही आनन्द और संतोषकी बात है परन्तु तुम्हारे पिताजीके संतोष और उनकी मनोवेदना दूर करनेके लिये तुम्हें थोड़ा दूध लेना उचित है। बहुत आग्रह करनेपर रामनृसिंहजीने थोड़ा दूध लिया इससे पहले उन्होंने मंगलवारकी रातको करीब ९. बजे दूध लिया था। इसप्रकार अनुमानसे ८५ घंटे बाद दूध लिया। फिर वहीं बैठ गये। सायंकाल ५ बजे भोजन और दूधके लिये फिर कहा गया तब उन्होंने कहा कि रुचि नहीं है, ध्यानानन्दसे तृप्ति हो रही है। परन्तु उनके पिताजीका विशेष आग्रह देखकर श्रीजयदयालजीने भी उनके संतोषके लिये रामनृसिंहजीसे आग्रहपूर्वक कहा कि अब अन्न ग्रहण करना ही उचित है। तब उन्होंने थोड़ा-सा भोजन किया। इस समय संध्याके ५ बज चुके थे। इससे पहले उन्होंने मंगलवारको संध्याके ६ बजे भोजन किया था। इस प्रकार ९५ घंटे बाद अन्न-जल ग्रहण किया, फिर वहीं बैठ गये। इसके बाद भी प्रायः तीन-चार दिनों तक वहीं बैठे रहे। परन्तु शारीरिक क्रियाएँ होने लगीं। यह पता लगा कि ध्यानकी गाढ़ता जैसी अन्नादि ग्रहण करनेके पूर्व थी वैसी पीछे नहीं रही। गत तीन दिनोंके सम्बन्धमें उनसे पूछा गया तब उन्होंने कहा कि 'उन तीन दिनोंमें ध्यान तो जरा-जरासे समयके लिये कई बार छूटा परन्तु कोई सांसारिक स्फुरणाका होना तो स्मरण नहीं है। एक-दो स्फुरणा हुई हो तो पता नहीं, ध्यानकी विलक्षण स्थिति रही।' रामनृसिंहजीके चेहरेपर भी ध्यानजनित शान्तिके चिह्न प्रत्यक्ष प्रतीत हो रहे थे। उनको देखकर लोगोंका चित्त आकर्षित और मुग्ध होता था।

(३)

दिव्य संदेश

(इक्कीसवाँ पटल, पृष्ठ संख्या १२५ के संदर्भमें)

इस समय मनुष्य जातिकी बुरी दशा हो रही है। पार्थिव प्रलोभनोंकी अधिकतासे अभाव और अशान्तिकी आग धधक उठी है, इसी जड़ भोगविलासकी प्रबलतासे धार्मिक जगत्में भी अन्दर ही अन्दर बड़ा अनर्थ होने लगा है। धर्मके नामपर आज जगत्में जिस दानवीलीलाका ताण्डव नृत्य हो रहा है उसे देखकर कलेजा काँप उठता है। परमात्मापर विश्वास रखकर संसारमें लोकहितार्थ अपना कर्तव्यकर्म करनेवालोंकी संख्या कम हो रही है। परस्पर एक दूसरेका सर्वस्वान्त करनेके लिये जातियाँ और राष्ट्र अपना दृढ़ संगठन कर रहे हैं तथा वे अपने सुसंगठित साधनों द्वारा दूसरोंकी स्वाभाविक उन्नतिके मार्गमें रोड़े अटकाकर उन्हें गिराने और पददलित करनेकी घृणित चेष्टा कर रहे हैं। दम्भपूर्ण आसुरी सम्पत्तिका विकास हो चला है। विषयासक्ति और कामनाने मनुष्यके ज्ञानको ढककर उसे अपने मनुष्यत्वके पदसे गिरानेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया है। सभ्यताकी वाह्य सुन्दरतासे दम्भ, व्यभिचार, मिथ्या अभिमान और हिंसा-प्रतिहिंसा आदि दुर्गुण उत्पन्न और क्रमशः उन्नत होकर जगत्की मनुष्य जातिको आध्यात्मिक आत्महत्या करनेके लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं। सर्वव्यापी, सर्वप्रिय, सर्वमय और सर्वधन परमात्माका आसन छोटा करके उसे एक छोटी-सी संकुचित सीमाके अन्दर रखनेकी व्यर्थ चेष्टा करके, एक धर्मनामधारी दूसरे प्रतिपक्षी धर्मनामधारीके उस धर्मके नामका नाश कर अपने धर्मके नामकी निरर्थक उन्नति करना चाहता है।

धर्मके नामपर आज ढोंग और दम्भका पार नहीं रहा है। परमात्माको उसके नामको उसके दिव्य धर्मको भुलाकर जगत्, आज ऊपरकी बातोंमें ही लड़ रहा है। इसीलिये न तो आज धर्मकी उन्नति होती है और न कोई सुखका साधन ही दीखता है। लोग समझते हैं कि ईश्वर केवल उनके निर्देश किये हुए स्थान और नियमोंमें ही आबद्ध है, अन्य सब जगह तो उसका अभाव ही है।

ऐसी स्थितिमें मनुष्य-जातिके कल्याणके लिये कुछ ऐसी बातें होनी चाहिये जिनपर अमल करनेसे सबका कल्याण हो सकता हो। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये निम्नलिलिखित सात बातें 'दिव्य सन्देश' के रूपमें आपलोगोंके सम्मुख रखी जाती हैं। इनका पालन ईश्वरवारी मात्र कर सकते हैं और यह जोरके साथ कहा जा सकता है कि इनका पालन करनेसे उनका परम कल्याण होनेमें कोई सन्देह नहीं है।

सात बातें

१-ईश्वरके नामका जप, स्मरण और कीर्तन करना चाहिये।

२-ईश्वरके नामका सहारा लेकर पाप नहीं करना चाहिये। जो लोग ईश्वरके नामकी ओटमें पाप करते हैं वे बड़ा अपराध करते हैं।

३-(क) ईश्वरके नामका साधनकर उसके बदलेमें संसारके भोगोंकी कामना नहीं करनी चाहिये।

(ख)ईश्वरके नामसाधनरूपी धनका उपयोग पापनाशके कार्यमें भी नहीं करना चाहिये।

४-ईश्वरके नामको परमप्रिय मानकर उसका उपयोग उसीके लिये करना चाहिये।

५-दम्भ नहीं करना चाहिये। दम्भसे भगवान् अप्रसन्न होते हैं। दाम्भिकको बुरी गति होती है।

६-सच्चे ईश्वरभक्त, सदाचारपरायण कर्तव्यशील होनेके लिये गीताधर्मका आश्रय लेना चाहिये।

७-दूसरेके धर्मकी निन्दा या तिरस्कार नहीं करना चाहिये। ऐसे झगड़ोंसे सच्चे सुखके साधकको बड़ा नुकसान होता है।

अब इन सात बातोंका अलग-अलग विवेचन कीजिये—

(१) जगत्के ईश्वरवादी मात्र ईश्वरके नामको मानते हैं। भगवान्के नामसे उसके स्वरूपकी, गुणोंकी, महिमाकी, दयाकी और प्रेमकी स्मृति होती है। जैसे सूर्यके उदयमात्रसे जगत्के सारे अन्धकारका नाश हो जाता है, वैसे ही दुर्गुण और पापोंका समूह तत्काल नष्ट हो जाता है। जिनके यहाँ परमात्मा जिस नामसे पुकारा जाता है वह उसी नामको ग्रहण करें, इसमें कोई आपत्ति नहीं।

(२) परन्तु परमात्माका नाम लेनेमें लोग कई जगह बड़ी भूल कर बैठते हैं। भोगासक्ति और अज्ञानसे उनकी ऐसी समझ हो जाती है कि हम भगवन्नामका साधन करते ही हैं और नामसे पाप नाश होता ही है इसलिये पाप करनेमें कोई आपत्ति नहीं है। यों समझकर वे पापोंका छोड़ना तो दूर रहा, भगवान्के नामकी ओट या उसका सहारा लेकर पाप करने लगते हैं। एक मुकदमेंबाज एक नामप्रेमी भक्तको गवाह बनाकर अदालतमें ले गया। उससे कहा कि देखो, मैं जो कुछ तुमसे कहूँ, हाकिमके पूछनेपर वही बात कह देना। गवाहने समझा कि यह मुझसे सच्ची ही बात कहनेको कहेगा, पर उसकी बात सुननेपर पता लगा कि वह झूठ कहलाना चाहता है। इससे उसने कहा कि भाई, मैं झूठी गवाही नहीं दूँगा। मुकदमेंबाजने कहा कि 'इसमें आपत्ति ही कौन-सी है? क्या तुम नहीं जानते कि भगवान्के नामसे पापोंका नाश होता है। तुम तो नित्य भगवान्का नाम लेते ही हो, जरा-सी झूठसे क्या बिगड़ेगा? एक ईश्वरके नाममें पापनाशकी जितनी शक्ति है उतनी मनुष्यमें पाप करनेकी नहीं है। मैं तो काम पड़नेपर यों ही कर लिया करता हूँ।' उसने कहा, 'भाई, मुझसे यह काम नहीं होगा, तुम करते हो तो तुम्हारी मर्जी।' मतलब यह कि इस प्रकार परमात्माके नाम या उसकी प्रार्थनाके भरोसे जो लोग पापको आश्रय देते हैं वे बड़ा अपराध करते हैं। वे तो पाप करनेमें भगवान्के नामको साधन बनाते हैं, नाम देकर बदलेमें पाप खरीदना चाहते हैं। ऐसे लोगोंकी दुर्गति नहीं होगी तो और किसकी होगी?

(३)(क) कुछ लोग जो संसारके पदार्थोंकी कामनावाले हैं वे भी बड़ी भूल करते हैं। वे भगवान्का नाम लेकर उसके बदलेमें भगवान्से धन-सम्पत्ति, पुत्र-परिवार, मान-बड़ाई आदि चाहते हैं। वास्तवमें वे ही भगवन्नामका महात्म्य नहीं जानते। जिस भगवन्नामके प्रतापसे उस राजराजेश्वरके अखण्ड राज्यका एकाधिपत्य मिलता हो, उस नामको क्षणभंगुर और अनित्य तुच्छ भोगोंकी प्राप्तिके कार्यमें खो देना मूर्खता नहीं तो क्या है? संसारके भोग आने और जानेवाले है, सदा ठहरते नहीं। प्रत्येक भोग दु:खमिश्रित हैं। ऐसे भोगोंके आने जानेमें वास्तवमें हानि ही क्या है?

(ख) जो लोग यह समझकर नाम लेते हैं कि इसके लेनेसे हमारे पाप नाश हो जायेंगे वे भी विशेष बुद्धिमान् नहीं हैं क्योंकि पापोंका नाश तो पापोंके फलभोगसे भी हो सकता है। जिस ईश्वरके नामसे वह प्रियतम परमात्मा प्रसन्न होता है, जो नाम प्रियतमकी प्रीतिका निदर्शन है, उसे पाप नाश करनेमें लगाना क्या भूल नहीं है? वास्तवमें ऐसा करनेवाले भगवन्नामका पूरा माहात्म्य नहीं जानते। क्या सूर्यको कहना पड़ता है कि तुम अंधेरेका नाश कर दो। उसके उदय होनेपर तो अन्धकारके लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता।

(३) भगवान्का नाम भगवत्प्रेमके लिये ही लेना चाहिये, भगवान् मिलें या न मिलें परन्तु उनके नामकी विस्मृति न हो। प्रेमी अपने प्रेमीके मिलनेसे इतना प्रसन्न नहीं होता जितना उसकी नित्य स्मृतिसे होता है। यदि उसके मिल जानेपर कहीं उसकी स्मृति छूट जाती हो तो वह यही चाहेगा कि ईश्वर भले ही न मिले परन्तु उसकी स्मृति उत्तरोत्तर बढ़े, उसका नाश न हो। यही विशुद्ध प्रेम है।

(५) नाम साधनमें कहीं कृत्रिमता न आ जाय। वास्तवमें आजकल जगत्में दिखावटी धर्म—'दंभ' बहुत बढ़ गया है। बड़े-बड़े धर्मके उपदेशक न मालूम किस सांसारिक स्वार्थको लेकर कौन-सी बात कहते हैं, इस बातका पता लगाना कठिन हो जाता है। इस दम्भके दोषसे सबको बचना चाहिये। दम्भ कहते हैं बगुलाभक्तिको। अन्दर जो बात न हो और ऊपरसे मान बड़ाई प्राप्त करने या किसी कार्य विशेषकी सिद्धिके लिये दिखलायी जाय, वही दम्भ है। दंभी मनुष्य भगवान्को धोखा देनेका व्यर्थ प्रयत्न कर स्वयं बड़ा धोखा खाता है। भगवान् तो सर्वदर्शी होनेसे धोखा खाते नहीं। वह धूर्त जो जगत्को भुलावेमें डालकर अपना मतलब सिद्ध करना चाहता है स्वयं गिर जाता है। पापोंसे उसकी घृणा निकल जाती है। ऐसे मनुष्यको धर्मका परमतत्व जिसे परमात्माका मिलन कहते हैं, कैसे प्राप्त हो

सकता है ? अतएव इस भयंकर दोषसे सर्वथा बचना चाहिये।

(६) इन सब बातोंको जानकर ईश्वरका तत्व समझने और तदनुसार जगत्में कर्म करनेके लिये राह बतलानेवाला कोई सार्वभौम ग्रन्थ चाहिये या ऐसा कोई उपादेय सिद्ध मार्ग चाहिये जिसपर आरूढ़ होते ही ठीक ठिकानेसे अपने लक्ष्य तक पहुँचा जा सके। हिन्दुओंकी दृष्टिसे ऐसे चार ग्रन्थोंके नाम बतलाये जा सकते हैं जो कल्याणके मार्गदर्शकका बड़ा अच्छा काम दे सकते हैं। (१) उपनिषद् (२) श्रीमद्भगवद्गीता (३) भागवत और (४) तुलसीदासजीका रामचरितमानस। (उपनिषदोंमें प्रधानतः ईश, केन आदि दस उपनिषदोंको समझना चाहिये।) ये ऐसे ग्रन्थ हैं कि जो मनुष्यमात्रको असली लक्ष्य तक पहुँचा सकते हैं। उपनिषदोंकी और गीताकी प्रशंसा आज जगत् कर रहा है। पाश्चात्य जगत्के भी बड़े-बड़े तत्वज्ञ विद्वानोंने उपनिषद् और गीताधर्मको सार्वभौम धर्म माना है। यदि इन चारोंका अध्ययन न हो सके तो इन चारोंमें एक छोटा-सा किन्तु बड़ा ही उपादेय ग्रन्थ गीता है जिसे सबके कामकी चीज कह सकते हैं; उसीका अध्ययन करना चाहिये। गीताका अनुवाद अनेक भाषाओमें हो चुका है। यह सार्वभौम ग्रन्थ है। जिसको किसी ग्रन्थविशेषका अध्ययन न करना हो वह गीताधर्मको ही अपना मार्गदर्शक बना सकता है। गीताधर्मका अर्थ संक्षेपमें इन शब्दोंमें किया जा सकता है।

(क) सबकुछ भगवान्का समझकर सिद्धि असिद्धिमें समभाव रखते हुए आसक्ति और फलकी इच्छाका त्यागकर भगवत् आज्ञानुसार केवल भगवान्के लिये ही समस्त कर्मोंका आचरण करना तथा श्रद्धाभक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीरसे सब प्रकार भगवान्के शरण होकर, उसके नाम, गुण और स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना। अथवा—

(ख) सम्पूर्ण पदार्थ मृगतृष्णाके जलकी तरह अथवा स्वप्नके संसारकी तरह मायामय होनेके कारण मायाके कार्यरूप गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं। ऐसे समझकर मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होनेवाले कृर्तत्वाभिमानसे रहित होकर, सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे नित्य स्थित रहना, जिसमें एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीके भी अस्तित्वका भाव न रह जाय।'

यही गीताका निष्कामकर्मयोग और सांख्ययोग है, यही सार्वभौम धर्म है। इसके पालनमें सभी वर्ण और सभी जातियोंका समान अधिकार है। इसलिये—

(७) किसी दूसरेके धर्मपर किसी प्रकारका आक्षेप न कर ईर्षा, वैमनस्य और प्रतिहिंसा आदि कुभावोंको परित्याग कर संसारमें सबको सुख पहुँचाते हुए विचरना चाहिये। जो लोग अपने धर्मको पूर्ण बताकर दूसरेके धर्मकी अपूर्णता सिद्ध करते हैं वे वास्तवमें परमात्माके तत्वको नहीं जानते। यदि मैं एक धर्मका विरोध करता हूँ, उस धर्मको भला-बुरा कहता हूँ तो दूसरेके द्वारा मुझे अपने धर्मके लिये भी वैसे ही अपशब्द सुनने पड़ते हैं। इससे मैं उसके साथ ही अपने धर्मका भी अपमान करता हूँ। क्योंकि ऐसा करनेमें मुझे अपने ईश्वरको और धर्मको सर्वव्यापी और सार्वभौम पदकी सीमासे संकुचित करना पड़ता है। किसी न किसी अंशमें सभी धर्मोंमें परमात्माका भाव विद्यमान है, अतएव किसी भी धर्मका तिरस्कार या अपमान करना अपने ही परमात्माका अपमान करना है।

अतएव जो मनुष्य धर्मके नामपर कलह और अशान्तिमूलक परस्परके कटु-विवादोंमें न पड़कर गीताधर्मके अनुसार आचरण करता हुआ दम्भरहित होकर ईश्वरका पवित्र नाम लेता है और उस नामसे पाप करने, भोग प्राप्त करने एवं पाप नाश होनेकी भी कामना नहीं करता, वह बहुत ही शीघ्र काम, क्रोध, असत्य, व्यभिचार और कपट आदि सब दुर्गुणोंसे छूटकर अहिंसा, सत्य आदि सात्विक गुणोंसे सम्पन्न हो जाता है, सांसारिक जड़ भोगोंसे उसका मन हटकर सर्वदा ईश्वरके चिन्तनमें लग जाता है और इससे वह अपनी भावनाके अनुसार परमात्माके परमतत्त्वका और उसके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान और प्रत्यक्ष दर्शन लाभकर कृतार्थ हो जाता है। परमात्माका नाम ऐसा विलक्षण है कि उसके स्मरण, उच्चारण और श्रवणमात्रसे ही पापोंका नाश होता है। जो लोग स्वयं परमात्माके नाम-जप करते हैं, दूसरोंको सुनाते हैं, कहींपर बैठकर परमात्माके नामका गान करते है वे अपने कल्याणके साथ ही साथ संसारके अनेक जीवोंका बड़ा उपकार करते हैं। इसलिये सबको परमात्माके शुभ नामकी शरण लेकर स्वयं उसका स्मरण, जप और कीर्तन करना चाहिये और दूसरे लोगोंको प्रेमपूर्वक इस महान् कार्यमें लगाना चाहिये।

(४)

निवेदन

(इक्कीसवाँ पटल, पृष्ठ संख्या १३३ के संदर्भमें)

उपर्युक्त निवेदन कल्याणके गतांकमें प्रकाशित हुआ था। इसके अनुसार अनेक लोगों नियम ग्रहण कर लिया है। जिस देशमें गुरुजनोंकी सेवा शुश्रूषा करना और उनका सम्मान अभिवादन करना एक साधारण धर्म था। उस देशके निवासियोंको गुरुजनवन्दनका महत्व बतलाना एक प्रकारसे उनका अपमान करना है परन्तु दु:खके साथ कहना पड़ता है कि समय कुछ ऐसा ही आ गया है। आज पुत्र अपने माता-पिताकी चरणवन्दना करनेमें शरमाता है। शिष्य गुरूके सामने मस्तक झुकानेमें झिझकता है। पुत्रवधू सासके पग लगनेमें अपनी शानमें बाधा समझती है। फलस्वरूप उच्छृङ्खलता बढ़ रही है। कोई किसीकी बातका आदर करनेको तैयार नहीं। यदि भारतमें ऐसी ही दशा बढ़ती रही तो इसका आदर्श ही प्राय: नष्ट हो जायेगा। ऐसे अवसरमें इस प्रकारकी सलाह देनेकी बड़ी आवश्यकता है। लोगोंको चाहिये कि श्रीजयदयालजीके उपर्युक्त शब्दोंपर ध्यान देकर इस सुन्दर प्रथाको तुरन्त जारी कर दें। इससे बड़े लाभकी संभावना है। चरणोंमें प्रणाम करनेपर स्वाभाविक ही प्रणाम करनेवालेके प्रति स्नेह बढ़ता है। कई बार तो हृदय बलात्कारसे आशीर्वाद देना चाहता है। यद्यपि न देना ही उत्तम पक्ष है। आशीर्वादकी जगह भगवन्नाम उच्चारण कर लेना चाहिये। प्रत्येक बालक, युवा, प्रौढ़, वृद्धको चाहिये कि वह अपनेसे बड़े जितने लोग घरमें ही हों, नित्य उनके चरणोंमें प्रणाम करे। समान उम्रकी भाभी या काकीके चरण स्पर्श न करे, दूरसे प्रणाम कर ले। सबमें पूज्य और पवित्र भाव रखे। स्त्रियोंको चाहिये कि वे अपने पतिके सिवा अन्य किसी पुरुषका चरण स्पर्श न करे, चाहे वह कोई भी क्यों न हो। आजकलका समय बहुत खराब है। अन्य बड़े पुरुषोंको दूरसे प्रणाम कर ले।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्॥

जो मनुष्य नित्य शीलतासे वृद्धोंको प्रणाम करता और उनकी सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल बढ़ता है। (मनु० २।१।२१)

कोई भी बड़ा घरमें न हो तो परमात्माके चरणकमलोंमें तो अवश्य प्रणाम कर ले। वन्दन भी नवधाभक्तिमेंसे एक भक्ति है। भगवान्‌की किसी मूर्तिको अथवा चराचरमें व्याप्त विश्वरूप भगवान्‌को मन ही मन प्रणाम कर लेना चाहिये।
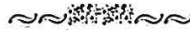
(५)

घर-घरमें भगवान्‌की पूजा

(इक्कीसवाँ पटल, पृष्ठ संख्या १३३ के संदर्भमें)

श्रीभगवान्‌ने साकाररूपसे साक्षात् प्रकट होकर कभी मुझे दर्शन दिये है। इस बातके कहनेमें असमर्थ होनेपर भी मैं बड़े जोरके साथ यह विश्वास दिला सकता हूँ कि यदि कोई भगवत्परायण होकर निष्काम प्रेमभावसे भगवान्‌की भक्ति करे तो उसे साक्षात् दर्शनके लिये भगवान् निश्चय बाध्य है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११।५४)

हे अर्जुन! अनन्य भक्ति करके तो इस प्रकार साकार रूपसे मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये और तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि भगवान् प्रत्यक्ष-दर्शन अनन्य भक्तिसे हो सकता है। अनन्य भक्तिके लिये अभ्यासकी आवश्यकता है। यदि सब समय भगवान्‌के नामका जप और हृदयमें उनका स्मरण करते हुए संसारके समस्त व्यवहार उसीके अर्थ किये जायं तो परमात्मामें अनन्य भक्ति हो जाती है। अनन्य भक्तियुक्त पुरुष स्वयं पवित्र होता है, इसमें तो कहना ही क्या है, वह अपने भक्तिके भावोंसे जगत्‌को पवित्र कर सकता है। यदि घरमें एक भी पुरुषको अनन्यभक्तिसे परमात्माका साक्षात्कार हो जाय तो उसका समस्त कुल पवित्र समझा जाता है। कहा है—

कुल पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवितसुखसागरेऽस्मिन्, लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

जिसका चित्त अपार विज्ञानानन्दघन समुद्ररूप परब्रह्म परमात्मामें लीन हो गया है उससे कुल पवित्र, माता कृतार्थ और पृथ्वी पुण्यवती होती है।

भगवान् नारद कहते हैं—

कण्ठावरोध रोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः।
पावयन्ति कुलानि पृथिवी च॥
तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि॥

(नारदभक्तिसूत्र)

ऐसे भक्त कण्ठावरोध रोमाञ्चित और अश्रुयुक्त नेत्रवाले होकर परस्पर संभाषण करते हुए अपने कुलोंको और पृथ्वीको पवित्र करते हैं। वे तीर्थोंको सुतीर्थ और कर्मोंको सुकर्म तथा शास्त्रोंको सत् शास्त्र बनाते हैं। उनके भक्तिके आवेशसे वायुमण्डल शुद्ध होता है, जिससे सम्बन्ध रखनेवाले सब कुल पवित्र हो जाते हैं और पृथ्वीपर ऐसे पुरुषोंके निवाससे पृथ्वी पवित्र हो जाती है। वे जिस तीर्थमें रहते हैं वही सुतीर्थ, वे जिन कर्मोंको करते हैं वे ही सत्कर्म और वे जिन शास्त्रोंका उपदेश करते हैं वे ही सत्‌शास्त्र बन जाते हैं—

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेय भूर्भवति।

(नारदभक्तिसूत्र)

ऐसे भक्तोंका प्रकट हुए देखकर उनके पितृगण अपने उद्धारकी आशासे आह्लादित होते हैं, देवतागण उनके दर्शनकर नाचने लगते हैं, माता पृथ्वी अपनेको सनाथा समझने लगती है। पद्मपुराणमें भी ऐसा ही वचन है।

आस्फोटयन्ति पितरौ नृत्यन्ति च पितामहाः मद्वंशे जातः सनस्त्राता भविष्यति॥

पितृ पितामहगण अपने वंशमें भगवद्भक्त प्रकट हुआ, वह हमारा उद्धार कर देगा ऐसा जानकर प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं। और भी अनेक प्रमाण हैं। वास्तवमें ऐसे पुरुषका हृदय साक्षात् तीर्थ और उसका घर तीर्थरूप बन जाता है। अतएव सब भाइयोंको चाहिये कि वे

परमात्माकी अनन्य भक्तिका साधन करें। इस साधनमें भगवान्के प्रति मन लगाना पड़ता है तथा अपना समय भगवत् सेवामें लगानेका अभ्यास करना पड़ता है। इसके लिये यदि प्रत्येक घरमें एक एक भगवान्की मूर्ति या चित्र रहे—मूर्ति या चित्र वही हो जो अपने मनको रुचता हो और नित्य नियमपूर्वक उसकी पूजाकी जाय तो समय और मन दोनोंको ही परमात्मामें लगानेका अभ्यास अनायास होगा।

भगवानके अनेक मन्दिर हैं, मन्दिरमें जाना बड़ा उत्तम है परन्तु एक तो सभी स्थानोंमें मन्दिर मिलते नहीं। दूसरे सभी जाकर अपनी इच्छाके अनुसार अपने हाथों सेवा पूजा नहीं कर सकते। तीसरे सब मन्दिरोंकी व्यवस्था आजकल प्रायः ठीक नहीं रही, चौथे घरके सब स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध मन्दिरोंमें नियमित रूपसे नहीं जा सकते परन्तु घरमें पाषाणकी भगवान्की कोई मूर्ति या चित्र सभी रख सकते हैं और उसकी पूजा अपने मतके अनुसार या प्रेमाभक्तिप्रकाशमें बतलायी हुई विधिके अनुसार स्त्री-पुरुष सभी कर सकते हैं। घरमें नित्य भगवान्की पूजा होनेसे उसके लिये पूजाकी सामग्री जुटाने, पुष्पकी माला गूंथने आदिमें बहुतसा समय एक तरहसे भगवत्चिन्तनमें लग जाता है। बालकोंको भी इसमें बड़ा आनन्द मिलता है, वे भी इसको सीख जाते हैं। लड़कपनसे ही उनके हृदयमें भगवत्सम्बन्धी संस्कार जमने लगते हैं। व्यर्थके खेलकूदकी बात भूलकर उनका चित्त इसी प्रकार सत्कार्यमें प्रमुदित होने लगता है। छोटी उम्रके संस्कार आगे चलकर बड़ा काम देते हैं। भक्तिमती मीराबाई आदिमें इस लड़कपनके मूर्तिपूजाके संस्कारसे ही बड़ी उम्रमें भक्तिका विकास हुआ था। जिन लोगोंने अपने घरोंमें इस कार्यका आरम्भ कर दिया है उनकी भगवान्में श्रद्धा भक्ति और प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ रहा है।

अतएव मैं सब भाइयों, वेदशास्त्र और पुराणादि न माननेवाले भाइयोंसे भी विनीत भावसे यह प्रार्थना करता हूँ कि यदि वे उचित समझें तो अपने-अपने घरोंमें इस कामको तुरन्त आरम्भ कर दें। भगवान्की पूजाके साथ ही घरके सब पुरुष, स्त्रियाँ और बालक मिलकर भगवान्का नाम लें। भगवान्की पूजा चाहे एक ही व्यक्ति करे पर पूजाका अधिकार सबको हो। स्वामी न हो तो स्त्री पूजा कर ले, स्त्री न हो तो पुरुष कर ले। सारांश यह है कि भगवत्-पूजनमें नित्य कुछ समय अवश्य लगता रहे। इससे घरभरमें श्रद्धा-भक्तिका विकास हो सकता है। जो लोग कर सकें वे बाह्य पूजाके साथ ही अपने-अपने सिद्धान्तके अनुसार या 'प्रेमभक्तिप्रकाश' के अनुसार भगवान्की मानसिक पूजा भी करें, क्योंकि आन्तरिक पूजाका महत्व और भी अधिक है। एक बार मेरी इस प्रार्थनापर ध्यान देकर इस पूजन भक्तिका आरम्भ कर इसका फल तो देखें। इससे अधिक विश्वास दिलानेका मेरे पास कोई और साधन नहीं है।
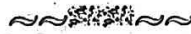
(६)

सन्ध्योपासनाकी आवश्यकता

(इक्कीसवाँ पटल, पृष्ठ संख्या १३३ के संदर्भमें)

प्रत्येक द्विजको दोनों समयकी सन्ध्या करना उचित है। भगवान् सूर्यनारायणके उदय होनेसे पूर्व ही मनुष्यके लिये बिछौनेसे उठ जानेकी विधि है। 'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्यते'। ब्राह्ममुहुर्तमें उठना चाहिये उस समय उठनेसे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी तरहका लाभ होता हैं। इसके पश्चात् यथाविधि शौच स्नान करके सन्ध्योपासन करना चाहिये। वेदके वचन हैं,

उद्यन्तमस्तयन्तमादित्यमभिध्यायन्।
ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमनुश्ते॥

सूर्यके उदय और अस्त समय सर्वदा सन्ध्या करनेवाला विद्वान् समस्त कल्याणको प्राप्त करता है। स्मृतिमें कहा है—

सन्ध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्॥

जो द्विज सदाचारपरायण रहकर नित्य सन्ध्योपासन करते हैं वे पापोंसे मुक्त होकर सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं।

निशायां वा दिवा वापि यदज्ञानकृतं भवेत्।
त्रिकालसन्ध्या करणात् तत्सर्वं हि प्रणश्यति॥

रात और दिनमें अज्ञानसे जो पाप बन गया हो वह सब त्रिकालसन्ध्या करनेसे नष्ट हो जाता है।

सन्ध्याके मन्त्र बड़े ही सुन्दर हैं उनमें और अग्निके रूपमें परब्रह्म परमात्माकी प्रार्थना की गयी है। भगवत्कृपासे सन्ध्या करनेवालेके पाप क्षय होकर उसके हृदयमें महान् सात्विक भावोंका विकास हो सकता है। इतना होनेपर भी जो लोग सन्ध्या नहीं करते वे बड़ी भूल करते हैं। कहा है—

संन्ध्या ये न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते॥

जो द्विज सन्ध्या नहीं जानता है और सन्ध्या नहीं करता है वह जीता हुआ ही शूद्र हो जाता है और मरनेपर कुत्तेकी योनिको प्राप्त होता है।

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्विप्रोऽनर्हः सर्वसु कर्मसु।
कदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्॥

सन्ध्याहीन द्विज अपवित्र है और सम्पूर्ण धर्मकार्य करनेमें अयोग्य है। वह जो कुछ अन्य कर्म करता है उसका पूरा फल उसे नहीं मिलता।

मनु महाराज कहते हैं—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥

(२।१०३)

जो द्विज प्रातःकाल और सायंकालकी संध्यावन्दन नहीं करता उसे द्विज जातिके सम्पूर्ण कर्मोमेंसे शूद्रकी तरह दूर कर देना चाहिये।

इस सम्बन्धमें शास्त्रोंके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। पर अधिककी आवश्यकता नहीं। द्विज महानुभावोंको चाहिये कि वे यथासमय कमसे कम प्रातः सायं दोनों समय सन्ध्या अवश्य करें। जिन द्विजोंके यज्ञोपवीत न हो वे यज्ञोपवीत संस्कार करावें। जो एक समय सन्ध्या करते हो वे दोनों समय करना आरम्भ कर दें। प्रत्येक संध्याके साथ प्रणवसहित गायत्रीके कमसे कम १०८ मन्त्रोंका जप अवश्य करें। प्रणव और गायत्रीकी महिमा बड़ी भारी है।

एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते॥

(२।७८)

वेदवेत्ता विप्र प्रातःकाल और सायंकाल ओंकारका तथा भूः, भुवः और स्वः व्याहृतिपूर्वक गायत्रीका जप

करता है उसे वेदाध्ययनका फल मिलता है।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रित।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥

(२।८२)

जो पुरुष आलस्यका त्यागकर तीन वर्षतक गायत्रीका जप करता है वह मृत्युके बाद वायुरूप होता है और उसके बाद आकाशकी तरह व्यापक होकर परब्रह्मको प्राप्त करता है। इसलिये—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमर्कदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥

(२।१०१)

प्रातःकालकी सन्ध्याके समय सूर्यके दर्शन हो वहाँ तक खड़े रहकर गायत्रीका जप करते रहना चाहिये और सायंकालकी सन्ध्याके समय तारागण न दीखें वहाँ तक बैठे बैठे गायत्रीजप करना चाहिये।

सन्ध्याका विधान प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व और सायंकाल सूर्यास्तके समयका है परन्तु यदि कार्यवश समय न साध सके तो कर्म तो अवश्य ही होना चाहिये। काललोप हो जाय परन्तु कर्मलोप न हो।

कल्याणके गतांकमें सन्ध्यामें पू० श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी उपर्युक्त विज्ञप्ति प्रकाशित हो चुकी है। उसके अनुसार अनेक जगह अनेक लोगोंने सन्ध्योपासन आरम्भ कर दिया है, हमारे पास इसकी सूचनाएं आ रही हैं परन्तु हम चाहते है कि और भी विशेष रूपसे इसका प्रचार हो। अतएव द्विजमात्रको इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। पू० श्रीजयदयालजीके शब्दोंकी अर्थ गम्भीरतापर ध्यान देकर प्रत्येक यज्ञोपवीतधारीको दो समयकी सन्ध्या और गायत्रीका नियम कर लेना चाहिये।
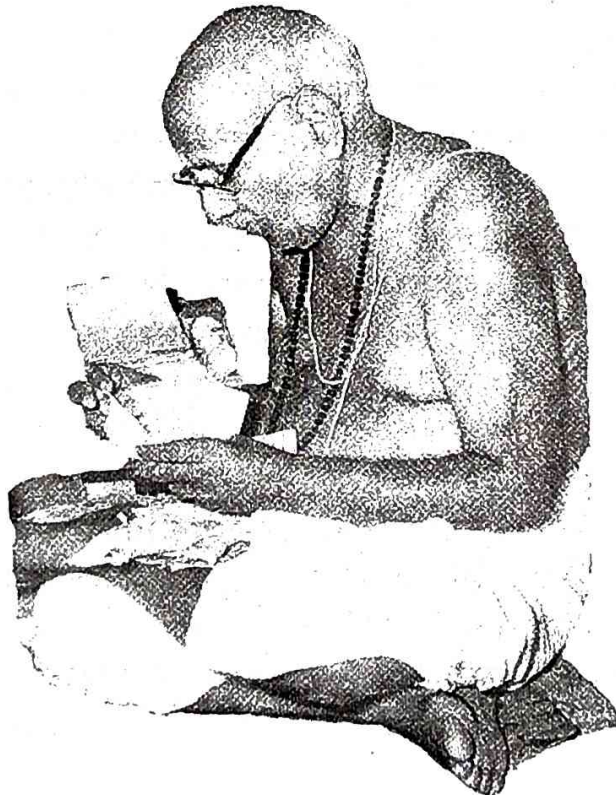
(७)

हरि-नाम-वितरण

(बाइसवाँ पटल, पृष्ठ संख्या १५१ के संदर्भमें)

निताई—प्रभो! तुम्हारी दशा देखकर कलेजा फटता है, क्या थे और क्या हो गये? कहाँ वह विशाल शरीर, असीम बल और कहाँ आज खड़े होते ही गिर पड़ते हो। तुम हम लोगोंके प्राण हो, प्राणोंके प्राण हो, जगत्के प्राण हो, तुम्हारी ऐसी अवस्था देखकर हम लोग कैसे निश्चिन्त रह सकते हैं? प्रतिदिन नेत्रोंसे समुद्रसम जल बहाकर तुम अपना जीवन खो रहे हो।

निमाई—श्रीपाद! मुझे जो दुःख है वह तुम जैसे दुःखीके सिवाय और किसीके सामने भी प्रकट नहीं किया जा सकता। मेरे दुःखकी सीमा नहीं, मैं दुःखके समुद्रमें बह रहा हूँ।

निताई—तुम्हें क्या दुःख है प्रभो? तुमने तो स्वयं दुःख मोल ले लिये हैं; जीवोंको हरिनाम न लेते देखकर उनका कठिन हृदय पिघलनेके लिये तुमने संन्यास लिया। इन संन्यासके दुःखको तुमने अपनी इच्छासे अपने कन्धोंपर उठाया। किस प्रकारके रोनेसे कृष्ण मिलते हैं, जीवोंको यह सिखलानेके लिये तुम दिन रात रोया करते हो। दुःख तो तुमने माँग-माँग करके लिये हैं।

निमाई—श्रीपाद! मेरे दुःख दो तरहके हैं। एक अपने लिये और एक दूसरोंके लिये।

निताई—तुम्हें अपने लिये कौन-सा दुःख है भला?

निमाई—दुःख यही है कि श्रीकृष्ण नहीं मिले, उन्हें पाकर खो दिया। देख नहीं रहे हो? मेरी आँखें श्रीगोविन्दके विरहमें मेघ बन रही हैं।

निताई—प्रभो! जाने दो इस बातको। तुम्हारे मनकी बात तुम्हीं जानते हो, कृष्ण विरह क्या वस्तु है यही दिखलानेके लिये तुम यह सब विरहलीला कर रहे हो। अतएव इस बातको रहने दो, दूसरोंके लिये तुम्हें क्या दुःख है वही बतलाओ, सुनें तो।

निमाई—श्रीपाद! जीवोंके दुःखसे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। जीव चाहें तो वे अपना दुःख सहजमें ही दूरकर सकते हैं। कृष्ण नाम ही कृष्ण है। इस नामसे अनायास उनके श्रीचरणोंकी प्राप्ति हो सकती है। परन्तु जीव उन्हें भूलकर भवसागरमें डूबते हुए छटपटा रहे हैं। इसीलिये हमारा हृदय विदीर्ण हो रहा है।

निताई—प्रभो! तुम जगत्का उद्धार कर रहे हो, किया है। तुम्हारी कृपासे आज हरिनामसे पृथ्वी भर गयी है। सेतुबन्धसे लेकर बंगाल तक सब जगह आज जैसी लहर उठी है। वैसे किसी देश और किसी युगमें कभी नहीं उठी।

निमाई—श्रीपाद! मनकी बात कहता हूँ, सुनो। यह सच्ची बात है कि मैं हरिनाम वितरण कर रहा था, परन्तु उसमें बाधा पड़ गयी। इसीसे जीवोंका उद्धार नहीं हुआ। जब यह बात याद आती है तभी हृदय फटने लगता है।

निताई—बाधा कैसी?

निमाई—श्रीहरिनाममें असीम शक्ति है। मैं गया था उस नामको बाँटने, पर क्या कहूँ, कहते लज्जा आती है। श्रीकृष्णने जीवमात्रके हृदयमें ही प्रेमकी खान बना रखी है। हरिनाम बाँटने गया। हृदयमें प्रेमकी तरंगें उठीं और मैं उसमें बहने लगा। मुझसे अब जीवोंके उद्धारकी सम्भावना नहीं।

(निताई गला पकड़कर गाते हैं)

(वागेश्री)

करि रह्यो किमि आजु मम मन,
धरहु, पकरहु हे निताई!॥
जीव कहँ हरिनाम वितरत, प्रेम-सरिता बाढ़ि आई।
प्रबल अति ही तरंग ताकी, बहि रह्यो अजहूं

निताई!॥
भरि रह्यो अन्तर व्यथा सों, कहौं काहि कथा सुनाई।
देखि जीवनको दुसह दुख, हियो मम फाटत निताई!॥
धन सकल संचित बितायो जीव सब नहिं भक्ति पाई।
महाजनके बहु तकादे, बिकि रह्यो हौ, हे निताई!॥

श्रीपाद! गोलोकसे कृपामयी श्रीमती राधाजीसे जो धन लेकर आया था। वह तो पूरा हो गया, अब जीवोंके लिये क्या किया जाय?

निताई—इस जगत्में तुम्हारे प्रकाशसे जो तरंग उठ रही है उससे समस्त देशका उद्धार होगा। स्त्री, पुरुष, बालक, म्लेच्छ, पतित कोई नहीं बचेगा।

निमाई—श्रीपाद! संन्यास लेकर मैंने देश छोड़ दिया। तुम भी मेरे स्नेहरज्जुसे बँधे हुए मेरे साथ आ गये। गौड़का उद्धार नहीं हो सका। तुम्हारे सिवा इस कामको अब और कौन कर सकता है।

निताई—प्रभो, मुझे क्या आज्ञा है? कहो! तुम जानते हो, मैं तुम्हारे लिये सौ बार प्राण दे सकता हूँ।

निमाई—मेरी यही प्रार्थना है कि तुम गौड़को लौट जाओ।

निताई—यह मुझसे नहीं होगा। तुम्हें छोड़कर मैं तिलभर दूर भी नहीं रह सकता।

निमाई—श्रीपाद! हम लोगोंको अपने सुखकी इच्छाका कोई अधिकार नहीं। हम यदि अपने लिये सुख चाहने लगेंगे तो जीवोंका उद्धार नहीं होगा।

निताई—यदि प्रचारके लिये वहाँ किसी भक्तको भेजना चाहते हो, तो और किसीको भेज दो। तुम्हारे तो लाखों भक्त हैं और भेजनेकी जरूरत ही क्या है। वहाँ तो श्रीअद्वैत आचार्य है ही!

निमाई—श्रीपाद! गौड़ बड़ी बेढब जगह है। वहाँ लोग ज्ञानके पीछे पागल हो रहे हैं। श्रीआचार्यके ज्ञानसे वहाँ उतना फल नहीं होगा। वहाँ तो तुम जैसे प्रेमके मतवाले ही सफलकाम होंगे।

निताई—समझा नहीं।

निमाई—गौड़में बहुतसे महाज्ञानी हैं। वहाँ कोई ज्ञानकी बात कहता है तो बदलेमें वे वैसा ही कहते हैं। इससे केवल तर्क बढ़ जाता है, कोई फल नहीं होता। परन्तु तुम तो यों नहीं करोगे। कोई नाम नहीं लेगा, तो तुम रोकर उसके चरण पकड़ लोगे। और इससे वह ज्ञानको दूर छोड़कर श्रीकृष्णकी शरण हो जायगा।

निताई—तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ प्रभो, किसी दूसरेको भेज दो। तुम्हें छोड़ूंगा तो मैं मर जाऊँगा।

निमाई—(निताईका हाथ पकड़कर) श्रीपाद! विवाद मत करो। मुझमें जीवोंके प्रति स्नेह ही कौन-सा है? मुझमें जीवोंके प्रति जो कुछ प्रेम है, वह मैंने तुमसे सीखा और पाया है। तुम गौड़ जाओ, जाकर दुःखी जीवोंका उद्धार करो। श्रीपाद! मैं बड़ी कातरताके साथ तुमसे विनय करता हूँ। (महाप्रभु रोते हैं)

निताई—(रोते हुए) मैं शरीर हूँ, तुम प्राण हो मुझे कुछ भी स्वतंत्रता नहीं तुम जो आज्ञा दोगे वही करना होगा।

निमाई—श्रीपाद! मैंने तो जीवोंके लिये संन्यास लिया है परन्तु तुमको मेरी अपेक्षा करोड़ गुना अधिक त्याग करना होगा।

निताई—सो कैसे?

निमाई—तुम अवधूत हो, तुमने संसार और कामिनी काञ्चनका त्याग किया है। परन्तु तुम्हें फिर संसारमें जाना पड़ेगा। विवाह करके गृहस्थ बनना होगा।

निताई—इससे क्या होगा?

निमाई—शास्त्रके अनुसार तुम पतित होओगे। समाजमें तुम सबसे अधिक घृणित माने जाओगे। लोग तुम्हारी दिल्लगी उड़ावेंगे, तुमसे घृणा करेंगे, तुम्हें दंभी बतलायेंगे और दुत्कारेंगे।

निताई—मुझे यह सब किसलिये करना पड़ेगा?

निमाई—सुनो! मैंने संसार त्याग दिया, तुम तो

मुझसे भी पहले संसार त्याग चुके थे। इससे लोगोंका यह एक विश्वास हो गया है कि संसार छोड़े बिना श्रीकृष्णभजन नहीं होता। ऐसे विश्वाससे केवल उदासीन लोग ही भजन करेंगे और उनमें भी बहुतसे दम्भी हो जायेंगे।

निताई—इसलिये?

निमाई—इसलिये तुम्हें गृहस्थ बनकर लोगोंको बतला देना होगा कि श्रीकृष्णभजनके लिये घर छोड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है केवल कृष्णप्रेमकी, प्रेम हो गया तो सब कुछ हो गया। तुम्हारे गृहस्थी हो जानेसे लोग समझ जायेंगे कि भजनसाधनके लिये सभी समय घर छोड़ना कर्तव्य नहीं है।

निताई—प्रभो, अब समझा! जीवोंके उद्धारके लिये तुम माता शची और देवी विष्णु प्रियाकी बलि दे चुके हो, मैं क्षुद्र हूँ इसलिये मेरी भी बलि देना चाहते हो। ऐसा ही हो, मेरा सर्वनाश हो जाय, पर जीवोंका उद्धार हो। (रोना)

निमाई—देखो श्रीपाद! तुम्हारे इस असीम शक्तिसम्पन्न शरीरसे बड़े-बड़े काम होंगे। मैं पहले कह चुका हूँ कि तुम्हारे गृहस्थ धारण करनेपर बहुतसे लोग तुमसे ग्लानि करेंगे। उस समय यों विचारना कि दुःखोंका भार अपने कन्धोंपर उठाकर दूसरोंका दुःख दूर करना ही हम लोगोंका कर्तव्य है।

निताई—प्रभो! जीवोंका दुःख दूर करनेमें जो दुःख होता है वही तो दुःख नहीं है, महासुख है। मुझे ऐसा दुःख खूब दो।

निमाई—मैं जानता हूँ तुम दयालु-शिरोमणि हो परन्तु श्रीपाद! मेरा एक निवेदन और है।

निताई—कहो क्या आज्ञा है? जो कहोगे उसीका प्राणपणसे पालन किया जायेगा।

निमाई—गौड़में हरिनाम वितरण करते समय लोगोंको चुन-चुनकर वितरण न करना। जो सामने पड़ जाय, उसीका उद्धार करना होगा। एक बात और याद रखनेकी है, जो तन्दरुस्त हैं, उन्हें वैद्य या दवाकी जरूरत नहीं होती। तुम यदि केवल साधुओंका उद्धार करोगे तो वह काम तन्दुरुस्तकी चिकित्सा करने जैसा होगा। परन्तु ऐसा न कर, जो जितना अधिक पतित और पापी हो उसे उतना ही अधिक कृपाका पात्र समझना। पहले पापी, फिर दूसरे। समझे? एक बात और है।

निताई—कहो, कहो, अब विलम्ब मत करो, मैं जाता हूँ। तुम्हारी आज्ञाका पालन करनेके लिये अभी सीधा गौड़ जाता हूँ।

निमाई—श्रीपाद! जो लोग पण्डित हैं, जिनको ऐसा विश्वास है कि हम खूब समझते हैं। हमारे लिये कुछ भी समझना बाकी नहीं। अथवा जो दाम्भिक हैं, जो अपनेको बड़े साधु या भक्त मानते हैं, ऐसे लोग जगत्‌में सबसे बड़े दुःखी और अभागे हैं, वे ही सबसे पहले दयाके पात्र हैं। देखो, तुम्हें गौड़में ऐसे बहुत पण्डित मिलेंगे जो शास्त्र वचनोंका व्यापार करते हैं परन्तु भगवद्भक्ति और प्रेमसे सर्वथा वञ्चित हैं। तुम्हें उन लोगोंपर विशेष कृपा करनी पड़ेगी।

(गदाधरदास, वासुदेव घोष और रामदास आदि भक्तोंका आना और महाप्रभुको साष्टांग प्रणाम करना)

निमाई—कौन? गदाधर, रामदास, अरे वासुदेव? आओ, आओ, मैं तुम्हीं लोगोंको याद कर रहा था। अच्छा हुआ, तुम सब आ गये। देखो श्रीपाद गौड़का उद्धार करने जा रहे हैं। तुम सब इनके साथ जाओ।

निताई—(भक्तोंसे) प्रभुकी आज्ञा सुन लो। पहली आज्ञा, जो सामने पड़े, उसीका उद्धार करना होगा। दूसरी आज्ञा, जो जितना अधिक पापी होगा वह उतना अधिक कृपाका पात्र होगा और तीसरी आज्ञा, जो अपनेको बड़ा पण्डित, ज्ञानी और धर्मात्मा समझता है, उसपर सबसे पहले कृपा करनी होगी।

वासुदेव—"जो मिले उसीका उद्धार करो" ऐसी आज्ञा केवल स्वयम् श्रीभगवान् ही दे सकते हैं। हम यदि अपने बलपर इस कामको करना चाहेंगे तो कोई भी हरिनाम नहीं लेगा। परन्तु हम प्रभुकी आज्ञासे जा रहे हैं। किसीकी ताकत है जो उसे न माने? जिसको हरिनाम दिया जायगा उसको उसी क्षण गृह लगे हुएकी तरह ग्रहण करना पड़ेगा।

निताई—उठो, चलो, अब विलम्ब न करो—

भजहु गौर, मुख और कहु, जपहु गौरको नाम।
मोहिं प्राणप्रिय, भजहिं जे, गौरचन्द्र सुख धाम।
बोलो श्रीगौराङ्गदेवकी जय। (सबका प्रस्थान)

(२)

स्थान नदिया-गंगातीर

(न्यायरत्न और विद्यावागीशका प्रवेश)

न्याय—पागलोंने यहाँ आकर बड़ा ऊधम मचा दिया है।

विद्या—हाँ, चारों ओर केवल हरि-ध्वनि हो रही है, देशभरको पवित्र कर दिया!

न्याय—सुनो तो सही क्या पवित्र कर दिया। चैतन्यने नीलाचलसे दस बारह पागलोंको गौड़ भेजा। किसलिये? जीवोंका उद्धार करनेके लिये। आये सभी पागल। इन्हींके दलमें एक आदमीका नाम है गदाधर। वह गया पानीहाटीके काजीके घर, जाकर कहने लगा, 'अरे काजी! निकल बाहर और हरिनाम बोल नहीं तो तेरा सिर उड़ा दिया जायेगा।' काजी तो मारे क्रोधके आग बबूला हो गया और 'कौन है रे तू' कहता हुआ उसे पकड़नेको बाहर निकला। पर उसे देखते ही नरम पड़ गया। अच्छा नसीब था कि काजी कुछ बोला नहीं। क्या जरूरत थी यवनके घर जाकर यों बड़प्पन बघारनेकी?

विद्या—बड़प्पन तो ठीक नहीं, परन्तु पता नहीं कि श्रीचैतन्य इन्हें कौन-सा बल देकर भेजा है, जो इन्हें देखता है वही पिघल जाता और भक्त बन जाता है।

न्याय—तुमको भी कुछ रोग लगा दीखता है?

विद्या—रोग नहीं सुनो, न इन लोगोंको भूखका पता है न नींदका और न किसी आरामका। मानो रातदिन आनन्दमें गले जा रहे हैं। "फलेन परिचीयते"। जबसे ये लोग यहाँ आये हैं लाखों आदमी धर्मके मार्गमें लग चुके। यदि वे पागल हैं तो कामके पागल हैं।

न्याय—क्यों? क्या वे पंडित हैं? क्या उन लोगोंको शास्त्रका ज्ञान है? क्या उन लोगोंने कोई तप किया है? केवल नाचना और गाते हुए भटकना। (नैपथ्य गीत) वह देखो! मालूम होता है वही लोग आ रहे हैं। (एक भक्तका नाचते हुए और गाते हुए प्रवेश)

भक्त—(गाना)

"किया पागल निताईने, बांट हरिनाम इस जगको।
संग जो गौर भी होते, तो होता क्या न सब जगको"

न्याय—कौन हो? ठहरो तो जरा, यों मतवालापन क्यों करते हो?

भक्त—(खड़े होकर गाना) "संग जो गौर भी होते, तो होता क्या न सब जगको।"

न्याय—क्या होता?

भक्त—महाराज! अकेले निताईने ही जगत्‌को मतवाला बना दिया यदि गौर साथ होते तो क्या नहीं होता?

विद्या—तुम्हारे निताई क्या करते हैं?

भक्त—निताई सबको बराबर कर रहे हैं। बड़ेको छोटा और छोटेको बड़ा बना रहे हैं। पापीको परम भक्त और सबसे बड़े आदमीको 'तृणादपि' दीन बना रहे हैं और उनके प्रतापसे आज भुवनमंगल हरिनाम जगत्‌में फैल गया है।

न्याय—तुम्हारे उस निताईको एक बार यहाँ ला सकते हो? उससे कहो कि मुझसे आकर शास्त्रार्थ करे, केवल मतवालेपनसे कुछ नहीं होता।

भक्त—श्रीनित्यानन्द शास्त्रार्थ करेंगे? वे तो माली हो गये हैं माली!

"निताई बुला रहे सब आओ।
निताई औ अद्वैत बुलाते, आओ! सत्वर आओ!!
निताई बने हैं माली,
सिर पर रखी है डाली,
बांट रहे हैं मधुर प्रेमफल, आओ सब ले जाओ!!"

निताई और क्या करते हैं, सुनो (गाना और नाचना)

"भर भर कलसे प्रेम बांटते, तब भी घटता कभी नहीं।
जितना देते उतना बढ़ता, पूरा होता कभी नहीं।"

एक बात और नहीं सुनी? देशमें तो बाढ़ आ गयी है (नाचना और गाना)

'शान्तीपुर प्रेममांहि बूड़िबो चाहत अब;
नदिया तो सगरो ही बूड़ि रह्यो तामें'

विद्या—(गला भरकर) यह सब देख सुनकर प्राण कैसे करते हैं? (भक्तका हाथ पकड़कर) भाई! तुमने मनका ऐसा भाव कहाँसे पाया?

भक्त—कौन-सा भाव?

विद्या—यही, जो आनन्दमें डगमगा रहे हो।

न्याय—जरा शराब पी ली होगी और क्या है?

विद्या—नहीं! नहीं! शराब पीनेवाले पागलोंको तो देखकर ही घृणा होती है, पर इन्हें देखकर तो प्राण रो उठते हैं।

न्याय—विद्यावागीश पर भी भूत सवार हुआ दीखता है। देखो, संभलना, कहीं गिर न पड़ना, जल छोड़ूँ माथेपर?

भक्त—इसी रास्तेसे आवेंगे, वह सुनो कीर्तनकी तुमुल ध्वनि। (नेपथ्यमें कीर्तनकी ध्वनि) (श्रीनित्यानन्द और भक्तोंका कीर्तन करते और नाचते हुए प्रवेश)

भक्तगण—(नाचते हुए गाते हैं)

हरि बोलो, हरि बोलो, हरि बोलो भाई।
कलि और गति नाहीं, नाम बिना भाई॥

पहला भक्त—(श्रीनित्यानन्दजीके प्रति) प्रभो! शान्त होओ, यहाँ दो जीव हैं, इनका उद्धार करो!

निताई—बहुत ठीक! यही तो प्रभुकी आज्ञा है कि जो मिले उसीको हरिनाम दो। देखो! सब रास्ते रोक लो, कोई भाग न जाय (विद्यावागीशका हाथ पकड़कर) उन दोनोंमेंसे तुम्हीं एक हो? ठहरो, परीक्षा कर लेने दो। अच्छा, तुम क्या अपनेको बड़ा पण्डित समझते हो?

विद्या—नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं जानता।

निताई—अच्छा! तो क्या अपनेको साधु समझते हो?

विद्या—नहीं, मैं तो बड़ा अधम हूँ।

निताई—तब तुम अभी ठहरो। तुम भागकर नही जा सकते, कारण तुम सन्मुख हो चुके हो। जो कुछ भी हो, तुम्हारा रोग उतना भारी नहीं, कुछ देर पीछे दवा देनेसे भी काम चल जायेगा।

विद्या—मैं तो कुछ समझा नहीं।

निताई—तब समझो। हमारे प्रभु श्रीगौरांगदेवने आज्ञा दी है कि जो मिले उसीका उद्धार करो। तुम मिल गये हो अतएव अब छुटकारा नहीं हो सकता।

विद्या—आपने अभी यह कहा कि तुम्हारी बीमारी इतनी भारी नहीं है, कुछ समय बाद इलाज करनेसे भी काम चल सकता है। इसका क्या अर्थ है?

निताई—सुनो, महाप्रभुने यही कहा है कि जो दांभिक हों, उनका सबसे पहले उद्धार करो। यही प्रभुकी आज्ञा है। तुम दाम्भिक नहीं हो, इसलिये तुम्हारा उद्धार पीछे भी हो सकता है।

विद्या—यह नहीं होगा। मैंने जो अभी आपसे यह कहा था कि 'मैं अधम हूँ' सो मेरी कपटता थी। मेरा तो मन अभिमानसे पूर्ण है। इसलिये आप मेरा उद्धार अभी कीजिये।

निताई—अच्छा, ऐसा ही हो। पर तुम्हारा उद्धार क्या करना है? तुम्हारा तो उद्धार हो चुका। तुम तो प्रभुके निजजन हो। तुम्हारा तो हृदय भक्तिसे पूर्ण है। तुम पर तो प्रभुकी पूर्ण कृपा है।

विद्या—(जोरसे रोकर) आप मेरा उद्धार कीजिये।

निताई—अच्छी बात, हरि बोलो।

विद्या—हरि बोल, हरि बोल हरि (रोता हुआ) हरि बोल हरि बोल हरि।

निताई—(विद्यावागीशका हाथ पकड़कर) आओ, हरि बोलें और नाचें (दोनोंका जोर-जोरसे हरिध्वनि करना और नाचना) (विद्यावागीशका गिरना और मूर्च्छित होना)।

निताई—जोरसे चिल्लाकर प्रभो! प्रभो! इस एक दासको और ग्रहण करो।

पहला भक्त—एक और बाकी रह गये, ये हमारे न्यायालंकार महाशय!

निताई—अच्छा! मालूम होता है, ये छिपते हैं? पर अब छिप नहीं सकते। (न्यायारत्नसे) अब तुम्हारी बारी है। सुनी है आज्ञा? जो मिले—

न्याय—(बात काटकर) सुनो, मेरी तरफ आना नहीं, आओगे तो ठीक नहीं होगा।

निताई—खूब ठीक होगा। तुम्हारे लिये भी और मेरे लिये भी।

न्याय—देखते हो, मेरे हाथमें डण्डा है, नजदीक आओगे तो मारूँगा।

निताई—अच्छी बात है, मार तो मेरे अंगका भूषण है। तुम्हीं क्या? बहुतोंने मुझको मारा है खैर बतलाइये, क्या आप पंडित हैं?

न्याय—हाँ, मैं पण्डित हूँ। तुम लोगों जैसा मूर्ख नहीं।

निताई—क्या आप बड़े साधु भी हैं?

न्याय—हाँ, साधु, तुम लोगोंसे कई गुणा अधिक! तुम लोगोंकी भाँति बगुलाभक्त नहीं हूँ।

निताई—तब तो काम बन गया। सबसे बड़े कृपाके पात्र तो तुम्हीं हो। तुमको बड़ा अभिमान है, अभिमानीसे भी भगवान् बहुत दूर रहते हैं। इसलिये सबसे पहले तुम्हारा ही उद्धार होना चाहिये। प्रभुकी यही आज्ञा है।

न्याय—रहने दो यह बगुलाभक्ति! मैं तुम लोगोंके प्रभुको नहीं मानता!

निताई—तुम प्रभुको नहीं मानते? मालूम होता है कभी दर्शन नहीं किये, उनका काम भी नहीं देखा। अभी केवल २७ वर्ष के हुए हैं। श्रीकृष्णके समान रूप है, पाण्डित्यकी कोई सीमा नहीं। जीवोंका दुःख देखते ही रोकर मूर्च्छित हो पड़ते हैं। उन्होंने इतने जीवोंपर कृपा की है कि इन दो-तीन वर्षोंमें करोड़ों मनुष्य उनकी शरणागत हो चुके हैं। क्या तुम उनको नही मानते?

न्याय—ना, मैं नहीं मानता?

निताई—उनकी शक्ति तो देखो। विद्यावागीश महाशयके कानोंमें हरिनाम जाते ही वे प्रेमसे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। भगवान्की शक्ति बिना कभी ऐसा हो सकता है? इसी तरह करोड़ों जीव मेरे प्रभुकी कृपासे श्रीकृष्णप्रेमको प्राप्त कर रहे हैं और उनका उद्धार हो रहा है।

न्याय—तब तो विद्यावागीशका उद्धार हो गया? क्यों विद्यावागीश! (शरीर हिलाकर) कितना उद्धार हुआ?

निताई—विद्यावागीशको अब इस तरह चेत नहीं होगा, मैं करवाता हूँ (विद्यावागीशके कानोंमें जोर-जोरसे श्रीकृष्ण नाम सुनाना और यों करते-करते कुछ देरमें विद्यावागीशका आँखें खोलना और उठकर दोनों भुजाएँ उठाकर 'हरिबोल' 'हरिबोल' की ध्वनि करते हुए नाचना।

न्याय—क्यों विद्यावागीश! पागल तो नहीं हो गये?

विद्या—(नृत्य करते-करते) पागल हो गया।! पागल हो गया! तुम भी हो जाओ पागल, जगत् पागल हो जाय। क्या आनन्द है? अब मुझे दीखता है कि श्रीभगवान् मंगलमय हैं, वे मेरे हैं, मैं उनका हूँ, वे मेरे प्राणोंके प्राण हैं।

निताई—(न्यायरत्नके प्रति) देखा श्रीकृष्णकी शरणागतिका फल? आज ये विख्यात अध्यापक, अटल, गंभीर और ज्ञानमय विद्यावागीश कैसे नाच रहे हैं? इस आनन्दका मूल्य तो प्राणोंसे भी अधिक है।

न्याय—जो कुछ भी हो, मेरे पास न आना।

निताई—तुम क्या भागना चाहते हो? यह नहीं होगा, प्रभुकी ऐसी आज्ञा नहीं।

न्याय—जाऊँगा नहीं।

निताई—अब जाना नहीं होगा।

न्याय—मैं हरिनाम नहीं लूँगा तो तुम क्या करोगे?

निताई—देखो, क्या करता हूँ (हाथ जोड़कर) महाराज! हरिनाम ग्रहण करो, मैं आपसे विनती करता हूँ।

न्याय—जाओ, जाओ, मैं नहीं लेता।

निताई—(सुरके साथ) 'आओ भाई लगो हृदयसे, मुखसे बोलो हरिका नाम'। (साधारण स्वरसे) बोलो हरि नाम बोलो, एक बार हरिनाम बोल कर मुझे खरीद लो, मैं तुम्हारा गुलाम बनता हूँ। (दाँतोमें और हाथोंमें तृण लेकर) अच्छा; देखो मैं दांतोंमें और हाथोंमें तृण लेकर प्राणोंके साथ तुमसे विनती करता हूँ, हरिनाम ग्रहण करो और

हरिनाम लेकर सहजमें संसारसे तर जाओ। हरिनाम लेकर दयामय कृष्णपर कृपा करो!

न्याय—चलो हटो, मुझे तंग न करो, मुझसे नहीं होगा, मैं अपने घर जाता हूँ।

निताई—(घुटने जमीनपर टेककर) भाई! इस सौभाग्यको क्यों छोड़ते हो? हे भगवन्! हे कृष्ण! हे श्रीगौर! इस न्यायालंकार ब्राह्मणको ग्रहण करो। (रोना) भाई! आओ, आओ! हम सब एक साथ मिलकर अपने प्राणनाथका भजन करें। तुम भी उसीके हो, मैं भी उसीका हूँ। मैं उसका भजन करूँ और तुम न करो। यह कैसे हो सकता है?

न्याय—ठीक है, मैं कुछ विचार तो कर लूँ, अभी मुझे घर जाने दो।

निताई—शुभ कार्यमें विलम्ब क्यों? (दु:खी होकर) नहीं हुआ। नहीं हुआ। हे श्रीभगवन्! अब तो इस न्यायालंकारको ग्रहण करो (धूलमें लोटना) प्राण छटपटाते हैं, भगवन्! यदि अब भी तुम इस न्यायालंकारको ग्रहण नहीं करते हो तो मैं यहीं सिर पीटकर मर जाता हूँ।

न्याय—यह कैसी आफत! आज न हुआ तो क्या है? अरे, मुझको रोना क्यों आता है? (चारों ओर ताककर) लोग क्या कहेंगे? मैं यदि अभी हरि बोलूं, हरि बोलूं तो लोग दिल्लगी करेंगे। अभी हरि नहीं बोलूँगा। (चिल्लाकर बोलता है) हरि बोल हरि, कभी नहीं बोलूँगा। हरि बोल हरि, यह तो आप ही बोला जाता है। क्या आफत है! हरि बोल हरि, हरि बोल हरि!

निताई—(उठकर न्यायालंकारका हाथ पकड़कर) आओ भाई! नृत्य कर। (हाथ पकड़कर नाचना) (न्यायालंकारका भी नाचना)

न्याय—बचा! मैं न्यायालंकार अब बचा, हे श्रीगौरांग! तुमने मुझे बचाया, अब मुझपर क्षमा करो। हे प्रभो! इस दीन भक्तिहीन कठोर-हृदय ज्ञानाभिमानी अबोधको चरणोंका आश्रय दो। (मूर्छा)

निताई—एकको भी नहीं छोड़ना है। आओ भाइयो! इस कृष्णके नये दासको घेरकर नाचें। (सब परस्पर हाथ पकड़कर न्यायालंकारके चारों ओर नाचते और गाते हैं)

गान

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे
(एक बार उदय होओ हे)
राम राघव राम राघव राम राघव पाहि माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव रक्ष माम्।

(स्व० शिशिर बाबूकृत निमाई संन्यासके आधारपर)

Detaintion Order by the Government of Bengal

(दसवाँ पटल, पृष्ठ संख्या ४७ के संदर्भमें)

Whereas in the opinion of the Government of Bengal there are reasonable grounds for believing that Hanuman Prasad Poddar, son of Bhimraj Poddar of 91, Bartala Street, Calcutta and formerly of police station & Village Ratangarh, in the district of Bikaner has acted, is acting and is about to act in a manner prejudicial to the public safety, the Governor in Council, in exercise of the power conferred upon him by the rules made by the Governor-General in council, in pursuance of section 2 of the Defence of India (Criminal Law Amendment) Act 1915, and published in the Government of India, is pleased to issue the following order in respect of the said Hanuman Prosad Poddar.

Order by the Government of Bengal under the powers given to them by Rule 3 of the Defence of india (Consolidation) Rules, 1915, issued under section 2 of the Defence of India (Criminal Law Amendment) Act, 1915 (IV of 1915).

To Hanuman Prosad Poddar son of Bhimraj Poddar of 91, Bartala Steet, Calcutta and formerly of Ratangarh Village & Police Station in the district of Bikaner.

1. You are hereby directed to report youself to the Superintendent of Police of Bankura at such time and place as the Deputy Inspector-General, Intelligence Branch, may direct, and shall thereafter obey the directions of the said superintendent of Police.

2. You are futher directed to allow your photograph and fingerprints to be taken under the direction of the said officer.

3. You must also furnish as many specimens of your handwriting and signature as may be required by that officer.

4. You are thereafter directed to proceed direct to Simlapal, police-station Simlapal in the district of Bankura, and to report yourself to the officer in charge of policestation Simlapal at such time and place as the Superintendent of Police may direct.

5. You must reside until further orders at the place in premises to be selected and defined under the orders of the Superintendent of Police.

6. You are prohibited from leaving these premises between 6 P.M. and 6 A.M. and from receiving any visitors between these hours.

7. You must pay no visit to, nor receive visitor's from persons other than those permanently domiciled within the limits of the village of Simlapal without permission to be previously obtained from the District Officer of the Bankura district, or such officer as he may designate for the purpose.

8. You must not converse or associate with any school boy, student or schoolmaster, or any person connected with any school.

9. You must, without an delay, deliver

unopened all telegrams, postal articles or communications of any kind including parcels and other articles however transmitted, which arrive to your address, or that of your servant but which are, intended for you to the officer in charge of the Simlapal police station Simlapal.

10. You must not enter into written correspondence with any person unless such correspondence has been previously submitted to the officer in charge of the Simlapal police station for examination by the superintendent of Police.

11. You must report youself personally once a day at such hour as may be specified by the superintendent of Police to the officer in charge of the Simlapal police station. You are prohibited from leaving the limit of the village of Simlapal except for the purpose of reporting yourself to the officer in charge of the Simlapal police station.

12. You must at all time allow free access to the permises in which you are living to the officer in charge of the Simlapal police station superior in rank to the officer in charge of the police station.

13. If you are at any time unable, re reason of severe sickness or other serious infirmity, to report yourself as directed in paragraph 11, you must give immediate intimation of your inability to do so to the officer in charge of the Simlapal police station, and you must permit such officer or his deputy to enter your premises and by personal examination satisfy himself as to the correctness of your statement.

14. If by reason of your illness or any other cause the superintendent of Police should consider it necessary to change your domicile temporarily either for medical examination or treatment or on account of any other contigency, you must carry out the orders of the superintendent of Police. During such temporary domicile you must reside in premises to be selected and defined under the orders of the superintendent of Police, and you will be bound by the rules otherwise contained in this order so far as they apply.

15. If you knowingly disobey any direction in this order other than that contained in paragraph 2 and 3, you will be punishable with imprisonment of either description for a term which may extend to three years, and will also be liable to fine. For failure to comply with, or attempts to evade any directions given in paragraph 2 and 3 you will be punishable with imprisonment of either description for a term which may extend to six months, or with fine which may extend to Rs. 1000 or with both.

By order of the Government in Council
(Sd.)
Secy. to the Govt. of Bengal

विक्रम सम्वत एवं यथासम्भव ईसवी सन् की सूची

सं०	सन्	सं०	सन्	सं०	सन्
१९४९	१८९२	१९७६	१९१९	२००३	१९४६
१९५०	१८९३	१९७७	१९२०	२००४	१९४७
१९५१	१८९४	१९७८	१९२१	२००५	१९४८
१९५२	१८९५	१९७९	१९२२	२००६	१९४९
१९५३	१८९६	१९८०	१९२३	२००७	१९५०
१९५४	१८९७	१९८१	१९२४	२००८	१९५१
१९५५	१८९८	१९८२	१९२५	२००९	१९५२
१९५६	१८९९	१९८३	१९२६	२०१०	१९५३
१९५७	१९००	१९८४	१९२७	२०११	१९५४
१९५८	१९०१	१९८५	१९२८	२०१२	१९५५
१९५९	१९०२	१९८६	१९२९	२०१३	१९५६
१९६०	१९०३	१९८७	१९३०	२०१४	१९५७
१९६१	१९०४	१९८८	१९३१	२०१५	१९५८
१९६२	१९०५	१९८९	१९३२	२०१६	१९५९
१९६३	१९०६	१९९०	१९३३	२०१७	१९६०
१९६४	१९०७	१९९१	१९३४	२०१८	१९६१
१९६५	१९०८	१९९२	१९३५	२०१९	१९६२
१९६६	१९०९	१९९३	१९३६	२०२०	१९६३
१९६७	१९१०	१९९४	१९३७	२०२१	१९६४
१९६८	१९११	१९९५	१९३८	२०२२	१९६५
१९६९	१९१२	१९९६	१९३९	२०२३	१९६६
१९७०	१९१३	१९९७	१९४०	२०२४	१९६७
१९७१	१९१४	१९९८	१९४१	२०२५	१९६८
१९७२	१९१५	१९९९	१९४२	२०२६	१९६९
१९७३	१९१६	२०००	१९४३	२०२७	१९७०
१९७४	१९१७	२००१	१९४४	२०२८	१९७१
१९७५	१९१८	२००२	१९४५		

लेखकको मिला आशीर्वाद एवं शुभकामनायें

(१)

पूज्य उड़ियाबाबा (पूर्णानन्द तीर्थ)

तुम हनुमानप्रसादका जीवन चरित लिख रहे हो। यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। हमारे हरी बाबाजी तो उनकी बहुत प्रशंसा किया करते हैं। मेरा हजार बार आशीर्वाद है, तुम इस कार्यमें सफलता प्राप्त करो।

श्रीवृन्दावनधाम, भाद्र कृ० ५ सं० २००३,

श्रीकृष्णाश्रम, प्रात:काल

उड़िया अक्षरोंमें स्वयं उड़िया बाबाजीने इस प्रकार लिखा 'पूर्णानन्द तीर्थ' ख्याति 'उड़ियाबाबा'

(२)

पूज्य सनातनदेवजी,

स्वर्गाश्रम (हृषीकेश)

ज्येष्ठ शु० ५, सं० २००३

श्रद्धेय श्रीभाईजीसे मेरा प्राय: सतरह वर्षका सम्बन्ध रहा है। वे दैवी संपदा और सौजन्यके मूर्तिमान विग्रह हैं। इतने दिनोंतक मैंने उनके अनेकों उपदेश और व्याख्यान सुने हैं। परन्तु मुझपर तो उनके व्यक्तित्वका ही विशेष प्रभाव पड़ा है। उनके जीवनसे मुझे अपना जीवन निर्माण करनेमें बहुत अधिक सहायता मिलती है। उनका बर्ताव सर्वसाधारणके लिये सच्चा पथप्रदर्शक है। आप उनके जीवनकी सामग्री संकलित कर रहे हैं। यह बड़े आनन्दकी बात है। भगवान् आपके इस सदुद्देश्यमें सहायक हो। आपके इस कार्यसे जगत्का बड़ा उपकार हो सकता है। श्रीभाईजी सच्चे महापुरुष हैं और महापुरुषोंका जीवन ही कल्याणकारी और साधकोंका सच्चा पथप्रदर्शक होता है। आप यथासंभव अपना यह प्रयत्न अवश्य चालू रखें। विघ्न-बाधाओंसे सशंक न हों। सभी शुभ कर्मोंमें विघ्न तो आया ही करते हैं, परंतु जिनका उद्देश्य सच्चा होता है उनकी विघ्न विनाशक हरि सर्वदा सहायता करते हैं। वे ही आपकी भी रक्षा करेंगे।

—सनातनदेव

(३)

पूज्य श्रीलक्ष्मीनारायणजी वैद्य

श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)की स्मृतिमात्रसे ही नित्य निकुञ्ज लीलाकी मधुर स्मृति हृदयमें उदय होने लगती है। इन्हीं श्रीभाईजीकी जीवन चरितावलि आदरणीय श्रीदुजारीजी लिख रहे हैं। यह जानकर बहुत आनन्द मनमें हो रहा है। श्रीभाईजीके जीवन चरित्रको पढ़ने और सुननेकी इच्छा भारतीय प्रेमीजनोंके अतिरिक्त दीवांतर (पश्चात्य देशीय) अनेक प्रेमी भक्तजनोंको भी रहती है। श्रीभाईजी प्राकृत विषयोंमें आसक्त कलिकालके हजारों जीवोंको कल्याण अपने वचनामृत और आचरणों द्वारा, आत्यन्तिक कल्याण प्रदान करते ही रहते हैं। परम पूज्य श्रीभाईजीके प्रथम दर्शन मुझको अजमेर राजस्थानमें हुआ है और इन्हींकी सहज करूणासे परम पूज्य श्रीबाबाके दर्शन हुए हैं। आजसे पन्द्रह वर्ष पूर्व सं० १९४३-४४ में इनके शुभ दर्शन हुए हैं। दर्शन देनेके साथ ही मुझ जैसे महापातकीको शरण देकर अपना बना लिया। इन पन्द्रह वर्षोंमें श्रीभाईजीसे ज्यों-ज्यों निकट सम्पर्क होता जाता है त्यों-त्यों इनके अलौकिक दिव्य गुणोंका दर्शन मिलता जा रहा है। श्रीभाईजीके दिव्य,

अलौकिक सम्पूर्णतः ज्ञान एक व्यक्तिको हो ही नहीं सकता क्योंकि जब-जब देखते हैं तब-तब नवीन-नवीन महापुरुषोंके दिव्य गुणोंकी झाँकी इनके आचरणोंमें दिखायी पड़ती है। मुझको भाईजीके स्वभावमें जिन-जिन गुणोंका दर्शन होकर अनुभव हुआ है वह गुण ये हैं सर्वभूत प्राणीमात्र जड़ और चेतन्यमें भगवद्बुद्धि और भगवदृष्टि, मानवसेवा धर्मपरायणता, राष्ट्रसेवा तत्परता, राष्ट्र विल्पवादि प्रसंगोंमें प्राणियोंके दुःखोंको देखकर संतप्त और व्यथित होकर उनको निवृत्तिके लिये तन-मन-धनसे सेवा करते हुए उपवास भवप्रार्थनादि करना, धर्मयुक्त राजनीतिको आदर देते हुए धर्म और देशके लिये कारावासादि दुःखोंको सहर्ष सहना, सांसारिक व्यवहार कार्य संपादन करते हुए भी प्रतिक्षण रह रहः नित्य (तौलधारावत मनोवृत्तिको भगवत्लीला चिंतवन दर्शनमें लगाये रखना, श्रीभगवत्कृपा प्राप्त सामर्थ्यको पूर्ण प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना, अपनी महिमासे अतिदूर (मनोवांक्षासे दूर) रहना। अपने निंदक और अपने प्रति दुर्भावना रखनेवाले प्राणियोंका उपकार मानकर उनके प्रति पूर्ण सहानुभूति रखना, दूसरोंके दोषोंको मनमें भी स्थान न देते हुए अपनेको अयोग्य गणना। अपनी समस्त भौतिक द्रव्य वस्त्रादि सब ही वस्तुको भगवान् की है और उन सबका ही उपयोग आवश्यकतानुसार सबको ही देनेमें उदारता, त्याग, वैराग्य, भगवत्प्रेमके साथ संत-भक्तोंकी सेवा, दीनता, धैर्य और बहुज्ञता (अन्तरयामित्व) के कारण सबके ही गुप्त शारीरिक तथा मानसिक दुराचारोंको परिचय हो जानेपर भी उसका तिरस्कार व अपमान तो करना दूर रहा अपितु उसके मनको दुःख न पहुँचे इसलिये उसको अपनाकर धीरे-धीरे उसके दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न करना, आधिभौतिक, आदिदैविक, आध्यात्मिक तीनों प्रकारके दुःखोंमें किसी प्रकारके दुःखसे संतप्त प्राणी आपतक पहुँच सके अथवा उसके दीख पड़नेपर उसको आत्मीय जानकर पूर्ण प्रयत्नसे उसको दुःखोंसे छुड़ाकर भगवत्प्राप्तिके प्रयत्नोंमें लगाकर भगवान्के चरणोंमें उसकी रुचि पैदा कर देते हैं।

जो जीव अंत:करणसे सम्पूर्ण भावोंसे आपका बन जाता है उसपर दयाकर भगवत्प्राप्ति करा देते हैं (कई प्रत्यक्ष घटना हुई है) पर निंदा, परूषवाक्य, परभर्त्सना, वृथालाप, ग्रामचर्चा, रोगी, भूखा, नंगा, अपंग, पापी, मूढ़ देखकर उसको इन दुःखोंसे छुड़ानेके लिये सबकुछ करनेको तत्पर होते हुए अपने सच्चिदानन्दघन प्रभुसे करुणादि चित्तसे उनके लिये प्रार्थना करते हैं। 'मात्रवत्पर दारेषु परद्रव्येषुलोष्टवत्। आत्म वत्सर्वभूतेषु' यह तीनों अलौकिक गुण श्रीभाईजीमें सहज ही हैं। ऐसे महापुरुषका जीवन चरित्र यदि पढ़नेको मिल जाय तब तो उस प्राणीका सर्वसुखोदय हो सकनेमें कोई सन्देह ही यदि वह श्रद्धापूर्वक पढ़े-सुने और अपने अवगुणोंको हटा देनेका पूरा प्रयत्न करता हुआ इनके सद्गुणोंको यथाशक्ति धारण कर अपना सुन्दर जीवन बनानेकी इच्छा रखे। श्रीभाईजीके जीवनकी उत्तमोत्तम घटनायें (जिनमें भगवत्प्रेम पूर्ण भावप्राप्त होकर भगवत्साक्षातकार, भगवत्लीला, दर्शनजन्य प्रेम समाधि और शक्तिपात करना और वहाँ उपस्थित किसी महाभाग पुरूषको भगवतसाक्षात्कार करा देना, भगवदात्मीयताके नाते जो-जो अद्भुत लीलामें सम्मिलित होकर परमार्थकी और अनेक ऐंसी विलक्षण अद्भुत अलौकिक अवस्था जो इनकी होती है वह प्रायः अप्रकट ही है उनका ज्ञान कैसे हो। वह तो केवल प्रभुकी (और भाईजी) कृपासे ही प्राप्त हो सकती है फिर एक आशाकी किरण जरूर दीख रही है कि श्रीआदरणीय दुजारीजी जिन्होंने इस पावन जीवन चरित्रको संग्रहीत करके लिपिबद्ध करनेके लिये कमर कसी है जरूर बहुत-सी उत्कृष्ट घटनाओंकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। कारण कि बहुत वर्षोंसे श्रीदुजारीजी श्रीपूज्यभाईजीके सांनिध्यमें रह रहे हैं और दीर्घकालसे इस जीवन चरित्रके लिखनेके प्रयत्नोंमें लगे हुए हैं। श्रीदुजारीजीमें मैंने ऐसी लगन इस कार्यमें देखी है कि सोते-जगते चलते-फिरते, खाते-बैठते हर वक्त इसीकी धुनमें लगे रहते हैं।

इन सब बातोंके अतिरिक्त श्रीभाईजीकी इन श्रीदुजारीपर बड़ी कृपा है और श्रीदुजारीजी भाईजीके निकटतम कृपापात्र आत्मीयजन हैं। अतः इनकी सफलतामें संदेह नहीं है। मुझ जैसे महापतित पापीष्ट दुर्वृत्त अधमप्राणीको भी श्रीभाईजीने करूणा प्रदानकर अपनी शरणमें ले लिया है। महोदार महापुरुषके पावन जीवन चरित्रको जो

कोई श्रद्धापूर्वक सुनेगा उसको आत्मसात करेगा वह अवश्य श्रीकृष्णप्रेम प्राप्त करनेका अधिकारी होगा। श्रीप्रभुसे यह प्रार्थना करता हूँ कि आदरणीय श्रीदुजारीजीको इस जीवन चरित्रको लिखनेके कार्यमे आप दयाकर सफल बना देवें। भक्तवृन्दके पावन चरणरजकी सेवा इच्छुक

—लक्ष्मीनारायण वैद्य २०-१२-५९

(४)

श्रीरामनिवासजी ढंढारिया

पूज्य श्रीभाईजीका प्रेममय जीवन जगत्के लिये सदा-सर्वदाके लिये आदर्श बन गया है; जो भी उनके सम्पर्क-स्पर्शमें आया वह इस शरीर-परिधिके बाहर भी निहाल हो गया। मैं तो उनका बालक हूँ, सगा-अपना हूँ। मेरी खटकनेवाली न्यूनताओं-कमियों और खामियोंके बावजूद भी उन्होंने अपने सरल-स्नेहसे मुझे सराबोर कर दिया। यह उनके गुरुत्वके विरदके अनुकूल ही है। पात्रता देखकर रीझनेमें तो पात्रकी भी किंचित महिमा मानी जा सकती है पर किसीको भी अनायास, अकारण स्नेहसे परिप्लुत करना, यह भागवत आदर्शका ही प्रतीक है। पूज्य श्रीभाईजीमें वे सारे गुण एक साथ घनीभूत रूपसे घटित है जिन्हें वाणी गिना सकनेमें सर्वथा दरिद्र है। नवनीतके लौंदेको कहींसे देखें वह तो नवनीत ही रहेगा—विशुद्ध नवनीत।

मेरे लिये उनके भागवत आदर्शोंका स्मरण-प्रेरणाकी वस्तु है। सच मुझको संसारमें उनके सिवा कुछ दीखता नहीं। क्या-क्या कमजोरी है अपनी?

श्रीदुजारीजी उनके जीवनके पावन-प्रसंगोंका संकलन कर रहे हैं यह हम सभीके लिये हर्षकी बात है। पवित्रताका स्मरण, सद्गुणोंका चिंतन, स्वयंमें पवित्रता और सद्गुणोंका जनक होता है। पूज्य भाईजीकी जीवनी ये मधुर प्रसंग प्राणीमात्रके जीवनको प्रेममय कर दे, रसमय कर दे यही प्रार्थना श्रीराधारानीसे है।

—रामनिवासजी ढंढारिया

(५)

श्रीरामलालजी

श्रीगंभीरचंद दुजारीने भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके साधना सम्बन्धी जीवनके अनेक प्रसंगोंका इस पुस्तकमें बड़े यत्न और सावधानीसे संकलन किया है। दुजारीजीका भाईजीसे अनेक वर्षोंसे प्रेमपूर्ण सम्बन्ध रहता आया है और यह आगे भी बना रहेगा, भाईजीके सम्बन्धमें उनका यह श्रद्धापूर्ण प्रयत्न निसंदेह एक असाधारण बात है। भाईजीके जीवन-रहस्योंकी खोज करनेवाले श्रद्धालु, जिज्ञासुओंको इस पुस्तकसे बड़ी सहायता मिल सकती है। मेरा भाईजीसे पन्द्रह साल पहले परिचय हुआ था। उस समयसे आजतक मैंने सदा उनके चमत्कारपूर्ण जीवनकी गूढ़ता समझनेका प्रयत्न किया पर प्रत्येक बार मुझे उनके सरल हृदयकी यही ध्वनि सुन पड़ी कि जीवात्माका कल्याण भगवदाश्रयसे ही हो सकता है।

—रामलाल

२०-२-६०

गीतावाटिका प्रकाशन

पो०-गीतावाटिका, गोरखपुर-२७३००६
e-mail : rasendu@hotmail.com फोन : ०५५१ - २२८४७४२,
मो०- ८८५३१४५४५२

हमारे प्रकाशन

१. भाईजी पावन स्मरण		३००
(सम्पादक-महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथजी कविराज)		
२. श्रीभाईजी कथामृत		२५०
३. श्रीभाईजी एक अलौकिक विभूति		९०
(पू० भाईजी एवं पू० श्रीसेठजीकी संक्षिप्त जीवनी) (संयोजक-श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी)		
४. भाईजी चरितामृत		५०
(पू० भाईजीके शब्दोंमें उनके जीवन प्रसंग) (संयोजक-श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी)		
५. दो अध्यात्मिक विभूतियोंके प्रेरक प्रसंग		२०
(पू० श्रीसेठजी एवं पू० श्रीभाईजीके कुछ संस्मरण)		

पूज्य श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी द्वारा लिखित पुस्तकें

१.	भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर बाललीलायें	२५०
२.	श्रीरासपञ्चाध्यायी	३५
३.	वेणुगीत	३५
४.	यज्ञ पत्नियोंपर कृपा	३०
५.	प्रभुको आत्मसमर्पण	३०
६.	नित्य स्मरणीय अमृत वचन	५०
७.	समाज किस ओर जा रहा है	३०
८.	क्या, क्यों और कैसे	३०
९.	रस और आनन्द	३०
१०.	प्रेमका स्वरूप	३०
११.	साधकोंके पत्र	३०
१२.	अन्तरङ्ग वार्तालाप	३०
१३.	सरस प्रसंग	३०
१४.	सरस पत्र	३०
१५.	परमार्थकी पगडंडियाँ	३०
१६.	सत्संगवाटिकाके बिखरे सुमन	३०
१७.	व्रज-भावकी उपासना	२५
१८.	श्रीशिव-चिन्तन	२५
१९.	श्रीभरत-चरित्र	२५
२०.	श्रीदेवी-चिन्तन एवं कुछ उपयोगी मंत्र	२५
२१.	पारमार्थिक एवं लौकिक सफलताके सरल उपाय	२५
२२.	शान्तिकी सरिता	२०
२३.	मेरी अतुल सम्पत्ति	१०
२४.	भगवत्कृपा	५
२५.	श्रीराधा-जन्माष्टमी व्रत महोत्सव	५
२६.	गीति-संग्रह	१५
२७.	कालियनागपर कृपा	३०
२८.	प्रेम और प्रेमी	३०
२९.	सुखी होनेके उपाय	३०
३०.	नित्य-उत्सव	३०

पू० भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार द्वारा सम्पादित पुस्तकें

१.	श्रीराधागुणगान	३०
२.	भगवन्नाम एवं प्रार्थनाके चमत्कार	३०
३.	भगवत्कृपाके अनुभव	३०
४.	भगवत्कृपाके चमत्कार	३०
५.	योग एवं भक्ति	३०
६.	रोगोंके सरल उपचार	३५
७.	भारतीय नारी	३०
८.	भारतीय संत	३०
९.	संत दर्शन	३०
१०.	भक्ति रहस्य *(महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज)*	३५
११.	भक्त और भगवान *(श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय)*	३५
१२.	निश्चिन्त हो रहो *(श्रीभूपेन्द्रनाथ सांन्याल)*	३५
१३.	जैसा बीज वैसा फल	३०
१४.	व्रजभाव	३०

पू० श्रीराधाबाबाका साहित्य

१.	केलीकुंज	७०
२.	आस्तिकताकी आधार शिलायें	३५
३.	मेरे प्रियतम	३०
४.	महाभागा व्रजदेवियाँ	३०
५.	परमार्थके सरगम	३०

अन्य साहित्य

१.	दिव्य हस्तलिखित संकेत *(पू० सेठजी, पू० भाईजी, पू० स्वामीराम-सुखदासजी एवं पू राधाबाबाके पत्र)*	५०
२.	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव *(संकलनकर्ता—श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी)*	१०
३.	पद-रत्नाकर—एक अध्ययन *(लेखक-श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी)*	३०

लेखक का परिचय

श्रद्धेय श्रीभाईजीके अनन्य भक्त पूज्य श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीका जन्म भाद्रपद शुक्ल ७, शुक्रवार वि.सं. १९५८ (सं. १९०१) को एक धर्मपरायण माहेश्वरी कुलमें हुआ था। पारिवारिक संस्कारोंके कारणवश बचपनसे ही इन्हें सत्संगकी लगन थी। मातृ एवं पितृ वियोगके कारण इनका बचपन कष्टमें बीता। इसी कारण वह विधिवत शिक्षा भी न पा सके। अल्पायुमें इन्होंने गीतापाठ आरम्भ कर दिया। सामाजिक प्रवृत्ति, राष्ट्रीय भावना प्रबल रही। लेख एवं भाषण भी पत्रिकाओंमें छपते रहे।

श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे इनकी भेंट सं. १९७९ में ऋषिकेशमें हुई। उनके व्यक्तित्त्वसे ये बहुत प्रभावित हुए। सं. १९८० में बीकानेर प्रवासकालमें इनका भाईजीसे सम्पर्क हुआ। ये भाईजीके प्रति इतने आकर्षित हुए कि कुछ समय बाद व्यापार छोड़कर सदाके लिये अपने आपको भाईजीके चरणोंमें समर्पित कर दिया। इन्होंने 'कल्याण' के प्रचारमें बड़ा परिश्रम किया। गीताप्रेसके उत्थानमें इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

अपने जीवनके अन्तिम समयतक ये पूज्य भाईजी के जीवन-तथ्य एवं पत्रों आदिके संग्रहमें लगे रहे। मृत्युके दिन भी उन्होंने सन्मार्गमें प्रकाशित भाईजीके लेखकी कटिंग रखी।

गोलोकवास- फाल्गुन शुक्ल १०, सं. २०१८ वि.

प्रियतम ! मीठी नित याद तुम्हारी आती ।
मैं पलभर तुमको कभी बिसार न पाती ।।

जगनेमें सपनेमें तुम, मेरे प्यारे,
होते तुम कभी न मुझसे पलभर न्यारे ।।

दे दर्शन मुझको सदा परम सुख देते ।
कर मीठी रसकी बातें, दुख हर लेते ।।

देते रहते दिन-रात स्पर्श-सुख भारी ।
निज हृदय खोल, कह देते मनकी सारी ।।

यों मिलनेपर भी मिलनेकी अभिलाषा ।
रहती बढ़ती ही नित्य मिलनकी आशा ।।

नित मिलनेपर भी पल न दूर स्मृति होती ।
वह सदा तुम्हींमें प्यारे ! जगती-सोती ।।